ग्रीक-दर्शन

(थेलीज से प्लेटो तक)

GREEK PHILOSOPHY

(Thales to Plato)

डा० श्री [illegible]
स्नातकोत्तर [illegible]
ज[illegible]पुर विश्वविद्यालय
जबलपुर

5.5

ग्रीक-दर्शन

This book is the Hindi Translation of GREEK PHILOSOPHY by JOHN BURNET published by Macmillan & Co. Ltd. London. The translation rights were obtained by the Commission for Scientific and Technical Terminology. It has been brought out under the scheme of Production of University level books sponsored by Government of India, Ministry of Education and Social welfare.

ग्रीक-दर्शन

(थेलीज़ से प्लेटो तक)

GREEK PHILOSOPHY

(Thales to Plato)

लेखक :

जॉन बर्नेट

अनुवाद :

डॉ० श्री प्रकाश दुबे
स्नातकोत्तर दर्शन विभाग
जबलपुर विश्वविद्यालय
जबलपुर

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल

ग्रीक-दर्शन

GREEK PHILOSOPHY – by Jhon Bernet

प्रकाशक

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

९७, मालवीयनगर, भोपाल– ३

●

●

प्रथम संस्करण

१९७३

मूल्य : १६ रुपये

मुद्रक : विजय प्रिन्टर्स, २४, नमकमण्डी, उज्जैन

प्रस्तावना

भारत और रूस का सम्बन्ध बहुत प्राचीन है । ईसापूर्व पाँचवी शताब्दी से लेकर ईसा के पश्चात् कुछ शताब्दियों तक यह सम्बन्ध अभिछिन्न बना रहा । आयोनिया से आने वाले लोग इस देश में यवन कहे जाते थे । सम्भवतः यह शब्द आयोनियन का भारतीय कृत रूप सा था । यह सम्पर्क यहाँ तक बढ़ा कि कुछ सिक्कों पर तक दोनों भाषाओं में लेख उत्कीर्ण किये गये । भारतीय वैयाकरणों को यवन लोगों की लिपि के लिए एक स्वतन्त्र वार्तिक की रचना करनी पड़ी । जिससे यवनी और यवनानी एक दूसरे से प्रमाणित हुईं । आगन्तुक ग्रीक लोगों में से बहुतों ने भारतीय धर्मों की दीक्षा ली । मूर्ति-टंकन में तो मिली जुली नई गान्धार शैली ही प्रचलित हो गयी । भारतीय सैन्य संगठन पद्धति और सैन्य संचालन कला पर भी ग्रीस का प्रभाव पड़ा ।

इतना होने पर भी न जाने क्यों दर्शन के क्षेत्र में दोनों एक दूसरे के पास नहीं आ सके । सम्भवतः भारतीय धर्म और दर्शन ग्रीक अभ्युदय के बहुत पहले विकसित हो चुके थे । जब इस देश में एक परम तत्त्व की खोज हो रही थी, उस समय तक ग्रीस स्कूल से ही अपना पल्ला नहीं छुड़ा पाया था । दर्शन का विकास भाषा से भी सम्बद्ध होता है । भाषा, विज्ञान और दर्शन दोनों का विकास भारत में अपेक्षाकृत बहुत पहले हो गया था । किन्तु ग्रीस में जब एक बार चिन्तन प्रारम्भ हुआ तो उसकी धारा अविछिन्न रूप से चलती रही । पाईथागोरस ने जिन समस्याओं पर विचार करना प्रारम्भ किया उनमें विविधता थी । यों भी ग्रीक लोग भारतीय दार्शनिकों की तरह केवल आत्मा परमात्मा और प्रकृति तक सीमित नहीं रहे । स्वयं पाईथागोरस ने जीवन सम्बन्धी समस्याओं के अतिरिक्त संगीत आयुर्विज्ञान और अंकों या संख्याओं पर भी विचार किया था । अनेकत्ववादी विचारकों का क्षेत्र भी अपेक्षाकृत व्यापक है । प्रोटेगोरस आदि सोफ़िस्टों का उत्तराधिकार जब सॉक्रिटीज के पास पहुँचा तो ग्रीस में चिन्तन का क्षेत्र और भी व्यापक बन गया । सॉक्रिटीज और प्लेटो

प्राचीन ग्रीक चिन्तन के आलवाल के सर्वाधिक सुरभित सुमन हैं। तर्कशास्त्र, राजनीति संस्थाओं और संचालन का दर्शन सभी दृष्टियों से इनकी देन मौलिक और अपूर्व है। इन दोनों चिन्तकों ने शताब्दियों तक न केवल ग्रीस अपितु सारे योरोप को प्रभावित बनाये रखा। भारतीय और ग्रीक तर्कशास्त्र एवं उनकी ज्ञानमीमाँसा और आचारमीमाँसा का तुलनात्मक अध्ययन बड़ा ही मनोरंजक है। जार्ज वर्नेट की 'ग्रीक फिलासफी' में न केवल इस दीर्घकाल वाहिनी चिन्तन धारा का सुन्दर एवं सटीक निरुपण है अपितु उसमें अन्तिम दोनों महान दार्शनिकों के जीवन, जीवनक्रम और उनके ग्रन्थों की भी प्रामाणिक समस्या है। डॉ० श्री प्रकाश दुबे ने प्रवाहपूर्ण एवं प्रामाणिक भाषा में इस ग्रन्थ का अनुवाद प्रस्तुत किया है। यह अनुवाद दर्शन के क्षेत्र में एक अभाव की पूर्ति करता है। इससे हिन्दी माध्यम द्वारा अध्ययन करने वाले जिज्ञासु जनों को भारतीय एवं ग्रीक चिन्तन-धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन करने में पर्याप्त सहायता मिलेगी।

प्रभुदयालु अग्निहोत्री

(डॉ० प्रभुदयालु अग्निहोत्री)
संचालक
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

प्राक्कथन

अनेक वर्षों पूर्व प्रस्तुत ग्रन्थ का लेखन-कार्य प्रारम्भ किया गया था, परन्तु प्लेटो-कशि' (Lexicon platonicum) के निर्माण में अधिक उलझ जाने के कारण इसमें व्यवधान पड़ गया, क्योंकि वह कार्य अनुमानातीत् वृहद् हो गया। ऐसी परिस्थितियों में इस ग्रन्थ-माला के सम्पादक तथा प्रकाशकों ने जो धैर्य प्रदर्शित किया है, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

कुछ दृष्टियों से यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि प्रतिपाद्य विषय के कुछ अंशों को हमें इस ढँग से उपस्थित करना पड़ा जिससे उन पर विस्तृत तर्क-वितर्क एवं विवाद का अवकाश नहीं है। प्रारम्भिक ग्रीक-दर्शन (Early Greek philosophy) के द्वितीय संस्करण (जिसका E. Gr ph.[२] नाम से उल्लेख किया गया है) के प्रकाशन के उपरान्त प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में यह अनावश्यक-सा है, परन्तु तृतीय खण्ड में कुछ ऐसे अंश अवश्य हैं जहाँ मुझे अपने निष्कर्षों को अनावृत रूप में इस आशा से उपस्थित करना पड़ा ताकि उनके आधारों के सम्बन्ध में विचार करने का बाद में सुअवसर उपलब्ध होगा। अधुना हमारा प्रमुख लक्ष्य यह रहा है कि हम उन पाठकों की कुछ सहायता कर सकें जो प्रत्यक्षतः यह ज्ञात करना चाहते हैं कि प्लेटो अपने प्रौढ़ संवादों में वस्तुतः क्या कहता है। यदि ये अध्येता 'रिपब्लिक' तथा अन्य प्रारम्भिक संवादों के अल्पज्ञान से संतुष्ट हो जायेंगे, तो प्लेटो का दर्शन उन्हें अप्राप्य ही रह जायेगा।

मैंने ग्रीक नामों को उनके लैतीन रूपों में उपस्थित करना उचित नहीं समझा। 'Terakleitos' को Heraclitus की भाँति लिखने में लाभ की अपेक्षा अनेक हानियाँ ही दिखायी पड़ती है। ऐसा करने से उस व्यक्ति के नाम की सार्थकता ही समाप्त हो जाती है, जैसे सम्राट 'Herakleios' के Heraclius नामकरण से। इसके विपरीत, प्लेटो के संवादों के लैतीन शीर्षकअंग्रेजी

भाषा के शब्द हैं। एथेन्सवासी थीटिटस (Theaitetos) के पिता यूफ्रोनिअस (Euphronios) ने अपने पुत्र का जो सुन्दर नामकरण किया था, वह अपने आप में सर्वोत्तम है, परन्तु Theaetetus ग्रन्थ का शीर्षक उसी भाँति अंग्रेजी भाषा का है जिस प्रकार Thessalonians। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रश्न पर हम कदापि सहमत नहीं हो सकेंगे, परन्तु मैं यहाँ पर केवल अपनी पद्धति स्पष्ट कर देना चाहता हूँ।

अपने मित्र तथा भूतपूर्व सहयोगी सर हेनरी जोन्स को वहुमूल्य परामर्श एवं सतत् प्रोत्साहन के लिए मैं आभारी हूँ। ग्लास्गो विश्वविद्यालय के श्री हेथरिंगटन ने कृपाकर अधिकांश सन्दर्भों की जाँच की है, तथा सेन्ट एण्ड्रयूज विश्वविद्यालय में ग्रीक विभाग के व्याख्याता श्री डब्ल्यू० एल० लारिमर ने ध्यानपूर्वक प्रूफ-शोधन किया है जो अशुद्धियाँ रह गयी हैं, उनके लिए मैं पूर्णतः उत्तरदायी हूँ।

जॉन बर्नेट

विषय-सूची

तृतीय खण्ड : प्लेटो

विषय-प्रवेश

एक

दर्शनशास्त्र का इतिहास लिखने में किसी भी व्यक्ति को कभी पूरी सफलता नहीं मिल सकेगी, क्योंकि कलात्मक कार्यों की भाँति दर्शनशास्त्र भी अत्यन्त व्यक्तिगत विषय है। प्लेटो की यह मान्यता थी कि लेखनी (भाषा) के माध्यम से किसी भी दार्शनिक सत्य का संज्ञापन नहीं हो सकता, एक आत्मा (या व्यक्ति) दूसरी आत्मा में एक प्रकार के अपरोक्ष सम्पर्क (immediate contact) के द्वारा ही ज्ञान-ज्योति जला सकती है। किसी भी प्राचीन काल के दर्शन पर विचार करते समय हमें लिखित अभिलेखों (records) पर पूर्णतया आश्रित रहना पड़ता है। परन्तु ये अभिलेख प्रायः खण्डित या आंशिक रूप में उपलब्ध होते हैं, तथा, बहुधा, मौलिक नहीं होते हैं अथवा इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध होती है। इन अभिलेखों की भाषा भी ऐसी होती है जिसे हम बहुत प्रयास करने के बाद भी आधे से अधिक नहीं समझ पाते तथा इनमें से अधिकांश अभिलेख ऐसे तथ्यों से प्रभावित होते हैं जिनकी हमें जानकारी नहीं हो सकती। अतएव किसी इतिहासकार के ग्रन्थ का महत्त्व केवल इतना ही है कि वह प्लेटो द्वारा मान्य आत्माओं के सम्पर्क (contact of souls) के सिद्धान्त को पुनः प्रस्तुत कर सके। कुछ अंश में यह कार्य सम्भव भी है' धार्मिक आस्था (faith) प्रायः देश तथा काल की सीमाओं को पार करने में समर्थ होती है, अतः वह अपने विषय (object) का सीधे रूप से अवबोध (apprehension) प्राप्त कर लेती है। परन्तु ऐसी आस्था का स्वरूप व्यक्तिगत तथा अकथनीय है। इसी प्रकार इतिहासकार द्वारा अतीत (past) का पुनर्विधान मुख्यतया केवल उसी के लिए प्रामाणिक होता है। यह कोई ऐसी सिद्ध वस्तु नहीं है जिसे वह किसी दूसरे व्यक्ति को प्रदान कर सके। धार्मिक आस्था अथवा दार्शनिक व्याख्या के इस पक्ष के बारे में यह कोई रहस्यात्मक बात नहीं है।

इसके विपरीत सत्य तो यह है कि सभी ज्ञान का यही स्वभाव है। वर्तमान प्रसंग में इसका केवल यही अभिप्राय है कि जो व्यक्ति प्राचीन दार्शनिकों के अनुरूप जीवन व्यतीत[1] करने में अपना अधिकांश समय लगाने का प्रयास करता है, वह कभी न कभी एक साक्षात् दृढ़ विश्वास (conviction) के बलात् अभिभूत हो जायगा। इस प्रकार के विश्वास के कारणों का उल्लेख अत्यन्त अधूरे ढंग से पाद टिप्पणी के सन्दर्भों में ही किया जा सकता है। जब तक अनुच्छेदों की व्याख्या पूर्ण न हो जाय – परन्तु जो कभी भी पूर्ण न होगी – और जब तक प्रत्येक अनुच्छेद ठीक उसी ढंग का कथन न करे, जो विस्मृति के गर्त में पड़े अन्य असंख्य अनुच्छेदों के प्रकाश में पढ़े जाने पर निर्भर करता है, तब तक तथाकथित प्रमाण किन्हीं दो व्यक्तियों के मानस-पटलों पर एक जैसा प्रभाव नहीं डाल सकते। अन्य सभी जिज्ञासाओं की भाँति भाषा-विज्ञान (Philology) की जिज्ञासा (inquiry) को भी एक आस्था की आवश्यकता होती है। परन्तु यह स्पष्ट है कि जिस व्यक्ति को इस प्रकार की अनुभूति नहीं हुई होगी वह किसी दूसरे व्यक्ति के इस कार्य को दुहरा नहीं सकता है। इसी कारण दर्शन के इतिहास के मान्य ग्रन्थ सहायक होने के स्थान पर बाधक हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जहाँ पहले से ही पर्याप्त व्यवधान है वहाँ वे कुछ अतिरिक्त बाधाएं उपस्थित करते हैं।

यद्यपि दर्शनशास्त्र का इतिहास लिखना असम्भव है, परन्तु कुछ ऐसे साधारण कार्य हैं जिन्हें कुछ सीमा तक सम्पादित किया जा सकता है, तथा जिनका सम्पादन कुछ अधिक स्पष्ट दृष्टि के लिए मार्ग निर्मित करने में सहायक हो सकता है। सर्वप्रथम, कुछ ऐसे बाह्य प्रकरण हैं जिनके बारे में पर्याप्त यथार्थता से निर्धारण हो सकता है, और जो महत्त्वहीन भी नहीं हैं। यदि हम किसी दार्शनिक के जीवन-काल और उस समय के वातावरण को जान सकें जिसने उसके विचारों को स्वरूप प्रदान करने में सहायता की, तो उसके दर्शन को ठीक ढंग से समझने की सम्भावना अधिक बढ़ जाती है, यद्यपि ये बाह्य प्रकरण उसके दर्शन को पूर्णतया समझाने में कभी भी पूर्णतः समर्थ नहीं होते। एक दार्शनिक अन्य किन दार्शनिकों से व्यक्तिगत रूप से अथवा उनकी रचनाओं के माध्यम से परिचित था, इस बात की जानकारी विशेष रूप से उपयोगी है। द्वितीय यूनानी (Greek) दर्शन का विकास, किसी अन्य विद्या की अपेक्षा

१. प्लेटो ने इसी को 'सद्‌जीवन' (To suzen, Ep. vii, ३४१ c) कहा, परन्तु यहाँ पर उसका अभिप्राय जीवित लोगों से है, न कि मृत लोगों से।

विज्ञान, और विशेषतया गणित, की प्रगति पर अधिक आश्रित है। तथा एक काल-विशेष में यूनानी विज्ञान किस स्तर तक पहुँच गया था इस बात का पर्याप्त यथार्थता से निश्चय करना सम्भव है। इसके अभिलेख पूरे मिलते हैं, और इनके गुणदोषों का यदि सूक्ष्म विवेचन किया जाय तो इन पर विश्वास किया जा सकताहै। इन्हीं कारणों से इस ग्रन्थ में उन प्रकरणों की पर्याप्त चर्चा की गयी है जो लोगों को प्रारम्भ में दर्शनशास्त्र की सीमा के बाहर प्रतीत होंगे, और यही वास्तव में इसका प्रमुख औचित्य है। इसका उद्देश्य पाठक के समक्ष ऐसा दृष्टिकोण उपस्थित करना है जिससे वह स्वयं तथ्यों का ज्ञान कर सके। अन्त में इतिहास, रेचक (cathartic) तथा शोधक (purgative) के रूप में भी कार्य करता है। हमारे समक्ष जो सबसे बड़ा व्यवधान है, वह है पाण्डित्य पूर्ण व्याख्याओं तथा मताग्रहों का समूह, जो किसी भी मौलिक प्रतिभाशाली व्यक्ति की शिक्षाओं को शीघ्र ही आच्छादित कर देता है। इन्हें दूर करना इस क्षेत्र की, सम्भवतः, महानतम सेवा होगी। हम प्लेटो को एरिस्टॉटल या प्लोटाइनस (Plotinos) के चश्में से नहीं देखना चाहते हैं, एवं जो व्यक्ति इसमें हमारी सहायता कर सकेगा वह धन्यवाद का पात्र है। यह सेवा पूर्णतः नकारात्मक प्रतीत हो सकती है. परन्तु इस प्रकरण के सन्दर्भ में यह स्वाभाविक है। बाद में विद्यात्मक रचना का भार प्रत्येक अध्येता (पाठक) पर छोड़ देना चाहिये। दो अध्येताओं का दृष्टिकोण पूर्णतया एक समान नहीं होगा। इतिहासकार का कार्य तो केवल इतना ही है कि वह दिशा–निर्देश कर दे, तथा जिन मार्गों की लक्ष्यहीनता ज्ञात हो चुकी है, उनके प्रति पाठकों को सजग कर दे।

परन्तु मात्र इस कार्य में भी यह अन्तर्निहित है कि हमें दर्शन के बारे में पहले से ज्ञान है, और यह निश्चित है कि यदि हमें उसका कुछ बोध (notion) न हो तो हमारी कहानी के पूरी होने में सन्देह रहेगा, अभी यह आवश्यक नहीं है कि हम दर्शन की कोई ऐसी परिभाषा दें जो सभी युगों और सभी लोगों के दर्शन पर लागू हो, क्योंकि हम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेंगे, यवन (Hellenic) काल के दर्शन का स्वरूप अधिक स्पष्ट होता जायगा। यह प्रतिपाद्य विषय के कम से कम एक पक्ष के साथ तो न्याय करेगा ही, और इस समय हम इसी पक्ष से सम्बद्ध हैं। यहाँ पर यह कह देना उचित होगा कि इस ग्रन्थ में 'दर्शन' से मेरा वही तात्पर्य है जो प्लेटो का था, और प्लेटो से भिन्न मेरा कुछ भी तात्पर्य नहीं। कथन का उत्तरार्ध महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसका अर्थ है कि दर्शन न तो मिथक या प्रतिकोपाख्यान (Mythology) है, न दूसरी ओर यह वास्तविक विज्ञान (Positive Science) है, भले ही इन दोनों विधाओं से

उसका घनिष्ठ सम्बन्ध हो।

दो

सर्व प्रथम यह उल्लेखनीय है कि दर्शन 'मिथक' नहीं है। यह सत्य है कि प्लेटो की रचनाओं में मिथकों का बाहुल्य है, तथा इसके अर्थ के बारे में हम बाद में विचार करेंगे। यह भी सत्य है कि सृष्टिमीमांसा (Cosmogony) एवं परलोक-विद्या (Eschatology) की परिकल्पना (speculation) के पुञ्जों की, जिन्होंने दर्शनशास्त्र को अनेक प्रकार से प्रभावित किया, हमें प्रारम्भ से ही समीक्षा करनी होगी। ये सब विधाएँ स्वयं में दर्शन नहीं हैं, न यही कहा जा सकता है कि ये ऐसे बीज हैं जिनसे दर्शन का विकास हुआ। यह महत्त्वपूर्ण है कि इस विषय में सारी बातें स्पष्ट हैं, क्योंकि कुछ स्थानों पर अभी भी प्राच्य सृष्टिमीमांसाओं (Oriental cosmogonies), को ग्रीक-दर्शन के स्रोत के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। यहाँ सृष्टिमीमांसा का तो प्रश्न ही नहीं है। थेलीज़ (Thales) के काल के बहुत पहले यूनान में उनकी अपनी सृष्टिमीमांसा उपलब्ध थी, तथा मिस्र (Egypt) और बेबिलोनियाँ के लोगों को सम्भवतः और भी प्राचीन काल से सृष्टिमीमांसाओं का ज्ञान था। जंगली लोगों तक को सृष्टिमीमांसा का ज्ञान होता है और उसका विकास प्रायः अधिक सभ्य लोगों के समान ही होता है। यह सम्भव है कि यूनान के प्राचीनतम सृष्टिमीमांसा या उनमें से कुछ, मिस्र और बेबिलोनियाँ से आये हों, परन्तु यह तथ्य के रूप में अभी तक सिद्ध नहीं हो पाया है। इस बात की और भी अधिक सम्भावना है कि फेरिकेडीज (Pherekydes) सदृश लोगों के दर्शनों में 'मिनो आई' (Minoan) परिकल्पना, जिसकी पुरातनता अनिश्चित है, के अंश संचित हों। इन सब बातों का दर्शन से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। प्लेटो के अनुसार तर्क-बुद्धि-परक विज्ञान (rational science) की अनुपस्थिति में दर्शनशास्त्र की सम्भावना नहीं है। यह सत्य है कि प्रारम्भ में बहुत अधिक उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती; प्रारम्भिक रेखागणित के थोड़े-से साध्यों (propositions) से काम चल जाता है। परन्तु किसी न किसी प्रकार का तर्कबुद्धि-परक विज्ञान तो होना ही चाहिये। तर्कबुद्धि-परक विज्ञान यूनानियों की देन है, और इसका प्रारम्भ कब हुआ, यह हमें ज्ञात है। इसके पहले की बातों को हम दर्शन के रूप में नहीं स्वीकार करते।

तीन

यह सत्य है कि विज्ञान की उत्पत्ति उसी काल में हुई जब मिस्र और

वेविलोनियाँ से सञ्चार-व्यवस्था सर्वाधिक सुगम थी। तथा उसी भू-भाग में हुई जहाँ इन देशों के प्रभाव की अधिक सम्भावना थी। अतः यह अनुमान सर्वथा उचित है कि विज्ञान की उत्पत्ति से इसका कुछ न कुछ सम्बन्ध था। दूसरी ओर, मिस्र और वेविलोनियाँ से यवनदेश (Hellas) में जो आयात हुआ वह वस्तुतः तर्कबुद्धि-परक विज्ञान नहीं था। इस प्रवलतम पूर्वधारणा (presumption) का आधार यह तथ्य है कि दो या तीन पीढ़ियों तक यूनानी विज्ञान कई दृष्टियों से अत्यन्त आदिम (primitive) स्तर पर ही स्थिर रहा। यदि मिस्र के लोगों के पास गणित जैसी कोई भी वस्तु होती तो हमें यह समझ में नहीं आता कि समतल रेखागणित (Plane Geometry) के अत्यन्त प्रारम्भिक साध्यों की स्थापना पाइथेगोरस (Pythagoras) एवं उसके अनुयायियों द्वारा ही क्यों हुई? वह उनके पहले ही क्यों नहीं हो पायी थी? और, यदि बेबिलोनियाँ के लोगों को नक्षत्र-मण्डल (Planetary system) के बारे में वस्तुतः कोई सम्प्रत्ययन (Conception) था तो यह स्पष्ट नहीं होता कि यूनानियों ने पृथ्वी के वास्तविक आकार का आविष्कार तथा ग्रहणों की व्याख्या रुक-रुक कर क्यों की। यह स्पष्ट है कि वेविलोनियाँ के लोगों को इन तथ्यों का ज्ञान नहीं था। इन तथ्यों का स्वरूप निर्धारण धीरे-धीरे दक्षिण इटली में हुआ जहाँ प्राच्य प्रभावों की सम्भावना कम है। वस्तुतः यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि विज्ञान से हमारा तात्पर्य क्या है। यदि शकुन-विचार (divination) के लिए बनाये गये अन्तरिक्ष की घटनाओं के विस्तृत अभिलेखों को हम 'विज्ञान' कहने को तैयार हो जायें, तो मानना पड़ेगा कि वेविलोनियाँ के लोगों को विज्ञान की जानकारी थी, तथा यूनानियों ने इनसे विज्ञान प्राप्त किया। अथवा, यदि हम खेतों तथा पिरामिडों को हाथ से नापने के मोटे नियमों को 'विज्ञान' कह सकें, तो मिस्र के लोग भी वैज्ञानिक थे तथा आमोनिया में विज्ञान उनके यहाँ से आया। परन्तु यदि 'विज्ञान' से हमारा तात्पर्य वह है जिसे कोपरनिकस, गैलिलियो, केप्लर, लाइब्रनित्ज् तथा न्यूटन मानते हैं, तो मिस्र में या यहाँ तक कि वेबिलोनियाँ में भी उनका कोई चिह्न नहीं मिलता। इसके विपरीत, यूनानियों के सबसे पहले के (earliest) साहसिक कार्य निश्चय ही विज्ञान के पूर्व-रूप हैं, आधुनिक विज्ञान का प्रारम्भ वहाँ से होता है, जहाँ यूनानी विज्ञान समाप्त होता है। थेलीज से लेकर आज तक इसका क्रमिक विकास खोजा जा सकता है। स्वयं कोपरनिकस् ने कहा है कि प्लूटार्च (Plutarch) द्वारा लिखित 'प्लेसिटा' (Placita) में उसने पाइथेगोरस

के अनुयायियों के बारे में जो पढ़ा उसी से उसको मार्ग-निर्देश मिला ।[१]

जो कुछ अवशेष हमें आज उपलब्ध हैं उससे यह स्पष्ट होता है कि मिस्र के लोगों को गणित एवं रेखागणित की कुछ विशेष (particular) समस्याओं को हल करने का कुछ कौशल अवश्य ज्ञात था, परन्तु किसी सामान्य (general) पद्धति के होने का जरा भी संकेत नहीं मिलता ।[२] यदि क्लिष्ट शेष आते थे तो लोग उन्हें बिना हल किये ही छोड़ दिया करते थे। उसी प्रकार से यदि त्रिभुज समकोण हो तो त्रिभुजों को चतुर्भुजों में परिणित करने की विधियाँ सही हो सकती हैं, यद्यपि रेखाचित्र में जो त्रिभुज बनाये गये हैं । वे समबाहु (equilateral) बनाये गये हैं । वस्तुतः इनकी सारी पद्धति वैज्ञानिक होने की अपेक्षा रोम के भूमि-मापकों (agrimensores) की अपरिष्कृत एवं सुगम पद्धतियों से बहुत अधिक समानता रखती है । कभी-कभी यह भी कहा जाता है कि मिस्रवासियों को एक अत्यन्त विकसित रेखागणित का ज्ञान था जिसे वे गूढ़-विद्या (mystery) के रूप में सुरक्षित किये थे, परन्तु इस कथन का कोई दृढ़ आधार नहीं मिलता । यह कथन मुख्यतया उस कहानी पर आधारित है जिसमें कहा गया है कि प्लेटो अध्ययन के लिए मेम्फिस के आचार्यों (priests) के यहाँ गया था । परन्तु इस कहानी का भी कोई सम्यक् प्रमाण उपलब्ध नहीं है । जो भी हो, मिस्र के गणित के बारे में प्लेटो की क्या धारणा थी, यह हमें ज्ञात है, उसके अनुसार केवल व्यावहारिक उद्देश्यों में उलझे रहने के कारण इसमें कुछ स्वातंत्र्य-हीनता विद्यमान है ।[३] यह कहा जाता है कि मिस्र के स्मारकों का षट्कोण (hexagons) तो बहुधा मिलते हैं परन्तु पंचकोण (pentagons) कभी नहीं मिलते ।[४] यदि यह सत्य है तो बहुत महत्त्वपूर्ण है । षट्कोण तो कोई भी बना सकता है । परन्तु सम पंचकोण खींचना कुछ दूसरी बात है । हम आगे देखेंगे कि पाइथेगोरस के

---

१. 'अर्ली ग्रीक फिलासोफी' पृष्ठ ३४६, नं. २ । पाइथेगोरस के इस सिद्धान्त को निकोलस कोपरनिकस ने भी माना था जिसकी १६१६ में अभिसूचक-सभा (Congregation of the Index) द्वारा भर्त्सना की गयी थी ।

२. किन्तु पेपिरस के लिए देखिये, 'अर्ली ग्रीक फिलासोफी' पृष्ठ २२, क्रमशः तथा परवर्ती विवेचन के लिए देखिये 'बिसिग इन नेयू झारबूचेर (V. Bissing in Neue Jahrbucher) २५, १९१२ पृष्ठ ८१ क्रमशः ।

३. प्लेटो लाज (Laws) ३४७, b sqq.

४. ज्यूथेन, हिस्ट्री डेस मैथमेटिकेस् (पेरिस, १९०२) पृष्ठ ५.

अनुयायियों को इसका ज्ञान था एवं उनकी पद्धति (system) की सबसे महत्त्व-पूर्ण आकृति द्वादशफलक (dodecahedran) के लिए पंचकोण की उपयोगिता थी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गणित की सारी शब्दावली की, यहाँ तक कि 'पिरामिड' शब्द की भी, उत्पत्ति शुद्ध ग्रीक भाषा की है।[1]

यह सत्य है कि यवन काल में मिस्र के कुछ विद्वान अपने देश के परम्परागत पाण्डित्य में यूनानी विज्ञान की विधियों का उपयोग करते थे। अवात (Hermetic) साहित्य इसका प्रमाण है, तथा स्टोइक (Stoic) आधारों पर आश्रित परवर्ती मिस्रवासियों की विशद ज्योतिष-पद्धति भी इसका प्रमाण है। परन्तु इन सब बातों से यूनानी विज्ञान की उत्पत्ति पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। इसके विपरीत, यदि इस काल के मिस्रवासियों ने समसामयिक यूनानी विज्ञान एवं दर्शन को ग्रहण किया, तो यह तथ्य इन विषयों में उन लोगों की अपनी ही दरिद्रता का सूचक है।

चार

वेबिलोन की चर्चा करते समय सिकन्दर महान् के पूर्व और उसके उत्तर काल के बीच का अन्तर स्पष्ट करना अधिक आवश्यक है। परवर्ती काल में वेबिलोन एक यवन नगर बन चुका था, तथा मेसोपोटामिया एवं सिकन्दरिया के ज्योतिषियों के बीच स्वतन्त्र रूप से अन्तराविषयिक संव्यवहार (intercour-se) होता था। उदाहरणार्थ, यह निर्विवाद है कि हिप्पार्कस (Hipparchos) ने वेबिलानियों के प्रेक्षणों या अवलोकनों (observations) का उपयोग किया। परन्तु उसके काल के पहले ही यूनानी विज्ञान की पूर्णतया स्थापना हो चुकी थी, तथा यह असंदिग्ध है कि यूनानी प्रभाव के कारण ही वेबिलोनियों की ज्योतिष विद्या अपने विकास के शिखर पर पहुँची।[2] हमें यहाँ वस्तुतः यह बात देखनी है कि इससे भी प्राचीन काल के यूनान पर इसका प्रभाव

---

१. पुरामिस (Puramis) तथा पुरामोउस (Puramous) जिनका अर्थ होता है आटा और मधु से बना हुआ केक, स्पष्टतया (puroi) पुरोई (गेहूँ) धातु से निकले है, यद्यपि उनके रूप (sesamis) सिसेमिस तथा सिसेमूस (sesa-mous), से प्रभावित हुए है। 'अर्ली ग्रीक फिलासोफी', पृष्ठ २५, न० १ भी देखें।

२. इस विषय पर आधुनिक वक्तव्यों के लिए देखिये, जेस्त्रो (Jastrow) का लेख इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, ११ वाँ संस्करण वालूम २, पृष्ठ ७९६ क्रमशः, तथा नेयू फारबूचर, २१ (Neue Jahrbucher, xxi,) (१९०८) पृष्ठ ११६ पर बॉल (Boll) का लेख।

था या नहीं। आज हमें इस विषय में कुछ तथ्य ज्ञात हैं तथा वे उपयोगी तथ्य हैं। हेरोडोटस् (Herodtus, ii, १०९) के अनुसार यूनान के लोगों को धूप-घड़ी (gnomon) नामक यंत्र वेबिलोनियाँ से ही प्राप्त हुआ था जो छाया के सहारे अयनकाल (solstices) तथा विषुवकाल (equinoxes) को निर्धारित करता है। यह यंत्र वैज्ञानिक है या नहीं यह बात हमारे उपयोग पर निर्भर करती है। यूनानी लोग काफी प्राचीन काल से वेबिलोन की द्वादशका (duo-decimal) तथा षाष्ठिक (sexagesimal) गणना-पद्धति से भी परिचित थे। परन्तु इनका उपयोग भार, मापन, मुद्रा जैसे वाणिज्य सम्बन्धी विषयों तक ही सीमित था। विज्ञान में इनका उपयोग यवन-काल तक नहीं हुआ था, जब वृक्ष को अंशों में विभाजित किया गया। यवन-काल शुद्ध गणित में केवल दशमलव प्रणाली का उपयोग होता था। यदि यूनानी लोगों ने चाहा होता तो उन्होंने ग्रहों को पहचानने की विधि वेबिलोनियाँ के लोगों से सीखली होतीं। शकुन विचार के लिए इसका बहुत महत्त्व था। परन्तु यूनानियों ने तीसरी शताब्दी ई० पू० से पहले नक्षत्र-विद्या (Astrology) में रुचि नहीं ली।[1] जब तक कोई ऐसा विश्व-विज्ञानात्मक निकाय (cosmological system) न हो जिसमें इन नक्षत्रों को, जिन्हें यूनानी लोग अवज्ञात्मक ढंग से चरण-हत नक्षत्र (Tramp-stars) कहते थे, स्थान मिले, तब तक उल्काओं (shooting stars) की भांति इनका भी उनके लिए कोई विशेष महत्त्व नहीं। पृथ्वी के सही आकार का आविष्कार करने के बाद लगता है कि पाइथेगोरस के अनुयायियों ने पूर्ण स्वतन्त्र ढंग से ग्रहीय सिद्धान्तों का विकास किया। कहा जाता है कि पाइ-थेगोरस अथवा पार्मनाइडीज़ ने सबसे पहले संध्या तथा उषाकाल के नक्षत्र को पहचाना। ग्रहों के वेबिलोनियाई नामों के यूनानी पर्यायों को, जिनका लैटिन

---

१. Neue Jahrbucher, xxiv (१९११), pp. क्रमशः पर Cumont का लेख देखिये। पृष्ठ ४ पर वे कहते हैं : "यवनों की सार्वभौमिक जिज्ञासा ने नक्षत्र-विद्या की अवहेलना नहीं की, परन्तु उनकी धीर बुद्धि ने तद्-विषयक प्रगल्भपूर्ण सिद्धान्तों का निषेध किया। उनकी सूक्ष्म बुद्धि को चाल्डियों (Chaldeans) के वैज्ञानिक प्रेक्षणों तथा दोषपूर्ण अनुमानों के बीच अन्तर करना अच्छी तरह ज्ञात था। उनकी यह सदा से विशिष्टता रही है कि यथार्थ प्रेक्षणों एवं अन्धविश्वासों के अस्पष्ट एवं मिश्रित ढ़ेरों में से गम्भीर तथा वैज्ञानिक तथ्यों को, जो पूर्व की पाण्डित्यपूर्ण प्रज्ञा थी, ढूंढ लेते और उनका उपयोग करते तथा सभी असंगत कूड़ा-करकट को किनारे फेंक देते थे।"

रूपों में हम आज भी उपयोग करते हैं, सबसे पहले हम प्लेटो के 'एपिनोमिस' (Epinomis, ९८७ b sq.) में पाते हैं। अतः यह सिद्ध है कि यूनानियों को नक्षत्र-विद्या का जो भी सही ज्ञान था, उसमें से कुछ भी उन लोगों ने बेबिलोनियाँ से नहीं सीखा था।

परन्तु इस क्षेत्र में यूनानियों ने बेबिलोनियाँ वालों की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि का उपयोग किया, और वह है उनके ग्रहणों के अभिलेखों तथा इन अभिलेखों के आधार पर व्यवस्थित विभिन्न चक्र (cycles)। जैसा कि हम देखेंगे, उनका उपयोग उन लोगों ने पंचाग (calender) तथा ग्रहणों के पूर्व-कथन (Prediction) के लिए किया। इस प्रकार के प्रेक्षण तथा गणनाएँ वैज्ञानिक हैं अथवा नहीं यह पूतर्णया उनके उद्देश्यों और उपयोगों पर निर्भर है। सूर्य-ग्रहण अपने आप में एक विशुद्ध स्थानीय प्रयोजन तथा रुचि की संघटना (phenomenon) है, तथा इसका आँकड़ा केवल उतना ही वैज्ञानिक होगा जितना इन्द्रधनुष का वैज्ञानिक आँकड़ा। यदि यह आँकड़ा इस बात का संकेत करता है कि इससे सूर्य पर कोई वास्तविक प्रभाव पड़ा है, तथा इसका प्रभाव राजा पर भी पड़ेगा तो यह न केवल विज्ञान का निषेध है वरन् भावात्मक अज्ञान का उपकरण है। जो भी हो, बेबिलोन के ज्योतिषियों का यही दृष्टिकोण था।

विज्ञान और दर्शन में यूनानियों की तुलना केवल भारतीय लोगों से की जा सकती है। भारतीय विज्ञान का कितना अंश मौलिक है और कितने अंश पर यूनानी प्रभाव पड़ा है। यह निश्चित करना बहुत कठिन है क्योंकि भारतीय कालगणना (chronology) में पर्याप्त अनिश्चितता है। परन्तु यह निश्चित है कि भारत की किसी भी वैज्ञानिक कृति, एवं एतदर्थ किसी भी दर्शन, की सिकन्दर के समय के पहले काल-निर्धारण की सम्भावना नहीं है। विशेष रूप से गणित के ग्रन्थ 'शुल्ब-सूत्र' (ऋजु, सूत्र-स्रोत कर्मों में वृत्त को चतुष्कोण बनाने इत्यादि की विधि) को इससे अधिक प्राचीन काल का मानने का कोई आधार नहीं है। पुनश्च यह ग्रन्थ यूनानी विज्ञान के स्तर से बहुत निम्न कोटि का है।[1] मिस्र एव बेबिलोन की तुल्यरूपता (analogy) से इस बात का निश्चित

१. देखिये, ए० बी० कीथ का लेख, 'जनरल ऑफ रॉयल एसियाटिक सोसायटी' १९०९, पृष्ठ, ५८६। यह खेद की बात है कि एम० मिल्हाड को अपने ग्रन्थ नोवेलस् एट्यूडेस् (Nouvelles etudes) (१९११) पृष्ठ, १०९ में शुल्ब-सूत्रों की ओर भी प्राचीन काल का स्वीकार करना पड़ा है।

संकेत मिलता है कि उत्तर पश्चिम के यवन साम्राज्य से यह भारत पहुँचा।

पाँच

सत्य तो यह है कि यूनानियों की मौलिकता को बढ़ा-चढ़ाकर कहने की अपेक्षा उनके अवमूल्यन की अधिक सम्भावना है, और हम प्राय: इस बात को भूल जाते हैं कि वैज्ञानिक जिज्ञासाओं ने आज तक जिस मार्ग का अनुसरण किया है उसे प्रशस्त करने में इन लोगों ने कितना कम समय लिया। छठी शताब्दी ईसा पूर्व के प्रारम्भ तक वे लोग मापन की स्थूल तथा सुलभ विधि ही सीख पाये थे तथा मिस्र के लोग इन्हें केवल इतना ही सिखा भी सकते थे। और केवल एक ही शताब्दी बाद हम वहाँ अंकगणित और रेखागणित के श्रेढी (Progressions) का अध्ययन, समतल (plane) रेखागणित तथा वैज्ञानिक आधारों पर पूर्णतया प्रतिष्ठित हरात्मकता (harmonics) के तत्त्व हमें उपलब्ध होते हैं। एक और शताब्दी के भीतर ही घन (solid) तथा वर्तुल (spherical) रेखा-गणित का विकास हुआ तथा शीघ्र ही शंकु (cones) के अनुभागों या काटों (sections) का भी विकास हुआ। यूनानियों ने बेबिलोन से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से यह सीखा था कि आकाश की कुछ घटनाओं का चाक्रिक आवर्तन होता है अत: उनका पूर्व-कथन सम्भव है। पचास वर्षों के भीतर ही उन्होंने यह खोज कर ली कि पृथ्वी शून्य में स्वतन्त्र रूप से लटकी हुई है। थोड़े ही दिनों बाद उन्हें इसके गोल आकार का भी ज्ञान हो गया। एक शताब्दी के अन्दर उन्हें ग्रहणों के कारणों का स्पष्ट ज्ञान हो गया जिसके आधार पर इस तथ्य का पता लगा कि पृथ्वी भी एक ग्रह है। थोड़े और समय के बाद कुछ यूनानियों ने यह भी बताया कि सूर्य स्वयं ग्रह नहीं वरन् सारे ग्रहमण्डल का केन्द्र है। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि गणित तथा नक्षत्र-विद्या के उल्लेखनीय विकास के साथ ही साथ वहाँ सजीव अवयव-संस्थान (living organism) के अध्ययन में भी उतनी ही विलक्षण प्रगति होती रही। हिप्पोक्रेटीज (Hippokrates) के नाम से जितनी भी रचनाएँ हमें उपलब्ध हैं वे सभी ईसा-पूर्व पाँचवीं शताब्दी की हैं। उनमें से कुछ रचनाओं में महत्त्व-पूर्ण घटनाओं की परिकल्पनात्मक (speculative) व्याख्या की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है, जो विज्ञान के द्रुत-विकास के युग में स्वाभाविक है। परन्तु कुछ रचनाओं में सूक्ष्म एवं कष्ट साध्य प्रेक्षण-विधि का प्राय: पूर्ण विकसित रूप प्रदर्शित होता है जो इस प्रकार के जटिल तथ्यों के बारे में चिंतन की एकमात्र उचित पद्धति है। सिकन्दरिया के काय चिकित्सकों (Physicians) ने स्नायु-

मण्डल अथवा तन्त्रिका तन्त्र (nervous system) का आविष्कार किया, परन्तु यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि मिस्र के मूल निवासी, जिन्हें मृत शरीर की रक्षा के लिए सुगन्धित द्रव्यों के लेपन का हजारों वर्षों से अभ्यास था, शरीर-रचना (anatomical) सम्बन्धी सरलतम तथ्यों से अनभिज्ञ थे।

यूनानियों की उपलब्धियों का सर्वप्रथम कारण तो यह है कि वे जन्म-जात प्रेक्षक (observers) थे। उनकी मूर्तिकला (sculpture) के स्वर्णकाल से शरीर-रचना का सही चित्रण इस बात को सिद्ध करता है कि वे शरीर रचना-शास्त्र मानते थे। यद्यपि अपने साहित्य में उन्होंने कभी इसका उल्लेख नहीं किया। यहाँ पर यह स्मरणीय है कि मिस्र के लोगों ने तो कभी आँख का पार्श्व-चित्र (profile) भी खींचना नहीं सीखा। परन्तु यूनानी कभी भी केवल प्रेक्षण से संतुष्ट नहीं रहे। वे सदा पर्याप्त आधुनिक ढंग के प्रयोग करते गये। इनमें सबसे प्रसिद्ध वह प्रयोग है जिसमें एम्पेडॉक्लीज़ (Empedokles) ने हृदय तथा चर्मतल के बीच रक्त के स्राव (flux) तथा पुनर्स्राव को दिखाया है। और इसका वर्णन भी हमें उन्हीं के शब्दों में उपलब्ध है।[1] इस प्रयोग ने आन्त-रिक्ष (atmospperic) वायु के दैहिक (corporeal) स्वरूप को भी सिद्ध किया। एतद्विषयक हमारे स्रोत यदि कुछ और अधिक होते और उनका अधिक सुबोध ढंग से संकलन हुआ होता तो अवश्य ही हमें इस प्रकार के बहुत-से प्रयोगों के बारे में जानकारी मिलती। पुनः यूनानी लोग जिन आकृतियों का प्रेक्षण करते थे, उनकी सदा तर्कसंगत व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास करते थे। उनकी अद्भुत तर्कना-शक्ति का ज्ञान हमें उनके गणित के उपलब्ध ग्रन्थों से होता है। दूसरी ओर वे सत्यापन (verification) की उपयोगिता के बारे में भी सजग थे। यह तथ्य उनके इस कथन से प्रकट होता है कि प्रत्येक प्राक्कल्पना (hypothesis) को प्रपंचों या आभासों (appearnaces) का रक्षण करना चाहिये। दूसरे शब्दों में, सभी दृष्टि तथ्यों के प्रति इसे न्याय करना चाहिये।[2] जैसा कि हम आज तक समझते हैं, विज्ञान की यह पद्धति है। यहाँ पर यह कहना अनुचित नहीं होगा कि किसी काल विशेष में हुई गणित तथा

---

१. देखिये, 'अर्ली ग्रीक फिलासोफी', पृष्ठ २५३.

२. यूनानी वैज्ञानिक पद्धति की इस आवश्यकता की प्रायः अवहेलना की जाती है। परन्तु मिल्टन का रैफेल (Raphael) इमसे पूर्ण परिचित है। देखिये, "आभासों की रक्षा के लिए कैसी रचना, विरचना, योजना (Paradise lost, viii, ८१)।

जीवविज्ञान (Biology) की प्रगति बहुत अंश तक उस काल के दर्शन के स्वरूप का निर्धारण करती है। हम देखेंगे कि प्लेटो के दर्शन में गणित का प्रभाव अपनी चरम सीमा पर पहुँचा तथा एरिस्टॉटल के दर्शन में जीवविज्ञान का।

छह

यद्यपि दर्शन का वास्तविक-विज्ञान (positive science) से घनिष्ठ सम्बन्ध है परन्तु दोनों में तादात्म्य-सम्बन्ध नहीं है। यह सत्य है कि प्राचीन काल में इन दोनों का भेद स्पष्ट नहीं हुआ था। 'सोफिया' (Sophia) शब्द का प्रयोग विज्ञान के लिए होता था, तथा अनेक विज्ञानेतर विषयों के लिए भी प्रयुक्त होता था, जैसे पीपों का पुल (pontoons) बनाने तथा पहेलियों के समझने की कलाओं के लिए। परन्तु दोनों में अन्तर अवश्य था। यदि हम यूनानी दर्शन को समग्र रूप से देखें तो पायेंगे कि इसमें आदि से अन्त तक प्राधान्य सत् की समस्या (the problem of reality) का रहा। सबसे अन्तिम प्रश्न यही होता था, "सत् क्या है ?" प्लेटो तथा एरिस्टॉटल के लिए इस प्रश्न का जितना महत्त्व था उतनी ही प्रधानता थेलीज़ के लिए भी थी। इस प्रश्न का उत्तर चाहे जिस ढंग से दिया जाय, जहाँ भी यह प्रश्न पूछा जाता है वहाँ दर्शन विद्यमान है। इस प्रश्न का उत्तर सम्भव है या नहीं, यह निर्णय देना इतिहासकार का कार्य नहीं है। परन्तु वह एक कथन बड़ी सरलता से कर सकता है; और वह यह है कि जहाँ तक हम देखते हैं, विशेष विज्ञानों की उत्पत्ति और विकास इस प्रश्न के पूछे जाने पर ही निर्भर है। हम देखते हैं कि जब भी परम सत्ता की समस्या को समझने का गम्भीर प्रयास होता है तब वास्तविक विज्ञान में महत्त्वपूर्ण प्रगति होती है, और जब इस समस्या में कम रुचि ली गयी तब विज्ञान की प्रगति अवरुद्ध हो गयी। जब ज्ञान (knowledge) तथा आचार (conduct) की गौड़ समस्याओं को प्राथमिकता मिली तब यूनानी दर्शन के इतिहास में इस प्रकार का ह्रास अनेक बार हुआ, यद्यपि यह भी सत्य है कि इस प्रकार की गौड़ समस्याओं के उठाये जाने के कारण ही स्वयं सत् की समस्या के स्वरूप में सर्वाधिक परिवर्तन हुआ।

और इससे हमें यह स्पष्ट करने में सहायता मिलती है कि दर्शन का विज्ञान के साथ तादात्म्य क्यों नहीं स्थापित किया जा सकता। वास्तव में सत् की समस्या मनुष्य और सत् के बीच के सम्बन्ध की समस्या से उलझी है जो हमें तुरन्त विशुद्ध विज्ञान (pure science) से परे ले जाती है। प्रश्न है कि मनुष्य का मन (mind) क्या सत् से किसी प्रकार का सम्पर्क कर सकता है,

और यदि हाँ, तो इससे उसके जीवन में क्या परिवर्तन होगा। जिसने भी यूनानी दार्शनिकों के आदर्शों के अनुसार अपना जीवन यापन करने का प्रयास किया है उसका यह कथन कि ग्रीक दार्शनिक प्रज्ञावादी (intellectualists) थे, हास्यास्पद लगेगा। इसके विपरीत; दर्शन इस आस्था (faith) पर टिका है कि सत् दिव्य (divine) है तथा जीव, जो कि दिव्य है, के लिए यह आवश्यक है कि वह सत् में सायुज्य सम्बन्ध (communion) स्थापित करे। यह वास्तव में धार्मिक मूल प्रवृत्ति (instinct) को संतुष्ट करने का प्रयास है। प्राचीन धर्म का स्वरूप कुछ बहिरंग था, तथा रहस्यों के अतिरिक्त इस प्रवृत्ति की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। रहस्य भी प्रायः बहिरंग हो जाते थे, तथा उनके भ्रष्ट हो जाने की अधिक सम्भावना थी। हम बार-बार यह पायेंगे कि जिस कार्य को रहस्यों ने केवल आंशिक रूप से किया, उसे दर्शन ने मानव के लिए पूर्ण करने का साहस किया। अतः हम आज जिसे 'धर्म' कहते हैं प्रायः वह सब 'दर्शन' के अन्तर्गत आ जाता है।

यह धर्म कम से कम अपने सर्वोत्तम काल में न तो नैष्कर्म्यवादी (quitist) था न पूर्णतया ध्यानापरक (contemplative)। रहस्यों से ही लोगों के जीवन का नियमन होता था, तथा दर्शन को भी वही कार्य सम्पादित करना था। प्रायः प्रारम्भ से ही इसे एक प्रकार का जीवन माना गया। यह व्यक्तिक पावनता (holiness) का आत्मनिष्ठ अनुष्ठान नहीं था। जिस व्यक्ति को यह विश्वास हो जाता था कि उसे सत् का ज्ञान हो गया है वह उसे बताने के लिए व्यग्र हो जाता था। यह बात दूसरी है कि उसने कभी केवल अपनी शिष्य मण्डली में ही इस दर्शन का व्याख्यान किया हो अथवा कभी समग्र मानव जाति को सम्बोधित किया हो। दार्शनिक को यह विश्वास था कि सत् के ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य विश्व में अपने स्थान को जान सकते हैं, तथा इस प्रकार वे अपने को ईश्वर का सहकर्मी बना सकते हैं और यदि उसे ऐसा विश्वास है तो वह इस सन्देश का दूसरे लोगों में प्रचार किये बिना चैन नहीं ले सकता। साक्रेटीज़ की मृत्यु एक शहीद की मृत्यु थी और यदि 'प्रज्ञावाद' जैसी कोई वस्तु है भी, तो भी उसमें शहीद उत्पन्न नहीं हो सकते।

प्रथम खण्ड

जगत्

(THE WORLD)

१

आयोनियन दार्शनिक (THE IONIANS)

माइलेटस (MILETOS)

दर्शन एक ऐसा विशिष्ट विषय है जिसकी उत्पत्ति पर न तो काल और न सामाजिक वातावरण (milieu) प्रकाश डाल सकते हैं, यद्यपि दर्शन के स्वरूप-निर्धारण पर इन दोनों का पर्याप्त प्रभाव हो सकता है। अतएव यह अप्रासंगिक नहीं होगा यदि हम देखें कि 'आयोनिया का गौरव'[१] माइलेटस ही वह स्थान है जहाँ प्रागैतिहासिक ईजियन (Aegean) सभ्यता का परवर्ती सभ्यता से सातत्य (continuity) स्पष्टतम रूप से परिलक्षित होती है। स्वयं माइलेशियन लोग अपने इस नगर को क्रीट (Crete) का एक उपनिवेश मानते थे तथा इस मान्यता को हाल के उत्खननों (excavations) से विशेष संपुष्टि मिलती है। अब हम यह जानते हैं कि प्राचीन माइलेटस नगर परवर्ती मिनोअन (Minoan) सभ्यता के अन्तिम काल का तथा यहाँ पर जिसे हम पूर्वकालीन आयोनियन सभ्यता कहते हैं, उसमें इस सभ्यता की अनेक अदृष्ट धाराएँ विलीन हो गयीं। माइलेटस नगर क्रीट में तथा आयोनिया दोनों जगहों पर मिलता है, तथा उस द्वीप (क्रीट) में भी थेलीज़ का नाम सुपरिचित है।[२] हम लोग सम्भवतः अनुमान कर सकते हैं कि माइलेटस के महत्त्व का एक कारण उस प्राचीन काल की विरासत (inheritance) है जिसके बारे में हमें अभी हाल में जानकारी मिली है। माइलेशिया के लोगों का मिस्र (Egypt) तथा एशिया-माइनर के लोगों, विशेषकर लीडियन लोगों से निकट का सम्पर्क था, तथा

---

१. हेरोड (Harod) V. २८ 'आयोनिया का आभूषण'।
२. देखिये मेरा निबन्ध "Who was Jovan ?" प्रोसीडिंगस् ऑफ दि क्लासीकल एसोसियेशन आफ स्काटलैण्ड, १९१२, पृष्ठ ९१।

इनका उपनिवेशीय साम्राज्य इयूक्ज़ाइन (Euxine) के उत्तरी तटों तक फैला था।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि थेलीज़ विश्वविज्ञान-वेत्ताओं (Cosmologists) के माइलेशियन सम्प्रदाय का संस्थापक था, तथा जहाँ तक हमें ज्ञात है, वह प्रथम मनुष्य था जिसे हम सही अर्थों में 'विज्ञान का व्यक्ति' कह सकते हैं। माइलेशियन विश्व विज्ञानों तथा फेरेकिडिज़ (Pherekydes) की सृष्टिमीमांसाओं (cosmogonies) में मौलिक भेद है, तथा माइलेशियन लोगों की परिकल्पनाओं में आदिकालीन विश्वासों के अवशेष ढूंढने की अपेक्षा यह देखना कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है कि किन बातों में माइलेशियन लोगों का अपने पूर्वाधिकारियों, चाहे वे ग्रीक हों या बर्बर, से मतभेद था। मतभेद होने में कोई सन्देह नहीं, तथा जिन मतभेदों की हमें जानकारी है उनसे कहीं अधिक हो सकते हैं। परन्तु इनके होते हुए भी यह कथन सत्य है कि थेलीज़ तथा उसके उत्तराधिकारियों के साथ इस जगत् में एक नवीन वस्तु का जन्म हुआ।

स्वयं थेलीज़ के बारे में हम जितना जानना चाहते हैं, उससे बहुत कम जानते हैं। प्रचलित परम्परा में मुख्य रूप में उनकी गणना सप्तर्षियों (Seven-wisemen) में की जाती थी, तथा उनके बारे में अनेक दन्तकथाएँ कहीं जाती थीं। एक दन्तकथा के अनुसार वे अव्यावहारिक स्वप्न-दृष्टा थे, तथा ग्रह-नक्षत्रों की ओर आँखें गड़ाये वे एक बार कुएँ में गिर पड़ते हैं। दूसरी कथा के अनुसार अपने वैज्ञानिक ज्ञान के उपयोग के कारण वे अपने को सामान्य व्यवहार-कुशल लोगों की अपेक्षा बहुत अधिक श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं। कहा जाता है कि एक बार उन्होंने जैतून (olive) की अच्छी फसल होने की भविष्यवाणी की थी, तथा तेल के व्यापार में प्रतिष्ठा प्राप्त की थी तथा सिद्ध कर दिया था कि यदि वे चाहें तो धनाढ्य हो सकते हैं। यह तो स्पष्ट है कि सामान्य लोगों को उनके वास्तविक कार्यों का कोई ज्ञान नहीं था, तथा वे एक विलक्षण 'सत' के रूप में जाने जाते थे एवं अनेक मूलतः अविदित उपाख्यानों (anecdotes) का सम्बन्ध इनके नाम से जोड़ दिया जाता था। अतः ये कथाएं स्वयं थेलीज़ के बारे में कुछ भी नहीं बता पाती। परन्तु ये कथाएँ एक ऐसे जगत् में, जो एक तरफ तो विस्मय (marvel) की तरफ झुका हुआ था तथा दूसरी तरफ अवज्ञा (scoff) की ओर भी आकृष्ट था। विज्ञान एवं वैज्ञानिक लोगों ने पहले पहल क्या प्रभाव डाला इस बात की साक्षी अवश्य हैं।

थेलीज से सम्बन्धित परम्पराओं का एक अन्य समूह है जिससे हमें कुछ

जानकारी हो सकती है। चूंकि ये परम्पराएँ कुछ सुनिश्चित वैज्ञानिक उपलब्धियों का उनसे सम्बन्ध जोड़ती हैं, अत: ये लौकिक स्तर की नहीं हैं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है—सूर्य ग्रहण के बारे में भविष्योक्ति, जिसका उल्लेख हेरोडोटस (१,७४) द्वारा हुआ है। इस प्रकार की परम्पराएँ सुरक्षित रूप से हमें ज्ञात हैं, यह आसानी से जाना जा सकता है, क्योंकि माइलेटस में विश्व-विज्ञान-वेत्ताओं का अविच्छिन्न सम्प्रदाय विद्यमान था। परन्तु जब यह माना जाता है कि थेलीज़ ने कुछ भी नहीं लिखा, तब यह नहीं कहा जा सकता है कि हमारे प्रमाण पूर्ण हैं। इसके पक्ष में दृढ़तापूर्वक हम इतना ही कह सकते हैं कि जिन आविष्कारों तथा अन्य उपलब्धियों को उसके नाम से जोड़ा जाता है, वे अधिकांश उसी प्रकार की हैं, जैसा कि मिस्र एवं बेबिलोनियां के विज्ञान के विकास में पाने की हम आशा करते हैं। परन्तु यदि प्रमाण अपूर्ण माना जाय, तो भी कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। ऐसी स्थिति में थेलीज़ केवल एक संज्ञा मात्र रह जायगा। तब भी यह तो निश्चित ही है कि उसके सद्य उत्तराधिकारियों ने तर्कनापरक विज्ञान (rational science) की आधार शिलाएँ रखी। अत: कुछ पूर्ववृतांतों तथा कुछ बाद में आने वाले प्रसंगों के प्रकाश में इनमें से कुछ परम्पराओं का उल्लेख और उनकी व्याख्या करने में कोई हानि नहीं है।

हेरोडोटस[1] से हमें ज्ञात होता है कि लीडिया के दो राजाओं एल्याटेस (Alyattes) तथा क्रोएसस (Croesus) के राज्य काल में थेलीज़ जीवित थे तथा ई०पू० ५४६ में सार्डेइस (Sardeis) के पतन के कुछ पूर्व तक भी जीवित थे। यह भी बताया जाता है कि उन्होंने पहले ही एक सूर्य-ग्रहण की भविष्योक्ति की थी, जिसने लीडियाई तथा मीडी (Medes) लोगों के बीच होने वाले युद्ध का अन्त किया। यह ग्रहण २८ मई (O. S.), ५८५ ई० पू० को लगा था। यद्यपि यह सुनिश्चित है कि ग्रहणों के वास्तविक कारणों का ठीक पता थेलीज़ के काल के बाद तक भी नहीं लग पाया था, तथा उसके उत्तराधिकारी ग्रहण के बारे में भ्रामक एवं असंगत विवरण प्रस्तुत करते थे; तथापि थेलीज़ की भविष्योक्ति की कहानी अविश्वसनीय नहीं कही जा सकती। बेबिलोनियां के लोगों को भी इस विषय का ज्ञान नहीं था, तथापि वे लोग २२३ चान्द्रमासों (Lunations) के चक्र के आधार पर ग्रहणों के बारे में भविष्योक्ति करते थे, जो प्राय:

---

१. इसके प्रमाणों के सन्दर्भ 'अर्ली ग्रीक फिलोसोफी' २-७ में दिये गये हैं।

सत्य होती थी। परन्तु इतना ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी इस बात का अनुमान लगाना भी आवश्यक नहीं कि थेलीज़ को बेबिलोन जाना पड़ा था। हित्तीती (Hittite) काल में मेसोपोटामिया का एशिया-माइनर पर प्रबल प्रभाव था एवं सार्डेइस को बेबिलोनियाई सभ्यता का अग्रिम स्तंभ कहा जाता है। लीडिया में भी सम्भवतः ऐसे 'ज्ञानी' लोग रहे होंगे जिन्हें प्राचीन रहस्य ज्ञात रहे हों। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सम्भवतः लीडिया के राजा ने माइलेशिया के किसी व्यक्ति को अपना वैज्ञानिक सलाहकार नियुक्त किया था, क्योंकि यह कहा जाता है कि थेलीज़ क्रोएसस के साथ उस आक्रमण में गया था, जो उसके साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुआ, तथा थेलीज़ ने उसके लिए हेलिस (Halys) नदी की धारा को मोड़ दिया और अन्त में हेरोडोटस से हमें यह भी ज्ञात होता है कि वह राजनीति में काफी भाग लेता था, तथा उसने आयोनिया को बचाने का प्रयत्न करते हुए यह आग्रह किया कि बारहों नगर मिलकर एक संघीय राज्य बनायें जिसकी राजधानी टिऑस (Teos) हो।

एरिस्टॉटल के शिष्य यूडेमस (Eudemos) जिसने गणित के इतिहास की प्रथम पुस्तक लिखी थी, के आधार पर हमें यह भी बात ज्ञात होती है कि थेलीज़ ने ही ग्रीस में रेखागणित का प्रारम्भ किया था, यह बहुत सम्भव है कि इस ग्रन्थ की 'भूमिका' में उल्लिखित मापन (mensuration) के प्रारम्भिक नियमों को उसने मिस्र जाकर सीखा हो, परन्तु यदि हम परम्परा पर विश्वास करें, तो लगता है कि वह अपने शिक्षकों से बहुत आगे बढ़ गया था। यह कहा जाता है कि उसने मिस्रवासियों को पिरामिडों की छाया के आधार पर उनकी ऊँचाई नापना सिखाया था, तथा यह भी बताया जाता है कि उसने समुद्र में चलते हुए जहाजों के बीच की दूरी जानने की विधि का भी आविष्कार किया था। प्राच्य लोगों को सामान्यतया यह ज्ञात था कि यदि किसी त्रिभुज की भुजाएँ ३:४:५ के क्रम से हों तो वह सदा समकोण होगा, तथा इस त्रिभुज के आधार पर अन्य समकोणों की स्थापना हो सकती है। जितना हमें थेलीज़ के बारे में ज्ञात है उसके आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि उसने इस प्रारम्भिक ज्ञान के और भी कुछ अनुप्रयोगों (applications) का आविष्कार किया था, और यदि यह सब सत्य है तो यही तर्कनापरक विज्ञान का आरम्भ था। चाहे जो भी हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह उन अन्वेषणों का मार्गदर्शक था जो बाद में पाइथेगोरस के द्वारा पूर्ण रूप से फलित हुए। परन्तु इससे आगे कुछ कहना निरापद नहीं है।

एरिस्टॉटल के अनुसार, थेलीज़ ने कहा कि पृथ्वी जल पर तैरती है। उसकी निश्चित रूप से यह धारणा थी कि इसका आकार एक चपटे चक्र (disc) की भाँति है और एनेक्ज़िमेण्डर के अतिरिक्त उसके सभी उत्तराधिकारियों का यही मत था। इटली तथा आयोनिया के विश्वविज्ञानों (Cosmology) में यह मतभेद है तथा यह मत डेमाक्रिट्स के समय तक चलता आया। यह मत आदिम अवश्य लगता है, परन्तु वास्तव में यह एक महत्त्वपूर्ण प्रगति का द्योतक है। इस समय के विश्वविज्ञान का सारा इतिहास इस बात की कहानी है कि कैसे यह ठोस पृथ्वी चक्र स्वरूप से क्रमश: मुक्त हुई। प्रारम्भ में आकाश और पृथ्वी को एक पेटी के ढक्कन तथा पेंदे जैसा चित्रित किया गया था। परन्तु जैसा कि ग्रीस के लोगों का स्वभाव है, उन्होंने बहुत पहले से पृथ्वी को ओकिनास (Okeanos) नदी से घिरे एक द्वीप के रूप में समझना शुरू कर दिया था। इसे जल पर तैरता हुआ मानना सत्य ज्ञान प्राप्त करने की दिशा में एक और कदम है। किसी न किसी वस्तु पर पृथ्वी को तैरना चाहिये।

इस प्रसंग का सम्बन्ध निश्चित रूप से एरिस्टॉटल की उस मान्यता से है जिसे वह थेलीज का प्रमुख सिद्धान्त (Tenet) मानता है, यथा सभी वस्तुएँ जल से निर्मित हैं। एरिस्टॉटल की भाषा में इसे कहा गया है कि 'जल सभी वस्तुओं का उपादान कारण (material causc) है।' यह मत जिन तथ्यों पर आधारित था उनके बारे में हमें कोई विश्वसनीय सूचना नहीं है। स्वयं थेलीज़ की रचनाओं के अभाव में एरिस्टॉटल भी केवल अनुमान कर सकते हैं, और उनके अनुमान स्पष्ट रूप से उन युक्तियों द्वारा उपन्यस्त हैं जिनका उपयोग बाद में एक इसी प्रकार के सिद्धान्त के पक्ष में किया गया। अत: माइलेशियाई शाखा, और विशेषतया एनेक्ज़िमेनीज, द्वारा बाद में मान्य सिद्धान्तों के प्रकाश में यदि हम इसकी व्याख्या करें तो सम्भवत: अनुचित नहीं। और जब हम ऐसी व्याख्या करने का प्रयास करते हैं तो तुरन्त हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर जाता है कि उन दिनों, तथा कुछ बाद तक भी, वायु (air) तथा जल (भाप की स्थिति में) में तादात्म्य (indentity) माना जाता था। वास्तव में यह धुन्ध का ही एक शुद्ध तथा पारदर्शी रूप माना जाता था। इससे भी शुद्ध रूप आकाश (Ether) का था, जो वस्तुत: भूमध्य प्रदेश के गगन की दिव्य नीलिमा है, एवं यह वायु नहीं अग्नि है। यह भी मान्यता थी कि समुद्र से निकलने वाली भाप ही इस अग्नि तथा आकाशीय पिण्डों की अग्नि के लिए भोज्य-

वस्तु थी। इन पूर्व-मान्यताओं के आधार पर वाष्पीकरण को इस रूप में देखना अत्यन्त स्वाभाविक है। दूसरी तरफ़ हम देखते हैं कि जल जमकर ठोस हो जाता है और कम से कम एनेक्जिमेनीज़ ने तो यह माना ही था कि जल पत्थर हो जाता है। अतः सम्भवतः थेलीज़ को इस बात का ज्ञान हुआ होगा कि जल ही वह मूल तत्त्व था जिससे एक तरफ अग्नि की तथा दूसरी तरफ पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। परन्तु वह सब विवरण प्रायः अनुमान पर आश्रित है। लेकिन यदि एनेक्जिमेनीज़ उसका किसी भी अर्थ में अनुयायी रहा तो थेलीज़ के सिद्धान्त का स्वरूप निश्चित रूप से कुछ इसी प्रकार का रहा होगा। वास्तव में थेलीज़ की महानता उसके द्वारा उठाये गये प्रश्नों पर आधारित है, न कि उत्तर–विशेष पर। थेलीज़ के उपरान्त ग्रीक विज्ञान का प्रमुख प्रश्न रहा है कि क्या सभी वस्तुओं को विभिन्न रूपों में प्रतिभासित एक ही सत्ता की दृष्टि से देखा जा सकता है? और अब हम आगे इस विषय पर विचार करेंगे कि कैसे इस प्रश्न ने कालान्तर में परमाणु-वाद को जन्म दिया।

माइलेशियाई शाखा की दूसरी पीढ़ी के प्रतिनिधि एनेक्जिमेण्डर (Anaximander) हैं।[1] इनके सिद्धान्तों के बारे में कुछ अधिक निश्चित प्रमाण प्राप्त हैं। इन्होंने एक पुस्तक 'प्रकृति पर निबन्ध' (ON NATURE) लिखी थी, जो थियोफ्रेस्टस तथा उसके बाद के काल तक प्रचलित थी। सम्भवतया गद्य में लिखी गयी यह ग्रीक भाषा की सर्वप्रथम पुस्तक थी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आयोनिया में दार्शनिक एवं वैज्ञानिक रचनाओं का माध्यम सामान्यतया गद्य ही था। बाद में दो ग्रीक दार्शनिकों, पार्मेनाइडीज़ तथा एम्पेडॉक्लीज़ ने अपनी रचनाएं पद्य में की थीं, परन्तु वह अपवाद के रूप है तथा ऐसा किन कारणों से हुआ, इसका पता अभी भी लगाया जा सकता है। एनेक्जिमेण्डर सबसे पहला मानचित्र निर्माता (Cartographer) भी था, तथा इस कारण से वह हेकेटाइअस (Hekataios) से भी सम्बन्धित होता है जो उम्र में थेलीज़ से छोटा परन्तु उसका सह-नागरिक था। कहा जाता है कि एनेक्जिमेण्डर के मानचित्र का मूल हेकेटाइअस की कृति पर आधारित था।

ऐसा प्रतीत होता है कि एनेक्जिमेण्डर के विचार के अनुसार वायु, जल अथवा अग्नि को पिण्डों का मूल एवं प्रारम्भिक रूप मानना अनावश्यक था। उसने किसी एक असीम सत्ता (Apeiron or the boundless) को

---

१. इस विषय में प्रमाणों के सन्दर्भ 'अर्ली ग्रीक फिलासोफी' में दिये गये हैं।

ही इसका मूल कारण माना जिससे सारे महाभूतों की उत्पत्ति होती है, तथा जिसमें सभी वस्तुओं का लय हो जाता है।[1] मूल सत्ता को इस ढंग से देखने से उसकी युक्तियाँ अभी भी अंशतः सत्य प्रतीत होती हैं। यह निश्चित है कि वह एक तथ्य से अत्याधिक प्रभावित हुआ था जिसने बाद में ग्रीस के सभी भौतिक सिद्धान्तों पर आधिपत्य जमाये रखा। वह तथ्य था— जगत् में उपलब्ध विरोधों की एक शृंखला, जिसका अत्यन्त प्रारम्भिक रूप हमें ताप एवं शीत, आर्द्र एवं शुष्क में मिलता है। यदि हम वस्तुओं को इस दृष्टिकोण से देखें तो इन विरोधों में से किसी एक को मूल तत्त्व मानने की अपेक्षा यह कहना अधिक स्वाभाविक होगा कि ये विरोध एक ऐसे संघात (mass) से बाहर निकले हैं, जो अभी तक अविभाजित हैं। एनेक्ज़िमेण्डर ने यह तर्क दिया होगा कि थेलीज़ ने शुष्क की अवहेलना कर आर्द्र (नम) को बहुत अधिक महत्त्व दिया। उसकी रचना के जो कुछ भी अवशिष्ट अंश आज हमें मिलते हैं उनको पढ़ने से ऐसा लगता है कि उसके विचार कुछ ऐसे ही होंगे। उसका कथन है कि वस्तुएँ 'काल-क्रम के अनुसार किये गये अन्यायों के लिए एक दूसरे की संतुष्टि और क्षति-पूर्ति करती हैं। 'न्याय' (justice) एवं अन्याय का यह विचार आयोनियाई प्राकृतिक-दर्शन (Natural Philosophy) में अनेक बार आता है, तथा सदा इसी सन्दर्भ में आता है। इसका अभिप्राय एक विरोधी तत्त्व द्वारा दूसरे पर अतिक्रमण से है। इसी के परिणामस्वरूप इन दोनों का एक बार पुनः उनके सामान्य आधार (common ground) में विलीन कर दिया गया। चूंकि वह तत्त्व विस्तार की दृष्टि से अनन्त है, इस लिये यह मानना अधिक स्वाभाविक है कि लोकों (Worlds)[2] की उत्पत्ति इसमें कहीं अयन्त्र हुई, न कि हम लोगों के साथ। उस असीम संघात में सभी लोक भ्रमण करते रहते हैं। अधिकारी विद्वान् एनेक्ज़िमेण्डर को इस मत का प्रतिपादक मानते हैं, और इस मान्यता के खण्डन में कोई उपयुक्त तर्क नहीं

---

१. तुलना कीजिये, 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते...' तैत्तिरीय उपनिषद् (३-१) १ अनु०

२. मैं 'लोक' शब्द का प्रयोग पृथ्वी के लिए नहीं वरन् उस काल में जिसे आकाश (Ouranos) तथा बाद में ब्रह्माण्ड (Kosmos) कहा गया, उस अर्थ में कर रहा हूँ। इसका तात्पर्य चन्द्र-तारा-मंडल की सभी चीजों से है। हम लोगों के दृष्टिकोण से यह नक्षत्रमंडल है, परन्तु इसका केन्द्र सूर्य की जगह पृथ्वी है और अचल नक्षत्र इसके भीतर हैं।

मिलता। इसका निश्चित रूपेण अत्यन्त वैज्ञानिक महत्त्व है, क्योंकि यह मत न केवल उस सिद्धान्त के लिए घातक है जिसके अनुसार विश्व (universe) में सारी चीजें अंतिम रूप से अर्ध्वस्थ या अधस्थ (the theory of absolute up and down) हैं, वरन् उस मान्यता के भी विरुद्ध है जिसके अनुसार सारी वजन-दार वस्तुएँ एक ही केन्द्र की ओर आकृष्ट होती हैं, कई दृष्टियों से यह दुर्भाग्य-पूर्ण था कि इस प्राचीन सिद्धान्त के स्थान पर प्लेटो को एक अविभक्त विश्व में विश्वास करना पड़ा था, जिसने एरिस्टॉटल के प्रतिक्रियात्मक विश्वविज्ञान के लिए मार्ग प्रशस्त किया। बाद में एपिक्यूरियन लोगों (Epicureans) ने इस प्राचीन आयोनियाई मत को अपनाया परन्तु वे लोग इतने अवैज्ञानिक थे कि इसका सदुपयोग न कर सके। वास्तव में उन लोगों ने अंतिम रूप से अर्ध्वस्थ एवं अधस्थ की असंगत मान्यता से इसे संयुक्त कर दिया। कहा जाता है कि एनेक्जिमेण्डर ने अपने असंख्य लोकों को 'देवता' (gods) नाम दिया। इसका तात्पर्य शीघ्र ही स्पष्ट हो जायेगा।

जगत् का निर्माण विपक्षों के पृथक्करण से होता है। पृथ्वी के बारे में एनेक्जिमेण्डर का दृष्टिकोण वैज्ञानिक अंतःप्रज्ञा (intuition) तथा आदिकालीन विश्वासों का एक विचित्र मिश्रण है। प्रथमतः; वे इस बात को पूर्ण स्पष्ट रूप से मानते हैं कि पृथ्वी किसी वस्तु पर आधारित नहीं है, वरन् शून्य (space) में स्वच्छन्द झूलती रहती है। इसके लिए वे तर्क देते हैं कि ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो पृथ्वी को किसी तरफ गिरा सके। जैसा कि उल्लेख किया गया है, उसने ऐसा अनुमान इसीलिए लगाया होगा क्योंकि एकान्तिक अधोपरि सिद्धान्त से इस पद्धति (system) की संगति नहीं बैठती थी, दूसरी तरफ वह पृथ्वी के आकार को थेलीज़ के चक्र तथा पाईथेगोरस के गोलक (sphere) के बीच का मानता है। उसने इसे 'स्तंभ के ढ़ोल की भाँति' या बेलन (cylinder) के समान माना। उसकी यह भी मान्यता थी कि हम लोग इसके ऊपरी तल पर रहते हैं, तथा इसके नीचे पाताल लोक (Antipodal) भी है। आकाश में स्थित पिण्डों के बारे में उसके सिद्धान्त में स्पष्ट होता है कि अभी भी वह मौसम विज्ञान (Meteorology) तथा खगोल विज्ञान (Astro-nomy) को पृथक नहीं कर पाया था। जब तक आकाश की समस्त वस्तुओं को एक ही श्रेणी में रखा जायेगा तब तक ऐसा होना अपरिहार्य है। यहाँ तक कि गैलिलियो ने भी माना कि धूम्रकेतु (comets), वायुमण्डल (atmosphere) की घटनाएँ हैं, तथा समस्त आकाशीय पिण्डों के बारे में इस प्रकार की मान्यता के लिए जितनी युक्तियाँ एनेक्जिमेण्डर ने दी थीं उससे कहीं कम उसने दी

थीं। और उनकी प्राक्कल्पना में कुछ धृष्ट उत्कर्ष का भी पुट था। सूर्य, चन्द्रमा तथा तारों को उसने वास्तविक अग्नि-कुण्डलों की भाँति माना, जो पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हैं। चूँकि वे 'वायु' या धुंध से आच्छादित हैं अतः हम उन्हें गोलाकार (ring) के रूप में नहीं देख पाते : जो हमें दिखाई पड़ता है वह तो केवल एक रन्ध्र (aperture) में से निकलती हुई अग्नि है, जैसे कि धौंकनियों (bellows) के नासाग्र से निकलती है। यहाँ यह द्रष्टव्य है कि आकाश के पिण्डों का गोलाकार घूमने के सिद्धान्त का यह प्रारम्भ है। यह सिद्धान्त तब तक मान्य रहा जब तक यूडॉक्सस ने वलय के स्थान पर गोलक (sphere) सिद्धान्त को प्रतिस्थापित किया था। यह भी कहा जाता है कि जिसे हम विषुवत रेखा का क्षेत्र (plane of equator) कह सकते हैं उससे इन गोलाकारों के तिरछेपन (obliquity) का पता भी एनेक्जिमेण्डर ने लगा लिया था। ये रंध्र जब बन्द हो जाते हैं, तब ग्रहण लगते हैं।

चेतन प्राणियों के बारे में एनेक्ज़िमेण्डर की धारणा थी कि सभी जीव समुद्र से उत्पन्न हुए हैं। उसकी यह भी मान्यता थी कि जीवों का वर्तमान स्वरूप जल के बाहर एक नये वातावरण से अनुकूलन (adaptation) का परिणाम है। यह सम्भव है कि जीव-विज्ञान के उसके कुछ सिद्धान्तों को सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो वे असंगत प्रतीत हों, परन्तु यह तो निश्चित है कि उसकी पद्धति पूर्णतया वैज्ञानिक थी। वह कुछ जरापुज मकरों (viviparons sharks) अथवा कुक्कुर मछलियों (dog–fish) को देखकर बड़ा प्रभावित हुआ था, तथा उन्हें मछलियों तथा थलचर जीवों के मध्य का जीव माना था। उसके इस कथन से कि मनुष्य का अवतरण एक अन्य जाति के जीव से हुआ है, एक विचित्र आधुनिकता की ध्वनि निकलती है। मानव जाति के बच्चों के पालन में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है, जबकि अन्य जीवों के बच्चे अपना भोजन शीघ्र ढूंढ़ लेने में समर्थ हो जाते हैं। अतः मनुष्य जैसे आज है यदि वैसे ही सदा से रहा होता तो उसका अस्तित्व ही न रहा होता।

एनेक्ज़िमेनीज़ (Anaximenes) तीसरा माइलेशियन दार्शनिक था। ऐसा प्रतीत होता है कि जब आयोनिया फारसी शासन के अन्तर्गत आ गया तब यह क्रियाशील था।[1] इसने भी गद्य में एक रचना की थी जिसका केवल एक अंश शेष बचा है। वह एनेक्जिमेण्डर जैसा महान तथा मौलिक प्रतिभा-

---

१. इस प्रसंग के प्रमाणों के संदर्भ 'अर्ली ग्रीक फिलासोफी' २३ में दिये गये हैं।

शाली नहीं था, तथा उसका विश्वविज्ञान कुछ दृष्टियों से उसके अग्रज की तुलना में बहुत निम्न स्तर का है। वास्तव में वह अविस्मरणीय केवल इसलिए बन पाया क्योंकि उसने विरलीकरण (rarefaction) तथा संक्षेपण (condensation) की विधि का आविष्कार किया। इसी विधि के कारण माइलेशियाई मत की प्रथम बार सुसंगत (coherent) बन पाया। उसने 'वायु' को पिण्डों का मूल माना। वायु से उसका तात्पर्य उस वस्तु से था जिसे हम श्वांस के रूप में ग्रहण करते हैं तथा उससे भी, जो जमकर धुम्र तथा जल बन जाती है—दोनों से है। यहाँ तक उसका सिद्धान्त थेलीज़ से मिलता है। दूसरी ओर उसने वायु को असीम (boundless) तथा असंख्य लोकों को धारण करने वाला बताया। इस दृष्टि से वह एनेक्ज़िमेण्डर का अनुयायी प्रतीत होता है। उसकी रचना का जो एकमात्र उद्धृत अंश मिलता है उससे लगता है कि वह विराटविश्व macrocosm) तथा अणुविश्व (miscrocosm) के सादृश्य से प्रभावित था। उसका कहना था कि "जिस प्रकार हमारी आत्मा-वायु होने के कारण, हमें धारण किये है, उसी प्रकार प्राण तथा वायु सम्पूर्ण विश्व को धारण किये है।" उसका विचार था कि विश्व अपने बाहर स्थित असीम संघात (the boundless mass) की वायु से श्वांस लेता है। उस वायु को उसने 'देवता' माना।

एनेक्ज़िमेनीज़ का विश्वविज्ञान अनेक दृष्टियों मे प्रतिक्रियावादी था। हम देखेंगे कि एनेक्जिमेण्डर की बहुत-सी गर्वोक्तियों में भविष्य की सम्भावनायें निहित थीं, परन्तु लोगों को यह अनुभव हो रहा था कि वह सीमा का अतिक्रमण कर रहा है। एनेक्जिमेनीज के अनुसार पृथ्वी चपटे आकार की है तथा वायु पर पत्ते के समान डोलती रहती है। आकाशीय पिण्ड भी वायु पर तिरते हैं। इन पिण्डों के अयन, बक्र या तिरछे नहीं है, परन्तु, चूंकि पृथ्वी उनसे आवृत्त है, अतः अधिकांश पिण्ड जब पृथ्वी के ऊँचे हिस्से के पृष्ठ भाग में जाते हैं तब आँखों से ओझल हो जाते हैं। यह दुर्भाग्य की बात है कि एनेक्ज़िमेनीज़ को पृथ्वी के गोलाकार होने का ज्ञान नहीं हो पाया। यदि उसने इस दिशा में विचार किया होता तो सम्भव था कि उसने पृथ्वी की धुरी के झुकाव का आविष्कार कर लिया होता। उसने पृथ्वी को चक्र के आकार का माना और बताया कि आकाशीय पिण्ड उसे चारों तरफ से टोपी की भाँति घेरे हैं। आयोनिया के लोग कभी भी पृथ्वी के बारे में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं कर पाये। यहाँ तक कि डेमोक्रिटस को भी यह विश्वास था कि पृथ्वी चपटी है। एनेक्ज़िमेण्डर के संसूचक (suggestive) सिद्धान्त का विकास एक

दूसरी दिशा में होना अभीष्ट था।

हाल ही में यह प्रतिपादित किया गया कि माइलेशिया का विश्व-विज्ञान 'चार महाभूतों' (four elements) के आदिम तथा जन-प्रिय सिद्धान्त पर आधारित था। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि इस समय इन लोगों को महाभूत की वैज्ञानिक धारणा थी। बाद में हम देखेंगे कि ऐसी धारणा एम्पेडाक्लीज के कारण बन पायी तथा अग्नि, वायु, पृथ्वी तथा जल के पुराने चतुष्ठक ने उसके, तथा बाद में एरिस्टॉटल के, दर्शन में जो स्थान प्राप्त किया इसी कारण इन्हें चार महाभूत कहा जाने लगा। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण भ्रम है परन्तु इससे छुटकारा पाना भी बहुत कठिन है तथा हमें विवश होकर 'भूत' (element) शब्द का दो अर्थों में प्रयोग करना पड़ता है, जब कि दोनों अर्थों का एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं दिखता। यह निर्विवाद है कि बहुत प्राचीन काल से इस प्रकार का चतुर्विध या त्रिविध विभाजन मान्य था। होमर एवं हीसियाड (Hesiod) की रचनाओं में इसके संकेत मिलते हैं तथा विश्वसनीय ढंग से संसूचित किया गया है कि इसका सम्बन्ध जीडस् (Zeus) पोसेडॉन (Poseidon) तथा हेडीज (Hades)के नामों से जुड़े 'खण्डों' के प्रतीकोपाख्यान (myth) से है। अतः यह कहने के लिए हम उत्कण्ठित होते हैं कि प्रारम्भिक विश्वविज्ञान-शास्त्री इन खण्डों में से एक के बाद दूसरे को मूल तत्त्व मानते रहे। परन्तु यदि कुछ निकट से देखा जाय तो हम इस निष्कर्ष की ओर आकृष्ट होंगे कि इन लोगों की मौलिकता मुख्यतया इनके द्वारा प्राचीन लोक-प्रसिद्ध सिद्धान्त की पूर्ण अवहेलना करने के कारण थी। यद्यपि तथाकथित महाभूतों[1] की सभी प्रचलित सूचिओं में पृथ्वी की गणना की गयी है, परन्तु यह उल्लेखनीय है कि पृथ्वी को पिण्डों का मूल रूप कभी नहीं माना गया। प्रारम्भिक विश्वविज्ञान में 'पृथ्वी माता' के महत्त्व को स्मरण करने पर यह और भी आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। यह महत्त्व फेरेकिडीस (Pherekydes) तक में उपलब्ध है। यहाँ एक बार पुनः माइलेशियाई विश्वविज्ञान तथा उसके पूर्व के चिन्तन के बीच के विच्छेद वस्तुतः उल्लेखनीय हैं।

यदि हम कुछ व्यापक दृष्टिकोण से देखें तो पता चलेगा कि यह एक ओर पृथ्वी तथा पत्थरों के बर्फ, जल तथा भाप से तथा दूसरी ओर वायु तथा

---

१. इसका उल्लेख एरिस्टॉटल ने मेटाफिजिक्स (Metaphysics) A, ८,९८९, a, ५ में किया है। न तो उसने न थियोफ्रेस्टस ने जेनोफेनीज़ के विरुद्ध कुछ कहा है। देखिये। Diels, Vers. पृष्ठ ५२, २८।

अग्नि से दिखने वाली तादात्म्य की व्यापकता पर निर्भर है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि यह अद्य चार महाभूतों के स्थान पर कुछ ऐसा विकल्प है जो उस सिद्धान्त से बहुत कुछ मिलता है जिसे अब हम घन (solid) तरल (liquid) तथा वाष्प (gaseous) की तीनों स्थितियों का संघात (aggregate कहते हैं। चाहे जो भी हो, हमारे मत के अनुसार माइलेशिया के लोग मानते थे कि एक ही तत्त्व इन तीनों रूपों में प्रतिभासित होता है तथा इसे वे 'उपादान' (phusis) कहते थे। इस शब्द का मूल अर्थ एक पदार्थ विशेष से था जिससे वस्तुओं का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए, लकड़ी की वस्तुओं का कोई एक 'फूसिस' है तो चट्टानों का कोई दूसरा, तथा रुधिर-मांस के लिए तीसरा। माइलेशियाई लोगों ने वस्तु मात्र के उपादान (फूसिस) के विषय में जिज्ञासा प्रकट की। थेलीज ने इसे 'जल' माना और हमारा अनुमान बहुत गलत नहीं होगा यदि हम कहें कि उसने यह इसलिए माना कि तरल अवस्था घन एवं वाष्प के बीच की अवस्था है तथा यह दोनों में से किसी का भी रूप सरलता से धारण कर सकती है। एनेक्जिमेण्डर ने अपने 'असीम' (Bound-less) को किसी पिण्ड विशेष के आकार से भिन्न रखना इसलिए अधिक अच्छा समझा क्योंकि इससे विपक्षों की निष्पत्ति हो सके। एनेक्जिमेनीज ने सोचा कि अन्ततोगत्वा मूल पदार्थ (substance) का अपना कोई स्वरूप या लक्षण अवश्य होना चाहिये तथा उसने इसका वायु से तादात्म्य स्थापित किया, जो जल तथा अग्नि के बीच की अवस्था है। ऐसा करने में वह इसलिए समर्थ रहा क्योंकि

१. देखिये – प्लेटो, Laws, ८९१ c ; जो इस तरह का कथन करता है वह क्या अग्नि तथा जल तथा पृथ्वी तथा वायु को सभी वस्तुओं का प्रथम तत्त्व (element) नहीं समझता? इन्हें वह 'प्रकृति' कहता है। वास्तव में प्रश्न है, कि क्या प्रकृति (फूसिस) का मूल अर्थ 'विकास' (वृद्धि) है। एरिस्टॉटल (Met. △, ४. १०१४ b, १६) ने ऐसा नहीं माना, उसका कहना है कि जब इसका अर्थ 'विकास' होता है तब हमें दीर्घ 'अ' का उच्चारण करना चाहिये दूसरे शब्दों में, इससे उन्हें 'phon mai' क्रिया का आभास नहीं हुआ। इस विषय पर विवाद के लिए देखिये, हेइडेल पेरी phuseos प्रोसिडिंगस् आफ दि अमेरिकन अकादमी आफ आर्टस् एण्ड साइन्सेज X i V. ४), तथा लवज्वाय 'दि मीनिंग आफ वसिस इन दि ग्रीक फिजियालाजरर्स,' (फिलासोफिकल रिव्यू XViii, ४)। मेरी समझ में यह तथ्य कि परमाणुवादियों ने परमाणुओं को 'प्रकृति' कहा यह निर्णायक लगता है। देखिये, एरिस्टॉटाल Physics, २६५ b, २५ simpl. Physics, पृष्ठ १३१८, ३४. परमाणुओं में वृद्धि नहीं होती।

उसने संक्षेपण तथा निरतीकरण के सिद्धान्त को प्रवर्तित किया था एवं इसी सिद्धान्त के कारण उसका सारा दर्शन बोधगम्य होता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि माइलेशियाई लोगों ने भौतिकशास्त्र के अर्थ में पुद्गल (matter) की रूपरेखा तैयार की थी तथा यह रूपरेखा आज भी हमारे पाठ्य-ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से मिलती है। उनके दर्शन का मुख्य प्रतिवाद यही है, न कि उनके द्वारा वर्णित खगोलीय सिद्धान्त। इसी कारण दर्शनशास्त्र के प्रारम्भ के रूप में इसकी गणना की जाती है। "सत् क्या है?" इस प्रश्न का यह सर्वप्रथम उत्तर है।

ई० पू० ४९४ में माइलेट्स के पतन के साथ ही माइलेशियाई सम्प्रदाय का भी निश्चित रूप से अन्त हो गया, परन्तु हम बाद में देखेंगे कि 'एनेक्ज़िमेनीज़ का दर्शन', जैसा कि यह ख्यात था, आयोनिया के अन्य नगरों में पढ़ाया जा रहा था तथा जब आयोनिया विदेशी दासता से एक बार पुनः स्वतन्त्र हुआ तब इसकी प्रतिष्ठा पुनः स्थापित हुई। अस्तु, इस समय विचारणीय यह है कि एशिया के यूनानी नगरों पर फारसी विजय का वहाँ के दर्शन पर क्या प्रभाव पड़ा।

आयोनियाई सभ्यता का पराभव

आयोनियाई सभ्यता की प्रकृति पूर्णतया लौकिक थी और इसमें सन्देह नहीं कि विज्ञान की उत्पत्ति का एक कारण यह भी था। होमर द्वारा वर्णित समाज में हमें इस लौकिक प्रकृति का प्रारम्भ मिलता है। जिन राजकुमारों एवं सेनानियों के बारे में उसने गान गाये हैं वे लोग उन धार्मिक विचारों से पूर्ण अनासक्त लगते हैं जिनके बारे में स्मारकों के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रारम्भिक ईजियाई सभ्यता में उनका प्रबल प्रभाव था। हम यह नहीं कह सकते हैं कि 'इलियाड' (Iliad) में ओलम्पिया के देवताओं के प्रति पूज्य भाव व्यक्त किया गया है। कभी-कभी तो उन पर गम्भीरतापूर्वक विचार भी नहीं किया गया है। वे देवता स्पष्ट रूप से मानवीय हैं, अन्तर इतना है कि वे अमर हैं तथा मनुष्यों से अधिक शक्तिशाली हैं। धार्मिक चेतना (religious consciousness) के लिए 'देवता' (Theos) शब्द का तात्पर्य उपास्य विषय से है तथा यही देवताओं एवं अन्य अमर और शक्तिशाली दानवों (demons) में अन्तर भी है। परन्तु होमर में यह अन्तर अस्पष्ट है। यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि 'इलियाड' में सभी देवताओं को उपासना का विषय माना गया है अथवा नहीं। वास्तव में उनमें से कुछ ही देवताओं की स्तुति व हवन

का विधान है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि एचिलीज़ (Achilles) जब अत्यन्त अनन्यभाव (earnest) से प्रार्थना करता है तब वह इडा (Ida) या ओलिम्पस के पालकों की नहीं वरन् सुदूरस्थ डोडोना के पेलास्जिक ज्यूस (Pelasgic Zeus) की स्तुति करता है।

हीसियाड का स्वभाव निर्विवाद रूप से अत्यन्त भिन्न है। इसका कारण यह है कि वह आयोनिया का निवासी नहीं है तथा वह अपने को होमर का प्रतिपक्षी मानता है, यद्यपि होमर का उस पर बहुत बड़ा प्रभाव था। उपासना के विचार को 'देवता' के विचार से असंपृक्त (अलग) करने का उसने होमर की अपेक्षा अधिक प्रयास किया। यह निश्चित है कि 'थियोगोनी' (Theogony) में उल्लिखित बहुत-से 'देवताओं' की कभी किसी ने उपासना नहीं की तथा उनमें से कुछ तो केवल प्राकृतिक घटनाओं अथवा मानवीय मनोविकारों के मूर्ति-करण (personification) हैं। हमारे लिए इस समय सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि 'देवता' शब्द के इसी धर्मेत्तर प्रयोग के कारण माइलेशियाई लोग अपने मूल द्रव्य (substance) तथा अपने 'असंख्य लोकों' के लिए इसका प्रयोग कर सके। कहने की इस विधि से इस बात की जरा भी पुष्टि नहीं होती कि ग्रीस के विज्ञान की उत्पत्ति का कोई धर्मशास्त्रीय (theological) स्रोत है वरन् यह इस तथ्य का द्योतक है कि ग्रीक-विज्ञान धार्मिक परम्परा से पूर्णतः स्वतन्त्र है। आयोनियाई सभ्यता की अत्यन्त लौकिक प्रकृति का जिसको एक बार ज्ञान हो गया है वह आदिम सृष्टिमीमांसा (cosmogony) में ग्रीस के दर्शन-शास्त्र का प्रारम्भ कभी नहीं ढूंढ़ना चाहेगा।

होमर ने जिस सामंती (feudal) समाज का चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है उसके स्थान पर आयोनिया के नगरों में वाणिज्यीय कुलीन-तन्त्रशाही (aristocracy) की स्थापना हो गयी। परन्तु जैसे चारण लोग सामंत-पुत्रों के आवासों पर होमर के काव्य का पाठ किया करते थे वैसे महाकाव्य–पाठी (rhapsodes) अभी भी बाजारों में पाठ करते थे। परन्तु ओलम्पिया के मानवीकृत देवताओं से छुटकारा पाना असम्भव था तथा जब देवताओं का स्वरूप डरावना (aweful) था, एवं जिनके पास भीरु होकर जाना होता था। उस समय के स्थापित तीर्थों में जब बाद के लोग उपासना करने जाते थे तब उनके मन में इन्हीं देवताओं का विचार रहता था। यद्यपि ये देवता नैतिकता के अधिष्ठाता माने जाते थे, परन्तु होमर के विचार–जगत् में पला हुआ व्यक्ति इन्हें नैतिक प्राणी नहीं मानता था। उनके पास पराक्रम ही एक

मात्र देवी गुण था और वह भी मनुष्य की निर्बलता के पूरक के रूप में था। जिस निर्बलता के बारे में आयोनिया के लोग पूर्णतः अभिज्ञ थे। मनुष्यों की पीढ़ियाँ जंगल की पत्तियों के समान गिरकर समाप्त हो जाती हैं, तथा पुनः जीवन नहीं होता, और यदि होता भी है तो छायात्मक, जिसके बारे में मृत आत्मा स्वयं कुछ नहीं जानती। मनुष्य जब मरता है तब सदा के लिए समाप्त हो जाता है: यदि कुछ शेष रहता है तो उससे केवल स्वप्नों एवं मनः कल्पनाओं (visions) की व्याख्या हो सकती है। अतः मनुष्यों की बुद्धिमत्ता इसी में है कि वे मनुष्य-धर्मी चिन्तन में ही अनुरक्त रहें। वह रहस्यात्मक शक्ति जो इस जीवन में सुख-दुख का निर्णय करती है, उसे हम ईश्वर की भाँति ही प्रायः ब्रह्मतत्त्व (The Godhead) कहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वह मनुष्य से द्वेष रखती है तथा जो भी लोग सिर उठाते हैं उन्हें नीचे गिराती हैं। अतः हमें खान-पान तथा आनन्द में अनुरूप रहना चाहिये, परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि अति सर्वत्र वर्जित है। जो व्यक्ति 'आत्मानं विद्धि' के नियोग को मानता है वह मदान्ध नहीं होगा। कहा गया हैं कि अधिक समृद्धि पूर्णकामता (satiety) लाती है, जिससे अभिमान (pride) उत्पन्न होता है, तथा इससे हृदयान्धता आती है, और ईश्वर जिसका नाश करने का निश्चय कर लेता है उसे यह प्रदान करता है। 'कुछ पीढ़ियों बाद हीब्रू प्रज्ञान' (Hebrew Wisdom) के साहित्य में भी इसी प्रकार का सूत्र मिलता है।

छठीं तथा सातवीं शताब्दी ई० पू० के आयोनिया जैसे अत्यन्त सभ्य देश के समृद्ध वर्ग के लोगों में जीवन के प्रति ऐसा दृष्टिकोण स्वाभाविक है, परन्तु जो लोग सदा अपनी धार्मिक मूलप्रवृत्तियों की निश्चित संतुष्टि की आकांक्षा करते हैं, उनको इससे संतोष नहीं होगा। हम यह पाते हैं कि आयोनिया के भी कुछ लोगों में देवताओं के प्रति एक अत्यन्त भिन्न प्रकार की अभिवृत्ति थी। होमर में 'अपोलो' के लिए स्त्रोत (Hymns to Apollo) के स्वर के पर्याप्त लौकिक होने में सन्देह नहीं, परन्तु डेलॉस के देवालय (sanctuary) में आज भी प्राचीन ईजियन धर्म के कुछ स्मृति चिह्न उपलब्ध हैं। यह अकारण नहीं है कि जो नौका प्रागैतिहासिक काल में आयोनिया के चौदह युवक-युवतियों को एथेन से क्रीट ले गयी थी, वह बाद में डेलॉस चली गयी, और हाइपरबोरियो (Hyperboreano) के आख्यानों (legends) ने डेलॉस को और भी सुदूर

१. गीता (११, ६३) में भी इस प्रकार का कथन मिलता है – अनु०।

तथा विस्मयकारी प्रदेशों से सम्बद्ध कर दिया। इन बीजों का विकास केवल आयोनिया के भीतर नहीं हुआ था। इन दिनों आयोनिया की स्वतन्त्रता प्राय: समाप्ति पर थी, तथा एक के बाद दूसरे राज्य के निवासियों को सुदूर पश्चिम में नये घर ढूंढ़ने पड़ते थे। एक नया युग आरम्भ हो गया था जिसमें होमर के छिछले बहुदेववाद (polytheism) को कोई स्थान नहीं था। जब लोगों को उपासना के वास्तविक प्रयोजन की अनुभूति एक बार पुन: हुई तब उन्हें इससे संतुष्टि नहीं हो पायी, एक ऐसे देवता की, जो केवल सामान्य लोगों को नियन्त्रित करने वाली बागडोरों से मुक्त मनुष्य है। उपासना करने की अपेक्षा किसी वृक्ष या पशु की पूजा करना सरल है। इसीलिए उस समय कृषि-देवों की उपासना का इतना महत्त्व बढ़ गया जो होमर, डेमीटर तथा डायोनिसस को अज्ञात-प्राय थे। यद्यपि यह देखा जा सकता है कि होमर के स्रोत में देवताओं के मानवीकरण के प्रक्रम (procees) प्रारम्भ हो चुके थे, परन्तु उस समय तक उनका पूर्ण मानवीकरण नहीं हो पाया था। इसीलिए उस युग तक उन देवताओं की निष्ठापूर्वक उपासना सम्भव थी।

धर्म (RELIGION)

डायोनिसस के सम्प्रदाय (cult) ने विशेष तौर पर क्रेसीयन एवं क्रीजियन की जेग्रियस (Zagreus) तथा सेवेजियस (sabazios) की समरूप उपासनाओं से एक नई प्रेरणा प्राप्त की। इन सबमें हर्षोन्माद (Ecstasy) की उत्पत्ति का विशेष महत्त्व था तथा जीवात्मा (soul) का, एवं शरीर से उसके सम्बन्ध का जो चित्र हमें होमर में मिलता है उससे अत्यन्त भिन्न विवरण का संकेत यहाँ पर मिलता है। इस सिद्धान्त का प्रचार आर्फिक धर्म (orphic rcligions) ने किया, तथा इस धर्म का प्रसार सभी दिशाओं में हुआ। यूनान के सभी प्रारम्भिक धर्मों से यह दो दृष्टियों से भिन्न था। प्रथम, इसने ऐसी श्रुति (revelation) में विश्वास किया जो पवित्र ग्रन्थों में लिपिबद्ध है। द्वितीय, इसकी सामुदायिक व्यवस्था का आधार कोई वास्तविक या कृत्रिम वंश-परम्परा नहीं थी। इसका द्वार उन सबके लिए खुला था जो इसमें दीक्षित होना चाहते हों तथा इसके नियमों के पालन का व्रत लें। इसकी शिक्षाएं आयोनिया के निराशावाद से पूर्णतया विपरीत थी। आयोनियाई निराशावाद (passimism) ने मनुष्य और मानवीकृत देवताओं के बीच इतना अधिक भेद स्थापित कर दिया था कि सही अर्थों में धर्म की सम्भावना ही समाप्त हो गयी थी। इसके विपरीत आर्फिक्स का कहना था कि मनुष्य यद्यपि पतित (fallen) अवश्य है तथापि वे

देवताओं के सजातीय हैं तथा शुद्धिकरण की प्रक्रिया से पुनः उनका उत्थान हो सकता है। पाप एवं मृत्यु से उनका उद्धार (redemption) सम्भव है तथा, देवताओं के साथ अनन्तकाल तक वे निवास कर सकते हैं। आर्फिक सन्तों की आत्मा अमर है, उनके जन्म के पूर्व भी उसका अस्तित्व था, तथा उनकी मृत्यु के उपरान्त भी उसका अस्तित्व रहेगा। वस्तुतः इन शब्दों का प्रयोग उपर्युक्त ढंग से नहीं होता। जिसे लोग 'जीवन' कहते हैं वह तो वास्तव में मृत्यु है, तथा यह शरीर आत्मा की कब्र है। जब तक कि आत्मा अन्तिम शुद्धीकरण के द्वारा जन्म-चक्र से मुक्त न हो जाय तब तक यह क्रमशः पशुओं एवं वनस्पतियों के शरीर में बद्ध रहती है। इसके अतिरिक्त जिन जीवात्माओं का शुद्धीकरण असम्भव है वे महापंक (Slough) में सदा के लिए फेंक दी जाती है।[1] स्वर्ग एवं नरक, मुक्त एवं विनिपात (damanation) के विचार यूनानी धर्म के लिए नवीन बातें थीं।

आर्फिक धर्म में मुख्यतया अज्ञानी लोग ही विश्वास करते थे। हमें इसके प्रचारकों तक धर्मदूतों (missionaries) के नाम ज्ञात नहीं। इसके अस्तित्व के बारे में हमें दक्षिण इटली व क्रीट में इसके अनुयायियों के साथ दफनाये गये कुछ स्वर्ण-पत्रों से ज्ञात होता है। यह सत्य है कि पेसिस्ट्राट्स (Peisistratos) जैसे शासकों ने आर्फियस (orpheus) के धर्म को राजनैतिक कारणों से अपनाया था, परन्तु सब मिलाकर हमें यह अज्ञात-सा ही है। जहाँ तक हमें जानकारी है ऐसे महान् आर्फिक शिक्षकों का अभाव था, जो इसके वास्तविक शुद्ध स्वरूप की रक्षा कर सकते हों, अतः अन्ध-विश्वासों के रूप में इसका पतन होना स्वाभाविक था। और यह कूट चिकित्सकों एवं धूर्तों के हाथ का शिकार हो गया। तथापि हम देखेंगे कि कुछ ऐसे तथ्यों को दार्शनिकों ने ग्रहण कर लिया जिन्हें वे स्थायी महत्त्व का समझे। अतः वे बाद के युगों में भी सुरक्षित रहे। इस प्रकार आर्फिक मत से सभी उत्तर कालीन धर्म व दर्शन पर्याप्त रूपेण प्रभावित थे। पारम्भ में जो धर्म व दर्शन इससे अत्यन्त भिन्न प्रतीत होते हैं वे भी इससे प्रभावित थे।

प्रबोध युग (ENLIGHTENMENT)

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आयोनियाई नगरों के प्रबुद्ध लोग इस प्रकार के विचारों से पूर्णतया अपरिचित थे। सभी वस्तुएं देवतामय हैं

---

१. मध्वाचार्य के द्वैतवाद में भी इस प्रकार की बातें मिलती हैं – अनु०।

(All thing are full of gods) का कथन थेलीज़ का बताया जाता है ओर इसकी उत्पत्ति निश्चित रूप से उन्हीं दिनों हुई थी। यह जिस प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है उसे हम सर्वेश्वरवाद (pantheism) कहते हैं। यहाँ सर्वेश्वरवाद का तात्पर्य विनीत अनीश्वरवाद (Polite atheism) से है। यह बात इसी उक्ति के एक दूसरे रूप से और भी स्पष्ट हो जाती है। इस कथन का प्रणेता हेराक्लिटस को माना जाता है। उसने अपने अतिथियों को रसोई घर में बुलाकर कहा 'देवता यहाँ भी हैं'। परन्तु आयोनियाई विज्ञान के सच्चे स्वरूप को हम उन कतिपय लेखों में पाते हैं जिनका लेखक हिप्प्रोक्रेटीज़ माना जाता है। ये रचनाएँ निश्चित रूप से ई० पू० पांचवीं शताब्दी के बाद की नहीं है। 'पवित्र व्याधि' (The Sacred Desease, Epilepsy) नामक ग्रन्थ में निम्नलिखित उल्लेख है :

"मेरे विचार से कोई व्याधि अन्य व्याधियों की अपेक्षा अधिक दिव्य अथवा पवित्र नहीं है, ...मैं समझता हूं कि जादूगरों, शुद्धिकर्त्ताओं, कूट-चिकित्सकों एवं धूर्तों जैसे समुदाय के जिन लोगों ने पहले पहल इस व्याधि को पवित्र बताया वैसे लोगों का आज भी अभाव नहीं है। वे ईश्वर तत्त्व (God-head) का उपयोग अपनी अक्षमता पर पर्दा डालकर ढकने के लिए करते हैं।"

पुनः, 'वायु, जल तथा भूमि' (Air, Waters and Sites) नामक ग्रन्थ में हम पाते हैं :

"कोई वस्तु किसी अन्य वस्तु की अपेक्षा अधिक दिव्य या अधिक मानवीय नहीं है, सभी वस्तुएँ एक जैसी हैं व सभी दिव्य हैं।"

यही 'प्रबोध' का सच्चा स्वर है, तथा आयोनिया के सभी सम्प्रदायों की आवाज इसी प्रकार की थी। इसका स्पष्टतम रूप हमें एक करुण तथा हास्य रस के कवि में मिलता है, जिसका इस समस्या के प्रति वैज्ञानिक विचारक की अपेक्षा सुधारवादी दृष्टिकोण था। मेरा तात्पर्य ज़ेनोफेनीज़ से है जिन्हें ईलियाईटक सम्प्रदाय का प्रायः संस्थापक माना जाता है। संस्थापक सम्बन्धी प्रश्न पर हम बाद में विचार करेंगे। परन्तु कालक्रम एवं कुछ अन्य अपेक्षाओं के कारण उसके बारे में यहाँ विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

ज़ेनोफेनीज़ (Xenophanes) के जीवन-काल का ठीक-ठीक निर्धारण करना कठिन है, क्योंकि प्राचीन प्रामाणों में जो तिथियाँ दी गयी हैं वे केवल

सयोजन-विधि द्वारा प्राप्त की गयी हैं।[1] उसके जीवन की घटनाएं भी अस्पष्ट हैं। इस बात का जरा भी संकेत नहीं मिलता कि वह महाकाव्यपाठी था। और यह अत्यन्त असम्भव है। उसने ईलिया तथा अन्य स्थानों की यात्रा की होगी, परन्तु किसी भी प्राचीन प्रमाण में इस बात का स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि उसने यात्राएँ की थी। यह निश्चित है कि वह कोलोफोन का नागरिक था। उसी के कथन से हमें ज्ञात होता है कि पच्चीस वर्ष की आयु के बाद वह प्रवासी हो गया, तथा वह बानवें वर्ष की आयु तक भी पद्य रचना करता था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह मुख्य रूप से सिसली में रहा, तथा यह प्रायः निश्चित है कि वह सिराक्यूज के हाइरो (Hiero), जिसने ४७८ से ४६७ ई० पू० तक शासन किया, के राजदरबार में था। उसे एनेक्जिमेण्डर का शिष्य भी बताया जाता है। तथा उसकी कविताओं में कुछ ऐसे तत्त्व मिलते हैं जिससे यह सम्भव लगता है। कुल मिलाकर हमें यह कहने में कोई आपत्ति नहीं कि जिनाफ़ेनीज मुख्यतया छठी शताब्दी ई० पू० में विद्यमान था यद्यपि यह पाँचवीं शताब्दी ई० पू० में भी काफी वर्षों तक जीवित रहा। हेराक्लिटस जब उसका उल्लेख करता है तब भूतकाल का प्रयोग करता है तथा उसके नाम को हेकाटेयस (Hekataios) के साथ संयुक्त करता है।[2]

उसकी कविता के जो महत्त्वपूर्ण अवशेष आज उपलब्ध हैं उन्हें यदि हम देखें तो स्पष्ट होगा कि लेखक की धमनियों में व्यंगकार और समाज-सुधारक का रक्त प्रवाहित हो रहा था। एक जगह बड़े भोज के आयोजन का प्रसंग आया है, दूसरी जगह वह खेल-कूद की विजयों को जो अतिशय महत्त्व दिया गया, उसकी निन्दा करता है। अनेक स्थलों पर वह होमर के मानवीकृत देवताओं का खण्डन करता है।[3] अतः यहाँ समस्या यह है कि, यदि सम्भव हो तो, उस दृष्टिकोण को प्राप्त किया जाय जिससे इन सारे खण्डों की व्याख्या हो सके। सम्भव है कि इस प्रकार का कोई दृष्टिकोण सम्भव ही ही नहीं, परन्तु यदि इस प्रकार का दृष्टिकोण उपलब्ध हो जाय तो ज़ेनोफेनीज़ के विचारों को अधिक अच्छी तरह से समझा जा सकता है। हमें ज्ञात हैं कि ई०पू०

---

१. इस प्रसंग के प्रमाणों के सन्दर्भ 'अर्ली ग्रीक फिलासफी' अव० ५५ में दिये गये हैं।

२. अवशेषों का एक अनुवाद 'अर्ली ग्रीक फिलासोफी' अव० ५७ में देखिये।

३. देखिये, Pernice in Gercke and Norden's Einleitung, Vol. ii, pp. ३९–४४.

की छठी शताब्दी के अन्तिम चरण में यूनानी जीवन में बड़ा परिवर्तन आया। यह आयोनिया के उस स्त्रैण परिष्कार और विलासिता के प्रति प्रतिक्रिया थी जो सार्डेइस (Sardeis) के दरबार में प्रारम्भ होकर आयोनियन उपनिवेशवाद के साथ सुदूर पश्चिम तक फैली थी। सेमॉस (Samos) के पॉलिक्रेटीज़ के दरबार में यह चरम सीमा पर थी, तथा कोलोफन निवासी मिम्नेर्मस (Mimnermos) एवं टिऑस निवासी एनाक्रिऑन (Anakroen) इसके गायक थे। यह परवर्ती दिनों के ऐश्वर्य की भाँति स्थूल तथा क्रूर नहीं था, परन्तु इसमें ह्रास के बीज अवश्य वर्तमान थे। इसमें निराशा और छिछलापन दोनों ही एक साथ वर्तमान था। 'मीड के प्रादुर्भाव' (Xenophanes, fr. २२) के साथ परिवर्तन आया और अब आयोनियाई लोगों को अर्ध-यूनानीकृत लीडियन्स की जगह कठोर दुश्मनों से मोर्चा लेना पड़ा। उन्हें अब उस भेद का अनुभव होने लगा जिसने यूनानियों को 'वर्बरों' से विभक्त किया। और ये लोग इस भेद को और अधिक गहरा करने लगे। 'यवन' (हेलेनीज़) नाम का सामान्य प्रचलन इसी समय से प्रारम्भ होता है। इस नयी प्रवृत्ति के कारण वेष-भूषा में जो परिवर्तन आया उसके उल्लेख की थुसिडाइडस (Thucydides, i.६) में पुष्टि होती है। स्थापत्य (architecturd) में डोरिक (Doric) शैली आयोनियाई शैली से श्रेष्ठ सिद्ध होती है। सभी क्षेत्रों में हम सरलतर एवं अधिक पुंसत्वपूर्ण जीवन-पद्धति की ओर झुकाव देखते हैं। हमें यह प्रतीत होता है कि ज़ेनोफेनीज़ को हम इस आन्दोलन के नेता के रूप में सबसे अच्छी तरह समझ सकते हैं।[1]

उस समय के धार्मिक सुधारकों को होमर तथा हीसिऑड के पुरुषविध बहुदेवतावाद (anthropomorphic polytheism) के प्रति अश्रद्धा हो गयी थी अतः ज़ेनोफेनीज में भी यह प्रवृत्ति नहीं मिलती। उसके मन में इस प्रवृत्ति के प्रति विद्रोह का कारण उसका यह विश्वास था कि उस समय के नैतिक भ्रष्टाचार के लिए इन कवियों की कहानियाँ स्पष्ट रूप से उत्तरदायी हैं। होमर और हीसिऑड ने उन सभी बातों को देवताओं के साथ संयुक्त किया जो मनुष्यों के लिए लज्जाजनक एवं कलंकपूर्ण हैं यथा, अपहरण एवं व्यभिचार तथा एक-दूसरे के प्रति प्रवंचना (अव० ११)। उसकी मान्यता थी कि देवताओं को मानवीय रूप में प्रदर्शित करने के कारण ही यह पतन हुआ। देवताओं को मनुष्य अपनी आकृति के अनुरूप बनाते हैं। इथियोपिया के लोगों के देवता

१. द्रष्टव्य, विशेषतया, अवशेष, ३

काले रंग के तथा चपटी नाक वाले होते हैं थ्रेसियन्स के देवताओं की आँखें नीली तथा बाल लालरंग के होते हैं (अव० १६) यदि घोड़ों, बैलों या शेरों के हाथ मनुष्य जैसे होते और उन हाथों से वे चित्र बना सकते तो वे भी ईश्वर को अपनी आकृति के अनुरूप चित्रित करते (अव० १५)। यदि सामाजिक जीवन में सुधार लाना है तो पुराने काल की कल्पनाओं (अव० १), दैत्यों एवं राक्षसों की कथाओं के साथ इन सबको नष्ट कर देना होगा।

उस समय के विज्ञान में विद्यमान बहुदेवतावाद पर आघात करने के लिए ज़ेनोफेनीज़ को जिन शस्त्रों की आवश्यकता थी वे उसे मिल गये। उसके अवशेषों में एनेक्ज़िमेण्डर के विश्वविज्ञान के चिह्न मिलते हैं तथा आयोनिया छोड़ने के पूर्व ज़ेनोफेनीज़ को उसका शिष्य मानने में कोई कठिनाई नहीं प्रतीत होती। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने पौराणिक देवताओं में से एक-एक को लेकर मौसम सम्बन्धी संघटना (meteorological phenomena) विशेषतः बादलों, के रूप में सीमित कर दिया। 'तथा उसकी स्थापना हुई कि 'देवता' केवल एक ही है और वह है–जगत्। लोग इसे एकेश्वरवाद मानते हैं, परन्तु है यह सर्वेश्वरवाद (pantheism)। आरम्भ के विश्वविज्ञान वेत्ताओं ने 'देवता शब्द का सामान्यतया जिस विशेष अर्थ में प्रयोग किया है उसी की यह एक सरल पुनरभिव्यक्ति है, इस 'देवता' के प्रति ज़ेनोफेनीज़ के मन में कोई धार्मिक भावना थी इस बात का कोई आधार नहीं मिलता, इस सम्बन्ध में जो कुछ भी कथन मिलता है वह पूर्णतया निषेधात्मक है। वह देवता मनुष्यों से सर्वथा भिन्न है, उनके पास कोई भी विशिष्ट ज्ञानेन्द्रिय नहीं परन्तु वह सर्वदर्शी, सर्वज्ञ और सर्वश्रोता है' (अव० २४), पुनश्च, वह जगह-जगह घूमता नहीं है। (अव० २), परन्तु वह अपने सभी कार्य बिना श्रम के सम्पादित करता है (अव० २५)। इससे अधिक कहना उचित नहीं है, क्योंकि ज़ेनोफेनीज़ स्वयं इससे अधिक नहीं बतलाते। यह सुनिश्चित है कि यदि उन्होंने इससे अधिक कुछ भी तात्त्विक तथा अधिक स्पष्ट धर्मपरक बातें कहीं होती तो परवर्ती लेखकों द्वारा उनका उल्लेख अवश्य हुआ होता।

ओलम्पिया के देवताओं का पद-सोपान (hierarchy) समाप्त करने के लिए जेनोफ़ेनीज़ ने यद्यपि समसामयिक विज्ञान का उपयोग किया था, परन्तु यह स्पष्ट है कि वह स्वयं विज्ञान में निष्णात नहीं था। एनेक्ज़िमेण्डर की मान्यताओं के बाद भी वह पृथ्वी के चपटे आकार में विश्वास करता है और पृथ्वी को सभी दिशाओं में अनन्त तक फैली तथा असीम गहराई वाली

मानता है। परिणामस्वरूप उसकी मान्यता है कि प्रतिदिन भिन्न-भिन्न सूर्य आकाश मार्ग में घूमते रहे हैं। यही बात चन्द्रमा के लिए भी लागू होती है जिसे वह अनावश्यक मानता था। सूर्य और चन्द्रमा दोनों प्रज्वलित मेघ हैं। तारे भी ऐसे बादल हैं जो दिन को लुप्त रहते हैं परन्तु रात को बुझते हुए अंगारों जैसे चमकते हैं। मेलिटस में विज्ञान की जो धारणा थी उस अर्थ में यह सब विज्ञान नहीं है और ऐसा प्रतीत होता है कि जेनोफ़ेनीज ने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए जो ही सृष्टिविज्ञान सम्बन्धी विचारों का उपयोग किया था। होमर और हीसियॉड के देवताओं पर प्रहार करने के लिए जो कोई भी शस्त्र मिल जाय, वही उसके लिए ठीक हैं। जेनोफेनीज़ स्पष्ट कहता है कि देवताओं के बारे में वह जो विवरण दे रहा है वे सत्य प्रतीत होने वाले अनुमान हैं (अव० ३४), तथा इस दिशा में असंदिग्ध ज्ञान को वह असम्भव बताता है – "यदि मनुष्य पूर्ण सत्य का कथन करने का साहस करे तो भी उसे यह ज्ञात नहीं होगा कि यह सत्य है" (अव० ३४)। इन सब बातों में ज़ेनोफ़ेनीज़ एक अन्य दर्शन का पूर्वगामी है जो बाद में आयोनिया से आया था। वह है एपिक्यूरस का दर्शन। दोनों में मुख्य भेद यह है कि ई० पू० पाँचवीं शताब्दी के इस दर्शन में दो सौ वर्ष बाद आने वाले दर्शन की अपेक्षा काल-दोष (anacronism) कम था।

इस अध्याय में हमने देखा कि जगत् के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण कैसे खण्डित हुआ, तथा कैसे इसके स्थान पर एक ओर आर्फिक रहस्यवाद (Orphic mysticism) तथा दूसरी ओर प्रबुद्ध संशयवाद का विकास हुआ। परन्तु इन दोनों में से किसी में भी भविष्य की प्रतिज्ञा नहीं थी। यह संकल्प सेमॉस निवासी पाइथेगोरस की रचना में मिलता है, जो विज्ञान एवं धर्म का समन्वय करने वाला प्रथम व्यक्ति था।

२

पाइथागोरस (PYTHAGORAS)

समस्या

पाइथागोरस की गणना विश्व के महानतम् व्यक्तियों में अवश्य हुई होगी, परन्तु उन्होंने स्वयं कुछ नहीं लिखा, अतः उनके नाम से जो सिद्धान्त प्रसिद्ध है उसके विषय में यह कहना कठिन है कि कौन-सा सिद्धान्त स्वयं पाइथागोरस का है और उसमें से कितना परवर्ती विकास का परिणाम है।[1] थेलीज़ के सम्बन्ध में विचार करते समय हमें इसी प्रकार की कठिनाई मिली थी और जब हम साक्रेटीज की चर्चा करेंगे तब इसी प्रकार की कठिनाई हमें पुनः मिलेगी। यहाँ इस समय एक व्यापक कथन सम्भव है। जहाँ तक हमें ज्ञात है, मानव-ज्ञान की सभी महान् उपलब्धियाँ (advances) विशिष्ट व्यक्तियों के कारण है, न कि किसी सम्प्रदाय के सामूहिक कार्य के कारण, अतः शिष्यों की मण्डली में संस्थापक को भूल जाने की अपेक्षा स्वयं संस्थापक के नाम पर कुछ अधिक तथ्यों को आरोपित कर देना अधिक अनुचित नहीं होगा। दूसरी ओर यह भी निश्चित है कि पाइथागोरियन्स के कुछ सिद्धान्त तो अवश्य ही परवर्ती पीढ़ी के हैं जिनके बारे में बाद के किसी अध्याय में विचार करना अधिक उपयुक्त होगा। यदि हमें पाइथागोरियन मत का बुद्धिगम्य (intelligible) विवरण प्रस्तुत करना है तो इस प्रकार का विभाजन अनिवार्य है परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि एक सिद्धान्त-विशेष पूर्व-कालिक है या उत्तर-कालीन यह प्रायः सर्वदा अनिश्चित रहता है,

---

१. एरिस्टॉटल किसी भी सिद्धान्त को स्वयं पाइथागोरस का नहीं मानता, वह प्रायः तथाकथित पाइथागोरियन्स तथा बहुधा अधिक सतर्कता से 'कुछ पाइथागोरियन्स' का उल्लेख करता है। इस सम्बन्ध में प्रमाणों के सन्दर्भ 'अर्ली ग्रीक फिलासफी' ३७ क्रमशः में दिये गये हैं।

पाइथागोरस के जीवन के बारे में हमें जो कुछ भी बताया जाता है उसमें से कितना विश्वसनीय है यह कहना कठिन है क्योंकि उसके नाम पर बहुत-से आख्यान (legends) काफी पहले से प्रचलित हैं, कभी उसे विज्ञान-वेत्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है, तो कभी रहस्यपूर्ण सिद्धान्तों के उपदेशक के रूप में। और इन स्वरूपों में से किसी भी एक को हम ऐतिहासिक मानने को तैयार हो सकते हैं, यह सर्वथा सम्भव है कि हम पाइथागोरस को केवल वैद्य (medicine man) के रूप में चित्रित करें एवं सम्पूर्ण पाइथागोरियन विज्ञान को उसके उत्तराधिकारियों का कार्य समझ बैठे, यह भी सम्भव है कि उसके जीवन-वृत्त को हम अधिक युक्तिसंगत बनाकर उसे मुख्यतया गणितज्ञ एवं नीतिज्ञ के रूप से देखें। उस दशा में हमें यह मानना होगा कि उसके बारे में कही गयीं अद्‌भुत कथाओं का कारण ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों के नव्य-पाइथागोरस-वादी (Neo-Pythagoreans) हैं। परन्तु यहाँ एक गम्भीर समस्या यह उपस्थित हो जाती है कि इनमें से बहुत-सी विलक्षणताओं का ज्ञान अरस्तु को भी था। जिस परम्परा के अनुसार पाइथागोरस को गणितीय विज्ञान का वास्तविक जन्मदाता माना जाता है उस परम्परा का निषेध करना भी उतना ही कठिन है, क्योंकि ई० पू० पाँचवीं शताब्दी के मध्य तक गणित निश्चित रूप से विज्ञान का स्वरूप ग्रहण कर चुका थी, और यह किसी न किसी का कार्य तो अवश्य रहा होगा। यदि पाइथागोरस के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति उसका वास्तविक जन्मदाता होता, तो उसका नाम भूल जाना आश्चर्य की बात है, पुनः उसी के बाद की दूसरी पीढ़ी का हेराक्लिटस हमें यह बताता है कि पाइथागोरस ने अन्य लोगों की अपेक्षा बहुत आगे बढ़कर अनुसन्धान (inquiring, historin) का अभ्यास किया और हेराक्लिटस स्वयं अपने को इस कार्य में उसकी अपेक्षा पीछे मानते हैं, यह वस्तुतः समसामयिक प्रमाण है और इसका स्पष्ट अर्थ केवल यही हो सकता है कि पाइथागोरस विज्ञान-वेत्ता के रूप में प्रसिद्ध थे। सत्य तो यह है कि इन दोनों परम्परागत मतों में से किसी का भी निषेध करने की आवश्यकता नहीं है। गणितीय प्रतिभा तथा रहस्यवाद का संगम (union) बहुत ही स्वाभाविक है। सत्रहवीं शताब्दी की भी यह विशेषता थी, जिसने एक बार पुनः यूनानी विज्ञान का मार्ग अपनाया। लोकों के सामंजस्य (harmony of the spheres) तथा ग्रहीय आत्माओं में विश्वास के कारण ही केप्लर ग्रहीय-गति सम्बन्धी नियमों की खोज कर पाया।

जीवन तथा सिद्धान्त

पाइथागोरस सेमॉस का निवासी (Samian) था, तथा उसके बारे में कहा जाता है कि वह इटली इसलिए चला गया क्योंकि पॉलिक्रेटीज़ (Polykrates) का शासन उसे पसन्द नहीं था, इसीलिए उसके जीवन के उत्कर्ष floruit) की तिथि ई० पू० ५३२ बतायी गयी है क्योंकि इसी वर्ष पॉलिक्रेटीज़ निरंकुश शासक बना था। पाइथागोरस के जीवन-काल की ठीक-ठीक तिथियां ज्ञात नहीं है। परन्तु यह बात बिना हिचक के कही जा सकती है कि मुख्यतया ई०पू० छठीं शताब्दी के अन्तिम चरण में ही वह सक्रिय रहा। जब उसने सेमॉस छोड़ा तब दक्षिणी इटली के क्रोटन (Kroton) नगर में एक संस्था की स्थापना की जो एक साथ ही धार्मिक संघ तथा वैज्ञानिक सम्प्रदाय दोनों थी। इस प्रकार की संस्था के प्रति द्वेष तथा अविश्वास होना अनिवार्य था। तथा उसमें अनेक संघर्षों के संकेत मिलते हैं। स्वयं पाइथागोरस को क्रोटन से भागकर मेटान्शन (Metahontion) जाना पड़ा, जहाँ उसकी मृत्यु हुई। पाइथागोरस के मत के प्रमुख विरोधी थे किलॉन (Kylon), जिनके बारे में स्पष्ट रूप से ज्ञात है कि वे धनाड्य एवं सम्भ्रान्त थे। परन्तु पाईथेगोरस एवं उसके अनुयायियों के बारे में ऐसा कोई तथ्य नहीं मिलता जिससे विश्वास किया जा सके कि वे लोग कुलीन परिवार के रहे होंगे। इस प्रकार की धारणा बनने का मुख्य कारण वह कल्पना है जिसके अनुसार वे लोग 'डेरियाई आदर्श' (Dorian ideal) का प्रतिनिधित्व करते थे। डॉरियन आदर्श का क्या तात्पर्य है, यह स्पष्ट नहीं हो पाया है। जो भी हो, पाइथागोरस स्वयं आयोनियन का था तथा उसकी संस्था की स्थापना एचियन (Achaian) उपनिवेषों में हुई थी, न कि डोरियाई उपनिवेषों में। यह भी निश्चित है कि पाइथागोरस के प्रारम्भिक अनुयायियों ने आयोनिया की बोली का प्रयोग किया था।[1] आचार्य की मृत्यु के उपरान्त पहले की अपेक्षा और अधिक संकट बढ़े तथा पाँचवीं शताब्दी के मध्य के बाद ही लगातार उपद्रव होने लगे, जिसमें पाइथागोरियन आवासों को जला डाला गया तथा बहुत-से स्थविरों को जीवन से हाथ धोना पड़ा, जो लोग बच गये वे थेबीज़ (Thebes)

---

१. यह कहा गया है कि 'पाइथेगोरस' संज्ञा का रूप डोरियाई है, ईरोडोट्स, हेरेक्लाइटस तथा डेमोक्रिटस उसे 'पाइथेगोरेस' (Pythagores) उच्चारण करते थे, एवं स्वयं उसने भी यही प्रयोग किया। पाइथेगोरस (Pythagoras) रूप एनेक्जेगोरस की अपेक्षा अधिक डोरियाई नहीं है, यह मात्र अत्ताई (Attic) है।

तथा अन्यत्र शरण लिये, जिनके बारे में हम आगे चर्चा करेंगे ।

सेमॉस का निवासी होने के करण पाइथागोरस पर पड़ोस के माइलेटस के विश्वविज्ञान का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। कहा जाता है कि वह एनेक्ज़िमेण्डर का शिष्य था यह कथन अनुमान अवश्य है परन्तु इसके सत्य होने की सम्भावना अधिक है। जो भी हो, उसका खगोलविज्ञान एनेक्ज़िमेण्डर के ग्रहीय गोलाकारों (planetary rings, के सिद्धान्त का स्वाभाविक विकास था, यद्यपि एनेक्ज़िमेण्डर के सिद्धान्त से यह आगे बढ़ गया था। पाइथागोरियन विश्वविज्ञान में असीम (the apiron) की महत्ता माइलेशियन प्रभाव का द्योतक है। पाइथागोरस के कुछ अनुयायियों द्वारा असीम का 'वायु' से तदात्मीकरण इस बात को सूचित करता है कि इसका एनेक्ज़िमेनीज़ के सिद्धान्तों से सम्बन्ध था। पाइथेगोरियन ज्यामिति के विकास की प्रणाली भी इस बात की साक्षी है कि यह माइलेटस की ज्यामिति से उत्पन्न हुई है। वर्ग (square) का द्विगुणीकरण इस समय की सबसे बड़ी समस्या थी। इसी समस्या ने वर्ग पर विषमकर्ण (hypotenuse) के प्रमेय को जन्म दिया, जिसे आज भी हम पाइथागोरीय साध्य के रूप में जानते हैं (Euclid, १,४७),। यदि हमारा यह अभिग्रह (assumption) सही हो कि थेलीज़ ने प्राचीन ३:४:५ त्रिभुज पर कार्य किया, तो दोनों का सम्बन्ध स्पष्ट है। स्वयं 'हाईपोटेन्यूस'(Hypotenuse) शब्द भी इसी बात का साक्षी है, क्योंकि इस शब्द का अर्थ है समकोण के ऊपर ठीक विपरीत दिशा में रस्सी खींचना अथवा 'प्रतिमुख' होना ।

परन्तु पाइथागोरस के प्रारम्भिक जीवन पर प्रभाव डालने वाला यह एक मात्र तथ्य नहीं था, उन्हें एनेक्ज़िमेण्डर के साथ ही साथ फेरेक्डिज (Pherekydes) का भी शिष्य बताया जाता है। इससे उनके उपदेशों में रहस्यवादी पुट की व्याख्या करने का प्रयास किया जाता है। जो भी स्थिति हो इस बात का पहले संकेत किया जा चुका है कि डेलियन (Delian) तथा हाइपरबोरियन (Hyperborean) अपोलो के धर्म में रहस्यवादी कक्ष अवश्य था। प्रोकोनेसस (Prokonnssos) निवासी एरिस्टियस तथा एवेरिस के आख्यान यह दिखाने के लिए पर्याप्त हैं। रहस्यवाद के इस रूप (जो डायोनिसियाई रहस्यवाद से असम्बद्ध प्रतीत होता है) तथा क्रीट के बीच संसर्ग के अनेक स्थान हैं, हम यह देख चुके हैं कि ऐतिहासिक युग में सात युवकों तथा सात युवतियों को लेकर

१. फरनेल, 'कल्टस् ऑफ दि ग्रीक स्टेट्स,' वालूम, ४, पृष्ठ २९५, Farnell, Cults of the Greek states, Vol. IV. pp. २९५ क्रमशः ।

नाव डेलॉस पहुंच गयी, जब कि परम्परा के अनुसार उसका मूल गन्तव्य क्रीट था। महान् शोधक (purifier) एपिमेनीडीज् (Epimenides) भी क्रीट का निवासी था। वस्तुतः ऐसे बहुत-से तथ्य हैं जिनसे यह संकेत मिलता है कि इस प्रकार के रहस्यवाद का अस्तित्व मिनोआय (Minoan) काल से ही चला आ रहा है। अतः मिस्र अथवा भारत में इसकी उत्पत्ति ढूंढ़ना सर्वथा अनावश्यक है, इस बात की अधिक सम्भावना है कि पाइथागोरस ने यतित्व (ascetic) मूलक आचरण तथा आत्मा के सम्बन्ध में अपने रहस्यवादी विश्वासों को अपने जन्म स्थान आयोनिया से ही प्राप्त किया था। प्रोकोनेससवासी एरिस्टियस की एक मूर्ति भी मेटापोन्शन में स्थापित थी, जहां पाइथागोरस की मृत्यु हुई थी। परन्तु इससे पाइथेगोरसवादियों के धर्म पर समसामयिक आर्फिक मत के प्रभाव की सम्भावना समाप्त नहीं हो जाती। इसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि उनके धर्म का प्रारम्भ शुद्ध आयोनियम स्रोत से हुआ था तथा उनके इष्ट देव अपोलो (Apollo) थे, न कि डायोनिसस (Dionysos)।

ऐतिहासिक काल में अपोलोनियम धर्म डेलॉस के आसपास केन्द्रित था, तथा विरेचन (katharsis) इसका एक प्रमुख सिद्धान्त था। पाइथागोरस के उपदेशों में भी शुद्धि का महत्त्वपूर्ण स्थान था। शुद्धि या विरेचन अभिलाषा मानव स्वभाव के अन्तस्तल में वर्तमान है तथा विरेचनवाद (cathasism) नये-नये रूपों में सदा प्रकट होता है। यह सम्भव है कि शुद्धि से हमारा तात्पर्य अत्यन्त भिन्न वस्तुओं से हो। यह केवल वाह्य रूप में भी ली जा सकती है और इस दशा में कुछ उपरतियों (abstinences) तथा निषेधों (taboos) के कठोर पालन से ही हम विरेचन को सरलता से प्राप्त कर सकते हैं। यह निश्चित है कि पाइथागोरस की संस्था में इनका पालन होता था, तथा यह अधिक सम्भव है कि उसके बहुत-से सदस्य इनसे ऊपर नहीं उठ पाये। परन्तु यह भी निश्चित है कि इस संस्था के प्रमुख लोग इन बाह्य नियमों से ऊपर उठे। पाइथागोरस के क्रीटन पहुँचने के पहले से ही वहाँ पर आयुर्विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण पीठ (school) था, तथा ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में आयुर्विज्ञान की शोधक प्रक्रियाओं के प्रकाश में ही विरेचन के प्राचीन धार्मिक विचार की स्थापना हुई थी। जो भी हो, एरिस्टोजेनस का (Aristoxenos) जो अपने समय के पाइथागोरस के अनुयायियों से व्यक्तिगत रूप से परिचित था, कहना है कि वे लोग औषधि का प्रयोग शरीर की शुद्धि के लिए तथा संगीत का प्रयोग आत्मा की शुद्धि के लिए करते थे। यह उस सम्प्रदाय के वैज्ञानिक अध्ययनों को उसके धार्मिक

सिद्धान्तों से सम्बद्ध कर देता है, क्योंकि इसमें कोई संदेह नहीं कि वैज्ञानिक चिकित्सा (therahenties)तथा प्रतिवादी विश्लेषण (hamonies)के प्रारम्भ के लिए हम पाइथेगोरसवादियों के ऋणी हैं, इसके अतिरिक्त और भी बातें हैं। 'फीडो' (Phaede) में साक्रेटीज़ एक उक्ति को उद्धृत करता है कि "दर्शन-शास्त्र उच्चतम संगीत है" ऐसा प्रतीत होता है कि इस उक्ति का स्रोत पाइथेगोरस के कथनों में है। उन दिनों की मनश्चिकित्सा (phychotherapy) में संगीत की शोधक क्रिया को पूर्ण मान्यता मिल चुकी थी। इसका प्रारम्भ कोरिवेन्टिक (Korybantic) पुरोहितों के प्रयोगों से हुआ, जो अधीर (nervous) तथा मूर्च्छाग्रस्त (hysterical) रोगियों का उपचार जंगली वांसुरी के संगीत से किया करते थे। संगीत की तीव्र ध्वनि से उत्तेजित होकर रोगी थक जाता था, तथा गहरी निद्रा में सो जाता था। जब वह जगता था तो रोगमुक्त हो जाता था, जिसे उत्तर काल में तरन्तवाद (Tarantism) कहा गया,[1] उससे इस विषय पर रोचक प्रकाश पड़ता है। इन सब बातों को एक साथ मिलाकर यदि हम विचार करें तो पाइथागोरस की मौलिकता का कारण उसकी यह मान्यता है कि वैज्ञानिक, एवं विशेषतया गणितीय, अध्ययन आत्मा का सर्वश्रेठ शोधक है। यह सिद्धान्त प्लेटो के ग्रन्थ 'फ़ीडों' के प्रारम्भिक भाग में मिलता है, यह अंश मुख्यतया पाइथागोरियन सिद्धान्तों की व्याख्या है। यूनानी दर्शन के इतिहास में यह सिद्धान्त प्रायः पुनरावर्तित होता है। यहाँ यह भी कह देना आवश्यक है कि 'दर्शन' (Philosophy) शब्द का परम्परागत प्रयोग उसी अर्थ में होना है जिस अर्थ में पाइथागोरस ने इसका सबसे पहले प्रयोग किया था। और यदि यह सत्य है (परम्परा के सबन्ध में बहुत कुछ कहा जाना आवश्यक है) तो 'फ़ीडों' में उल्लिखित उक्ति कि "दर्शन सर्वश्रेष्ठ" संगीत है को पाइथागोरसं का कथन मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिये। और चूंकि संगीत को निश्चित रूप से आत्मा का शोधक कहा जाता था अतः एक भिन्न मार्ग से भी हम उसी निष्कर्ष पर पहुंचते है। हम अभी भी 'शुद्ध गणित'[2] की बात करते हैं तथा इसी कथन शैली ने 'शुद्ध विद्वत्ता' वाक्यांश को भी जन्म दिया है।

त्रिविध–जीवन (the three lives) वाले सिद्धान्त का इससे घनिष्ठ-सम्बन्ध है। सैद्धान्तिक (Theoretic), व्यावहारिक (Practical) तथा अपोलो

---

१. देखिये, एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (११ वाँ संस्करण) 'Tarantula.'
२. तुलना कीजिये, Phaedo, ६५e, ६६d, e में Katharos, guonai, eidenai इत्यादि प्रयोग।

वत् (Apolaustic) जीवन-पद्धतियों का सिद्धान्त सम्भवत: संस्थापक द्वारा ही प्रतिपादित है। जिस प्रकार ओलम्पिक खेलों में तीन प्रकार के आगन्तुक आते हैं, उसी प्रकार मनुष्यों की भी तीन श्रेणियाँ हैं। जो लोग क्रय-विक्रय के लिए आते हैं वे निम्नतम कोटि के हैं। जो लोग खेल में भाग लेते हैं वे दूसरी कोटि के हैं। परन्तु सबसे श्रेष्ठ वे लोग हैं जो केवल तटस्थ द्रष्टा (theoretical) के रूप में आते हैं। तदनुसार मनुष्यों का वर्गीकरण ज्ञान के प्रेमी (philosopher), यश के भूखे (philotimoi) तथा सम्पत्ति के लोलुप (philokerdeis) के रूप में किया जा सकता है। इस वर्गीकरण में आत्मा की त्रिविधता का सिद्धान्त अन्तर्निहित प्रतीत होता है। यद्यपि अब इसे प्लेटो का सिद्धान्त बताया जाता है, परन्तु ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक पाइथागोरियन्स ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था।[1] प्लेटो के युग के पूर्व भी इस सिद्धान्त के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं तथा पाइथागोरसवादियों के प्रमुख दृष्टिकोण से इस सिद्धान्त की अच्छी संगति बैठती है। खेलों में एकत्रित जन-समूह से मानव जीवन की तुलना परवर्ती काल में प्राय: दुहरायी गयी है।[2] तथा यही बन्यान [Bunyan] के मिथ्याभिमान-मेला (vanity fair) का मूल स्रोत है। आत्मा के इस लौकिक जीवन से अपरिचित एवं प्रवासी होने वाले मत ने यूरोपीय चिन्तन पर गम्भीर प्रभाव डाला है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पाइथागोरस ने जन्मान्तर (transmigration) के सिद्धान्त का उपदेश दिया।[3] इस सिद्धान्त को उसने समसामयिक आर्फिक लोगों से सीखा होगा। जेनोफेनीज़ पाइथागोरस की इस मान्यता का उपहास किया करता था कि पिटने पर जब कुत्ता भूंकता है तो उसमें वह अपने एक मृत मित्र की आवाज सुनता था (अव० ७)। एम्पिडोक्लीज़ जब (अव० १२९) एक ऐसे मनुष्य की बात करता है जो दस या बीस पीढ़ी पहले की

---

१. Poseidomos इसका प्रमाण है। देखिये, मेरे द्वारा सम्पादित Phaedo, ६८c, २.

२. तुलना कीजिये, Menander, fr. ४८१ Kock [Pickard-Cambridge] पृष्ठ १४१, नं० ६८], Epictetus, ii. १४. २३.

३. देहान्तर (metempsychosis) शब्द का प्रयोग अच्छे लेखकों ने नहीं किया है; क्योंकि इसका अर्थ होगा विभिन्न आत्माओं द्वारा एक ही शरीर में प्रवेश। इससे प्राचीन शब्द palingenesia (पुन: जन्म लेना) है। देखिये, 'अर्ली ग्रीक फिलासोफी' पृष्ठ १०१, नं० २.

हुई घटनाओं का स्मरण कर सकता था, तब वह पाइथागोरस की ओर ही संकेत करता हुआ प्रतीत होता है। अनुस्मरण [reminiscence] का सिद्धान्त, जिसकी प्लेटो के ग्रन्थों 'मीनो' [Meno] तथा 'फीडो [Phaedo][१] में महत्वपूर्ण भूमिका है, इसी पर आधारित था। कहा जाता है कि ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्षीकृत वस्तुएँ हमें उन वस्तुओं का स्मरण दिलाती हैं जिन्हें आत्मा ने शरीर के बाहर जाकर अपरोक्ष प्रत्यक्ष द्वारा ज्ञात की थीं। हमने पूर्णतया समान छड़ी या पत्थर कभी नहीं देखें हैं, परन्तु समानता क्या है यह हम जानते हैं। इन्द्रिय-प्रत्यक्ष वस्तुओं की हम उन सत्ताओं से तुलना करते हैं जिनका वे स्मरण दिलाती है और तब हम प्रत्यक्ष वस्तुओं को अपूर्ण घोषित करते हैं। हमें इस बात को मानने में कोई कठिनाई नहीं दीखती कि यह सिद्धान्त अपने गणितीय अनुप्रयोग [application] के रूप में स्वयं पाइथागोरस का है। पाइथागोरस को यह ज्ञान हुआ होगा कि जिन सत्ताओं के बारे में वह विचार कर रहा है उनका ईन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष नहीं हो सकता, तथा अनुस्मरण का सिद्धान्त पुनर्जन्म के सिद्धान्त से सरलता से निषपन्न होता है।

जैसा कि संकेत किया जा चुका है, पाइथागोरस के विश्वविज्ञान के सम्बन्ध में अधिक कठिनाई है। पाइथागोरस के अनुयायियों ने संस्थापक के आप्तत्व के प्रति जितना सम्मान प्रदर्शित किया उतना शायद ही किसी सम्प्रदाय ने किया हो। उनका प्रत्ययवाक् [watch word] था 'आचार्य ने ऐसा कहा था' [Autos epha, ipsedixit], दूसरी ओर, इस सम्प्रदाय में विकास की तथा नयी परिस्थितियों से अनुकूलन की जितनी क्षमता थी उतनी अन्य किसी में नहीं दीखती। जो विरोध दिखायी पड़ता है वह वास्तविक होने की अपेक्षा बाह्य अधिक है। परन्तु इतिहासकार के लिए वह एक कठिनाई उपस्थित करता है। पाइथागोरसवाद के सम्बन्ध में किया गया कथन उसके विकास के किस चरण की ओर उल्लेख करता है इसके बारे में हम कभी भी निश्चिन्त नहीं हो सकते। परन्तु एक बात स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इलियाटिक दर्शन के उद्‌भव के पूर्व इस सिद्धान्त का एक रूप था और उद्‌भव के उपरान्त का स्वरूप दूसरा। अतः इस समय यही उपयुक्त होगा कि हम उन सभी सिद्धान्तों के बारे में विचार को स्थगित रखें जिनमें इलियाटिक आलोचना अन्तर्निहित प्रतीत होती है। वस्तुत: यही एकमात्र ऐसी कसौटी है जिसका प्रयोग हम कर सकते हैं।

प्रारम्भ में यह अत्यन्त स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि पाइथागोरस

---

१. देखिये, Phaedo, मेरा संस्करण ७२ e, ४, टिप्पणी।

ने अपने दर्शन की स्थापना एनेक्जिमेनीज़ के विश्व-व्यवस्था (cosmological system) के आधार पर किया। एरिस्टॉटल ने बताया है कि पाइथागोरस-वादियों की यह मान्यता थी कि जगत् अपने बाहर स्थित निस्सीम संहति (boundless mass) की वायु से श्वांस लेता है। और यह वायु असीम से अभिन्न मानी गयी है। दूसरी ओर यह माना जात है कि पाइथागोरस ने एने-क्जिमेण्डर से सीखा था कि पृथ्वी एक चपटा चक्र (flat disc) नहीं है। अधिक सम्भव है कि उसने पृथ्वी को ही विश्व का केन्द्र माना हो। बाद में उसके अनुयायियों की मान्यता भिन्न हो गयी, तथापि पाइथागोरस की यह मान्यता कि पृथ्वी बेलनाकर (cylindrical) है, अडिग नहीं रह पायी। ज्योंही ग्रहणों के कारणों की जानकारी हुई, पृथ्वी के गोलाकार होने का अनुमान लगाना अधिक स्वाभाविक हो गया। इस अन्वेषण का श्रेय सम्भवतया स्वयं पाइथागोरस को दिया जा सकता है। इस बात के अतिरिक्त पाइथागोरस के जगत् के प्रति प्रमुख विचार स्पष्ट रूप से माइलेशियाई प्रकृति के अनुरूप हैं।

परन्तु जब हम उस प्रक्रिया पर विचार करते हैं जिससे वस्तुएँ असीम में से विकसित होती हैं तब हमें एक परिवर्तन दिखायी पड़ता है। अब हमें पृथक्करण [separating out] अथवा विरलीकरण एवं संक्षेपण की भी बातें नहीं सुनायी पड़तीं। इसके स्थान पर हमें वह सिद्धान्त मिलता है जिसके अनु-सार 'असीम' (apeiron) को स्वरूप प्रदान करने वाला तत्त्व ससीम (limit, peras) है, दर्शनशास्त्र के लिए पाइथागोरस की यह महान् देन है और हमें इसको समझने का प्रयास करना चाहिये। हम देख चुके हैं कि माइलेशियाई लोग उस संप्रत्ययन तक पहुंच चुके थे जिसे हम 'द्रव्य' (matter) कहते हैं परन्तु रूप (form) के सहसम्बन्धी संप्रत्ययन [correlative conception] से इसकी सम्पूर्ति का कार्य पाइथागोरसवादियों ने ही किया। चूंकि यह यूनानी दर्शन की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है, इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि यदि सम्भव हो तो 'ससीम' के सिद्धान्त का मूल तात्पर्य क्या था, यह निश्चित कर लिया जाय।

'ससीम' की वृत्ति की व्याख्या प्रायः संगीत और आयुर्विज्ञान की कलाओं से होती है, और हम देख चुके हैं कि पाइथागोरसवादियों के लिए इन दो कलाओं का कितना महत्त्व है। अतः यह अनुमान करना स्वाभाविक है कि ससीम का अर्थ समझने का सूत्र इन्हीं कलाओं में मिलेगा। अतः आइये हम यह देखें कि पाइथागोरसवादियों के प्रारम्भिक संगीत एवं आयुर्विज्ञान के बारे में

बिना कठिनाई के कौन-सी बातें निश्चित की जा सकती है। आगे आने वाले अनुच्छेदों में उल्लिखित सिद्धान्त वस्तुतः पाइथागोरीय है। परन्तु यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिये कि हम किसी कथन-विशेष को पाइथागोरस पर केवल ऊहात्मक रीति [conjectional] से ही आरोपित कर सकते हैं। हम इतना भी नहीं बता सकते कि संगीत एवं आयुर्विज्ञान में से किसका प्रारम्भ पहले हुआ। दूसरे शब्दों में, शरीर के रेचन की व्याख्या आत्मा के रेचन से हुई या आत्मा के रेचन की व्याख्या शरीर के शोधन से हुई, यह नहीं कहा जा सकता है। तथापि यदि हम प्रारम्भ संगीत से करें तो सुविधा होगी।

संगीत

सर्वप्रथम, यह बात निर्विवाद है कि मापनी [scale] के सुसंगत स्वरान्तरालों को निर्धारित करने वाले सख्यात्मक अनुपातों [numerical ratios] का आविष्कार स्वयं पाइथागोरस ने किया था। यह सत्य है कि यूनानी लोग जब किसी स्वरान्तराल को सुसंगत [concordant] कहते थे तो उस समय उनके मन में मुख्यतया, एक साथ बजने वाले स्वर न होकर, अनुक्रम [scuccession] से बजने वाले स्वर होते थे। दूसरे शब्दों में, इस शब्द का संकेत समस्त स्वरसंघात [harmonious chords] की ओर न हो कर सुरीले प्रवाह की ओर है। नियम तो अन्ततोगत्वा वही है, परन्तु यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि यूनान के शास्त्रीय संगीत में समस्वर [harmony] नाम की कोई वस्तु नहीं थी तथा यूनानी भाषा में 'हार्मोनी' [Harmonia] शब्द का प्राथमिक अर्थ है 'धुन मिलाना' [tuning] और द्वितीय अर्थ है 'मात्रा'।

पाइथागोरस के युग ने वीणा (lyre) के सात तार होते थे, और यह असम्भव नहीं है कि पाइथागोरस के आविकारों के कारण ही बाद में उसमें आठवाँ तार जोड़ा गया। सभी तारों की लम्बाई बराबर होती थी, तथा तानने (tensoin) और ढीला करने (relaxation) की विधि से इच्छित ठार (pitch) के लिए सुर मिलाया जाता था। यह कार्य पूर्णतया वीणा के कान के द्वारा होता था। और सबसे पहले बाहर के दो तारों (Hypate, nete)[1] को ऊपर बतायी गयी विधि से, आपस में, मध्य तार (mese) तथा

---

१. ज्ञातव्य है कि hypate तथा nete शब्द ठार को निर्दिष्ट नहीं करते। वास्तव में hypate निम्नतम स्वर देता है, तथा nete उच्चतम। उदात्त और अनुदात्त के लिए sharp [OXUS] तथा gravis [barus] शब्द प्रयुक्त होते हैं।

इसके ठीक ऊपर के तार (Trite या paramess) से सुसंगत किया जाता था। इन चारों तारों के स्वरों को स्थिर (stationary) कहा जाता था, और ये सभी प्रकार की मात्राओं में इसी प्रकार से एक दूसरे से सम्बद्ध रहते थे। वाकी तीन तारों (या आठ तारों वाली वीणा में चार तारों) के स्वरों को प्रगामी (movable) कहा जाता था। मात्राओं के अल्पविरामी (enharmonic) वर्णिक (chrpmatic), तथा द्विटोनी या सप्तक (diatonic) अपनी विविधताओं सहित), भेद किया गया। निकटतम निश्चित स्वरों के स्वराघात के प्रायः समीप धुन मिलाने के कारण ही इन तारों का भेद किया गया। अप्रगामी स्वरों के तारत्व में भेद कम होते-होते चौथाई स्वर तक आ जाता है और कहीं कहीं यह भेद द्विगुणित स्वर तक बढ़ जाता है। परन्तु यह स्पष्ट है कि हमारी इन मात्राओं में से किसी को भी सप्ततंत्री वीणा पर नहीं बनाया जा सकता है। उनके लिए द्विटोनी मात्रा में धुन मिलायी हुई अष्टतंत्री वीणा की आवश्यकता है। परन्तु उस मात्रा में भी यूनानी लोग उस स्वरान्तराल (interval) को सुसंगत नहीं माने, जिसे हम तृतीय कहते हैं।[1]

यह सर्वथा सम्भव है कि पाइथागोरस को स्वरों के ठारत्व के आघातों का ज्ञान रहा हो। इन ठारोंत्वों के ज्ञान के कारण वह स्पंदन (vibration) की गति पर भरोसा कर सकता था जो स्पंदन तालों (beats) अथवा कंपनों (pulsations) को वायु में प्रसारित करते हैं। उसके उत्तराधिकारी इससे सुपरिचित अवश्य थे, परन्तु न तो पाइथागोरस को न उसके अनुयायियों को स्पंदन की गति को नापने की विधि ज्ञात थी। चूंकि दो समान तारों के स्पदन की गति उनकी लम्बाई के विलोमानुपात (inversely proportional) में है, अतः समस्या का रूपान्तरण कर उसके इस पक्ष का विवेचन पाइथागोरस के लिए सम्भव हो गया। स्वयं वीणा से इसका तुरन्त कोई अनुमान नहीं होता था, क्योंकि उसके तारों की लम्बाई बराबर थी, परन्तु छोटे तारों को लेकर यदि कुछ प्रयोग किये जाय, तो यह तथ्य सिद्ध हो जायेगा। इसमें सन्देह नहीं कि पाइथागोरस ने साधारण वाद्य—यंत्र का प्रयोग किया होगा जिसमें केवल एक ही तार रहा होगा, जिसे खिसकने वाली कंठी (इकतारा, Monochord) से

---

१. यूनानी दर्शन को समझने के लिए यूनानी वीणा का प्रारम्भिक ज्ञान आवश्यक है। स्मिथ की Dictionary of Antiquites में डी॰ बी॰ मोनरो (D. B. Monro) के Lyra एवं Musica शीर्षक लेखों में इस विषय का उपयोगी विवरण मिलेगा।

विभिन्न स्वरान्तरालों पर रोका जा सके। इस प्रकार पाइथागोरस ने उपरोक्त प्रयोग की जगह पर एक ही तार पर लम्बाइयों की सरल तुलना कर ली। इसका परिणाम यह हुआ कि मात्रा के सुसंगत स्वरान्तराल २ : १ : ३ : २ तथा ४ : ३ के सरल सांख्यिक अनुपातों द्वारा प्रगट किये जा सकते हैं। अथवा, यदि हम निम्नतम पूर्ण संख्याओं को लें, जिनके आपस के इस प्रकार के अनुपात हों, तो वीणा को चार स्थायी निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किये जा सकते हैं –

६ ८ ९ १२

सुविधा के लिए आइये हम इन चारों स्वरों को बड़े स्वरग्राम (Gamut) की तानों से अवरोही क्रम प्रदर्शित करें।

Nete	Paramese	Mese	Hypate
Mi	Si	La	Mi,

तथा पाइथागोरस के आविष्कार की व्याख्या हम निम्नलिखित ढंग से कर सकते है :

(१) जब उसने उदात्त Mi उत्पन्न करने वाले तार की अपेक्षा दूनी लम्बाई का तार लिया तो अनुदात्त Mi निकला। इस अन्तराल को हम अष्टम-स्वर (Octave) कहते हैं, जिसे यूनानी लोग (Diapason) कहते थे, यह २ : १ के अनुपात (diplasios logos) से प्रदर्शित किया जाता है।

(२) जब उसने उदात्त Mi उत्पन्न करने वाले तार की लम्बाई का आधा तार लिया तो La निकला। इस अन्तराल को हम पंचम स्वर (fifth) कहते हैं, जिसे यूनानी लोग dia pente कहते थे, यह ३ : २ के अनुपात (hemiolios logos) से प्रदर्शित किया जाता है।

(३) जब उसने उदात्त Mi उत्पन्न करने वाले तार के बाद पुनः एक तिहाई लम्बा तार लिया तो उससे Si निकला। इस स्वरान्तराल को हम चतुर्थ स्वर fourth कहते हैं, जिसे यूनानी लोग diatessaron कहते थे। यह ४:३ के अनुपात (epitritos logos) से प्रदर्शित होता है।

(४) अष्टम स्वर (Octave) का ध्वनिक्षेत्र (Compass) पंचम एवं चतुर्थ [३/२ × ४/३ = १२/६] है, तथा nete से जो स्वर पंचम है, तथा hypate से जो चतुर्थ है वह nate से पंचम है।

(५) चतुर्थ एवं पंचम के स्वरान्तराल को ९ : ८ के अनुपात (epogdoos logos) से प्रदर्शित किया जाता है। इसे सर्वश्रेष्ठ तान या ठार

कहा जाता है (दो चतुःतंत्रियों के आपस में धुन मिलाने के महत्त्व के कारण ही सम्भवतया यह इतना श्रेष्ठ है) ।

(६) चूंकि १ और २ के बीच कोई भी (संख्यात्मक) माध्य (mean) अनुपातिक (proportional) नहीं है, अतः अष्टम-स्वर (octa ve) या सुर (tone) में से किसी को भी समान भागों में नहीं बाटा जा सकता ।

पाइथागोरस इस आविष्कार से आगे नहीं बढ़ पाया, इसे मानने के लिए पर्याप्त कारण हैं, तथा आर्काईटस (Archytas) एवं प्लेटो के युग तक चतुः तंत्रियों के प्रगामी स्वरों के बीच के अनुपात को निर्धारित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया। वस्तुतः यह स्पष्ट नहीं है कि इस काल में इनके लिए कोई भी नियम था या नहीं था ।[1] हमें एरिस्टोज़ेनस से ज्ञात होता है कि प्राचीन संगीत शास्त्रियों के सभी आरेख या रेखाचित्र (diagram) अल्पविरामी मात्रा (enharmonic scale) को निर्दिष्ट करते थे और उसके पहले चतुर्थांश स्वर (quarter tone) तथा द्विटोनी (double tone) आते थे। परन्तु पाइथागोरस ने चतुर्थांश स्वर की सम्भालना को स्वीकार नहीं किया, क्योंकि इस स्वर का समान विभाजन नहीं हो सकता। अतएव चतुःतंत्री के भीतरी (internal) स्वरों को 'अपरिमित' (unlimited) स्वभाव का माना जाना चाहिये, तथा 'परिमितता' केवल पूर्ण सुसंगतों से प्रदर्शित होती थी ।

अब हम यदि उन चार शब्दों (horai) की ओर देखें, जिनको हमने आविष्कार किया, तो स्पष्ट होगा कि ८ एवं ९ माध्य के रूप में बाह्य पद ६ तथा १२ से सम्बन्धित है। पद ९ जो कि mese के स्वर का प्रतिनिधित्व करता है उसी संख्या (३) का अतिक्रमण करता है, तथा स्वयं उसी से उत्क्रान्त (exceeded) होता है। इसी को अंकगणितीय माध्य (arithmatical mean) कहते हैं। दूसरी ओर, पद ८ जो कि paramese स्वर को प्रदर्शित करता है वाह्य पदों (extremes) के उसी अंश का अतिक्रमण करता है, तथा स्वयं उसी से उत्क्रान्त होता है ; क्योंकि ८ = १२ — १२/३ = ६ + ६/३ । इसे उपविरोधी (Subcontrary, huvenantia) कहा गया, तथा इसी को पर्याप्त कारणों से बाद में सन्नादी माध्य (harmonic mean) कहा गया। केवल एक अष्टम-स्वर (Octave) के ध्वनिक्षेत्र में रेखागणितीय माध्य नहीं मिलता।

---

१. देखिये, Tennery, 'A propos des fragements philolaiques surla musique' (Rev. de philologie, १९०४, पृष्ठ २३३, sqq)

माध्य (the mean) के आविष्कार ने तुरन्त प्रतिपक्षों (opposites) की पुरानी माइलेशियाई समस्या के नये समाधान की ओर इंगित किया। हमें ज्ञात है कि एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष के सीमातिक्रमण को एनेक्जिमेण्डर ने अन्याय (injustice) कहा था। अतः उसने किसी ऐसे बिन्दु को अवश्य माना होगा जो दोनों पक्षों के लिए सामान्य हो। परन्तु इस बिन्दु के निर्धारण का उसके पास कोई साधन नहीं था। माध्य के आविष्कार से यह परिलक्षित होता है कि प्रतिपक्षों के मिश्रण (blend) से यह बिन्दु उपलब्ध हो सकता है। और जिस प्रकार उदात्त और अनुदात्त स्वरों के माध्य का संख्यात्मक निर्धारण हुआ था उसी प्रकार इस बिन्दू का भी सख्यात्मक निर्धारण सम्भव है। यूनानियों की आमोद-प्रमोद (convivial) की रीतियों के कारण उनके लिए यह विचार स्वाभाविक है। मिश्रण पात्र (mixing bowl) में किस मात्रा में सुरा एवं किस मात्रा में जल डाला जाय, इस बात का निर्धारण भोज का नियंत्रक किया करता था, और इसके बाद ही वह पेय अतिथियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था। इसीलिए प्लेटो के संवाद Limaes में विश्वकर्मा (the demiourgos) एक मिश्रण-पात्र (Krater) का प्रयोग करता है। यह बात मान ली गयी होगी कि यदि पाइथागोरस व उदात्त और अनुदात्त स्वरों जेसी दुग्राह्य वस्तुओं के मिश्रण के नियमों का आविष्कार कर सकता है तो जगत् सम्बन्धी रहस्यों की कुंजी प्राप्त हो गयी।

अब केवल एक बात रह गयी है जिसका पूर्ण अभिप्राय तो बाद में स्पष्ट होगा, परन्तु उसका उल्लेख यहाँ आवश्यक है। यह स्पष्ट है कि अठतारा मात्रा को उसके किसी छोर पर ऐक या अधिक चतुःस्वर मात्राओं को जोड़कर बढ़ाया जा सकता है। तथा उसकी वजह से यह भी सम्भव होगा कि हमें अष्टम स्वर मात्राएँ भी उपलब्ध हो जायें, जिसमें छोटे व बड़े स्वरान्तराल[1] भिन्न क्रम में होते हैं। यदि हम पियानों के केवल श्वेत स्वरों पर मात्राएं बजायें तो उसका मोटा अन्दाज लग सकता है। सौभाग्य से इस तथाकथित अष्टम स्वर के तोड़ो [figures of actave] तथा उन रागों [modes] के, जिनके बारे में हम युनानी लेखकों की कृतियों में बहुत अधिक सुनते हैं। सम्बन्ध

१. एरिस्टोजेनस ने जो उदाहरण दिया है वह अल्पविरामी चतुःतांत्रिका से लिया गया है जिसमें, उसकी शब्दावली के अनुसार हमें निम्नलिखित स्वर मिलते हैं। १/४ स्वर १/४ स्वर, द्विस्वर [२] १/४ स्वर, द्विस्वर. १/४ स्वर या [३] द्विस्वर, १/४ स्वर, १/४ स्वर।

का विवेचन करना वर्तमान प्रयोजन के लिए अनावश्यक है; क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता है कि अभी तक इस समस्या का संतोषजनक समाधान हुआ है।[1] हमारे लिए महत्त्वपूर्ण बात केवल इतनी है कि इन मात्राओं को तोड़ या गटकरी [Figure,cide] इसलिए कहा जाता था, क्योंकि उनके अपने खण्डों के व्यवस्था-क्रम में परिवर्तनशीलता थी। एरिस्टोजेनस के कथन से यह प्रमाणित होता है,[2] तथा हम देखेंगे कि यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है।

औषधि

औषधि में भी उष्ण एवं शीत, आर्द्र एवं शुष्क जैसे 'प्रतिपक्षों' का प्रयोग होता है, चिकित्सक का यह कार्य है कि वह मानव-शरीर में इन प्रतिपक्षों का उचित योग (brofu blend) करे, प्लेटो के संवाद 'फ़ीडों' (Phaedo) के एक प्रसिद्ध अनुच्छेद (८६ बी) में सिम्मिअस (simmias) बताता है कि पाइथागोरसवादियों की यह मान्यता थी कि जिस प्रकार किसी ढार विशेष के उदात्त एवं अनुदात्त के लिए कोई वाद्ययंत्र कसा रहता है उसी प्रकार उष्ण एवं शीत, आर्द्र एवं शुष्क के लिए यह शरीर भी कसा गया है। इस मत के अनुसार जब तारों की धुनें मिली होती हैं तो मनुष्य स्वस्थ रहता है, और जब उन्हें अनावश्यक रूप से ताना या ढ़ीला किया जाता है तो बीमारी उत्पन्न होती है। अभी भी हम औषधि एवं संगीत दोनों में 'उद्दीपक' (tonic) शब्द का प्रयोग करते हैं। क्रीटन का चिकित्सा-विज्ञान का संप्रदाय, जिसका हमारे लिए प्रतिनिधित्व अल्क्मेइअन (Alkmaien) करता है, बिल्कुल इसी प्रकार के सिद्धान्त को अपने मत का आधार बनाये था, उसके अनुसार शरीर में विपक्षों की समता [equality] पर ही स्वास्थ निर्भर करता है, तथा एक का दूसरे पर अवाञ्छित आधिपत्य ही रोग है, अतएव यदि अल्कमेइअन का पाइथागोरस-वादियों से घनिष्ठ सम्पर्क रहा हो। और यदि उसने अपने चिकित्साशास्त्रीय ग्रन्थ को पाइथागोरस की संस्था के कुछ प्रमुख सदस्यों को समर्पित किया हो,

---

१. देखिये, monro, modes of Ancient Greek music (१८९४) Macran, The Harmonices of Aristoxenus (१९०२), J. D. Dennistoun, 'Some Recent Theories of the Greek Modes' (Classical Quanterly vii [१९१३], पृष्ठ ८३, sqq।)

२. El. Harm. iii. ७४ में एरिस्टोजेनस अत्यन्त स्पष्ट रूप से मानते हैं कि यहाँ Eide शब्द का अर्थ 'तोड़ा' होता है।

तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। स्वास्थ्य तो वास्तव में विपक्षों के उपयुक्त मिश्रण पर आधारित सामंजस्य ही, इसी प्रकार आहार तथा जलवायु जैसी अनेक बातों में, जिनका चिकित्सक से सम्बन्ध है, यही विवरण दिया गया है। स्वयं या (blend) शब्द शरीरिक चित्त-प्रकृति (temperament) तथा एक जलवायु से दूसरी को पृथक् करने वाले तापक्रम (temperature) दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। जब हम खाने तथा पीने में संयम (temperance) की बात करते हैं, तब हम पाइथागोरस की ही पृष्ठभूमि में बात करते हैं।

व्याधि तथा मृत्यु के सन्दर्भ में eidos शब्द का प्रयोग एकाधिक बार मिलता है जिसका अनुवाद हमने 'तोड़ा' (figure) किया है, तथा, जैसा कि संकेत किया जा चुका है[1], अनेक स्थानों पर इसका एक क्रिया के साथ-साथ निकट सम्बन्ध में प्रयोग मिलता है जिसका प्राचीन आयुर्विज्ञान में भी एक विशिष्ट अर्थ है। उसी क्रिया तथा उसकी संज्ञा (katastasic) का प्रयोग किसी शरीर-गठन (constitution) के लिए भी होता है। अतः ऊपर वर्णित 'अष्टम स्वर के तोड़ों' के सन्दर्भ में इस शब्द के प्रयोग की व्याख्या करना अत्यन्त स्वाभाविक है, जिन विपक्षों पर स्वास्थ्य तथा व्याधि निर्भर करते हैं उनका सयोग विभिन्न प्रकार (pattern) से हो सकता है, तथा रूप की इसी भिन्नता के कारण रोगियों की शरीर-रचना में भेद पाया जाता है,

संख्याएं (NUMBERS)

यह आविष्कार करने के बाद कि समस्वरण तथा स्वास्थ्य दोनों ही असीम में सीमित के आनुप्रयोग के द्वारा समान रूप से उत्पन्न माध्य (means) हैं, तथा इसके कारण कतिपय आकृतियों (figures) की रचना हुई, पाइथागोरस के लिये यह स्वाभाविक था कि जगत् के बड़े पैमाने पर भी कुछ इसी प्रकार के तथ्य ढूंढे। माइलेशियाइयों ने बताया था कि सभी वस्तुओं की निष्पत्ति अनंत"

---

१ देखिये, A. E. Taylor, Vania Socratica (St. Andrews University पृष्ठ) १८९.

Pub. No. IX प्रोफेसर टेलर ने अपने मत की पुष्टि के लिए eide tou diapason का उद्धरण नहीं दिया है, परन्तु उस सन्दर्भ में eidos का अर्थ schema है इस के लिए एरिस्टोजेनस के स्पष्ट प्रामाण्य को देखते हुए मुझे यह महत्वपूर्ण लग रहा है।

अथवा असीम से हुई है, यद्यपि उन लोगों ने इसके लिए भिन्न कारण बताया था। एनेक्ज़िमेनीज़ ने इसे 'वायु' से अभिन्न बताया था, तथा विरलीकरण एवं संक्षेपण के कारण यह अपने रूपों को ग्रहण करता है। उसके विचार से 'वायु' मुख्यतया कुहरा का एक रूप है, पाइथागोरस ने इसे कुछ दूसरे ही दृष्टिकोण से देखा होगा। पाइथागोरस के अनुयाइयों में से कुछ ने तो अवश्य ही 'वायु' का शून्य से तादात्म्य स्थापित किया होगा। यह केवल अमूर्त देश अथवा विस्तार के संप्रत्यय का प्रारम्भ है, किन्तु है केवल प्रारम्भ ही, तथा जहाँ तक हम देख पाते हैं, पाइथागोरस के लिए महत्त्वपूर्ण समस्या यह थी कि असीम ने कैसे सीमित होकर वर्तमान जगत् का रूप ग्रहण किया।

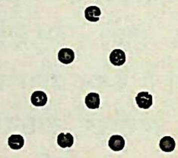
पार्मेनीडीज की कविता के द्वितीय भाग में उपलब्ध पाइथागोरसीय विश्व-विज्ञान के विवरण से इसकी उल्लेखनीय पुष्टि होती है। इस विश्वास का कारण भी वह विवरण उपलब्ध है कि वह विवरण पाइथेगोरियन विश्वविज्ञान का ही है। उस प्रसंग में जिन दो रूपों (forms) को लोगों ने भ्रमवश ग्रहण किया है, वे हैं 'प्रकाश' और अन्धकार' उन दिनों तक अन्धकार प्रकाश का केवल अभाव नहीं, वरन् एक वस्तु के रूप में माना जाता था, 'वायु' का अन्धकार से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था, प्लेटो के Timaeus (५८ d) में कुहरा तथा अन्धकार दोनों को 'वायु' का स्वरूप माना गया है, और यह निश्चित रूप से परम्परागत पाइथागोरियन मत है, पाइथागोरस की 'विपक्षों की प्रसिद्ध तालिका में प्रकाश तथा अन्धकार का समावेश मिलता है, यहाँ पर ये क्रमशः सीमित तथा असीमित शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किये गये हैं।

संक्षेप में, पाइथागोरस का सिद्धान्त था कि सभी वस्तुएं संख्याएं हैं, और जब तक हमें यह स्पष्ट न हो जाय कि 'संख्या' से उसका क्या तात्पर्य था। तब तक इस कथन का कोई अर्थ निकालना संभव नहीं, हम यह निश्चित रूप से जानते हैं कि कुछ मूलभूत प्रसंगों में प्राचीन पाइथागोरसवादियों ने संख्याओं की प्रस्तुति एवं उनके गुणों की व्याख्या कुछ आकृतियों (figures) अथवा नमूनों (patterns) में विन्यस्त बिन्दुओं के माध्यम से की। निःसंदेह यह विधि अत्यन्त आदि कालिक है, क्योंकि पाशे (जुआ) और इसी प्रकार के अन्य कार्यों में इसका उपयोग प्राचीन काल से ही होता आरहा है। पाइथागोरसीय आकारों में सर्वप्रसिद्ध है चतुष्टय (tetraktys),[1] जिसका नाम लेकर उस संस्था के

---

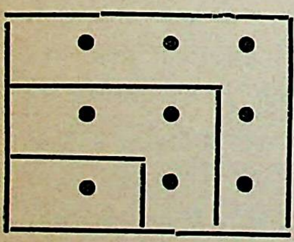
१. इस शब्द के रूप के लिए तुलना कीजिये Triktus (Att. trittus.) triktuarchos तथा triktuar-chein डेलियन रूप शिलालेखों में मिलते हैं (Dittenberger, sylloge, ५८२, १९ sqq.)

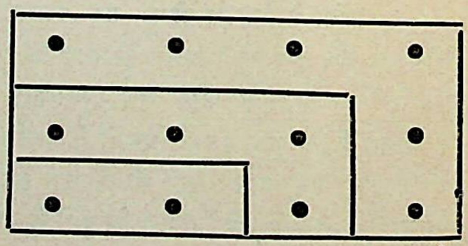
सदस्य शपथ लेते थे। इससे तुरन्त ही स्पष्ट हो जाता है कि पाइथेगोरसवादी दस संख्या का सबसे महत्त्वपूर्ण गुण किसे समझते हैं, उनके अनुसार यह प्रथम चार प्राकृत पूर्णांकों [integers] [१+२+३+४=१०] का योग है जो इस प्रकार है :



यह स्पष्ट है कि इस आकर का अनन्त विस्तार हो सकता है, तथा यह ३, ६, १०,१५,२१, तथा क्रमशः इस प्रकार के अनुक्रमिक प्राकृत पूर्णांकों को मालाओं के योग के लिए सूत्र [formula] का रूप ले लेता है, अतएव इन्हें 'त्रिकोणीय संख्याएं' [triangular numbers] कहा गया है,

इसके उपरान्त हमें वर्ग [square] तथा आयत [oblong] संख्याओं का उल्लेख मिलता है। वर्ग संख्या का अर्थ होता था एक ऐसी संख्या जो समान गुणन-खण्डों (factors) का परिणाम हो, और यह अर्थ आज भी प्रचलित है। इसके विपरीत आयत संख्या का अर्थ होता है असमान गुणनखण्डों का परिणाम इनको निम्नलिखित ढंग से प्रदर्शित किया जा सकता है :





इन आकारों से यह स्पष्ट होता है कि शंकु या धूपघड़ी (Gnomon) के रूप में अनुक्रमिक विषय संख्याओं के योग से वर्ग संख्याएं (४,९,१६ इत्यादि) बनती हैं तथा अनुक्रमिक सम संख्याओं के योग से अत्यन्त संख्याएँ (६,१२,२० इत्यादि) बनती हैं, इसी प्रकार हम घनाकार (cubic) संख्याओं के गुणों का अध्ययन कर सकते हैं, परन्तु यह कहना कठिन है कि इस दिशा में

पाइथागोरस ने कितनी प्रगति की थी। महत्व इस बात को देखने में है कि ये सभी आकार विभिन्न प्रकार की श्रेणियों के योग को प्रकट करती हैं। पूर्णांकों की श्रेणी से हमें त्रिकोणी संख्याएं मिलती हैं, विषम संख्याओं की श्रेणी से वर्ग संख्याएं प्राप्त होती हैं, तथा सम संख्याओं की श्रेणी से आयत संख्याएं उपलब्ध होती है, एरिस्टॉटल आगे बताते हैं कि वर्ग संख्याओं का रूप हमेंशा वही रहता है, इसका अनुपात १:१ का है। दूसरी ओर; प्रत्येक अनुक्रमिक आयत संख्या का रूप भिन्न होता है। ये सब अष्टम स्वर के सुसंगत स्वरान्तराल के पूर्णतः अनुरूप है।[1]

इन विषयों में हमारे ज्ञान के आधार मुख्यतया नव्य-पाइथागोरियन लेखक हैं; जो वर्णमाला के अक्षरों की लिपि की अपेक्षा आकृतियों को अधिक स्वाभाविक मानते थे। परन्तु एरिस्टॉटल को इन आकृतियों के बारे में निश्चय ही ज्ञान था,[2] तथा हम बिना हिचक के इन्हें पाइथागोरियन विज्ञान की प्रारम्भिक अवस्था का मान सकते हैं। अरबी (अथवा हिन्दू) संख्याओं (Figurate numers) का मध्य युग तक अस्तित्व रहा, तथा इस शब्द का आज भी प्रयोग होता है यद्यपि यह सीमित अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। यद्यपि 'आकृति, (Figure) शब्द का प्रयोग अब अरबी अंकों[3] के लिए होता है, परन्तु यह तथ्य कम उल्ले-

---

१. इस प्रकार २ (२:१) की भुजाओं के बीच का अनुपात है अष्टम स्वर (Octave the diplasis) ६ (३:२) की भुजाओं के बीच का अनुपात है पंचम (the fifth, hemiolios logos) १२ (४.३) की भुजाओं के बीच का अनुपात है चतुर्थ (the fourth, the epitritos logos.)

२. तुलना कीजिये, विशेषतया Met. N, ५. १०१२b८ (Eurytos तथा Oi arithmous) phys. T, ८. २०३a१३ में वर्ग तथा आयत संख्याओं को स्पष्ट करते हुए वह अपेक्षाकृत आधुनिक शब्द schema के स्थान पर पुराने शब्द eidos का प्रयोग करते हैं। जरी (embridery) के कपड़ों की आकृतियों के लिए eide शब्द के प्रयोग से यह प्रतीत होता है कि eidos शब्द का मूल तात्पर्य नमूना (Patterns) अर्थ में आकृति से था (plutarch, them, २९)।

३. इस सम्बन्ध में The New Eng. Dict. से निम्नलिखित उद्धरण उल्लेखनीय हैं :– १५५१ RECORDE Pathw, Knowl रूपों को (जो पंक्ति में विन्दुओं को व्यवस्थित कर उत्पन्न की जाती हैं) में छोड़ देता हूँ क्योंकि उनकी ज्ञान रेखागणितीय आकृति की अपेक्षा अंकगणितीय आकृतियों से अधिक हैं १६१४ T. Bedwell Nat. Geom Nos i. १. परिमीय तीआकृय संख्या वह संख्या है जो आपस में संख्याओं को गुणाकर बनायी जाती है।

खनीय नहीं है कि अंग्रेजी भाषा ने 'आकृति' (Figure) शब्द को अपना लिया है। अन्य भाषाओं में अरबी सिफ्र (sifr.) का प्रयोग होता है।

संख्याओं को आकृतियों के माध्यम से प्रदर्शित करने की यह प्रणाली स्वभावतया हमें ऐसी समस्याओं की ओर ले जाती है जो रेखागणित के ढंग की है। इकाइयों (units) के लिए जिन बिन्दुओं का प्रयोग किया उन्हें सदा 'पद' (term, horoi, termini, boundary-ston) या सीमा-स्तम्भ कहा गया, तथा उनके द्वारा चिह्नित भूमि को 'क्षेत्र' (Field, kovoi), तब यह प्रश्न स्वभावतया उठेगा कि 'एक वर्ग के दूने वर्ग को अंकित करने के लिए कितने पदों की आवश्यकता होगी ? इसमें सन्देह नहीं कि पाइथागोरस ने यह आविष्कार किया था कि कर्ण (hypothenuse) का वर्ग अन्य दो भुजाओं पर के वर्गों के तुल्य होता था। परन्तु यह बात ज्ञात है कि उसने इसे उस ढंग से सिद्ध नहीं किया जिस ढंग से बाद में यूक्लिड ने किया (१४७) यह सम्भव है कि इस प्रमाण का स्वरूप रेखागणितीय न होकर अंकगणितीय था। और चूंकि वह ३:४:५ त्रिभुज से, जो कि सदा समकोण त्रिभुज होता है, परिचित था अतः उसने श्रीगणेश इस तथ्य से किया हो कि ३ + ४ = ५ परन्तु उसे यह भी पता चल गया होगा कि समद्विबाहुक (isosceles) समकोणीय त्रिभुज के, जो कि त्रिभुजों में सर्वाधिक पूर्ण माना जाता है, विषय में यह प्रमाण बेकार सिद्ध होता है क्योंकि इसके कर्ण तथा इसकी भुजाओं के बीच का सम्बन्ध किसी भी संख्यात्मक अनुपात से प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। वर्ग की भुजा विकर्ण (diagonal) से असम है। ठीक इसी प्रकार की कठिनाई का सामना हमें वहाँ भी करना पड़ता है जब हम धुन या अष्टम स्वर को दो बराबर भागों में बांटने का प्रयास करते हैं। इसका कोई संकेत नहीं मिलता कि इस विषय में पाइथागोरस ने किसी सिद्धान्त की स्थापना की थी अथवा नहीं। उसने इसे, सम्भवतः, केवल असीम (unlimited) का स्वभाव बताया।

दूसरी समस्या जिसके कारण पाइथागोरस व्यस्त रहा होगा वह थी गोलक (sphere) की रचना, ऐसा प्रतीत होता है कि उसने द्वादश-फलक के विवेचन से ही इस समस्या के समाधान का प्रयास किया। द्वादश-फलक सभी सम घनों (solids) की अपेक्षा गोलक के सर्वाधिक निकट है। द्वादश-फलक की भुजा सम पंचकोण (pentagon) है, तथा इसके निर्माण के लिए किसी रेखा को एकान्तिक तथा मध्यमक अनुपात जिसे स्वर्णिम काट (golden section, euclid, II. ११) कहते हैं, में विभाजित करना आवश्यक है। यह हमें एक

अन्य अपरिमेय परिमाण (irrational magnitudd)[1] की ओर ले जाता है तथा इस बात का प्रमाण उपलब्ध है पाइथेगोरीय रहस्यों में से एक रहस्य के रूप में इसका महत्वपूर्ण योगदान था । पंचाल्फा (अपने आकार के कारण इसे pentalpha) कहते हैं, अथवा पंचकोण तारा (pentagram) का प्रयोग करके इसके निर्माण में होता था, तथा कहा जाता है कि पाइथागोरसवादियों ने इसे अपनी वर्णमाला के अन्तर्गत मान लिया था । बहुत दिनों बाद तक इसका उपयोग जादू के कार्यों में होता रहा, तथा गेटे के Faust तथा अन्य स्थानों पर हमें इसका उल्लेख मिलता है । परम्परा के अनुसार हिप्पेसस (HIPHASOS) नामक व्यक्ति ने पाइथागोरसीय रहस्यों को प्रकाशित किया । एक वृत्तान्त के अनुसार भुजा की असम्मेयता तथा विकर्ण (diagonal) के आविष्कार के कारण उसे समुद्र में डुबा दिया गया था । दूसरी कहानी के अनुसार सम द्वादशफलक की निर्माण–विधि को प्रकाशित करने के लिए उसे समुद्र में डुबाया गया । परम्परा ने जिन सत्यों तथा महत्वपूर्ण घटनाओं की स्मृति को सुरक्षित रखा है उनमें से यह भी एक घटना है ।

पाइथागोरस के लिए यह स्वाभाविक था कि वह अपने आविष्कारों का अनुप्रयोग आकाशीय पिण्डों के लिए करें, तथा इस बात की बहुत सम्भावना है कि एनेक्जिमेण्डर के तीन चक्रकों के बीच के अन्तरालों को उसने चतुर्थ, पंचम और अष्टम स्वरों से संगत माना । यह उस सिद्धान्त की अत्यन्त स्वभाविक व्याख्या होगी । जिसे लोग सामान्यतया 'भुवनों का सामंजस्य' (harmony of the spheres) नामक भ्रामक संज्ञा से जानते हैं । खगोलीय लोक यूडोक्सस (Eudoxas) से भी पुराने है इस बात को मानने का कोई आधार नहीं है तथा सभी तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि पाइथागोरसवादियों ने एनेक्जिमेण्डर के चक्रकों का वलयों को अवधृत (retain) किया था । पार्मेनाडीज की कविता के द्वितीय भाग में तथा प्लेटो की 'रिपब्लिक' के (Myth of Er) में उनका उल्लेख है । हमें एक बात और याद रखनी चाहिये कि वहाँ 'सामंजस्य' (harmony) शब्द का वह तात्पर्य नहीं है जिसे प्राय: हम समझते हैं वरन् वहाँ उसका तात्पर्य है सुसंगत अन्तरालों का सामंजस्य और ऐसा प्रतीत

---

१. यूक्लिड II. ii (Vol. v. p. 249, Heiderg) की टीका में जो उल्लेख है उससे प्रतीत होता है कि यह पाइथेगोरीय व्याख्या पद्धति है । कहा गया है कि यह समस्या 'कंकड़ियों के माध्यम से प्रदर्शित नहीं की जा सकती' ।

होता है कि यही जगत् क विधान को प्रकट करता है। उन लोगों ने 'रूप' (form) के सम्प्रत्यय को 'द्रव्य' (matter) का सहसम्बन्धी माना। रूप सदा किसी न किसी अर्थ में माध्य (mean) होता है। यह सिद्धान्त सभी यूनानी दर्शन का अन्त तक केन्द्र-विन्दु रहा तथा यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि इस काल के उपरान्त भी यूनानी दर्शन पर तार की धुन (harmonia) के प्रत्यय का प्रभुत्त्व बना रहा।

३

हेराक्लीटस तथा पार्मेनीडीज

हेराक्लीटस

हेराक्लीटस का अध्ययन करते समय सर्वोपरि हम इस बात का अनुभव करते हैं कि दार्शनिक निकायों के स्वरूप–निर्धारण में व्यक्तित्व का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यूनानी साहित्य में उनके अवशेषों[1] की शैली का अनूठा स्थान है। इसी शैली के कारण बाद के काल में उनको 'दुर्ग्राह्य' (the dark) की उपाधि मिली। जब वे गूढ़ शैली में लिखते हैं तब से इस बात से पूर्णतया सचेत हैं, तथा इस शैली के औचित्य को वे सिबिल (sibyl) (अव० १२) तथा डेल्फोई के देवता (अव० ११) के उदाहरणों से सिद्ध करते हैं जो 'अपने' अभिप्राय को न व्यक्त करता है न छिपाता है। वरन् संकेत (signify) करता है। यहाँ हम उस धारा का प्रभाव देखते हैं जिसे छठी शताब्दी ई० पू० का पैगम्बर आन्दोलन कहते हैं। इस आन्दोलन से हेराक्लीटस के अन्य पक्ष भी प्रभावित हुए इस बात का अनुमान हम तभी कर सकते हैं जब इस विषय में कुछ और जानकारी प्राप्त हो जाय। सत्य तो यह है कि उसका मुख्य चिन्तन अत्यन्त सरल था तथा उसके अस्पष्ट परिवेशों से उसके सरल रूप को पृथक् करना आज भी सम्भव है। परन्तु ऐसा करने के उपरान्त भी उस व्यक्ति के बारे में पूर्ण विवरण देना सम्भव नहीं हो सकेगा। उसका व्यक्तित्व इतना महान् है कि शब्दों के माध्यम से उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता।

---

१. प्रमाणों से सन्दर्भों तथा अवशेषों के अनुवाद के लिए देखिये, 'अर्ली ग्रीक फ़िलासोफी', पृष्ठ, ६३ sqq. अवशेषों का उदाहरण बाइवाटर के संख्या-क्रम से हुआ है।

हेराक्लीटस के काल का मोटे तौर पर निर्धारण दो तथ्यों से होता है। एक तो हेकेटीअस (Hekateios) पाइथागोरस तथा ज़ेनोफेनीज़ का उल्लेख भूत-काल के सन्दर्भ में करता है (अव० १६) तथा दूसरा तथ्य यह है कि पार्मेनीडीज़ भी उसकी ओर निर्देश करते हुए प्रतीत होते हैं (अव० ६)। इसका तात्पर्य यह है कि उन्होंने ई० पू० पाँचवी शताब्दी के प्रारम्भ में अपनी कृतियों की रचना की थी। वे एफेसियन (Ephesian) राजपुरुष थे, तथा ऐसा प्रतीत होता है कि वेसिलियस (Basileus) की प्राचीन गरिमा (जो निश्चित रूप से इस काल में एक धार्मिक पद था) इनके परिवार की पैत्रिक सम्पत्ति थी क्योंकि यह कहा जाता है कि इन्होंने अपने भाई के पक्ष में इस पद से त्याग-पत्र दे दिया था। उनके राजनीतिक विचार की एक झलक हमें एक उदाहरण (अव० ११४) से मिलती है जहाँ वे कहते हैं; एकेसियन लोग यदि अपने सभी प्रौढ़ लोगों को फाँसी पर लटका दे तथा नगर का भार श्मश्रुहीन (beardless) वालकों पर छोड़ दें तो अपना हित करेंगे, क्योंकि उन लोगों ने अपने सर्वश्रेष्ठ नागरिक को यह कहकर निष्काषित कर दिया कि 'यदि हमारे बीच कोई सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति है तो भी हमें उसकी आवश्यकता नहीं, यदि वह श्रेष्ठ है तो उसे अन्यत्र तथा अन्य लोगों के मध्य ही रहना चाहिये।' इसमें सन्देह नहीं कि हेराक्लीटस निश्चित रूप से अपने को कुलीन समझता था तथा जन-सामान्य के लिए उसके मन में भयंकर तिरस्कार था।

हेराक्लीटस ने केवल सामान्य वर्ग के लोगों की भर्त्सना नहीं की। उन्होंने अपने किसी भी पूर्ववर्ती विचारक के बारे में कोई अच्छा शब्द नहीं कहा। वे होमर के सम्बन्ध में जेनोफेनीज़ के मत से सहमत हैं, जिसने आर्किलोकस (Archilochos) को भी होमर की ही श्रेणी में रखा। परन्तु स्वयं ज़ेनोफेनीज़ का भी वे समान रूप से तिरस्कार करते हैं। एक प्रसिद्ध अवशेष (अव० १६) में वे हीसिआड, पाइथागोरस तथा हेकेटाइअस के साथ ज़ेनोफेनीज़ का उल्लेख इस तथ्य के उदाहरण स्वरूप करते हैं कि अधिक पाण्डित्य (learning) व्यक्ति को चिन्तन करना नहीं सिखा सकता। पाइथागोरस के अनुसन्धानों एवं विशेष रूप से उसकी सनांदी तथा अंकगणित की खोजों, का विशेष रूप से खण्डन किया गया है (अव० १७)। प्रज्ञान बहुत-सी वस्तुओं का ज्ञान नहीं अपितु यह केवल एक ही वस्तु का स्पष्ट ज्ञान है। शुद्ध पैगम्बरी शैली में इसे हेराक्लीटस 'परावाक्' (Word, logos) कहते हैं, जो 'शाश्वत सत्य' है, परन्तु बताने के बाद भी लोग इसे समझ नहीं सकते (अव० २)। अतः परावाक् से हेराक्ली-

टस का क्या अभिप्राय था, इसे समझना यदि सम्भव हो तो, हमें प्रयास करना चाहिये। उसका विश्वास था कि वह इसी परावाक् को बताने के लिए पैदा हुआ है, भले ही उसको कोई श्रोता मिले अथवा न मिले।

सर्वप्रथम, यह तो स्पष्ट है कि प्रधान तत्त्व अग्नि के सिद्धान्त, या आश्रव (flux) के सिद्धान्तों से यह परावाक् कुछ अतिरिक्त तत्त्व है। यदि हेराक्लीटस ने एनेक्ज़िमेनीज़ की 'वायु' के स्थान पर केवल अग्नि को मान लिया होता, तो यह एनेक्ज़िमेनीज़ की ही दिशा में एक और प्रगति मात्र होता, जैसा कि स्वयं एनेक्ज़िमेनीज़ ने थेलीज़ के 'जल' तत्त्व के वदले 'वायु' को मान लिया था। यह भी स्पष्ट नहीं है कि 'आश्रव' सिद्धान्त विरलीकरण तथा संक्षेपण सिद्धान्त का ही विकसित रूप है। और यदि यह उस सिद्धान्त का विकसित रूप होता तो भी जिस शैली नें हेराक्लीटस 'परावाक्' के बारे में कथन करता है उस पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। अत: उसके आधारभूत विचारों को जानने के लिए इस मार्ग का अनुसरण करना आवश्यक नहीं है। 'आश्रव' सिद्धान्त नि:सन्देह एक महान् वैज्ञानिक सामान्यीकरण हैं,परन्तु हेराक्लीटस को किसी एक भी वैज्ञानिक सिद्धान्त का आविष्कारक नहीं माना जाता है। यह बात महत्त्वपूर्ण है। पुनश्च उसके विश्वविज्ञान के बारे में हमें जितना भी ज्ञात है उससे स्पष्ट होता है कि यह ज़ेनोफेनीज़ के एनेक्ज़िमेनीज़ दार्शनिक सम्प्रदाय (school) के विश्वविज्ञान से कहीं अधिक प्रतिक्रियावादी है। दूसरी ओर यद्यपि वह रहस्यात्मक भाषा का प्रयोग करता है, किन्तु वह अत्यन्त कठोर शब्दावली में रहस्यों की भर्त्सना भी करता है। 'रात्रिगंता' (night-walkers) जादूगर बक्चोई (Bakchoi), लेनाई (Lenai) तथा मिस्टाई (Mystai), जिनका वह वर्णन करता है (अव० १२४)। वे सब समकालीन आर्फिक रहे होंगे, तथा एलेक्ज़ेण्ड्रिया निवासी क्लेमेन्ट (Clement), जिसने उपरोक्त कथन को उद्धृत किया है, कहते हैं कि हेरेक्लाइटस ने उनको भावी कोप (Wrath) की धमकी दी।

• तथापि अपने समय के धार्मिक उपदेशकों से हेराक्लीटस की एक बात में समानता थी और वह थी उसका जीवात्मा (soul psyche) के प्रत्यय पर आग्रह। उन्हीं लोगों की भाँति हेराक्लीटस भी जीवात्मा को दुर्बल प्रेत (feable ghost) अथवा छाया के रूप में नहीं मानता था। दोनों के अनुसार आत्मा की सर्वोपरि सत्ता है तथा विचार (thought) अथवा प्रज्ञान (wisdom) इसके सर्वप्रमुख गुण। एनेक्ज़िमेनीज़ ने पहले ही 'वायु' की व्याख्या यह कहकर की थी कि वायु वह श्वांस है जिसके कारण हम जीवित रहते हैं

तथा हम देख चुके हैं कि इसी प्रत्यय से किस प्रकार पाइथागोरियन विश्वविज्ञान प्रभावित हुआ (अव० २८)। 'आत्मानं विद्धि' (know thyself) का डेल्फिक उपदेश उन दिनों घर-घर में प्रचलित था, तथा हेराक्लीटस की उक्ति है; 'मैंने अपनी आत्मा का अन्वेषण किया – (I sought myself) (अव० ८०)। उसने यह भी कहा कि 'आत्मा' इतनी गहन है कि हम इसकी सीमा तक नहीं पहुंच सकते (अव० ७१)। यदि हम इन संकेतों का अनुसरण करें तो सम्भवतः सही मार्ग पर चल सकते हैं।

हेराक्लीटस के अवशेषों पर एक बार दृष्टिपात करने से यह दिखाई पड़ेगा कि उसके चिन्तन पर जागृति एवं सुषुप्ति, जीवन एवं मृत्यु के द्वन्द्वों ने आधिपत्य जमा रखा था। इससे यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि उष्ण एवं शीत नम तथा शुष्क के विरोधों की जो परम्परागत माइलेशियाई समस्या थी, उसका हेरेक्लाइटस के अनुसार समाधान भी इसी द्वन्द्व से होता है. वस्तुतः जीवन, सुषुप्ति तथा मृत्यु अग्नि, जल तथा पृथ्वी के संवादी है, तथा अग्नि इत्यादि तथ्यों के सहारे समझा जा सकता है। हम यह देखते हैं कि केवल जाग्रत अवस्था में ही आत्मा पूर्णतया जीवित रहती है, तथा सुषुप्ति वास्तव में जीवन तथा मृत्यु के बीच की एक स्थिति है। जैसा कि मदिरोन्मत्त स्थिति से प्रकट होता है, सुषुप्ति तथा मृत्यु का का कारण है आर्द्रता में वृद्धि (अव० ७२)। 'आत्माओं का जल बन जाना उनका मरण हैं (अव० ६८)। जब उष्णता तथा अग्नि की वृद्धि होती है तो उससे जाग्रति तथा जीवन आता है, तथा 'शुष्क प्राज्ञतम तथा सर्वोत्तम है' (अव० ७४)। पुनश्च, हम देखते हैं कि दोनों क्रमों में एक नियमित प्रत्यावर्तन (alteration) है। सुषुप्ति जाग्रति में परिवर्तित होती है तथा जीवन मृत्यु में परिवर्तित होता है। अग्नि का भोज्य जल के वाष्पीकरण से मिलता है, तथा स्वयं ये वाष्पीकरण अग्नि के ताप से उत्पन्न होते हैं। यदि जल न हो तो अग्नि की उत्पत्ति सम्भव नहीं; तथा, यदि अग्नि न हो तो जल से वाष्पीकरण नहीं हो सकता।

अब इसके बाद यदि हम विराट्विश्व (macrocosm) की ओर ध्यान दें तो वहाँ भी वही समाधान मिलेगा। रात्रि तथा दिवस, ग्रीष्म तथा शीत उसी प्रकार प्रत्यावर्तित होते रहते हैं जैसे सुषुप्ति तथा जाग्रति, जीवन तथा मृत्यु, यहाँ भी यह बात स्पष्ट है कि नम तथा शुष्क, शीत तथा उष्ण के क्रमिक विकास में ही समाधान प्राप्त होगा। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि 'वायु' जैसी एक मध्यवर्ती स्थिति को मूल द्रव्य मानना ठीक नहीं। मूल द्रव्य

को तो जगत् की सबसे अधिक चेतन वस्तु होनी चाहिये। अतः अग्नि को आत्मा की तरह ही चेतन होना चाहिये। तथा जिस प्रकार अग्नेय आत्मा प्राज्ञतम (wisest) होता है, उसी प्रकार जगत् का संचालन करने वाला प्रज्ञान अग्नि होगा। शुद्ध अग्नि का दर्शन हमें सूर्य में होता है, जहाँ प्रतिदिन प्रातःकाल नवीन अग्नि चलती है तथा रात्रि को बुझ जाती है। सूर्य तथा अन्य आकाशीय पिण्ड एक प्याले जैसे पात्र में प्रज्वलित शुद्ध अग्नि के समूह है जिसमें वे विभिन्न लोकों का भ्रमण करते हैं। पृथ्वी के निःश्वास से अग्नि हमेशा जलती रहती है। इन तस्तरियों के आंशिक या पूर्ण से उलटने से ही चन्द्र की कलाएं तथा ग्रहण लगते हैं। अन्धकार भी पृथ्वी के अन्य प्रकार के निःश्वास का परिणाम है। इन अन्तिम कथनों से यह सिद्ध होता है कि विज्ञान का इटली में जिस अर्थ में प्रयोग होता था उस प्रकार के वैज्ञानिक व्यक्ति का हम अध्ययन नहीं कर रहे हैं।

परन्तु यदि सत् का प्रारम्भिक रूप अग्नि है, तो लगता है जिसे एनेक्ज़िमेण्डर ने 'पृथक्करण' (Sparating out) (अव० ७) कहा था तथा एनेक्जिमेनीज़ ने जिसकी व्याख्या विरलीकरण एवं संक्षेपण (अव० ९) से की थी उसका कुछ और स्पष्ट चित्र उपलब्ध हो सकता है। दहन की प्रक्रिया ही मानवजीवन तथा जगत् दोनों की कुंजी है। यह ऐसी प्रक्रिया है जो कभी विश्राम नहीं लेती, क्योंकि अग्निशिखा को हमेशा नूतन निःश्वास रूपी इंधन से पोषित होना चाहिये, सर्वदा वाष्प अथवा धूम में परिवर्तित होती जाती है। अग्निशिखा की निश्चलता जलाये गये इंधन की मात्रा तथा धूम में परिवर्तित होती हुई माप (measure) की स्थिरता पर निर्भर करती है। जगत् एक 'सतत् प्रज्वलित अग्नि है' (अव० २०) अतएव 'आश्रव' (flux) की प्रक्रिया अनवरत् रहेगी। यही बात विराट जगत् के लिए तथा मनुष्य की आत्मा के लिए भी लागू होती है। "कोई भी व्यक्ति एक जलधारा में दो बार स्नान नहीं कर सकता' (अव० ४१), था तथा यह उसी प्रकार सत्य है जिस प्रकार यह कहना कि एक ही क्षण में हम हैं'। और नहीं भी है'। उन्नत मार्ग (the way up, Keto) तथा अवनत मार्ग (the way down, Aud) एक ही हैं" (अव० ६९), तथा वे अणुविश्व (microcosm) एवं विराट् विश्व के लिए भी नहीं है। अग्नि, जल तथा पृथ्वी का क्रम अवनत मार्ग है, तथा पृथ्वी, जल एवं अग्नि का क्रम उन्नत मार्ग है। इन दोनों मार्गों का एक ही काल में परस्पर विरोधी दिशाओं में सर्वदा अनुगमन किया जा रहा है, अतएव वास्तव में सभी वस्तुओं के दो भाग

हैं, एक भाग ऊपर की ओर जा रहा है तथा दूसरा भाग नीचे के मार्ग का पथिक है।

एनेक्ज़िमेण्डर की यह मान्यता थी (अव०६) कि सभी वस्तुएं निःसीम में आकर मिलती है, और इस प्रकार एक दूसरे के प्रति किये गये अन्याय का दण्ड-भुगतान करती है। हैराक्लीटस जिसे अपना महान् आविष्कार समझता है वह इसी उक्ति से सम्बद्ध प्रतीत होता है, वास्तव में जगत् एक सतत् प्रज्वलित अग्नि है जो अपनी स्थिरता बनाये रखे हैं, क्योंकि अग्नि के जलाये जाने तथा बुझने की 'मात्रा' सदा उतनी ही है (अव २०)। यह सम्भव नहीं कि अग्नि जिस मात्रा में अपने भोज्य पदार्थ का भक्षण करे उसी मात्रा में पत्रित पदार्थ को बाहर न निकाले। यह शाश्वत विनिमय (exchange) की प्रक्रिया है जैसे कि स्वर्ण का स्वर्णपात्रों से तथा स्वर्णपात्रों का स्वर्ण से विनिमय होता है (अव० २२)। सूर्य अपनी मर्यादा का कभी उलंघन नहीं करेगा, और यदि उसने ऐसा किया तो 'न्याय' के परिचारक एरिनीज (Erinyes) उसे कैद कर लेंगे (अव० २९)। एनेक्ज़िमेण्डर की मान्यता थी कि विग्रह (Strife) अन्याय है, परन्तु विग्रह वास्तव में न्याय है (अव० २२), तथा 'युद्ध सभी चीजों का जनक है' (अव० ४४)। इसी परस्पर विरोधी तनाव के कारण वस्तुएँ संगठित रहती हैं, जैसा कि धनुष एवं वीणा के तारों के (Sting) तनाव में होता है (अव० ४५), तथा वहाँ समस्वरूप (attunement) यद्यपि प्रच्छन्न है तथापि किसी प्रकट समस्वरूप की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है (अव० ४७)। हेराक्लीटस ने पाइथागोरस की चाहे जितनी भर्त्सना की हो, उसके समस्वरित तारों की अवहेलना नहीं कर सकता।

परन्तु इन सब के बावजूद भी 'मात्राओं' में कुछ सीमा तक विचलन होना सम्भव है। यह बात सुषुप्ति तथा जाग्रति, मृत्यु तथा जीवन के तथ्यों से, जिनसे हमने प्रारम्भ किया था, स्पष्ट होती है, तथा रात्रि एवं दिन, ग्रीष्म तथा शीत के संवादी तथ्यों से भी प्रकट होती है। इन उतार-चढ़ावों (fiuctnations) का कारण है वाष्पीकरण अथवा निःश्वास एवं द्रवीकरण (liquefaction) की प्रक्रिया जो समस्त आयोनियाई भौतिकी की प्रस्थान बिन्दु थी। तथापि ये उतार-चढ़ाव एक दूसरे को सन्तुलित करते हैं ताकि अन्त में 'मात्राओं' का अतिक्रमण नहीं होता। यह बात निश्चित प्रतीत होती है कि हेराक्लीटस ने इस आवधिकता (periodicity) से किसी न किसी रूप में आत्मा के जीवन (Survival) का अनुमान किया था। हम देखते हैं कि रात के बाद

दिन आता है, एवं शीत के बाद ग्रीष्म आती है, तथा हम यह भी जानते हैं कि सुपुप्ति के बाद जाग्रति आती है। हेराक्लीटस ने यह तर्क किया होगा कि इसी प्रकार मृत्यु के बाद जीवन आता है, तथा आत्मा एक बार पुनः अपनी आगे की यात्रा प्रारम्भ करती है। हमारे अन्दर की आत्मा ही स्फूर्ति तथा शिथिलता जाग्रति तथा सुपुप्ति, युवा तथा जरा इन सबका आधार है। (अव ७८) यही अष्टापद क्रीड़ा (game of the draughts) है, जिसे 'काल' सर्वदा खेलता है (अव० ७९)।

जहाँ तक हम समझ सकते है यही हेराक्लीटस का सामान्य दृष्टिकोण है। अब हम उसके मूल मन्त्र के सम्बन्ध में प्रश्न कर सकते हैं, जिसका ज्ञान प्राप्त करना प्रज्ञान (wisdom) है। जिस प्रकार इस जगत् में विपक्षों का आभासित सघर्ष वास्तव में जगत् को संगठित करने वाले विपक्षी तनावों के कारण है, उसी प्रकार शुद्ध अग्नि के, जो कि सनातन प्रज्ञान है, अन्तर्गत सभी विरोधों का उनके सामान्य आधार में विलयन हो जाता है। 'ईश्वर शुभ तथा अशुभ से परे है' (अव० ५७, ६१), अतएव प्रज्ञान की प्राप्ति के लिए हमें 'सर्वनिष्ठ' को दृढ़ता से ग्रहण करना चाहिये। 'जो लोग जाग्रत हैं' उनके लिए जगत् एक ही है, परन्तु जो सोते हैं वे अपनी-अपनी दुनियाँ में पड़े हैं'' (अव० ९५)। यदि हम अपनी आत्मा को शुष्क रखें तो समझ सकते हैं कि शुभ और अशुभ में भेद नहीं; ये उस सत्ता के केवल क्षणिक रूप हैं जो इन दोनों से परे हैं। वाष्पीकरण तथा द्रवीकरण के माइलेशियन सिद्धान्त के आधार पर उस प्रतिभाशाली व्यक्ति ने यह निष्कर्ष निकाला था।

हेराक्लीटस में चाहे जितनी भी मौलिकता हो, है वह आयोनियाई ही। उसने आत्मा के महत्व को पहचाना अवश्य, परन्तु उसकी आग्निक, आत्मा एनेक्ज़िमेनीज़ की प्राण-आत्मा की ही भाँति पूर्णरूप से वैयक्तिक नहीं हो पायी। कुछ ऐसे अवशेष अवश्य हैं जो जीवात्मा की अमरता घोषित करते प्रतीत होते हैं, परन्तु उनका विस्तृत परीक्षण करने पर हम पाते हैं कि वे अमृतत्व का प्रतिपादन नहीं कर पाते। जगत् के जीवन रूपी सतत् प्रज्वलित अग्नि के अंश के रूप में ही यह आत्मा अमर कही जा सकती है। प्रत्येक मनुष्य की आत्मा यदि उसके शरीर की ही भाँति सतत् परिवर्तनशील हो तो अमृतत्व का क्या अर्थ है ? केवल यही सत्य नहीं है कि हम एक नदी में दो बार स्नान नहीं कर सकते, वरन् यह भी सत्य है कि किन्हीं भी दो क्रमिक क्षणों में हम एक (समान) नही रह जाते। यह तो उसके सिद्धान्त का केवल एक गौण पक्ष है, जिसने अपने समकालीन लोगों को बहुत अधिक प्रभावित किया था। एपि-

कार्मस (Epicharmos) ने इस सिद्धान्त को एक कर्ज़ख़ोर के मुँह से कर्ज़ न चुकाने के तर्क के रूप में प्रस्तुत कर इसका उपहास किया था। यदि वह व्यक्ति ऋण लेने वाले व्यक्ति से भिन्न है, तो ऋण को लौटाने का उत्तर-दायित्व उस पर कैसे होगा? हेराक्लीटस अपनी ईश्वरीमीमांसा (theology) में भी आयोनियन ही है। उसके 'प्रज्ञान' को, जो भी वस्तुओं से भिन्न तथा अभिन्न दोनों हैं, जीयस (Zeus) कहा भी जा सकता है कि और नहीं भी (अव० ६५)। कहने का अभिप्राय यह कि यह भी एनेक्ज़िमेनीज़ की 'वायु' अथवा ज़ेनोफ़ेनीज़ के जगत् की ही भाँति धार्मिक चेतना के अर्थ में ईश्वर नहीं है। वस्तुतः हेरेक्लाइटस अपनी पैगम्बरी शैली तथा धार्मिक भाषाओं के प्रयोग के बावजूद भी आयोनियन्स की धर्म-निरपेक्षता (Secularism) तथा सर्वेश्वर-वादिता की सीमा से आगे नहीं जा सका। वैयक्तिक ईश्वर तथा आत्मा की अमरता में विश्वास का प्रचार एक दूसरी दिशा में हो रहा था परन्तु प्लेटो के युग के पूर्व दर्शन के क्षेत्र में यह अपना स्थान न बना सकी।

पार्मेनीडीज़ (PARMENIDES)

अब हम उन आलोचनाओं की समीक्षा करेंगे जो आयोनियाई विश्व-विज्ञान के मूलभूत अभिग्रहों के विरुद्ध अन्य दृष्टिकोणों से की गयी हैं। पार्मेनी-डीज़ ने अपना लेखन-कार्य हेराक्लीटस के बाद में किया, और ज्ञात प्रतिरोध पूर्वक किया यह बात उसके काव्य की एक स्पष्ट भ्रान्ति से सिद्ध-सी लगती है, "जिसके लिए यह वही है और नहीं भी है, तथा वहीं नहीं है, तथा सभी वस्तुएं परस्पर-विरोधी दिशाओं में गमन करती हैं, (अव० ६, ८). यह शब्दा-वली किसी अन्य की ओर संकेत नहीं कर सकती, तथा हम यह भी अनुमान लगा सकते हैं कि इन शब्दों को मराथन (Marathon) तथा सेलामिस (Salamis) के बीच किसी काल में लिखा गया था। कविता से यह ज्ञात होता है कि पार्मेनीडीज़ ने जब इसकी रचना की थी तब वह युवक था, क्योंकि जो देवी उसके समक्ष सत्य का उद्घाटन करती है वह उसे 'युवक' कहकर सम्बोधित करती हैं, तथा प्लेटो का भी यह कथन है कि पैंसठ वर्ष की आयु में पार्मेनीडीज़ एथेन्स आया था और उसका सात्रेटीज़ से वार्तालाप हुआ था, जो उस समय 'बहुत छोटा' था। यह घटना ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी के मध्य की अथवा उसके थोड़े ही बाद की होगी। पार्मेनीडीज इलिया नगर का निवासी था तथा उसने इस नगर के लिए विधिनिर्माण किया

था। वह सामान्यतया जेनोफ़ेनीज़ का शिष्य माना जाता है। परन्तु यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि जेनोफ़ेनीज़ के इलिया में स्थायी निवास का कोई प्रमाण नहीं मिलता (अव० १६), तथा यह कहानी कि ज़ेनोफ़ेनीज़ ने इलियाई पन्थ की स्थापना की, प्लेटो के एक हास्यपूर्ण कथन पर आधारित है जिसके होमर हेराक्लीटस का अनुयायी भी सिद्ध होता है[1]। इसके स्थान पर यदि हम यह कहें कि पार्मेनीडीज़ पाइथागोरसवादी था, तो इस कथन की अधिक संतोषजनक पुष्टि हो सकती है। कहा जाता है कि उसने अपने पाइथागोरस-वादी शिक्षक एमेनिअस की (Ameinias), जो डायोकेइटस (Diochaitos) का पुत्र था, स्मृति में एक धर्मशाला (Shrine) बनवायी थी। यह बात उस शिला-लेख से प्रमाणित-सी प्रतीत होती है जिसमें उसने उसे समर्पित किया है। स्ट्रेबो (Strabo) ने इलिया के विधिनिर्माण के सन्दर्भ में जिन प्राप्त प्रमाणों अनुसरण किया है वे सब स्पष्टतया पार्मेनीडीज़ तथा ज़ीनो को पाइथागोरसवादी मानते हैं तथा आयम्बिनकस (Iamblichos) द्वारा सुरक्षित पाइथागोरस के अनुयायियों की सूची में पार्मेनीडीज़ के नाम का उल्लेख है।[2]

षट्पदी छन्दों (hexameter) में काव्य लिखकर पार्मेनीडीज़ प्राचीन आयोनियाई परम्परा से विमुख हो गया। परन्तु यह कोई प्रसन्नता का विषय नहीं था। उसके काव्य के द्वितीय भाग में वर्णित सृष्टिमीमांसा (cosmogony) के लिए हीसियॉड की शैली निश्चित रूप से उपयुक्त थी, परन्तु प्रथम भाग के शुष्क द्वंद्वन्याय (dialectic) के लिए यह पूर्णतया अनुपयुक्त थी। यह स्पष्ट है कि पार्मेनीडीज़ जन्मजात कवि नहीं था, तथा हमें जानना चाहिये कि क्यों उसने इस नये मार्ग को अपनाया। ज़ेनोफ़ेनीज़ का उदाहरण देने से इस तथ्य की समुचित व्याख्या नहीं होती, क्योंकि पार्मेनीडीज़ तथा ज़ेनोफ़ेनीज़ के काव्यों में कोई भी समानता नहीं है, वरन् पार्मेनीडीज़ की शैली हीसियॉड तथा आर्फिक शैली की भाँति है। और अब यह स्पष्ट रूप से दिखलाया जा चुका है,[3] कि पार्मेनीडीज़ की प्रसिद्ध कविता जिसमें वह देवी के घर की ओर अपने आरोहण का वर्णन करता है तथा जिसके शेष अंश देवी के कथन माने जाते हैं, रूढ़ [conventional] स्वर्गारोहणों की ही प्रतिच्छाया

१. Plato, Soph. २४२d, देखिये 'अरली ग्रीक फिलासोफी', पृष्ठ १४०.
२. इन सबके लिए देखिये, 'अर्ली ग्रीक फिलासोफी' अव० ८४ क्रमशः।
३. Diels, Parmenides Lehrgedichte, पृष्ठ ११, क्रमशः।

है जो उन दिनों के अन्तर्भान (apocalyptic) साहित्य से वर्णित नरक-पतन की ही भांति प्रायः प्रचलित थे। परवर्ती काल में प्लेटो के ग्रन्थ (Phaedrus) के मिथक तथा दान्ते के (Paradise) में इसका अनुकरण पाते हैं। परन्तु यदि इस प्रकार के अन्तर्भान (apocalypse) से प्रेरित होकर ही पार्मेनीडीज़ ने काव्यात्मक रचना की, तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वह मंगलाचरण (Proem) उनके ग्रन्थ का बाह्य आभूषण नहीं, वरन् अनिवार्य अंश है; तथा यह एक ऐसा अंश है जिसकी पार्मेनीडीज़ के मस्तिष्क में अत्यन्त स्पष्ट धारणा ग्रन्थ के रचनाकाल के प्रारम्भ से ही थी। ऐसी स्थिति में उसकी समग्र रचनाओं का मूल मन्त्र हमें मंगलाचरण (Proem) में मिलेगा।

पार्मेनीडीज़ अपने बारे में बताते हैं कि वे एक रथ पर सवार हैं और उनकी यात्रा का पथ-प्रदर्शन वे सूर्यकुमारियाँ (Sun-maidens) कर रही है, जो निशा कक्षों (Halls of night) को छोड़कर उनके साथ आ गयी हैं। वे राजपथ से चलती हुई अहो-रात्रि के द्वार पर आती हैं, जिस द्वार में ताला बन्द है, तथा प्रवेश निशिद्ध है। द्वार की कुंजी न्याय (Right, Dike) के पालन में है, तथा सूर्यकुमारियाँ दण्डपाल (the Avenger) से अनुरोध कर उसे खुलवाती हैं, जब वे द्वार के अन्दर प्रवेश करते हैं तब वहाँ दिवस का साम्राज्य मिलता है। यात्रा का गन्तव्य एक देवी का राजप्रासाद है, जहाँ देवी पार्मेनीडीज़ का स्वागत करती है, तथा दो प्रकार के उपदेश देती है। एक सत्य (Truth) का मार्ग है, तथा दूसरा विश्वास (Belief) का भ्रान्तिजनक मार्ग, जिसमें लेश-मात्र भी सत्य नहीं है। यह सब वर्णन बिना किसी प्रेरणा के एवं विशुद्ध रूढ़िगत ढंग से हुआ है, अतएव इसकी व्याख्या अन्तर्भात शैली के सिद्धान्तों के अनुसार होनी चाहिये। इससे स्पष्ट सकेत मिलता है कि पार्मेनीडीज़ का मत-परिवर्तन हुआ था, तथा उसने भ्रान्ति (रात्रि) को पारकर सत्य (दिन) को प्राप्त किया था। उसके पूर्ववती भ्रम तथा परवर्ती उद्घाटित सत्य का ये मार्ग प्रतिनिधित्व करते हैं। हम लोगों ने उन तर्कों को देखा है, जिनके आधार पर यह विश्वास किया जा सकता है कि पार्मेनीडीज़ मूलतः पाइथागोरसवादी था, तथा ऐसे बहुत-से तथ्य हैं जिनसे अनुमान होता है कि विश्वास-पथ (The way of Belief) पाइथागोरस के विश्वविज्ञान का ही एक वृतान्त है। जो भी हो, इसे एक प्रकार के भ्रम के विवरण के अतिरिक्त और कुछ मानना सम्भव नहीं। यह बात देवी ऐसी शब्दावली में कहती है जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। पुनश्च, यह भ्रामक विश्वास जगत् के प्रति किसी सामान्य व्यक्ति का दृष्टिकोण नहीं है। यह एक विस्तृत दार्शनिक विकास (system)

है, जो आयोनियाई विश्वविज्ञान का एक दिशा-विशेष में स्वाभाविक विकास प्रतीत होता है, तथा पाइथागोरसवाद के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा दर्शन नहीं है जो इस आवश्यकता की पूर्ति करता हो।

इस मत के विरुद्ध यह आपत्ति की गयी है कि पार्मेनीडीज़ ने यदि इस सिद्धान्त का पूर्णरूपेण निराकरण किया होता तो उसने उसकी विस्तृत व्याख्या करने का कष्ट नहीं किया होता। परन्तु इस प्रकार की आपत्ति अन्तर्भान की परिपाटी के स्वरूप को न समझने के कारण है। उस सिद्धान्त का प्रतिपादन स्वयं पार्मेनीडीज नहीं करते, वह कार्य देवी करती है तथा इसी कारण वहाँ वर्णित विश्वासों को 'मर्त्यों' (मनुष्यों) का विश्वास कहा गया है। आत्मा के आरोहण का वर्णन उस प्रदेश के चित्रण के बिना पूर्णतया अधूरा रहेगा जहाँ से यह आत्मा निकल कर आयी है। पार्मेनीडीज़ उस मार्ग संगम पर खड़ा है जहाँ से रास्ते अलग होते हैं, अतः देवी को उन दोनों मार्गों के वारे में ज्ञान कराना चाहिये तथा यह भी वताना चाहिये कि उन मार्गों में कौन श्रेष्ठतर है परन्तु यह स्वयं एक पाइथागोरियस प्रत्यय है। अंग्रेजी के अक्षर (Y) को इसका प्रतीक वनाया गया, तथा यह धारणा इसाई युगों में भी मिलती है। अतएव मंगलाचरण के उपकरणों में दो प्रसिद्ध अन्तर्भान के प्रयोग मिलते, हैं प्रथम, स्वर्गारोहण तथा द्वितीय, मार्गों का विभाजन (the parting of the ways) इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वयं पार्मेनीडीज़ के लिए पाइथागोरसवाद से हटकर सत्य (Truth) पथ का अनुसरण करना उनके काव्य का मुख्य उद्देश्य था। तथा पार्मेनीडीज़ को समझने के लिए हमें उसे इसी दृष्टिकोण से देखना चाहिये। यह भी सम्भव है कि यदि पाइथागोरसवादी धार्मिक संघ के तथा साथ ही साथ वैज्ञानिक शाखा के पोषक न होते तो पार्मेनीडीज़ गद्य में ही अपने विचारों को व्यक्त कर संतुष्ट रह जाता। पाइथागोरीय संघ से उसका अलग होना भी एक विधर्मिता (Heresy) थी, तथा सभी विधार्मिकताओं की भाँति इसका औचित्य भी धार्मिक भाषा में ही सिद्ध किया चाहिये।

सभी आयोनियन्स ने यह मान-सा लिया था कि मूल-द्रव्य पृथ्वी, जल तथा अग्नि आदि विभिन्न रूप धारण कर सकता है, तथा इस प्रकार के दृष्टिकोण का अनुमान बर्फ जमने एवं भाप बनने जैसी प्रक्रियाओं को देखकर लगाया जा सकता है। एनेक्ज़िमेनीज़ ने आगे इन रूपान्तरों की व्याख्या करते हुए विरलीकरण तथा संक्षेपण को इनका कारण वताया (अव० ९)। इससे वस्तुतः यह विवक्षित होता है कि मूल-द्रव्य की रचना कणिकात्मक (Corpuscular) है, तथा

इसके कणों के मध्य एक प्रकार के रंध्र [Interstices] हैं। एनेक्जिमेनीज को अपने मत के परिणामों का पूर्वज्ञान रहा हो यह सम्भव नहीं लगता। किसी अप्रशिक्षित व्यक्ति के लिए यह आज भी सद्यः सुस्पष्ट नहीं है। परन्तु जब पाइथागोरसवादियों ने इन सिद्धान्तों का उपयोग किया तब तुरन्त समस्या उठ खड़ी हुई। जैसा कि हमने देखा है (अव० ८)। पाइथागोरसवादियों के अनुसार जगत् अपने बाहर स्थित निःसीम संहति (Boundless mass) से 'वायु' अथवा शून्य का प्रश्वास लेता है। जिन पिण्डों की सीमाओं का 'आकृतियों' के द्वारा निर्धारण हो चुका है उनमें विस्तार की प्रक्रिया की व्याख्या इसी निः-श्वास से होती है। जब तथ्य को इस रूप में उपस्थित किया गया, तो फिर अनेकों प्रश्न अनिवार्यतः उत्पन्न हुए।

इसी पाइथागोरीय संघ में गणित के उद्भव ने प्रथम बार चिन्तन की शक्ति को प्रकट किया। गणितज्ञ ही ऐसे व्यक्ति हैं जिनके लिए विचार (thought) और सत्ता (Being) दोनों एक ही है,[1] तथा यही वह सिद्धान्त है जिससे पार्मेनीडीज़ अपना दर्शन प्रारम्भ करते हैं। जिसकी सत्ता नहीं वह हमारे विचार का विषय नहीं बन सकता, तथा जो हमारे विचार का विषय नहीं हो सकता उसकी सत्ता भी नहीं हो सकती। अतएव यह महान् प्रश्न है कि सत्ता है अथवा नहीं [Is it or is it not ?] इस प्रश्न के समान है कि इसका विचार सम्भव है या नहीं [Can it be thought or not].

इस सिद्धान्त के प्रकाश में आगे विचार करते हुए पार्मेनीडीज़ 'इदमस्ति' कथन के परिणामों का विवेचन करते हैं। सर्वप्रथम, सत्ता की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि यह उत्पन्न हुई होती, तो यह या तो असत् से उत्पन्न होती या सत् से। यह असत् या अवस्तु से नहीं उत्पन्न हो सकती, क्यों-

---

१. जेलर (Phil. d. griech I. पृष्ठ ५५८ नं० १) ने पाँचवें अवशेष (क्योंकि जिसका विचार होता है और जिसकी सत्ता है दोनों एक ही वस्तु है) का इसी प्रकार अर्थ किया, तथा मुझे आज भी इसका एक मात्र यही भावानुवाद सम्भव लगता है। चौथे अवशेष के 'बोधनीय है' अर्थ के बारे में सभी लोग सहमत हैं और मैं इसे पाँचवे अवशेष के 'अवबोधन' से असम्बद्ध नहीं मान सकता। न तो मैं यही मानता हूँ कि अव्यय सदा वाक्य का उद्देश्य होता है, यथा II. X. १७४ (देखिये, लीफ की टिप्पणी)। परम्परागत दृष्टिकोण (जैसा कि गुड़विन ने M. T. ७४५ में दिया है) का अभिप्रायः है कि 'अस्तित्व' अतएव जिसकी वस्तुतः सत्ता है वाक्य में उद्देश्य है, जब कि इसका [अतएव जो वास्तव में है] वाक्यांश द्वारा खण्डन होता है।

कि असत् का अस्तित्व नहीं है। सत् से भी इसकी उत्पत्ति सम्भव नहीं, क्योंकि 'सत्' के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। स्वयं वस्तु के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं की भी उत्पत्ति सम्भव नहीं, क्योंकि ऐसा कोई रिक्त स्थान [शून्याकाश] नहीं है जिसमें यह कार्य हो सके। प्रश्न है, सत्ता का अस्तित्व है, अथवा नहीं? यदि अस्तित्व है, तो इसी समय है और पूर्णरूपेण है। इस प्रकार पार्मेनीडीज़ जगत् की सृष्टि के समस्त विवरणों का खण्डन करते हैं। शून्य से किसी वस्तु की उत्पत्ति सम्भव नहीं है [Ex nihilo nihil fit.]।

पुनश्च, यदि सत्ता है, तो हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि यह है, एवं इसमें न्यूनाधिक भाव सम्भव नहीं। अतः प्रत्येक स्थान पर इसका समान अस्तित्व है [इसके कारण विरलीकरण तथा संक्षेपन असम्भव है]। यह अविच्छिन्न और अविभाज्य है, क्योंकि इसके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं जो इसके अंगों को एक दूसरे से सम्बद्ध रहने में व्यवधान उपस्थित कर सके। अतएव यह पूर्ण है, तथा एक अविच्छिन्न, अविभाज्य ब्रह्माण्ड [plenum] है, यह बात पाइथागोरसवादी विच्छिन्न सत्ता के सिद्धान्त के विरुद्ध कही गयी है।

पुनश्च, यह अचल [immovable] है। यदि इसमें गति होती, तो यह शून्य आकाश में होती, परन्तु शून्य आकाश अवस्तु है, तथा अवस्तु की सत्ता नहीं है। यह सत्ता परिमित [finite] तथा मण्डलाकार [spherical] है, क्योंकि यह प्रत्येक दिशा में समान रूप से वास्तविक है और मण्डल ही एक ऐसी आकृति है जो इस शर्त को पूरी करती है।

अतः सत्ता परिमित, मण्डलाकार, अचल, अविच्छिन्न ब्रह्माण्ड है, तथा इससे परे कुछ भी नहीं है। उत्पत्ति तथा विनाश केवल 'नाम' मात्र है तथा गति और रंग इत्यादि भी इसी प्रकार के अभिधान हैं। ये विचार [thought] भी नहीं है, क्योंकि विचार किसी वस्तु का होना चाहिये, और इनमें से कोई भी नाम वस्तु या सत् नहीं है।

एक पिण्डीय सत् का सिद्धान्त हमें अनिवार्य रूप से इसी निष्कर्ष की ओर प्रेरित करता है, तथा इस निष्कर्ष के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है। भौतिकी पाठ्यपुस्तकों का 'द्रव्य' [matter] ही पार्मेनीडीज का 'सत्' है, तथा जब तक हमें द्रव्य के अतिरिक्त कोई अन्य तत्त्व न उपलब्ध हो जाय, तब तक उसके द्वारा प्रख्यापित सत्ता से ही संतोष करना पड़ेगा। कोई भी परवर्ती दार्शनिक सम्प्रदाय इस सिद्धान्त की अवहेलना नहीं कर सका। परन्तु पार्मेनीडीज के इस सिद्धान्त से स्थायी रूप से संतुष्ट होना भी असम्भव था।

इस सिद्धान्त के कारण व्यावहारिक जगत् के अस्तित्व का अपहरण हो जाता है, तथा जगत् का इतना अधिक अवमूल्यन हो जाता है कि यह भ्रामक सत्ता के स्तर पर भी नहीं रह पाता। यदि हमें जगत् की बुद्धिगम्य व्याख्या करनी है तो किसी न किसी प्रकार से गति को अवश्य मान्यता देनी पड़ेगी। जिस प्रकार प्रारम्भिक विश्वविज्ञान वेत्ताओं ने गति को माना था, इस प्रकार हम इसे स्वयं-सिद्ध नहीं मान सकते। यदि हमें पार्मेनीडीज़ के निष्कर्षों से मुक्त होना है तो हमें इसकी व्याख्या करना होगी।

४

अनेकत्ववादी-विचारक (THE PLURALISTS)

पार्मेनीडीज़ के निष्कर्षों से पलायन केवल दो शर्तों पर सम्भव था। प्रथम, थेलीज़ से समय के सभी लोगों द्वारा मान्य विश्वास कि 'जो कुछ है सब एक ही है', (एकमेवाम्द्वितीय) का त्याग। पार्मेनीडीज़ ने गति का निषेध केवल इसी विश्वास के कारण किया। सीमित क्षेत्र में गति का सम्प्रत्ययन सर्वथा समीचीन है, परन्तु एकत्व के अभिग्रहण के उपरान्त गति किसी भी वस्तु की व्याख्या नही कर सकती। यदि पार्मेनीडीज के एकम् का कोई भी अंश गतिशील होता है, तो इसका केवल यही तात्पर्य होगा कि इसी के बराबर किसी अन्य अंश ने तुरत इसका स्थान ले लिया। परन्तु चूंकि यह अंश पद से इसे विस्थापित करने वाले अंश से सर्वथा अभिन्न होगा, अतः गति का कोई अर्थ नहीं होगा तथा इसका विराम से प्रभेद नहीं किया जा सकता। अब हम एम्पीडोक्लीज़ (Empedokles) एवं एनेक्ज़ागोरस (Anaxagoras) के दर्शनों पर विचार करेंगे तथा यह पायेंगे कि दोनों पार्मेनीडीज के इस मत को स्वीकार करते हैं कि सत् का न आदि है न अन्त। दोनों इस बात से भी सहमत हैं कि सत् के एकाधिक प्रकार हैं। हमारे दृश्य-जगत् की व्याख्या कुछ मूल 'तत्त्वों' के मिश्रण तथा पृथक्करण से हो सकती है। 'एलीमेन्टम' (elementum) 'शब्द यूनानी (Stoicheion) (वर्णमाला का अक्षर) का लैटिन अनुवाद है, तथा इस अर्थ में इसका प्रयोग बहुत बाद में मिलता है, यद्यपि मूल तत्त्व न के सम्प्रत्य (conceftion) का निर्माण पहले हो चुका था। एम्पीडोक्लीज ने अपने 'तत्त्वों' को मूल (roots) कहा, तथा एनेक्ज़ागोरस ने उनको 'बीज' (seeds), परन्तु दोनों का तात्पर्य किसी न किसी शाश्वत एवं अविकल वस्तु से था। दोनों की यह मान्यता थी कि इन्द्रियगोचर वस्तुएं इन्हीं मूलों या बीजों का अस्थायी सम्मिश्रण हैं।

यदि पार्मेनीडीज के दर्शन का सहारा लिये विना जगत् की व्याख्या करनी है तो दूसरी शर्त, जिसकी पूर्ति आवश्यक है, वह यह है कि जिस गति को शरीर की प्रकृति का अन्तर्निहित धर्म मान लिया गया था उसके प्रारम्भ या स्रोत का विवरण देना आवश्यक है। तदनुसार, एम्पीडोक्लीज तथा एनेक्जागोरस दोनों ही गति के कारण का अभ्युपगम [Postulate] करते हैं। एम्पीडोक्लीज़ प्रेम तथा कलह को कारण मानता है, तथा एनेक्जागोरस उसे मनवुद्धित्व (Mind, nous) कहता है। जिस तत्त्व की वे दोनों अनुभूति कर रहे थे वह स्पष्टतः ऊर्जा (force) का परवर्ती भौतिक सम्प्रत्ययन था, परन्तु यह वात भी स्पष्ट है कि वे लोग इसे शरोर की शक्ति से पूर्णतया असम्पृक्त करने में अभी समर्थ नहीं थे। वे दोंनों ऊर्जाओं के अपने अभिग्रहण के सम्वन्ध में ऐसी शव्दावली का प्रयोग करते हैं जिससे स्पष्ट हो जाता है कि उनके सामने उर्जाओं का कुछ मूर्त चित्र था, तथा यदि हम अभी काफी हाल के विज्ञान में द्रवों [fluids] के योगदान पर ध्यान दें तो यह बात शीघ्र समझ में आ जायेगी। पुनः, यह भी द्रष्टव्य है कि आकर्षण एवं विकर्षण की शक्तियों अथवा परवर्ती काल की केन्द्राभिमुखी [centripetal] तथा केन्द्रापवर्ती [centrifugal] शक्तियों के समान एम्पीडोक्लीज ने भी गति के लिए दो स्रोतों का होना आवश्यक समझा। परन्तु एनेक्जागोरस ने घूर्णन [rotation] की उत्पत्ति के के लिए केवल एक ही शक्ति को पर्याप्त माना। घूर्णन-गति से अन्य सभी वस्तुओं की व्याख्या सम्भव है।

यदि हम इन दोनों वातों को एक साथ ले, तो हम उस सिद्धान्त को समझ सकते हैं जो एम्पीडोक्लीज़ एवं एनेक्जागोरस में उभयनिष्ठ है, तथा जिसे दोनों लगभग एक ही प्रकार की शव्दावली में व्यक्त करते हैं। प्रथमतः, ऐसी किसी वस्तु की वास्तविक सत्ता नहीं है जिसकी उत्पत्ति [genesis] तथा विनाश (phthora) होता हो। इस समस्या का निर्णय पार्मेनीडीज ने कर दिया था। परन्तु दूसरी वात यह है कि जगत् की वस्तुओं में स्पष्टतया उत्पत्ति एवं विनाश दृष्टिगोचर होता है। इन दोनों पक्षों में संगति का एकमात्र मार्ग यह है कि जिसे सामान्यतया उत्पत्ति कहा जाता है उसे सम्मिश्रण [mixture] मान लिया जाय, तथा विनाश को पृथक्करण [separation], इससे प्रथम निष्कर्ष यह निकलता है कि सम्मिश्रण को सत् में स्थान मिलना चाहिये अथवा दूसरे शव्दों में, सत् के विभिन्न प्रकार सम्भव हैं, तथा दूसरा निष्कर्ष होगा कि सम्मिश्रण तथा पृथक्करण का कोई कारण होना चाहिये।

एम्पीडोक्लीज़ (EMPEDOKLES)

एम्पीडोक्लीज सिसली के एक्रागस [Akragas] नगर का निवासी था, तथा एक लोकतांत्रिक नेता के रूप में उसका अपने नगर में महत्वपूर्ण स्थान था।[1] उसके जीवन-काल को मोटे तौर पर निर्धारण एक प्रामाणिक तथ्य द्वारा होता है। थूरिआई [Thourioi] को ई० पू० ४४४–३ में स्थापना हुई, और उसके थोड़े ही दिन बाद एम्पीडोक्लीज वहाँ गया था। यह यात्रा शायद उसके अपने नगर से निष्कासन के बाद हुई थी। अतएव वह एथेन्स के पेरिक्लियन [Periklean] युग के उत्कर्षतम काल में वर्तमान था। थूरिआई में उसकी भेंट हेरोडोटस तथा प्रोटागोरस से अवश्य हुई होगी। उसके बारे में हम निश्चित रूप से जानते हैं कि उसमें वैज्ञानिक अध्ययन तथा आर्फिक ढंग के रहस्यवादी धर्म का समन्वय मिलता है, परन्तु उसकी वैज्ञानिक जिज्ञासाओं ने उसे जिस दिशा में उन्मुख किया उसके कारण प्रोटागोरस से उसका मतभेद था। हमें ज्ञात है कि पाइथागोरस प्रमुखतया एक गणितज्ञ था, जबकि एम्पीडोक्लीज आयुर्विज्ञान की सिसली शाखा का संस्थापक था। इससे स्पष्ट होता है कि शरीर-क्रिया विज्ञान (Physiology) में उनकी रुचि उनकी परिकल्पना की विशिष्टता थी। इन दोनों दार्शनिकों में उसी प्रकार का भेद पाया जाता है जैसा परवर्ती काल में प्लेटो एवं एरिस्टॉटल के बीच था।

एम्पीडोक्लीज़ के धार्मिक उपदेशों से यहाँ हमारा कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। परन्तु अवान्तर रूप से हम उसकी रक्तरंजित बलियों (bloody sacrifices) की वीभत्सता का उल्लेख कर सकते हैं, जिन बलियों का उसने पुनर्जन्म अथवा जन्मान्तर के सिद्धान्त द्वारा औचित्य सिद्ध करना चाहा। उसके ग्रन्थ 'शुद्धीकरण' [purifications Katharmoi] के पर्याप्त अवशेष उपलब्ध हैं, तथा इस प्रकार के धर्म के लिए प्राचीनतम एवं श्रेष्ठतम अधिकार है। इनकी रचना षत्पदी छन्दों [hexameters] में हुई तथा उसके गम्भीर दार्शनिक काव्य की भी यही शैली है। इस दृष्टि में वह पार्मेनीडीज का अनुयायी है। यह बात उसके द्वारा कभी-कभी पार्मेनीडीज के द्वारा प्रयुक्त शब्दों के पुनरुत्पादन से सिद्ध होती है। दोनों में भेद केवल यही है कि वह वास्तव में कवि था, और पार्मेनीडीज कवि नहीं था।

---

१. प्रमाणों के सन्दर्भों के लिए देखिये, 'अर्ली ग्रीक फिलासोफी', अव० ९७ क्रमशः। अवशेषों के अनुवाद के लिए उसी का अव० १०५ देखिये।

जैसा कि संकेत किया जा चुका है, एम्पीडोक्लीज पार्मेनीडीज के इस सिद्धान्त को निःसंकोच मानते हैं कि 'अस्तित्व' (what is) असृष्ट तथा अविनाशी है परन्तु तत्त्वों अथवा 'मूलों' के मत का प्रतिपादन करने के कारण वे अपने को इलियाटिक दर्शन के अन्य निष्कर्षों से बचा लेते हैं। उन्होंने मूल द्रव्य चार माने : अग्नि, वायु, पृथ्वी, एवं जल। कुछ अन्य दृष्टियों से यह उन आदिकालीन मान्यताओं की ओर पुनर्गमन करना था जिन्हें माइलेशियाई लोग मानते थे (अव० १०)। विशेष रूप से, पृथ्वी को अन्य तीन महाभूतों के समकक्ष मानना प्रतिक्रियात्मक था। तथापि, यह द्रष्टव्य है कि एम्पीडोक्लीज ने 'वायु' को वाष्प से अभिन्न तथा इसे वाष्प एवं जल के मध्य की संक्रामी स्थिति न मानकर अग्नि तथा जल का समन्वयकारी बताकर प्रगतिशीलता का परिचय दिया। वस्तुतः उन्होंने यह आविष्कार किया था कि जिसे हम अन्तरिक्ष वायु कहते हैं वह एक पिण्ड है, तथा यह एक ओर शून्य आकाश से एवं दूसरी ओर वाष्प अथवा तुषार से सर्वथा भिन्न है। पार्मेनीडीज ने शून्य आकाश के अस्तित्व के विरुद्ध जो तर्क दिये थे उसी से प्रभावित होकर एम्पीडोक्लीज ने यह आविष्कार किया था। सामान्य व्यक्ति शून्याकाश के प्रत्यक्ष दर्शन की कल्पना कर सकता है। परन्तु एम्पीडोक्लीज के लिए यह अनिवार्य था कि वह इस प्रकार के सामान्य दृष्टिकोण के दोष को स्पष्ट कर दे। इस कार्य को उसने जल-घड़ी (Klepsydra) के प्रयोग से सम्पादित किया। उसने यह दिखाया कि जब तक किसी पात्र में वायु रहती तब तक उसमें जल प्रविष्ट नहीं हो सकता। जल उसमें तभी प्रवेश कर पायेगा, जब उसमें से वायु निकल जाय। इस महत्वपूर्ण आविष्कार के कारण वायु तथा जल को महाभूत मानने का उसका दोष क्षम्य हो जाता है। उसके पास ऐसा कोई साधन नहीं था, जिससे वह यह जान सके कि वायु तथा जल मूलतत्व नहीं है। वह हेराक्लीटस से शायद अग्नि के वास्तविक स्वरूप के बारे में कुछ संकेत प्राप्त कर सकता था। परन्तु यहाँ हमें स्मरण रखना होगा कि जब तक सूर्य तथा तारों को आग्नेय माना गया, तब तक सत्य का पता लगाना सरल नहीं था। एम्पीडोक्लीज के चार महाभूतों को एरिस्टॉटल तक ने स्वीकार किया, यद्यपि प्लेटो तथा उसके पाइथागोरसवादी मित्रों ने यह घोषणा की थी कि ये तथ्य अक्षरों (letters) से इतने भिन्न हैं कि वर्ण (Syllables) भी नहीं हो सकते।

एम्पीडोक्लीज ने इन चार मूलों (roots) के अतिरिक्त भौतिक द्रव्य (matter) के विभिन्न स्वरूपों के आकर्षण की व्याख्या के लिए एक ऐसी वस्तु

का अभ्युपगम किया जिसे प्रेम (Love, phili) कहा। तथा उनके विघटन की व्याख्या करने वाले तत्त्व को विग्रह (strife neikos) कहा। उन्हें वह स्पष्ट रूप से पिण्डों की संज्ञा देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त जल-घड़ी पर प्रयोग द्वारा ही उसे इन दोनों की कार्यप्रणाली सूझी। हम पार्मेनीडीज़ के गोलक (sphere) जैसी किसी वस्तु से प्रारम्भ करते हैं जिसमें प्रेम चारों महाभूतों को एक प्रकार के द्रवत्व में मिश्रित करता है। विग्रह इस गोलक को बाहर से आवृत्त करता है। जब विग्रह गोलक के अन्दर प्रवेश करता है तब प्रेम इसके केन्द्र की ओर खिसकता है, तथा धीरे-धीरे चारों महाभूत एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं। यह स्पष्टतया जगत् के निःश्वास के प्राचीन मत का अनुकूलन है। परन्तु एम्पीडोक्लीज की यह भी मान्यता थी कि श्वास-प्रक्रिया हृदय के संकोच तथा प्रसारण पर निर्भर करती है। अतः हम पाते हैं कि विग्रह ज्योंही गोलक के निम्नतम या केन्द्रीय विन्दु तक प्रविष्ट हो जाता है और प्रेम उसके केवल मध्य भाग में सीमित रह जाता है, तब विपरीत प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। प्रेम का विस्तार होने लगता है। ज्यों-ज्यों प्रेम गोलक के अधिकाधिक भाग पर कब्जा करने लगता है त्यों-त्यों एक बार पुनः विग्रह गोलक के बाहर जाने लगता है, जैसे कि जल-घड़ी में जल के प्रवेश से वायु बाहर निकल जाती है। वस्तुतः प्रेम तथा विग्रह का जगत् के लिए वही महत्त्व है जो रक्त तथा वायु का शरीर के लिए। शरीर क्रिया-विज्ञान के उदाहरण से आयुर्विज्ञानी विचारधारा के संस्थापक का प्रभावित होना स्वाभाविक था, जिन्होंने सर्वप्रथम हृदय से रक्त के प्रवाह एवं पुनःप्रवाह के सिद्धान्त का निरूपण किया था। जैसा कि स्वयं एम्पीडोक्लीज़ कहते हैं, प्रेम को आकर्षण शक्ति मानने का सम्प्रत्ययन भी शरीर क्रिया-विज्ञान से उद्भूत है। उनका कथन (अव० १७, २१, २६) है कि इस बात का अवलोकन किसी ने नहीं किया था कि मनुष्य अपने शरीर के अन्दर की जिन शक्तियों से परिचित है वे ही इस विराट् विश्व के जीवन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रतीत होता है कि विश्व के सकोच-विकोच की कोई यांत्रिक व्याख्या प्रस्तुत करना उसने आवश्यक नहीं समझा। यह तो जगत् का जीवन ही है।

इस दृश्यमान जगत् में नश्वर वस्तुओं के समूह का अस्तित्व तभी सम्भव है। जब प्रेम तथा विग्रह दोनों ही जगत् में हों, अतएव मर्त्य वस्तुओं की दो बार उत्पत्ति तथा दो बार विनाश होगा। (अव० १७, ३-५)। एक मृत्यु तब होती है जब प्रेम का विकास होता है, तथा सभी महाभूत एक दूसरे

से मिलकर एकीभूत हो जाते हैं; तथा दूसरी तब होती है जब विग्रह एक बार पुनः गोलक में प्रवेश करता है, तथा महाभूतों का दुबारा पृथक्करण होता है। महाभूत ही शाश्वत हैं, विभिन्न वस्तुएं तो केवल अस्थिर मिश्रण (Compound) हैं। इन वस्तुओं की उत्पत्ति तब होती है जब महाभूत एक दूसरे के भीतर प्रवेश कर किसी दिशा में प्रवाहित होते हैं। ये मर्त्य अथवा नश्वर इस लिए हैं क्योंकि इनका कोई स्वयं का द्रव्य (phusis) नहीं है, द्रव्य तो केवल 'चार मूलों' में ही है। अतः वस्तुओं की मृत्यु तथा विनाश का कोई अन्त नहीं (अव० ८)।[1] महाभूतों के मिश्रण से इनकी उत्पत्ति होती है, और जब मिश्रित से तत्त्व अलग-अलग हो जाते हैं। इनकी तब मृत्यु हो जाती है। अग्नि, वायु, पृथ्वी तथा जल के महाभूतों तथा प्रेम एवं विग्रह की शक्तियों के अतिरिक्त और कुछ भी शाश्वत नहीं है।

एम्पीडोक्लीज़ ने विभिन्न वस्तुओं की रचना की किस प्रकार व्याख्या की है इसके बारे में हमें कम जानकारी है। उनकी व्याख्या के लिए उसने चार महाभूतों को पर्याप्त समझा और इन महाभूतों का आपस में अनन्त अनुपातों में संयोग हो सकता है। इस सन्दर्भ में उसने चित्रकार का उदाहरण प्रस्तुत किया जो केवल चार रंगों के मिश्रण से बहुत-से वर्णों के चित्र बनाता है (अव० २३)। परन्तु उसने यह अवश्य देखा कि कुछ मिश्रण सम्भव हैं, तथा कुछ असम्भव। शराब से जल शीघ्र मिल जाता है, परन्तु तेल से नहीं (अव० ९१)। इसका कारण उसने मिश्रित होने वाले महाभूतों के द्वारों (Passage) अथवा रंध्रों (pores) में एकरूपता की उपस्थिति अथवा अभाव बताया। एम्पीडोक्लीज़ ने पार्मेनीडीज़ द्वारा किये गये शून्य के निषेध को स्वीकार किया था। शून्य के निषेध से अपने इस मत का एम्पीडोक्लीज़ ने किस प्रकार समन्वय किया इस बारे में खोज करने से कोई लाभ नहीं। इसके 'मिश्रण के अनुपात' के सिद्धान्त को एरिस्टॉटल बहुत महत्त्व प्रदान करते हैं। यह सिद्धान्त निश्चित रूप से पाइथागोरस के 'निर्धारित अनुपातों में सम्मिश्रण' [blending in fixed ratios] के सिद्धान्त का अनुकूलन है। धुन मिले तारों ने एक बार पुनः अपना प्रभाव दिखाया।

विश्वविज्ञान के वृतान्तों के कारण अनेक कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं। कहा जाता है कि महाभूतों का जब प्रथम बार पृथक्करण हुआ तब ऊपरी

---

१. इन पंक्तियों की जो व्याख्या लंवज्वाय ने (फिलासोफिकल रिव्यू xviii, पृष्ठ ३७१) की है उसे मैंने अपनाया है।

गोलार्ध में अग्नि थी, तथा निम्न गोलार्ध में वायु। इसके कारण साम्यावस्था (equilibrium) भंग हुई तथा लोकों को दैनिक धुर्णन (diurnal retation) की उत्पत्ति हुई। यह धुर्णन पृथ्वी को केन्द्र में स्थित रखता है। यों यदि मोटे तौर पर देखा जाय तो पृथ्वी को स्वभावतः निम्न गोलार्ध में गिर जाना चाहिये था, परन्तु ऐसा इसलिए नहीं होता, क्योंकि निम्न-गोलार्ध सतत् उच्च-गोलार्ध बनाता जाता है। यहाँ पर विचार में पर्याप्त अस्पष्टता दीख पड़ती है। जगत् के एकान्तिक अधोपरिवाद को एनेक्जिमेण्डर ने पहले ही अमान्य कर दिया था, परन्तु एम्पेडोक्लीज ने इसे पुनः मान लिया। परन्तु यहाँ पर भी वह संगत नहीं प्रतीत होता। आग्निक गोलार्ध दिन है, तथा वायुमय गोलार्ध रात्रि। सूर्य तो केवल आग्निक गोलार्ध का ऐसा प्रकाश है जो पृथ्वी से पुनः प्रतिबिम्बित होता है, तथा एक स्थल पर केन्द्रित हो जाता है। हम यह कहने में असमर्थ हैं कि एम्पीडोक्लीज़ ने किस प्रकार इस सिद्धान्त का विस्तृत निरूपण किया। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि मूलतया वह क्रियाविज्ञानवेत्ता था, तथा खगोल-विज्ञान में वह बहुत कुशल नहीं था।

यह बात तो निश्चित ही है कि उसका क्रिया-विज्ञान प्रारम्भिक होते हुये भी अपेक्षाकृत कहीं अधिक प्रभावोत्पादक है। उसने श्वसन (respiration) को जो महत्त्व दिया, तथा किस प्रकार हृदय की गति से इसे सम्बद्ध किया, इसे हम देख चुके हैं। अतएव उसके लिए यह स्वाभाविक था कि वह रक्त को विचार का सहकारी (what we think with)[1] माने, तथा हृदय को केन्द्रीय संवेदनतन्त्र (Sensorium) बतावे। यहाँ पर वह क्रीटन के निवासी अल्कमेइ-अन के (Alkmaion), जिसने इन्द्रिय-प्रत्यक्ष के लिए मस्तिष्क के महत्त्व का आविष्कार किया था, सिद्धान्त से विचलित हो गया। परन्तु उसने अल्कमेइअन द्वारा रंध्रों अथवा द्वारों के माध्यम से विभिन्न इन्द्रियों की व्याख्या को स्वीकार किया। इन रंध्रों में निःस्त्रावन (effluences) के कारण ही संवेदन होता है। विग्रह की प्रक्रिया में वृद्धि ही जीवों की उत्पत्ति का कारण बतायी गयी। सृष्टि के आदि में अभिन्नीवृत जीव-समूह थे, जो धीरे-धीरे पृथक् हुए और उनमें जो योग्यतम थे वे जीवित रहे। एम्पीडोक्लीज यह भी वर्णित करते हैं कि कैसे जिस समय प्रेम अपना प्रभुत्व स्थापित कर रहा था और जब सभी घटनाएं आज के जगत् में होने वाली घटनाओं के बिल्कुल विपरीत घटी थी, उस समय मर्त्य जीवों का उद्भव हुआ। उस दशा में हाथ-पैर तथा अन्य अवयव अलग-

---

१. प्लेटो, Phaedo, पृष्ठ ९६ b.।

अलग उत्पन्न हुए थे, तथा उन्हें विना किसी क्रम के जोड़ दिया गया था, जिससे दैत्यों की उत्पत्ति हुई। यथा 'मनुष्य के सिर से युक्त वैल तथा वैल के सिर से युक्त मानव'। प्रतिलोम विकास का इस प्रकार असामान्य चित्र सम्भवत: मिस्र के स्मारकों के प्रभाव के कारण खींचा गया।

एनेक्ज़ागोरस (ANAXAGORAS)

एरिस्टॉटल ने कहा है कि क्लेज़ोमेना इवासी एनेक्जागोरस आयु में एम्पीडोक्लीज़ से ज्येष्ठ था, परन्तु अपनी रचनाओं की दृष्टि से वह एम्पीडोक्लीज़ के बाद आता है।[1] परन्तु इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि उसने अपनी रचनाएं एम्पीडोक्लीज़ के वाद में की, अथवा उसकी उपलब्धियां एम्पीडोक्लीज़ से निम्न कोटि की थीं। उसके काल के बारे में कुछ निश्चित नहीं हो पाया है, परन्तु हम यह जानते हैं कि वह एथेन्स में आकर रहा, तथा पेरिक्लीज़ से उसकी अच्छी मित्रता थी। प्लेटो ने साक्रेटीज के मुख से यह कहलाया है कि पेरिक्लीज़ की वक्तृत्व-शक्ति के कारण उसका एनेक्ज़ागोरस से साहचर्य था। इसी घनिष्ठ सम्वन्ध के कारण एनेक्ज़ागोरस के विरुद्ध अधार्मिकता (irreligion) का आरोप लगाया गया। सामान्यतया यह माना जाता है कि यह घटना पेलोपोनेसियन युद्ध के ठीक पहले की है। परन्तु वास्तव में न तो इसकी तिथि ज्ञात है और न उस आरोप का सही रूप ही ज्ञात है। सूर्य के बारे में उसने जो परिकल्पनाएं की, उनकी अपेक्षा वह आरोप कहीं अधिक निश्चित रहा होगा। हमें यह मालूम है कि डायगोरस (Diagoras) भी, जो उन दिनों का एक विलक्षण नास्तिक था, अपने मत के कारण नहीं, वरन् मन्दिरों तथा त्योहारों के विरुद्ध भाषा के प्रयोग के अपराध में दण्डित हुआ था।[2] पेरिक्लीज़ ने किसी प्रकार से एनेक्ज़ागोरस को मुक्त करा लिया, तथा उसके वाद वह लैम्प्साकोस (Lampsakos) में जाकर निवृत्ति-मार्गी हो गया, तथा उसने एक संघ की स्थापना की। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि प्लेटो की रचनाओं में यह नहीं मिलता कि साक्रेटीज़ की एनेक्ज़ागोरस से कभी भेंट हुई थी, यद्यपि एनेक्ज़ागोरस के दर्शन में उसकी रुचि थी। इसी वात से यह अनुमान लगाया जाता है कि अधार्मिकता के आरोप की जो तिथि सामान्यतया वतायी जाती है उसकी

---

१. प्रमाणों के सन्दर्भों के लिए देखिये, 'अरली ग्रीक फिलासोफी', १२० क्रमशः।
२. देखिये, Lysias की रचनाओं (६, १७) में सुरक्षित एण्डोकाइडोज़ के विरुद्ध दिया गया भाषण।

अपेक्षा और पहले ही यह आरोप लगा होगा। एक सच्चे आयोनियाई की भाँति एनेक्ज़ागोरस ने भी अपनी रचनाएँ गद्य में की तथा उसके ग्रन्थ के पर्याप्त अवशेष उपलब्ध हैं।

एनेक्जागोरस की मान्यता है कि यवन लोग (Hellenes) जब सृष्टि तथा प्रलय की बात करते हैं, तब वे दोषयुक्त हैं। सृष्टि तथा प्रलय को उन्हें क्रमशः सम्मिश्रण (commixture) तथा विघटन (decomposition) कहना चाहिये (अव० १७)। यह एम्पीडोक्लीज का ही सिद्धान्त है, जिससे एनेक्ज़ागोरस निश्चित रूप से परिचित लगता है। चाहे जो हो, यह निर्विवाद है कि एम्पीडोक्लीज की भाँति उसने भी अपने दर्शन का प्रारम्भ पार्मेनीडीज़ के अस्तित्व की व्याख्या से किया। दूसरी ओर एनेक्ज़ागोरस आयोनियाई भी था। कहा जाता है कि वह 'एनेक्जामेनीज के दर्शन' का अनुयायी रहा। उसके विशद विश्वविज्ञान से इस कथन की सत्यता सम्पुष्ट होती है। अतएव यदि उसने सर्वथा भिन्न पूर्व-मान्यताओं से अपने दर्शन का प्रारम्भ किया तो आश्चर्य की बात नहीं, यद्यपि इनकी निष्पत्ति भी औषधीय स्रोतों से हुई है। उस युग में आयुर्विज्ञान में लोगों की प्रगाढ़ रुचि थी।

एम्पीडोक्लीज़ की ही भाँति एनेक्जागोरस ने भी अनेक स्वतन्त्र द्रव्यों का अभ्युपगमन किया, जिसे वह बीज (Seeds) कहता है, परन्तु ये बीज अग्नि, वायु, पृथ्वी तथा जल के चार मूल नहीं थे। इसके विपरीत ये मिश्रण (compounds) हैं। उदाहरणार्थ, एम्पीडोक्लीज ने माना था कि अस्थि की व्याख्या तत्त्वों के एवं विशेष अनुपात मिश्रण से की जा सकती है। परन्तु एनेक्जागोरस इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने बताया कि रोटी तथा जल से केश, धमनियां (veins), नाड़ियां (arteries)[१] मांस, मांसपेसियां, अस्थियां तथा अन्य सब उत्पन्न होता है तथा उसने प्रश्न किया, कि केश-रहित वस्तु से केश कैसे बनेंगे, जहाँ मांस नहीं है वहाँ से मांस कैसे बनेगा? (अव० १०)। ये शब्द स्पष्टतः एम्पीडोक्लीज के खण्डन प्रतीत होते हैं।[२]

परन्तु इस कथन-प्रणाली के कारण उसके सिद्धान्त के बारे में एक बहुत बड़ी गलतफहमी पैदा हो गयी। एरिस्टॉटल के प्राणिशास्त्र सम्बन्धी

---

१. इस काल तक धमनियों एवं नाड़ियों का वास्तविक भेद ज्ञात नहीं था। ऐसी मान्यता थी कि नाड़ियों में वायु होती है, तथा ये श्वासनलिका [wind pipe] से संयुक्त होती हैं।

१. सांख्य के सत्कार्यवाद से यहाँ एनेक्जागोरस का मत मिलता है—अनुवादक।

रचनाओं में विभिन्न जालों (tissues) को, जिनमें से कुछ का एनेक्जागोरस़ ने पल्लवन किया है, 'समांशी' (homoeomerous) कहा गया है। इस शब्द का अर्थ है कि उसके सभी अंश अंशी के ही समान हैं। अस्थि के अंश भी अस्थि हैं, रक्त के अंश भी रक्त हैं। अस्थि, मांस एवं रक्त जैसी वस्तुओं में तथा हृदय अथवा फेफड़ों जैसे 'अवयवों' में यही भेद है। स्वयं एनेक्जागोरस ने इस शब्दावली का प्रयोग किया था इस बात का कोई प्रमाण नहीं है, और उससे ऐसा प्रयोग किया होता तो उससे युक्त अवशेषों को उद्धृत न किया जाय, यह आश्चर्य का विषय है। एपिक्युरियन्स ने ऐसी शब्दावली को उसके नाम से सम्बद्ध अवश्य किया, परन्तु उन लोगों ने भी इसे ठीक से समझा नहीं। उन लोगों ने इसका अर्थ यह लगाया कि रोटी तथा जल में ऐसे सूक्ष्म कण होंगे जो रक्त, मांस तथा अस्थियों के कणों के समान होंगे। इस व्याख्या को जब लुक्रिटस [Lucretius] ने मान लिया तबसे यह प्रचलित हो गयी।

हमने देखा कि एनेक्जागोरस 'एनेक्जिमेनीज के दर्शन' का अनुयायी रहा तथा अपने विस्तृत विश्वविज्ञान में वह यथासम्भव उसके निकट रहा। वह यह नहीं कह पाया कि सभी वस्तुएँ किसी न किसी रूप में विरलीकृत अथवा सकुचित 'वायु' है, क्योंकि पार्मेनीडीज ने इस मत का खण्डन कर दिया था। यदि जगत् की व्याख्या करनी ही है तो हमें मूलतः अनेकत्त्व स्वीकार करना होगा। अतएव उसने प्रारम्भिक 'वायु' के स्थान पर जगत् की एक ऐसी अवस्था को स्वीकार किया जिसमें समस्त वस्तुएँ सहवर्ती थीं, तथा परिणाम एवं लघुता दोनों दृष्टियां से अनन्त थीं (अव० १)। इसका तात्पर्य यह है कि मूल संघात का अनन्त विभाजन सम्भव था, परन्तु चाहे जितना भी विभाजन किया जाय, इसके प्रत्येक अंश में समस्त वस्तुएं वर्तमान रहेंगी और ऐसी स्थिति में वह अंश पूर्ण के समान ही होगा। यह मत 'तत्त्वों' के सिद्धान्त का पूर्णतः विलोम है, जिसका स्पष्ट रूप से खण्डन उसके इस कथन से मिलता है कि इस संसार में जो वस्तुएं हैं उनका न तो कुल्हाड़ी द्वारा विच्छेद हुआ है, न वे एक दूसरे से पृथक् ही हैं' (खण्ड – ८)। प्रत्येक वस्तु में प्रत्येक वस्तु का भाग (Portion) विद्यमान हैं।[1]

परन्तु यदि बात यहीं समाप्त हो जाती, तो हम जगत् की पहले की गयी

---

१. रामानुज के पंचीकरण सिद्धान्त से इसका पर्याप्त साक्ष है 'सर्वं सर्वात्मकम्' —अनुवादक।

व्याख्या से अधिक आगे नहीं बढ़ पाते, क्योंकि एक बीज से दूसरे को पृथक् करने वाला कोई तत्त्व नहीं है। इसका उत्तर यह है कि यद्यपि सभी वस्तुओं में सभी के भाग विद्यमान हैं, चाहे विभाजन जितना भी सूक्ष्म किया जाय, तथापि किसी वस्तु में किसी वस्तु का एक अधिक अंश विद्यमान है तो किसी दूसरी में अन्य किसी वस्तु का अंश अधिक है। ऐसी स्थिति मूल अविभाजित संघात में भी पायी जाती है, जहाँ सभी वस्तुएँ एक साथ विद्यमान थी। चूंकि वहाँ वायु तथा आकाश (aether), जिसका एनेक्जागोरस ने अग्नि अर्थ लगाया, के अंशों की मात्रा अन्य वस्तुओं की अपेक्षा अधिक थी, अतः वह समस्त संघात वायु तथा आकाश जैसा प्रतीत होता था। एनेक्जिमेनीज की भाँति एनेक्जागोरस यह नहीं कह सका कि यह वास्तव में वायु है, क्योंकि उसने स्वयं आविष्कार किया था, अथवा एम्पीडोक्लीज से सीखा था, कि वायुमण्डलीय वायु की पृथक् मूर्त सत्ता है। जिन प्रयोगों के द्वारा उसने इस तथ्य को प्रदर्शित किया, उसके कुछ सन्दर्भ हमें उपलब्ध हैं। उसने इस प्रयोजन के लिए जलते हुए चमड़ों का उपयोग किया। परन्तु एनेक्जिमेनीज के सिद्धान्त की ओर यथासम्भव उन्मुख रहने का एनेक्जागोरस का प्रयास स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है।

अतः हम देखते हैं कि दृश्यमान जगत् में जो भेद उपलब्ध हैं उनकी व्याख्या मिश्रित भागों के परिवर्ती अनुपातों से हो सकती है। किसी वस्तु का अमुक नामकरण इसलिए होता है क्योंकि उसमें उन गुणों का सर्वाधिक समावेश है, यद्यपि सच पूछा जाय तो उसमें सभी गुण विद्यमान रहते हैं। उदाहरणार्थ, बर्फ काला और सफेद दोनों है।[1] परन्तु इसे हम सफेद इसलिए कहते हैं क्योंकि काले की अपेक्षा श्वेत गुण इसमें अधिक है। जैसा कि एनेक्जागोरस के लिए स्वाभाविक था, प्रत्येक 'बीज' में विद्यमान 'वस्तुओं' से उसका मुख्य तात्पर्य था उष्ण तथा शीत, नम तथा शुष्क इत्यादि के परम्परागत प्रतिपक्ष। जब वह यह कहता है कि 'इस जगत् में जो वस्तुएं हैं उनका एक दूसरे से कुल्हाड़ी द्वारा विच्छेद नहीं हुआ है' (खण्ड ८) तब इन्हीं प्रतिपक्षों के बारे में कथन कर रहा है। एम्पीडोक्लीज ने इन चारों प्रतिपक्षों में से प्रत्येक को अपने आप में 'मूल' मान लिया था, परन्तु एनेक्जागोरस के प्रत्येक 'बीज' में उन सब का समावेश है। इस प्रकार उसने सोचा कि वह पोषण तथा विकास की व्याख्या कर सकेगा क्योंकि यह स्पष्ट है कि किसी एक 'बीज' को पृथक् रूप से लेने की अपेक्षा

---

१. Sextus, Pyrrh. hypot. I. ३३.

यदि कुछ बीजों को एक साथ लिया जाय, तो उनके परिणाम प्रतिपक्षों का एक सर्वथा भिन्न अनुपात प्रस्तुत करेंगे।

गति के स्रोत की समस्या का समाधान अभी शेष ही है। जगत् की ऐसी अवस्था से, जिसमें सभी वस्तुएं समवेत थीं, इस नानात्मक सत्ता की कैसे उत्पत्ति हुई ? एम्पीडोक्लीज की भाँति एनेक्ज़ागोरस ने भी गति के स्रोत के लिए अणुविश्व की ओर दृष्टिपात किया। परन्तु उसने अपने प्रयोजन के लिए इस प्रकार के स्रोत को पर्याप्त समझा। उसने इसका नामकरण किया मनस् 'बुद्धित्व' (Mind, nous), क्योंकि यह गति तथा हमारे ज्ञान दोनों का स्रोत है। परन्तु उसे किसी अमूर्त शक्ति के सम्प्रत्ययन-निर्माण में एम्पीडोक्लीज़ की अपेक्षा अधिक सफलता नहीं मिली। उसके लिए भी गति का स्रोत एक प्रकार का 'तरल' है। यह सभी वस्तुओं की अपेक्षा कृशतम (Thinnest) है (खण्ड १२) तथा, सर्वोपरि यह 'अमिश्रित' है, अर्थात् इसमें किसी अन्य वस्तु के भाग विद्यमान नहीं हैं। इसी कारण जगत् की सभी वस्तुओं पर इसका नियन्त्रण है। नियन्त्रण का तात्पर्य है अन्य वस्तुओं के ज्ञान एवं संचालन की शक्ति। पुनश्च, कुछ वस्तुओं में यह प्रवेश करता है, तथा अन्य में नहीं, और इसी से सजीव तथा निर्जीव के भेद की व्याख्या होती है। एक आवर्तक गति के द्वारा यह वस्तुओं का विभाजन तथा नियमन करता है। यह गति केन्द्र से प्रारम्भ कर आगे बढ़ती जाती है। इस सन्दर्भ में एनेक्ज़ागोरस ने वास्तव में इतना ही कहा। अपने ग्रन्थ फीडो (Pheado) में प्लेटो ने सात्रेटीज़ के माध्यम से इसकी आलोचना करते हुए कहा है कि उसने 'मनस्' को केवल एक दिव्य विभूति (deus ex machina, ९८ b) माना। एक निष्ठावान आयोनियाई की भाँति उसने सभी वस्तुओं की यथासम्भव यान्त्रिक व्याख्या करने का प्रयास किया। और एक बार जब आवर्तक गति का प्रारम्भ हो गया तब उसने शेष जगत् की व्यवस्था का भार इस पर छोड़ दिया।

तथापि यह विश्वास करना कठिन है कि एनेक्ज़ागोरस पाइथागोरसीय विज्ञान से पूर्णतया अनभिज्ञ था। चिओस (Chios) निवासी ओइनोपाइडीज़ (Oinopides) पश्चिम से आयोनिया में अपेक्षाकृत अधिक विकसित रेखा-गणित की प्रस्तावना कर रहा था, तथा स्वयं एनेक्ज़ागोरस को गणित के कुछ आविष्कारों का श्रेय मिलता है। यद्यपि उसने सूर्य-ग्रहण का आविष्कार तो नहीं किया था परन्तु यह अवश्य जानता था कि चद्रमा की अन्तर्स्थिति के कारण सूर्य-ग्रहण लगता है, तथा सूर्य के प्रतिबिम्बित प्रकाश के कारण ही

चन्द्रमा प्रकाशित होता है। परन्तु चन्द्र-ग्रहण का सही विवरण देना उसके लिए सम्भव नहीं था, क्योंकि पृथ्वी के मण्डलाकार होने वाले आविष्कार से या तो वह अनभिज्ञ था अथवा उसने जानबूझकर इसका खण्डन किया था। यहाँ पर भी वह एनेक्जिमेनीज़ की मान्यता का अनुमोदक रहा तथा पृथ्वी को चक्र के समान माना। ऐसी स्थिति में चन्द्र-ग्रहणों की व्याख्या करने के लिए उसे अगोचर तथा कृष्णवर्ण के पिण्डों की परिकल्पना करनी पड़ी। उसके समकालीन लोगों को इस प्रकार का सिद्धान्त शायद सर्वाधिक उपयुक्त लगा हो और एनेक्ज़ेगोरस पर भी उसका प्रभाव पड़ा हो। ई० पू० ४६८/७ में एइगॉस्पोटेमस (Aigospotamos) में जो विशाल उल्कोत्पन्न पाषाण का पात हुआ था उसकी ओर किसी न किसी रूप में उसका ध्यान गया, तथा उससे उसने अनुमान लगाया कि आवर्तक गति के कारण पृथ्वी के कुछ टुकड़े पृथक् होकर प्रस्तर-क्षेपणी (ढ़ेलवांस, sling) जैसे दूर फेंके जा सकते हैं। किसी समय यह गति आज की अपेक्षा बहुत तीव्र थी, और इस प्रकार सूर्य, जो पेलोपोनेसस प्रायद्वीप से भी बड़े, दग्ध लौह खण्ड की भाँति था, तथा चन्द्रमा, जो पृथ्वी से बना था, अपने वर्तमान स्थानों तक पहुँचे थे। पाइथेगोरीय विज्ञान की तुलना में यह सब पर्याप्त पश्चगामी लगता है। इस विज्ञान को वास्तव में आयोनियाई कभी भी आत्मसात् नहीं कर सके। इन विषयों में डेमाक्रिटस भी प्रायः एनेक्ज़ेगोरस की भाँति ही पिछड़ा रहा, तथा स्वयं एरिस्टॉटल भी पाइथेगोरीय सम्प्रत्ययन को पूर्णतया समझ न सका।

यद्यपि एम्पीडोक्लीज़ ने प्रेम तथा विग्रह को मिश्रण तथा पृथक्करण का कारण बतलाकर उनका चार महाभूतों से, जो मिश्रित तथा वियोजित होते हैं, प्रभेद किया था, परन्तु वह उन चार महाभूतों के लिए 'देवता' शब्द का प्रयोग उसी अर्थ में करता रहा जिस अर्थ से हम लोग आज परिचित हैं। उसने उस लोक का नामकरण भी किया, जिसमें ये महाभूत आपस में मिश्रित रूप में विद्यमान थे। एनेक्ज़ागोरस ने 'देवता' शब्द का प्रयोग केवल गति के स्रोत के लिए किया। उस अर्थ में तथा उस सीमा तक एनेक्ज़ागोरस को ईश्वरवाद (theism) का प्रवर्तक मानना असंगत नहीं। दूसरी ओर, प्रतीत होता है कि इसी कारण उसके समकालीन लोगों ने उसे अनीश्वरवादी (atheist) घोषित किया। ऐसा प्रतीत होता है कि मनस् या बुद्धित्व (Nous) को उत्कर्ष प्रदान करने में देवत्व का निषेध कर वह जेनोफ़ेनीज़ का अनुगामी बना। उसके विरुद्ध अधार्मिकता के आरोप के सन्दर्भ में सूर्य तथा चन्द्रमा के बारे में उसके कथनों

का प्रायः उल्लेख होता है, यद्यपि आज हम यह कहने में समर्थ नहीं हैं कि उस आरोप का समुद्देश्य क्या था, अथवा वह आरोप पूर्णतया सिद्ध हुआ था या नहीं। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि पेरिक्लोज़ आयोनियाइयों की धर्मनिरपेक्ष धारणा का समर्थक था, तथा यह सर्वथा सम्भव है कि उसकी निकट-वर्ती मण्डली ने प्राचीन पद्धति वाले एथेन्सवासियों की दृष्टि में उस समय तक पावन लगने वाले अनुष्ठानों का उपहास कर उनकी धार्मिक संवेदनशीलता को संपीड़ित किया हो।[1]

१. सूर्य तथा चन्द्रमा की उपासना एथेन्स के धर्म का अंग नहीं थी, परन्तु एनेक्ज़ागोरस ने ई० पू० ४६३ के सूर्य-ग्रहण के समय 'संचालक' द्वारा निर्धारित उपायों का उपहास किया होगा। वह निर्विवाद रूप से अशु-चिता (orofane) होगी।

५

इलियाटिक्स तथा पाइथागोरियन्स

ज़ीनो (ZENO)

हमने (अव० ४६) देखा है कि किस प्रकार पाइथागोरसवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में इलियाई मत की उत्पत्ति हुई। अब हमें पाइथागोरस के मत के विरुद्ध दिये गये विस्तृत तर्कों पर विचार करना है। इसका सबसे बड़ा आलोचक ज़ीनो था। प्लेटो के अनुसार ज़ीनो के युवाकाल में रचित ग्रन्थ का लक्ष्य था पार्मेनीडीज़ की शिक्षाओं का समर्थन करना।[1] उसने यह दिखाया कि विरोधियों के 'भेद-प्रपंच' (If things are a many) की प्राक्कल्पना का ठीक ढंग से विश्लेषण किया जाय तो प्राप्त परिणाम उसके गुरू के मत के समान ही विरोधाभासी होंगे। हमें प्लेटो के ही कथन से यह ज्ञात होता है कि ज़ीनो उम्र में पार्मेनीडीज़ से २५ वर्ष छोटा था, तथा ई० पू० पाँचवीं शताब्दी के मध्य के ठीक बाद पार्मेनीडीज़ ने जब एथेन्स की अपनी प्रसिद्ध यात्रा की थी तब वह चालीस वर्ष की आयु में उसके साथ गया था। ये सब बातें उस प्रामाणिक कथन से पूर्णतया संगत लगती हैं जिसमें कहा गया है कि पेरिक्लीज़ ने ज़ीनो तथा एनेक्ज़ागोरस दोनों के भाषण 'सुने' थे। ज़ीनो तथा प्रोटागोरस के मध्य विवाद के जो विवरण मिलते हैं, उनसे भी इसकी संगति बैठती है। ऐसा प्रतीत होता है कि ज़ीनो ने एम्पीडोक्लीज़ के विरुद्ध भी कुछ लिखा था।[2]

---

१. Parmenides, १२८ c.

२. इस विषय में प्रमाणों के सन्दर्भ 'अरली ग्रीक फिलासोफी', १५५, क्रमशः, में दिये गये हैं।

यह महत्त्वपूर्ण है कि ज़ीनो के नाम पर 'दार्शनिकों को प्रत्युत्तर' (A reply to the Philosophers) ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है। इस बात पर विश्वास करने का पर्याप्त आधार है कि इन दिनों 'दार्शनिक' शब्द का अर्थ पाइथेगोरसवादी से था। जो भी हो, ज़ीनो के तर्कों का वास्तविक महत्त्व तभी समझा जा सकता है जब हम उन्हें भेद–प्रपंच अथवा 'इकाइयों की अनेकता' (multitude of units) के अभिग्रह के विरुद्ध प्रयुक्त मानें। पाइथागोरीय मत के अनुसार रेखागणित तो अंकगणित का केवल एक अनुप्रयोग है, तथा बिन्दु एवं अंकगणितीय इकाई में केवल यही भेद है कि बिन्दु एक स्थित इकाई है। भले ही हम यह न मानें कि पाइथेगोरसवादियों ने इस बात को इतने अधिक शब्दों में कहा हो, परन्तु इससे निष्कर्ष निकालता है कि किसी सीमित तथा सीधी रेखा में कितने बिन्दु हैं, तथा सभी वितानों (magnitudes) का मापन सम्भव है, यह कहने में हमें समर्थ होना चाहिये। परन्तु स्वयं पाइथेगोरसवादियों ने कम से कम दो ऐसे प्रकरणों को आविष्कार किया जो इसके विपरीत हैं। हमने देखा है कि समद्विबाहुक समकोणीय त्रिभुज (isosceles right–angled triangle), जो सर्वाधिक पूर्ण त्रिभुज हैं, अथवा सम द्वादश फ्लक (dodecahedron), जो सर्वाधिक पूर्ण घन है, दोनों में से किसी को संख्या द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यदि हम देखें तो $\sqrt{२}$ तथा $\sqrt{५}$ 'करणी' (Surds) हैं। पाइथेगोरीय लोग इन तथ्यों से निश्चित रूप से पूर्णतया परिचित रहे होंगे। परन्तु जैसा कि हमने देखा है, सम्भवतः उन लोगों ने उन्हें 'असीम' की प्रकृति की ओर लक्ष्य कर उनकी व्याख्या की थी। अष्टक (octave) तथा सुर (tone) को समान अंशों में विभाजित करने की असम्भावनाएँ भी ऐसे ही उदाहरण हैं, जिनका ज्ञान उन्हें उपर्युक्त तथ्यों के साथ ही रहा होगा।

ज़ीनो के तर्कों का लक्ष्य यह दिखाना है कि 'असीम' अथवा, जिसे ईलियाई लोग सातत्य (continuous शब्दतः, एक साथ झूलना, लटकना) कहते हैं, इकाइयों से निर्मित नहीं हो सकता, चाहे वे इकाइयाँ कितनी भी छोटी अथवा कितनी भी वृहद हों। किसी रेखा का हमेशा द्विभाजन सम्भव है। हम चाहे जितना भी द्विभाजन करें, प्रत्येक विभाजन के बाद एक ऐसी रेखा शेष बच जाती है जिसका पुनः द्विभाजन हो सकता है। किसी बिन्दु अथवा इकाई तक हम कभी भी नहीं पहुँचते। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि कोई रेखा इकाई-बिन्दुओं से बनी हो तो किसी भी दी गयी सीधी तथा सीमित

रेखा में ऐसे असंख्य विन्दु होंगे। यदि इन बिन्दुओं में स्थान (magnitude) हो तो सभी रेखाओं की लम्बाई अनन्त होगी, यदि इनमें स्थान नहीं होगा, तो प्रत्येक रेखा अत्यन्त छोटी होगी। पुनः, यदि बिन्दु में स्थान होगा तो किसी रेखा में एक बिन्दु के जोड़ने से उसकी लम्बाई बढ़ेगी, तथा बिन्दु के हटाने से उसकी लम्बाई कम होगी। परन्तु यदि बिन्दुओं में स्थान न हो, तो इनके जोड़ने-घटाने से रेखा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। परन्तु जिस वस्तु पर जोड़ने और घटाने की प्रक्रिया से कोई अन्तर न पड़े, उस वस्तु की सत्ता नहीं। इससे यह सिद्ध होता है कि संख्या यदि इकाइयों का योग है (और इसके अतिरिक्त दूसरी कोई व्याख्या प्रस्तुत नहीं की गयी है) तो असत् एवं सतत्, अंकगणित एवं रेखागणित के मध्य अभेद्य अन्तर है। वस्तुएं संख्या नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, जब तक संख्या 'एकम्' को संख्यात्मक माला का प्रारम्भ माना जायेगा, तब तक रेखागणित का अंकगणित में विलयन सम्भव नहीं। बिन्दु का वास्तविक संवादी शून्य (zero) हो सकता है।[1]

ज़ीनो के गति सम्बन्धी प्रसिद्ध तर्क काल-तत्त्व (time) का भी ज्ञान कराते हैं, तथा यह दिखाते हैं कि बिन्दुओं के योग से बनी रेखा की जो स्थिति है वही स्थिति क्षणों (moments) के योग से बने काल की है। (१) यदि कोई वस्तु एक बिन्दु से दूसरी बिन्दु पर जाती है तो पहले उसे आधी दूरी तय करनी होगी, और इसे पारगमित करने के पहले पुनः इसकी आधी दूरी तय हो जानी चाहिये। इस प्रकार यह क्रम यावदनन्त (adinfinitum) होगा। इस प्रकार इसे असंख्य बिन्दुओं को स्पर्श करना पड़ेगा। और यह कार्य सान्त समय में सम्भव नहीं। (२) खरगोश (Achilles) कछुए (tortoise) से कभी भी आगे नहीं जा सकता। जब तक वह कछुए के प्रस्थान-बिन्दु पर पहुंचेगा, तब तक कछुआ अवश्य ही कुछ दूरी तय कर लेगा। यह क्रम सर्वदा चलता जायेगा और खरगोश कछुए से कभी आगे नहीं जा पायेगा। (३) उड़ता हुआ तीर स्थित है। उड़ान के बीच प्रत्येक क्षण में यह अपने ही बरा-

---

१. उन्नीसवीं शताब्दी का अन्तिम वर्ष १९०० को माना जाय या बीसवीं शताब्दी के प्रथम वर्ष को, इस विषयक गणितज्ञों एवं इतिहासकारों के बीच मतभेद की यह अन्तिम व्याख्या है। ज्योतिर्विद ईसवी के प्रथम वर्ष के पूर्व वाले वर्ष को शून्य वर्ष के कहते हैं, जबकि ऐतिहासिक काल-गणक प्रथम ईसवी वर्ष को ई० पू० प्रथम वर्ष के बाद वाला वर्ष मानते हैं।

बर देश (Space) ग्रहण करता है, अतः यह स्थित है। असंख्य स्थिर दशाओं का योग गति नहीं हो सकता। (४) यदि हम तीन रेखाओं की परिकल्पना करें, जिनमें 'अ' स्थित हो, तथा 'ब' एवं 'स' परस्पर विपरीत दिशाओं में गतिशील हों, तो 'ब' रेखा उसी अवधि में 'स' रेखा में 'अ' की अपेक्षा दुगने विन्दुओं को पारगमित करेगी। व्याख्या की दृष्टि से यह अन्तिम तर्क सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि इसका लक्ष्य उस मत की ओर है कि रेखा विन्दुओं का योग तथा काल क्षणों का योग है, तो यह उन मतों का सर्वथा युक्तिसंगत व्याघात-प्रदर्शन (reduction ad absurdum) है, अन्यथा यह पूर्णतया निरर्थक है।

जीनो के तर्क तभी प्रामाणिक होंगे जब यह परिकल्पना की जाय कि संख्या के स्वभाव की पूर्ण अभिव्यक्ति पूर्णांकों (integers) की स्वाभाविक शृंखला से होती है, परन्तु उस परिकल्पना के आधार पर उन तर्कों का कोई उत्तर नहीं, तथा संख्या के बारे में अन्य कोई सिद्धान्त उस समय तक प्रवर्तित नहीं हुआ था। यूनानी गणित में परिमेय भिन्न (rational fraction) तक का उल्लेख नहीं है, तथा इसकी अभिव्यक्ति एक पूर्णांक के दूसरे से अनुपात द्वारा की जाती है।[1] यूनानियों के लिए करणी (Surd) को संख्या मानना तो और भी कठिन था, तथा कालान्तर में केवल अकादमी में ही सर्वप्रथम विशाल दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास प्रारम्भ हुआ। जीनो वस्तुतः यही सिद्ध करता है कि देश तथा काल के अन्तर्गत, विन्दु अथवा क्षण, जो स्वयं स्थान-युक्त हैं, नहीं रह सकते। अथवा किसी सातत्यक (continuum) के तत्त्व उन्हीं तत्त्वों से निर्मित सातत्यक के साथ सजातीय इकाई नहीं हो सकते। वह वास्तव में यह प्रदर्शित करते हैं कि किसी रेखा में विन्दुओं की संख्या प्राकृतिक संख्याओं की शृंखला के अन्तर्गत आने वाली संख्याओं से भी अधिक होनी चाहिये। अत्यन्त अल्पकाल के भीतर भी क्षणों की संख्या भी इसी प्रकार अधिक होनी चाहिये। इसी बात को दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रत्येक सातत्यक का अनन्त विभाजन सम्भव है। परन्तु अनन्त विभाजकता सातत्यता का पर्याप्त मापदण्ड नहीं है।[2] जीनो ने केवल इतना ही सिद्ध करना चाहा। प्लेटो का कहना है कि जीनो की रचना लांछन-युक्ति (argumentum-

---

१. तुलना कीजिये, उदाहरणार्थ, ड़ेढ़ा लोगस ३:२ तथा ११/३ लोगस ४:३.

२. इस तथ्य की वर्तमान कथन पद्धति को मैंने हेस्टिंग्स की 'इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स में प्रोफे० इ० टेलर के' सातत्य' (Continuity) नामक लेख से लिया है।

ad homines) हैं, तथा इस दृष्टि से यह पूर्णतया सफल है।

मेलिसस (MELISSOS)

यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि इलियाई मत का प्रतिनिधित्व करने वाला द्वितीय व्यक्ति एक सेमियन (Samian) था। पारसी युद्धों के कारण इटली तथा आयोनिया के दर्शनों को एक बार पुनः परस्पर सम्पर्क में आने का अवसर मिला, तथा एथेन्स ही सामान्यतया उनका मिलन-स्थल था। एम्पीडोक्लीज तथा एनेक्ज़ागोरस दोनों ही पार्मेनीडीज़ के प्रभाव में आये। स्वयं पार्मेनीडीज़ ज़ीनो के साथ एथेन्स गये थे और ऐसा माना जाता है ज़ीनो ने एथेन्स में कुछ समय तक निवास भी किया था। एनेक्ज़ागोरस एथेंस में बहुत वर्षों तक रहा था, तथा एम्पीडोक्लीज़ ने थूरिआई (Thourioi) के एथेनियन उपनिवेशन (colonisation) में सहयोग दिया था। इनमें से कोई भी व्यक्ति एथेन्स का मूल निवासी नहीं था, परन्तु एथेन्स के लोग इनके शिष्य अवश्य थे, तथा उस समय साक्रेटीज़ की किशोरावस्था थी।

मेलिसस उस सेमियन बेड़े को कमान में था, जिसने ४४ इ० पू० में पेरिक्लीज़ के विरुद्ध युद्ध किया था। इसके अतिरिक्त उसके बारे में कुछ ज्ञात नहीं। हम केवल यह अनुमान लगा सकते हैं कि इलियाई मत से उसका एथेन्स में परिचय हुआ होगा, तथा हम देख सकते हैं कि इलियाई मत में उसने जो परिवर्तन किये उनका कारण एनेक्ज़िमेनीज़ के दर्शन का प्रभाव था, और यह दर्शन आयोनिया में उन दिनों भी प्रचलित था।

मेलिसस के मुख्य तर्क पार्मेनीडीज़ के तर्कों की भांति ही हैं। दोनों में भेद यह है कि मेलिसस ने उन तर्कों को सरल आयोनियाई गद्य में अभिव्यक्त किया है। उसकी यह मान्यता कि सत् सीमित मण्डल (Sphere) होने की अपेक्षा एक असीम तत्त्व है, एक महान् नव्य स्थापना थी। कहा जाता है उसने सत् की क्षेत्रीय असीमितता का अनुमान इसकी शाश्वतता से किया। उसने ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जिससे इस प्रकार के तर्क का संकेत मिलता है। परन्तु इस बात को सिद्ध करने के लिए उसके पास एक अधिक प्रबल युक्ति थी। उसने कहा कि सत् को केवल शून्य आकाश ही सीमित कर सकता है। और शून्य आकाश की सत्ता ही नहीं। इसी कारण से गति अथवा परिवर्तन भी सम्भव नहीं। परन्तु उसने पार्मेनाइडीज़ की ही भांति सत् को मूर्त (corporeal) माना, कभी-कभी यह कहा जाता है कि मेलिसस ने सत् को अमूर्त माना, परन्तु यह

कथन एक भ्रान्ति पर आधारित है।[1]

इसमें सन्देह नहीं कि मेलिसस अपने समय में इलियाई मत का अत्यन्त प्रगतिशील प्रतिनिधि माना जाता है था, तथा हिप्पोक्रेटसवादी ग्रन्थ 'मानव की प्रकृति' (The Nature of man) के लेखक ने 'मेलिसस की मान्यता' के प्रति एक विशेष द्वेष प्रकट किया है। इसके विपरीत प्लेटो के ग्रन्थ (Theat, १८०, e) में साक्रेटीज़ ने इसके नाम का उल्लेख स्वयं महान् पार्मेनीडीज के साथ किया है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उसकी सबसे महत्त्वपूर्ण उक्ति है कि यदि वस्तुएँ अनेक हैं, तो उनमें से प्रत्येक को वैसा ही बनना पड़ेगा, जैसा कि उसने एकम् (One) का वर्णन किया है (If things are many, each one of them would have to be such as he has shown the one to be)। जैसा कि हम देखेंगे, यह परमाणुवादी सूत्र है जिसका मेलिसस ने निषेध इसलिए किया था, क्योंकि उसने शून्य आकाश के अस्तित्व को अस्वीकृत किया था। परन्तु इस निषेध से परमाणुवादी मत का ही पथ प्रशस्त हुआ, क्योंकि इससे उदबुद्ध होकर ल्यूसिपस ने शून्य के अस्तित्व की स्थापना को आवश्यक समझा।

परवर्ती पाइथागोरसवादी

यह पहले ही कहा जा चुका है (अव० २९) कि नयी परिस्थितियों के साथ अपने सिद्धान्तों के अनुकूलन की, पाइथागोरसवादियों में एक अनोखी शक्ति थी। और यह निश्चित है कि एक समय ऐसा आया जब उन्होंने महाभूतों के नये सिद्धान्त की स्वयं अपने सम्प्रदाय की शब्दावली में व्याख्या करना आवश्यक समझा। सम्भव है यह कार्य फाइलोलास (Philolaos) का रहा हो, जो ई० पू० पाँचवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में थेबीज़ (Thebes) का निवासी रहा। परन्तु जब दक्षिण इटली में पाइथागोरसवादियों के लिए एक बार पुनः संकट-मुक्त स्थिति उत्पन्न हो गयी, तब यहाँ लौट आया। उस समय से टेरास (Taras–Tarentum) इस सम्प्रदाय का प्रधान पीठ बन गया, तथा जब हम प्लेटो तथा आर्किटस के सम्बन्धों की चर्चा करेंगे, तब इसके बारे में और अधिक जानकारी मिलेगी। कुछ कारणों से, जिनका उल्लेख अन्यत्र किया गया है, फाइलोलास के नाम पर मिलने वाले अवशेषों को हम प्रामाणिक नहीं मान

१. 'अर्ली ग्रीक फिलोसोफी', अव० १६९.

सकते, परन्तु वे प्राचीन हैं तथा उनमें पाइथागोरसीय मत के विकास के कुछ महत्वपूर्ण संकेत अन्तर्निहित हैं ।[1]

परवर्ती पाइथागोरसवाद की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता वह ढंग है जिससे पाइथगोरसवाद को उसके धार्मिक पक्ष से अलग किया गया, तथा स्वयं पाइथागोरस के नाम से मिलने वाले रहस्यवादी प्रसंगों को विस्मृत करने का प्रयास किया गया। एरिस्टोज़ेनस (Aristoxenos) तथा डिकाइआर्कस (Dikaiarchos) के अवशेषों में यह पक्ष प्रतिध्वनित होता है, परन्तु यह उनके काल से प्राचीन होगा, क्योंकि उन लोगों के समय तक वैज्ञानिक पाइथागोरसवाद की परिसमाप्ति हो चुकी थी। यह कथन उस सम्प्रदाय की इसी पीढ़ी द्वारा किया गया होगा कि मेटापोन्शन वासी हिप्पासस (Hippasos) ने पाइथागोरस को गलत रूप से प्रस्तुत करने के उद्देश्य से[2] एक रहस्यवादी संवाद प्रकाशित करने का अपराध किया था, बाद की पीढ़ी के किसी व्यक्ति को इस प्रकार के कथन से कोई लाभ नहीं था यह निश्चित है कि हिप्पासस ने एक पुस्तक लिखी थी, क्योंकि एरिस्टॉटल ने कहा है कि हेराक्लीटस की भाँति उसने भी अग्नि को आदि-तत्त्व माना, प्रारम्भिक पाइथागोरीय विश्वविज्ञान के बारे में हम जो अनुमान लगाते हैं, उससे इसका भली-भाँति मेल बैठता है, इस हिप्पासस के बारे में अनेक किंवदन्तियां प्रचलित हैं। कहा जाता है कि उसे समुद्र में डुबाया गया था, अथवा उसे संघ से बहिष्कृत कर दिया गया था। बाद में उस सम्प्रदाय ने उसके लिए एक समाधि (Sepulchre) बनाया, मानो वह मर गया हो। अन्त में कथा को यह रूप दिया गया कि उस संघ में प्रारम्भ से से ही दो वर्ग रहे एक गणितज्ञों का, जिन्हें पाइथागोरसवादी (Pythagoreans) कहा जाता है, तथा दूसरे सुवोध सिद्धान्त-ग्राही (Akousmatics) अथवा (Pythagorists), तथा हिप्पासस को निम्न वर्ग का नेता माना जाता था। इन सबमें सत्यासत्य का पता लगाना हम लोगों के लिए असम्भव है, परन्तु हमें इतना अनुमान करने का अधिकार तो है ही कि पाइथागोरसीय धर्म के अनुयाइयों तथा उस मत के वैज्ञानिक पक्ष से ही अपने को सम्बन्ध रखने वालों के बीच एक यथार्थ संघर्ष था। चौथी शताब्दी में पाइथागोरसवादी वैज्ञानिक संख्या समाप्त हो गयी, तथा इसका स्थान अकादमी (Academy) ने ले लिया। दूसरी ओर,

१. 'अर्ली ग्रीक फिलासोफी', अव० १३८ क्रमशः ।

२. Diog. viii. ७.

जैसा कि हमें हास्य-कवियों के अवशेषों से ज्ञात होता है, पाइथागोरसीय धर्म बाद तक भी जीवित रहा।

परवर्ती पाइथागोरसवाद ने एम्पीडोक्लीज़ के चार 'महाभूतों' वाले सिद्धान्त को आत्मसात् करने का जो प्रयास किया वह उसकी अपनी विशेषता है। ऐसा विश्वास करने का पर्याप्त आधार है कि कि 'महाभून' शब्द भी इसी काल की देन है। यदि फाइलोसास (philolaos) इस मत का जन्मदाता है, तो यह स्वाभाविक ही है। लन्दन के एक आयुर्विज्ञानी श्रीपत्र (Pahyrus) में हाल ही में मिली मेनन की 'आइट्रिका' (Menon's Iatrika, शल्यक्रिया) के अवशेष से यह तथ्य उद्‌घाटित होता है कि वह सिसली के आयुर्विज्ञानी सम्प्रदाय का सदस्य था, तथा उष्ण एवं शीत, नम एवं शुष्क के प्राचीन विपक्षों तथा एम्पीडोक्लीज़ के चार महाभूतां के एकीकरण पर उस सम्प्रदाय के सिद्धान्त आधारित थे।[1] पाइथागोरसवादियों को अपने दर्शन में महाभूनों के लिए किसी न किसी प्रकार स्थान बनाना आवश्यक था, परन्तु वे इन्हें परमतत्त्व मानने में कभी सहमत नहीं हुए। प्लेटो ने इस भावना को Timaeus (४८ b) में सुरक्षित रखा है, जहाँ वह पाइथागोरसवादी प्रतिरोध करता है कि चारों 'महाभूत' अक्षर (letters) तो हैं ही नहीं, वे 'वर्ण (syllables) भी नहीं है।

महाभूतों के बारे में पाइथागोरमवादियों का दृष्टिकोण यह था कि वे 'आकृतियां' (figures) हैं, अथवा, दूसरे शब्दों में, वे घनों के आकार के कणों से निर्मित हैं, प्लेटो के ग्रन्थ Timaeus में दिये गये प्रारम्भिक त्रिभुजों से उन आकृतियों की निष्पत्ति के मूलतः पाइथागोरसीय होने में कोई सन्देह नहीं है, यद्यपि, चूंकि पाँच समघनों वाले सिद्धान्त को अन्तिम रूप श्रीटिटस (Theaitetos) ने दिया था, अतः कुछ बनावटें निश्चित रूप से फाइलोलास के काल के बाद की हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि परवर्ती पाइथागोरसवादियों ने वस्तुओं को यथार्थतः संख्या मानने की अपेक्षा उन्हें संख्या के सदृश (Like) माना, और इसे यदि ज़ीनो की आलोचनाओं का प्रभाव माना जाय तो असंगत नहीं होगा। एरिस्टॉटल इस सिद्धान्त के दोनों रूपों को उद्‌धृत करता है, तथा ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों रूपों में उसे अधिक अन्तर नहीं दीख पड़ता। पुनः, वह

१. उष्ण तथा शीत, नम तथा शुष्क को प्रचीन काल की शल्य-क्रिया में 'ज्ञान' कहा गया है तथा फिलिस्टिअन ने चार महाभूतों को 'प्रत्यय' [Idea] कहा ('अर्ली ग्रीक फिलासोफी', पृष्ठ २३५, नं० २)।

पाइथागोरसवाद के कुछ पक्षों को प्लेटो के प्रत्ययवाद (Theory of ideas) के प्रायः समरूप मानना है। ऐसे समरूपों से कुछ समस्याएं उत्पन्न होती हैं, जिनका विवेचन हम बाद में करेंगे। अभी इस बात का ही विवेचन पर्याप्त होगा कि जब परवर्ती पाइथागोरसवादियों ने वस्तुओं को यथार्थतः संख्या न कहकर उन्हें संख्याओं के 'सदृश' कहा, तो उनका क्या अभिप्राय था, जहाँ तक हम देख सकते हैं, उनका अभिप्राय कुछ इस प्रकार का होगा। महाभूतों की रचना के लिए न केवल स्थित इकाइयों के समूहों की आवश्यकता है, वरन् रेखाओं से सीमित समतल आधारभूमियों की भी, जो स्वयं घनों को भी सीमित करने में समर्थ हों, ज़ीनो ने यह दिखाया था कि बिन्दुओं अथवा इकाइयों मे रेखाओं का निर्माण नहीं हो सकता, अतएव जिन प्रारम्भिक त्रिभुजों से 'आकृतियों' की रचना होती है, उन्हें चतुष्टय (tetraktys) जैसी त्रिभुजीय संख्याओं से अभिन्न नहीं माना जा सकता। विशेष रूप से, समघनों की रचना के लिए समद्विबाहु समकोणीय त्रिभुत्र का मौलिक महत्व है, तथा कंकड़ियों (pebbles) को किसी भी क्रम से रखा जाय, वे इसका प्रतिनिधित्व नहीं कर सकतीं,[1] क्योंकि इसका (समद्विबाहु समकोणीय त्रिभुज का) विकर्ण इसकी अन्य दो भुजाओं से असम्मेय (incommensuable) है। अतः हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि वे त्रिभुज, जिनसे अंततोगत्वा महाभूतों का गठन होता है, त्रिभुजीय संख्याओं के सादृश्य अथवा उनकी 'प्रतिकृतियाँ (imitation) हैं। वस्तुतः दो लोकों (विचार-जगत् तथा अनुभव-जगत्) के निर्णायक सिद्धान्त की उत्पत्ति संख्या की प्रकृति के इलियाइयों के शब्दों में 'सातत्य' (continuity), अथवा पाइथागोरसवादियों के शब्दों में 'असीम' (unlimited) से सामंजस्य स्थापित न होने के कारण हुई। असीम में कुछ ऐसी बात अवश्य थी जिससे विचार-शक्ति का प्रतिरोध होता था, तथा यह अनुमान किया गया कि यह वास्तविक सत् नहीं हो सकता। अधिक से अधिक इसे 'सम्भवन'(becoming) का प्रक्रम कहा जा सकता है। किसी वर्ग की भुजाओं अथवा विकर्णों का हम चाहे जितना द्विभाजन करते जायें, हमे कभी भी एक सर्वव्यापी मापदण्ड नहीं मिलेगा, यद्यपि हर बार हम इसके निकट पहुंचते जायेंगे,

अतः आकृतियों को संख्याओं से अभिन्न नहीं वरन् उनके सदृश माना गया। और एक बार जब आकृतियों एवं संख्याओं के पूर्ण तादात्म्य का आग्रह त्याग दिया गया, तो हमें यह देखकर आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि महाभूतों

१. तुलना कीजिये, पृष्ठ ४३, टिप्पणी, १.

के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं की इस विधि से व्याख्या करने का प्रयास किया गया था। एरिस्टॉटल का कहना है कि वास्तव में यही बात हुई भी। पाइथागोरसवादी यह कहते रहे कि 'न्याय' एक वर्ग संख्या है, तथा विवाह, अवसर इत्यादि के भी इसी प्रकार के विवरण देते रहे। परन्तु उन लोगो ने इस प्रकार की बहुत ही परिभाषाएँ दी। एरिस्टॉटल कहते हैं कि इन परिभाषाओं का आधार संख्याओं तथा वस्तुओं के बीच केवल ऊपरी साम्य था।

उसने जो सबसे महत्व की बात बतायी वह यह है कि यूरिटस (Eurytos) ने, जो फाइलोलास का एक शिष्य था, अतः शुद्ध पाइथागोरसवादियों के थोड़े-से बचे हुए लोगों में से एक था, कंकड़ियों अथवा गणकों (counters) को माध्यम से छोड़ा, मनुष्य तथा वनस्पतियों के स्वभाव की व्याख्या की। थियोफ्रेस्टस (Theophrastos) ने भी यही बात कही, तथा इसमें सन्देह नहीं कि यह कथन आर्किटस की प्रामाणिकता पर आधारित है। एलेक्ज़ेण्डर भी इसी आधार परइस विलक्षण प्रणाली का विवरण प्रस्तुत करता है। वह कहता है कि उदाहरण के लिए मान लिया जाय कि संख्या २५० मनुष्य को परिभाषित करती है, तथा ३६० संख्या वनस्पति को। यह मान लेने के बाद उसने २५० गणक लिये, जिनमें से कुछ हरे, कुछ काले, कुछ लाल, तथा कुछ अन्य रंगों के थे। इसके बाद उसने दीवाल पर लेप लगा कर एक मनुष्य तथा एक पौधे की आकृतियां खींची। तत्पश्चात् उसने कुछ कंकणों को मुखाकृति पर चिपकाया, कुछ को हाथों पर, तथा कुछ को अन्य अंगों पर, इस प्रकार उसने इकाइयों की जिस संख्या के द्वारा मनुष्य को परिभाषित किया था उसी के बराबर गणकों की संख्या के द्वारा अपने कल्पित मनुष्य की रेखाकृति को पूर्ण किया।

इस बहुमूल्य साक्ष्य (Testimony) से यह स्पष्ट होता है कि जब आकृतियों के सिद्धान्त ने अपनी उचित सीमा का उलंघन करने की चेष्टा की तब इसकी क्या गति हुई। यहाँ हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि यूरिटस, प्रारम्भिक पाईथागोरसवादी नहीं, वरन् उस सम्प्रदाय की अन्तिम पीढ़ी का प्रमुख व्यक्ति था। एरिस्टॉटल के अनुसार साक्रेटीज़ ही वह व्यक्ति था जिसने नैतिकता तथा सौंदर्यशास्त्र के रूपों के अपने अध्ययन द्वारा इस सिद्धान्त का दिशा-परिवर्तन किया, प्लेटो के ग्रन्थ Parmenides (१३०,c-d) में साक्रेटीज़ का कथन है कि एक समय उसका विचार था कि मनुष्य, अग्नि तथा इस तरह की अन्य वस्तुओं में रूप (form) भी होना चाहिये, परन्तु उसने सभी वस्तुओं में रूप ढूंढने का विचार इसलिए त्याग दिया क्योंकि इससे निरर्थकता (nons-

ence) के सागर में डूबने की आशंका थी। अब हम देखते हैं कि उसका क्या अभिप्राय था। तथापि, यह अत्यन्त स्पष्ट है कि जिसे हम प्रत्यय का सिद्धान्त (Theory of Ideas) कहते हैं, उसका स्रोत एरिस्टॉटल ने इन्हीं सब तथ्यों में माना। वह इस बात की लिए भी उत्सुक दिखलाई पड़ता है कि इस सिद्धान्त के स्वरूप के बारे में प्लेटो तथा पाइथागोरस के बीच जो भेद हैं, वह कम हो जाय। यह सत्य है कि किसी भी दशा में इस सिद्धान्त का ऐसा अमर्यादित रूप नहीं था, जैसा कि यूरिटस ने दिया था। अकादमी की परम्परागत मान्यता भी यही थी कि इस सिद्धान्त की उत्पत्ति पाइथागोरस से हुई। प्रोक्लस, जिसने प्लेटो के ग्रन्थों पर प्राचीन भाष्यों का अच्छा अध्ययन किया था, स्पष्ट रूप से इस सिद्धान्त के मूल रूप के लिए पाइथागोरसवादियों को, तथा इसकी विस्तृत व्याख्या के लिए साक्रेटीज़ को, श्रेय देता है। उसके ये शब्द हैं, "रूपों (Forms) के सिद्धान्त को पाइथागोरसवादी भी मानते थे। इटली के बुद्धिमान लोगों को रूपों का मित्र बनाकर स्वयं प्लेटो ने यह दिखाया है (Sophist, २४८ a)। परन्तु रूपों के सिद्धान्त को सर्वाधिक सम्मान देने तथा उन्हें अत्यन्त स्पष्टता अभ्युपगमित करने वाला व्यक्ति साक्रेटीज़ था।"[1] जब हम साक्रेटीज़ के बारे में विचार करेंगे, तब पुनः इस विषय की चर्चा होगी। इस समय केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि अकादमी में 'रूपों के मित्र' मुहावरा का यदि कोई अन्य अर्थ उस समय प्रचलित रहा होता, तो प्रोक्लस इस प्रकार का कथन शायद न करता।

इस सम्प्रदाय की इसी पीढ़ी ने विश्वविज्ञान में भी महत्वपूर्ण प्रगति की। यह सम्भव है कि फाइलोलास इस समय तक भी पृथ्वी को केन्द्र मानने वाले मत पर विश्वास करता रहा, क्योंकि फीडो Phaedo में जिन सिद्धान्तों के बारे में संकेत मिलते हैं, उनमें से यह केवल एक है। परन्तु यह निर्विवाद है कि इटली में पाइथागोरसवादियों ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण खोज यह की कि पृथ्वी ग्रह मण्डलों में से केवल एक ग्रह मात्र है। उन्होंने पृथ्वी को सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करने वाला ग्रह नहीं माना, परन्तु उन लोगों ने एक केन्द्रीय अग्नि का अभ्युपगमन किया, जिसकी सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य सभी ग्रह परिक्रमा करते हैं। इस केन्द्रीय अग्नि को अदृश्य बताया गया, क्योंकि यह स्वाभाविक था कि

---

१. Proclus in Parmenides, पृष्ठ १४९, Cousin : (en & stin) । सम्पूर्ण विश्वविज्ञान का आधार अन्य ग्रहों के सन्दर्भ में चन्द्रमा के बारे में प्रेक्षित तथ्यों का विस्तार था।

सभी आकाशीय पिण्डों के आवर्तन की व्याख्या चन्द्रमा के उदाहरण के आधार पर की गयी और चन्द्रमा ही एकमात्र ऐसा आकाशीय पिण्ड है, जिसे हम चर्म-चक्षुओं से भली-भाँति देख सकते हैं। दूसरे शब्दों में, जैसे चन्द्रमा का एक ही हिस्सा सदैव हमारी ओर रहता है, वैसे ही यह परिकल्पना की गयी कि पृथ्वी सहित सूर्य तथा अन्य सभी ग्रह सदा केन्द्र की ओर अपना मुख किये रहते हैं। तात्पर्य यह कि हम लोग पृथ्वी पर रहकर जैसे चन्द्रमा का पृष्टभाग नहीं देख पाते, उसी प्रकार केन्द्रीय अग्नि को भी नहीं देख सकते। इस निकाय में एक प्रतियोगी-पृथ्वी (Counter-Earth) नामक पिण्ड भी माना गया, जो पृथ्वी तथा केन्द्रीय अग्नि के मध्य स्थित होने के कारण अदृश्य है। सम्भवतः चन्द्रमा के ग्रहणों की व्याख्या करने के लिए इस पिण्ड की परिकल्पना की गयी। पृथ्वी की छाया से उन ग्रहणों की व्याख्या नहीं हो सकती थी, अतः छाया उत्पन्न करने वाले एक अन्य पिण्ड की आवश्यकता थी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इन लोगों की मान्यता थो कि केन्द्रीय अग्नि के प्रतिबिम्बित प्रकाश से ही चन्द्रमा चमकता है। सूर्य के प्रकाश के लिए भी यदि उन लोगों ने यही व्याख्या प्रस्तुत की हो, तो इसमं आश्चर्य की बात नहीं। वस्तुतः इस काल के सम्पूर्ण विश्व-विज्ञान का आधार अन्य ग्रहों के सन्दर्भ में चन्द्रमा के वारे में प्रेक्षित तथ्यों का विस्तार था।

इस पीढ़ी के पाइथागोरीय सिद्धान्त की, सम्भवतः सर्वाधिक विशेषता यह थी कि उन लोगों ने आत्मा को शरीर का समस्वर (Attunement) माना। फाइलोसास के थीबिया (Theban) निवासी शिष्य सिम्मिअस (Simmias) ने Pheado (८६b, क्रमशः) में इस विश्वास का प्रतिपादन किया। यह भी कहा गया है कि इस विश्वास को वे पाईथागोरसवादी भी मानते थे, जो फ्लीअस (Phleiius) में बस गये थं (८८d), तथा बाद में एरिस्टोज़ेनस ने इसे उनसे सीखा। इसमें सन्देह नहीं कि धुन मिले तार के उदाहरण से इस प्रकार के सिद्धान्त की अत्यन्त स्वाभाविक निष्पत्ति होती है। परन्तु, दूसरी ओर, यह सिद्धान्त उस प्रारम्भिक पाइथागोरीय मत से सर्वथा असगत है, जिसके अनुसार आत्मा का अस्तित्व शरीर के पूर्व भी था, तथा शरीर के मुक्त होने के बाद भी इसका अस्तित्व बना रहेगा। इस सिद्धान्त के अनुसार तो आत्मा शरीर की एक क्रिया मात्र रह जाती है, तथा अमृतत्व के विश्वास के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। अतएव, जैसा कि हमने पहले कहा है, सम्भवतः आचार्य (पाइथागोरस) के उपदेशों के धार्मिक पक्ष का त्याग करने की इच्छा से ही इस सिद्धान्त का अनुसरण किया गया।

६

ल्यूसिपस (LEUKIPHOS)

हमारी कहानी का प्रथम भाग परमाणुवाद के जन्मदाता ल्यूसिपस के साथ समाप्त होता है, क्योंकि थेलीज़ द्वारा उठाये गये प्रश्नों का वास्तविक समाधान इसने किया।[1] उसके जीवन-वृत्त के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं मिलती, तथा उसकी पुस्तक सम्भवतः डेमोक्रिटस की संगृहीत रचनाओं में सिम्मिश्रित (incorporated) है। थियोफ्रेस्टस के उपरान्त किसी भी अन्य लेखक ने ल्यूसिपस की शिक्षाओं को गुरु से अधिक प्रख्यात शिष्य की स्थापनाओं से पृथक् नहीं किया। यह ठीक है कि कुछ लोगों ने उसके अस्तित्व को ही चुनौती दी है, परन्तु उनके आधार सर्वथा अपर्याप्त हैं। एरिस्टॉटल तथा थियोफ्रेस्टस का यह सुनिश्चित विचार है कि वह परमाणुवाद का वास्तविक जन्मदाता है, तथा विशेष रूप से थियोफेस्टस ने जब ल्यूसिपस तथा डेमोक्रिटस की शिक्षाओं में कुछ प्रसंगों को लेकर भेद किया, तब इन दोनों लेखकों को किसी प्रकार का धोखा हुआ हो, ऐसा प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता।

ल्यूसिपस माइलेटस का निवासी था अथवा इलिया का, इसके बारे में थियोफ्रेस्टस संदिग्ध था। उसके इलियाटिक होने वाला मत इस कथन पर आधारित है कि वह इलियाड्रियों का, और विशेष रूप से ज़ीनों का, शिष्य था। हम देखेंगे कि उसके सिद्धान्त की उत्पत्ति के बारे में हमें जो कुछ ज्ञात है, उससे यह अनुमान भी सम्भवतः सही हो सकता है कि वह माइलेशियाई था, और पार्मेनीडीज़ के प्रभाव के कारण इलिया अथवा किसी अन्य स्थान पर चला आया। यह स्थान एथेन्स नहीं होना चाहिये, क्योंकि एरिस्टॉटल के समय के पूर्व यह स्थान परमाणुवाद से पूर्णतया परिचित नहीं लगता, विशेष रूप से,

---

१. 'अर्ली ग्रीक फिलासोफी', १७१ क्रमशः।

प्लेटो इसके बारे में कोई उल्लेख नहीं करता, क्योंकि यदि वह इससे परिचित रहा होता तो अवश्य ही इससे रुचि लिया होता।

प्लेटो की अनुपस्थिति में एरिस्टॉटल ही परमाणुवाद के विषय में हमारा प्रमुख आधार है, और उसने इस मत की उत्पत्ति के बारे में अत्यन्त स्पष्ट तथा सुबोध विवरण प्रस्तुत किया है। ऐसा लगता है कि जैसे वह परमाणुवाद के बारे में अधिक ऐतिहासिक कथन के लिए उत्कण्ठित था, क्योंकि अकादमी में इस विषय में लोगों को बहुत कम जानकारी थी। उसके अनुसार इस मत की उत्पत्ति इलियाइयों द्वारा शून्य के निषेध से हुई। शून्य के कारण ही अनेकत्व तथा गति को असम्भव बताया गया। ल्यूसिपस ने एक ऐसे मत के आविष्कार का दावा किया, जिससे इस परिणाम से बचा जा सके। उसने यह स्वीकार किया कि शून्य की अनुपस्थिति में गति असंभव है, तथा उसने यह अनुमान किया कि शून्य को असत् (nonexistence) से अभिन्न बताना त्रुटिपूर्ण है। पार्मेनीडीज़ के अर्थों में जिसे 'नास्ति तत्त्व' (what is not) कहा गया है, उसका भी उतना ही अस्तित्व है, जितना 'अस्ति तत्त्व' (What is) का। दूसरे शब्दों में, ल्यूसिपस वह प्रथम दार्शनिक था, जिसने पूर्ण सचेतनता से शून्य आकाश के अस्तित्व को स्वीकार किया। पाइथागोरसवादी मत में शून्य को प्रायः 'वायु से अभिन्न माना गया, परन्तु ल्यूसिपस का शून्य वास्तव में शून्यक (vacuum) था।[1]

पिण्ड (body) का आकाश के अतिरिक्त अस्तित्व स्वीकार किया गया और इलियाइयों ने सत् के जितने धर्म बताये थे, ल्यूसिपस ने उन सबको पिण्ड का धर्म माना। यह पूर्ण (full) है, अथवा, दूसरे शब्दों में, इसके भीतर शून्य आकाश नहीं है, परन्तु यह एक भी नहीं है। शून्य आकाश की परिकल्पना के कारण अगोचर हैं, परन्तु यह एक भी नहीं है। शून्य आकाश की परिकल्पना के कारण ऐसे असंख्य सत् तत्त्वों को मानना सम्भव हुआ, जो लघुता के कारण

१. इलियाई मत से परमाणुवाद की एरिस्टॉटल ने जो निष्पत्ति की हैं उसका प्रतिवाद विशेषत: Gomperz द्वारा हुआ है। यह सत्य है कि मायलेशियाई ल्यूसिपस प्राचीन आयोनियाई विश्व-विज्ञान को परिशुद्ध करना चाहता था, तथा विशेष रूप से यथा सम्भव 'एनेक्जिमेनीज़ के दर्शन; की रक्षा करना चाहता था। एनेक्जागोरस भी यही चाहता था। (अव० ६१)। परन्तु इस प्रसंग में इसकी कोई सार्थकता नहीं। थियोफ्रेक्टस ने स्पष्ट रूप से कहा कि ल्यूसिपस पार्मेनीडीज़ तथा ज़ीनों के सम्प्रदाय का सदस्य था।

अगोचर हैं, परन्तु इलियाई सत् के समस्त लक्षण उनमें से प्रत्येक में वर्तमान है। विशेष रूप से ध्यान देने की बात है कि इलियाटिक सत् की भाँति वे सब अविभाज्य (indivisible) हैं। ये शून्य आकाश में विचरण करते रहते हैं, तथा इनके मिश्रण से एसी वस्तुओं की रचना होती है जो इन्द्रियगोचर हैं। अनेकत्ववाद को तार्किक तथा संगत ढंग से उपस्थित अवश्य किया गया है। जैसा कि हमने देखा है (अव०६८) मेलिसस ने कहा था कि यदि वस्तुएं अनेक हैं तो उनमें से प्रत्येक को एकम् की भाँति होना चाहिये वहाँ पर उसका अभिप्राय अनेकत्ववाद का व्याघात-प्रदर्शन था, परन्तु ल्यूसिपस ने इसे स्वीकार कर अपने दर्शन का आधार बनाया।

ल्यूसिपस ने परमाणुओं की आद्यगति के बारे में जो कहा उसकी बहुत विवेचना की गयी है। बाद में एपिक्यूरसवादियों ने स्वीकार किया कि सभी परमाणु अनन्त आकाश से सर्वदा अधः-पतित (falling downwards) हो रहे हैं, परन्तु इस मान्यता के कारण वे यह समझाने में असमर्थ प्रतीत होते हैं कि कैसे ये परमाणु एक दूसरे के सम्पर्क में आये। इस अवैज्ञानिक सम्प्रत्ययन को प्रारम्भिक परमाणुवादियों पर आरोपित करने की आवश्यकता नहीं है, जैसा कि हम देखेंगे, प्रथमतः उन लोगों ने भार (weight) की परमाणुओं का प्राथमिक धर्म (property) नहीं माना, तथा द्वितीयतः, इसबात का प्रमाण मिलता है कि डेमोक्रिटस ने कहा था कि अनन्त शून्य में न ऊर्ध्व है न अधः, न आदि है, न मध्य।[1] एरिस्टॉटल ने अपने दृष्टिकोण से उन सबका खण्डन किया। उसका मत था कि आत्यन्तिक भार अथवा हलकेपन के कारण महाभूतों में परिस्थिति के अनुसार ऊपर जाने या नीचे गिरने की 'स्वाभाविक गति' उत्पन्न होती है। तथा एपिक्यूरसवादी मत सम्भवतः इस आलोचना का प्रतिफल है। एपिक्यूरस ने भी एरिस्टॉटल के आत्यन्तिक भारहीनता सिद्धान्त की उपेक्षा की थी। अतएवः हम यह मान सकते हैं कि परमाणुओं की मूल गति सभी दिशाओं में प्रवर्तित थी, तथा हम देखेंगे कि एकमात्र इसी मत से लोकों के निर्माण की व्याख्या हो सकती है। डेमोक्रिटस ने आत्मा के परमाणुओं में गति की तुलना सूर्य के प्रकाश-पुंज में दीखने वाले रजकाणों से की है,[2] जो वायु के प्रवाह के अभाव में भी इधर-उधर उन्मुक्त विचरण करते रहते हैं। तथा हम सरलता से यह अनुमान कर सकते हैं कि अन्य परमाणुओं की मूल गति को

---

१. Cic. de Finibus, i. १७; Diog. Laert. ix. ४४
२. Aristotle, de Animaf ४०३ b, ३१.

भी उसने प्राय: इसी प्रकार बताया होगा ।

पाइथागोरीय चिदणुओं (monads) की भाँति परमाणुओं में गणितीय अविभाजकता नहीं है. परन्तु उनमें भौतिक अविभाजकता अवश्य है, क्योंकि उनमें रिक्त स्थान नहीं है । अत: सिद्धान्तत: किसी परमाणु को जगत् के समान बृहदाकार होने में कोई कठिनाई नहीं है । यदि परमाणुओं के बाहर रिक्त आकाश न माना जाय. तथा लोकों की बहुलता न मानी जाय, तो इस प्रकार के परमाणु में तथा पार्मेनीडीज़ के मण्डल (sphere) में बहुत समानता पायी जायेगी । वस्तुत: सभी परमाणु अतीन्द्रिय हैं । परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि आकार में भी बराबर हों, क्योंकि दृष्टिगोचरता की निम्नतम सीमा के नीचे भी आकार में अनन्त भेद सम्भव है ।

ल्यूसिपस ने परमाणुओं के आकार तथा उनके सम्मिश्रण से उनके भार की व्याख्या की । परन्तु स्वयं भार को उसने पिण्डों का मूल धर्म नहीं माना । एरिस्टॉटल स्पष्ट रूप से कहते हैं कि उसके किसी भी पुरोगामी ने आत्यन्तिक भार तथा भारहीनता के बारे में कुछ न कहकर केवल सापेक्षिक भार तथा भारहीनता की बात कही । एपिक्यूरस वह प्रथम व्यक्ति था जिसने भार को परमाणुओं का धर्म माना । प्रारम्भिक परमाणुवादियों के लिए भार एक गौण तथ्य था, तथा इसकी उत्पत्ति की व्याख्या वे लोग वितान के आधिक्य द्वारा करते हैं ।[1] हम देखेंगे कि इस विषय में प्रारम्भिक परमाणुवादियों की प्रणाली एपिक्यूरस तथा स्वयं एरिस्टॉटल की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक थी । आत्यन्तिक भार के सम्प्रत्ययन को वितान के कोई स्थान नहीं । यूनानी दार्शनिकों की सच्ची वैज्ञानिक प्रवृत्ति का वास्तव में यह अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है कि एरिस्टॉटल के पूर्व किसी ने भी इसका प्रयोग नहीं किया, तथा प्लेटो ने तो इसका स्पष्ट रूप से निषेध ही कर दिया था ।

परमाणुओं के समुदायों में भेद के दो कारण हैं (१) व्यवस्था (Arr-angment) तथा (२) स्थिति (Position) । यह स्पष्ट नहीं है कि एरिस्टॉटल द्वारा उल्लिखित वर्णमाला के अक्षरों का उदाहरण ल्यूसिपस का है, अथवा डेमोक्रिटस का, परन्तु हर दशा में इसकी पाइथेगोरीय उत्पत्ति की सम्भाव्यता

---

१. समूह के बारे में प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि सभी परमाणुओं की प्रकृति (Phusis) समान है, तथा प्रत्येक परमाणु एक सातत्यक है ।

है, क्योंकि यह (Stoicheion) शब्द के महाभूत के अर्थ में प्रयोग का संतोषप्रद व्याख्यान करता है। यह प्रयोग प्लेटो द्वारा भी किया गया है, और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, प्लेटो को परमाणुवाद के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। इसके बारे में चाहे जो भी तथ्य हो, पाइथागोरसवाद तथा परमाणुवाद के बीच जो समानताएं पायी जाती हैं, उनका उल्लेख एरिस्टॉटल ने कर दिया है, और उन्हें इस विषय में प्रत्यक्ष जानकारी थी। वह कहता है, "ल्यूसिपस तथा डेमॉक्रिटस सभी वस्तुओं को संख्या बना देते हैं, तथा उन्हें उत्पन्न भी संख्याओं से ही करते है। जब तक हम पाइथागोरसीय संख्याओं को नमूनों अथवा 'अकृतीय संख्याएं' जैसा न मानें, तब तक हमें इस कथन का कोई अर्थ नहीं दिखायी पड़ता। और यदि हम ऐसा मानें तो उस स्थिति में यह और भी अधिक विस्मयकारक है कि डेमोक्रिटस परमाणुओं को 'आकृतियां' अथवा रूप (form) कहता है। शून्य भी एक पाइथागोरीय सम्प्रत्ययन है, यद्यपि जैसा कि हमने देखा है, ल्यूसिपस के पूर्व इसका स्पष्ट निरुपण नहीं हुआ था। अतः यह कहना शायद अत्युक्ति नहीं कि यदि पाइथागोरीय चिदणुओं पर पार्मेनीडीज़ के सत् के धर्मों को आरोपित कर दिया जाय तो परमाणुओं का स्वरूप बन जायेगा, तथा ऐसी स्थिति में परमाणुओं के विभिन्न स्थानों तथा विन्यासों के कारण जिन तत्त्वों की उत्पत्ति होती है, वे पाइथागरेसीय 'संख्याओं' की भाँति हैं। एरिस्टटॉल का तो यही मत प्रतीत होता है। यद्यपि उसने अपने मत को कुछ और विस्तार से व्यक्त किया होता तो अधिक प्रसन्नता हुई होती।

परमाणुओं की गति का प्रथम परिणाम यह है कि बड़े परमाणुओं की गति कम इसलिए नहीं होती क्योंकि वे 'भारी' (heavy) हैं, वरन् इसलिए कि छोटे परमाणुओं की अपेक्षा उन पर बाह्य प्रभाव अधिक पड़ने की सम्भावना रहती है। विशेषतः, असमान आकार वाले परमाणु एक दूसरे से मिलकर परमाणुओं का समूह बनाते हैं, तथा इन समूहों पर बाह्य प्रभाव और भी अधिक पड़ते हैं, तथा परिणाम-स्वरूप गति मन्द हो जाती है। इसके विपरीत, छोटे तथा गोल आकार वाले परमाणुओं में मौलिक गति पूर्णतया संचित रहती है। अग्नि का निर्माण इन्हीं परमाणुओं से होता है। यहाँ द्रष्टव्य है कि यह मान लिया गया था कि मूल गति तब तक अक्षुण्ण रहेगी जब तक किसी वस्तु के प्रभाव के कारण उसकी गति मन्द अथवा अवरुद्ध न की जाय। एरिस्टॉटल ने इसे अविश्वसनीय माना, तथा इस सत्य को गैलिलियो तथा न्यूटन ने पुनः उद्घाटित कर अधिक सुदृढ़ आधारों से पुष्ट किया। वस्तुतः यह सभी प्रारंभिक

यूनानी दर्शनों की परिकल्पना रही है। पार्मेनीडीज के काल के पूर्व जिस तथ्य की व्याख्या आवश्यक थी, वह स्थिरता है, न कि गति। चूंकि अब ल्यूसिपस ने पार्मेनीडीज़ के सिद्धान्तों से मुक्ति का मार्ग निकाल लिया, अतः उसके लिए प्राचीन मत की ओर पुनः जाना सम्भव हो गया।

एक ऐसे असीम शून्य में, जिसमें अगणित आकारों तथा परिणामों के असंख्य परमाणु अनवरत रूप से सभी दिशाओं में एक दूसरे से आकर टकराते रहते हैं, ऐसे असंख्य स्थल होंगे जहाँ उनके प्रभाव के कारण चक्रावर्तक (Vortex) गति उत्पन्न होती है। जब ऐसा होता है तब जगत् की उत्पत्ति होती है। परवर्ती लेखक इसे आकस्मिक घटना मानते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं, यह मत उस सम्प्रदाय की प्राकल्पनाओं की अनिवार्य निष्पत्ति है, ल्यूसिपस का एकमात्र अवशेष जो हमें उपलब्ध है उसका आशय है कि 'अकारण कोई घटना नहीं होती, सभी वस्तुओं का एक अधिष्ठान (Ground, logos) तथा अनिवार्यता (necessity) होती है' यह द्रष्टव्य है कि चक्रावर्तन का सिद्धान्त एनेक्ज़ागोरस (अव० ६०) के सिद्धान्त से व्युत्पन्न है, तथा स्वयं एनेक्ज़ागोरस का मत प्राचीन आयोनियाई मत का विकसित रूप था। यहाँ तक हम देखते हैं कि ल्यूसिपस माइलेशियन था, परन्तु उसने इस विषय पर अपने पूर्ववर्तियों की अपेक्षा अधिक सजग होकर चिन्तन किया। ऐनेक्ज़ागोरस ने परिकल्पना की थी कि यहाँ पर प्रस्तरक्षेपणी (sling) की उपमा लागू होगी, अतएव बड़े या भारी पिण्ड केन्द्र से दूर की ओर फेंक दिये जायेंगे। ल्यूसिपस ने भार की व्याख्या पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया, क्योंकि यह वस्तु का आदि (primtive) धर्म नहीं है, वरन् चक्रावर्तन का निर्माण हो जाने के उपरान्त ही यह उत्पन्न होता है। अतः उसने यह देखना चाहा कि जलावर्त अथवा चक्रवात में जब वस्तुएं पड़ती हैं, तब क्या होता है। और उसने पाया कि बड़ी वस्तुएं केन्द्र की ओर आती हैं।

इस प्रकार चक्रावर्तक गति का प्रथम परिणाम यह है कि जो परमाणु आकार तथा परिमाण में समान हैं वे संयुक्त हो जाते हैं। और अग्नि, वायु, पृथ्वी तथा जल के चार महाभूतों का यहाँ से प्रारम्भ होता है। इस प्रक्रिया को एक चलनी (sieve) की कल्पना कर स्पष्ट किया गया, जिसमें बाजरा, गेहूँ तथा जौ एक साथ मिलते हैं। चूंकि यह उपमा प्लेटो के Timaeus (५२ e) में भी पायी जाती है, अतः सम्भवतः इसका प्रारम्भ पाइथागोरस से हुआ है। एक दूसरी उपमा दी गयी, जिसमें लहरें समुद्रतट पर लम्बे-लम्बे कंकरों तथा गोल-गोल कंकरियों को अलग एक साथ एकत्र करती हैं। इस प्रक्रिया में छोटे परमाणु परिधि की ओर फेंके जाते हैं, तथा बड़े परमाणु केन्द्र की ओर आते

हैं। इसे समझने के लिए यह स्मरण रखना होगा कि चक्रावर्तन के सभी अंग एक दूसरे के संसर्ग में आते हैं, इसी कारण बाह्यतम अंगों की गति भीतर के अंगों से संचारित होती है। छोटे पिण्डों की अपेक्षा बड़े आकार के पिण्ड इस संचरण में अधिक प्रतिरोध उत्पन्न करते हैं, क्योंकि वे बड़े होने के कारण सभी दिशाओं के प्रभावों से प्रभावित होते हैं, जिससे चक्रावर्तक गति क्षीण हो जाती है। इस प्रकार वे केन्द्र की ओर अग्रसित होते हैं, जहाँ गति अल्पतम है, तथा लघु आकार के पिण्ड परिधि की ओर भागते हैं, जहाँ गति तीव्रतम है। भार की व्याख्या यही है। भारत कोई 'गुह्य-धर्म' नहीं है, वरन् शुद्ध यान्त्रिक कारणों से उत्पन्न होता है।

यदि हम विस्तार-पूर्वक देखें तो पायेंगे कि ल्यूसिपस ने अपने को एक निष्ठावान आयोनियाई के रूप में प्रस्तुत किया। उसके इलियाटिक शिक्षकों ने पाइथागोरसीय विश्व-विज्ञान के प्रति उसे चेतावनी दी, परन्तु उन लोगों ने उसको कोई उत्तम विकल्प नहीं प्रदान किया। अतः उसके लिए यह स्वाभाविक था कि वह अपने प्रसिद्ध सह-नागरिक एनेक्ज़ामेनीज़ के सिद्धान्तों की ओर आकृष्ट हो, तथा जहाँ तक हमें उसके दर्शन के बारे में ज्ञात है, उसने यही किया, जैसा कि उसके पूर्व एनेक्ज़ागोरस ने किया था। पाइथागोरस के इस आविष्कार से कि पृथ्वी मण्डलाकार है वह निश्चित रूप से अनभिज्ञ नहीं रहा, और उसने इस आविष्कार का जानबूझ कर निषेध किया, तथा बताया कि पृथ्वी वायु के ऊपर तैरती हुई एक ढ़ोलक (tambourine) की भाँति है। दक्षिण की ओर यह ढालू इसलिए है क्योंकि वहाँ ताप के कारण वायु विरल हो जाती है, अतः सम्बल देने में कम समर्थ रहती हैं। वस्तुतः परमाणुवादियों ने पाइथागोरस के पृथ्वी सम्बन्धी सिद्धान्त को ठीक उसी प्रकार खण्डित किया था, जैसे एनेक्ज़ागोरस ने किया था। नये मत की अन्तिम रूप से स्थापना एथेन्स में पूर्वी तथा पश्चिमी विश्वविज्ञानों के विलयन के कारण हुई। एरिस्टॉटल ने पृथ्वी को ब्रह्माण्ड का केन्द्र अवश्य माना, परन्तु उसने पृथ्वी के मण्डलाकार होने में कभी सन्देह नहीं किया।

परमाणुवादी मत की विभिन्न घटनाओं पर प्रयुक्ति का विस्तृत अध्ययन करना उपयोगी नहीं, तथा संवेदन एवं ज्ञान की परमाणुवादी व्याख्या का अध्ययन हम डेमोक्रिटस पर विचार करते समय करेंगे, जो इसका प्रमुख व्याख्याता था। यहाँ पर इतना ही कहना पर्याप्त है कि थेलीज़ ने जिस अभिप्राय से प्रश्न उपस्थित किया था, उसका उत्तर ल्यूसिपस ने प्रस्तुत किया, तथा उन

मार्गों पर चलने से अब अधिक प्रगति सम्भव नहीं थी। आगे प्रगति होने के लिए यह आवश्यक था कि ज्ञान तथा आचार की सहगामी समस्याओं की ओर ध्यान दिया जाय। अब दूसरे खण्ड में हम देखेंगे कि कैसे इधर ध्यान दिया गया। जब जगत् सम्बन्धी यान्त्रिक सिद्धान्त अपनी पूर्णता पर पहुँचा, तो उसके कारण विज्ञान की प्रगति तत्काल अवरुद्ध हो गयी, तथा विश्वविज्ञान के प्रति विद्रोह भी भड़का, एक ओर विभिन्न विज्ञानों, तथा विशेष रूप से आयुर्विज्ञान, के विशेषज्ञों ने इससे विद्रोह किया, क्योंकि वे विश्वविज्ञान-वेत्ताओं के विस्तृत सामान्यी-करणों से असंतुष्ट थे, तथा यह मानते थे कि प्रत्येक शास्त्र को अपने कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत कार्य करने का अधिकार होना चाहिये। इसका सबसे उत्तम प्रमाण है हिप्पोक्रिटयन ग्रन्थ 'प्राचीन आयुर्विज्ञान' (Ancient medicine), जिसका तात्पर्य था एम्पीडोक्लीज़ के सम्प्रदाय तथा अन्य के नवोदित (new fangled) चिकित्सा-सिद्धान्तों के विपरीत अनुभव तथा अवलोकम पर आधारित आयुर्विज्ञान की कला। दूसरी ओर, उस विज्ञान के प्रति भी विद्रोह हुआ, जो व्यावहारिक जीवन को प्रमुख साध्य मानने वाले व्यक्तियों से निष्पन्न था। उनका कहना था कि हम यह कैसे जानते हैं कि ये वस्तुएं सत्य हैं, तथा यदि वे सत्य हो तो भी, उस ज्ञान से हमारा क्या प्रयोजन ? इन दोनों प्रश्नों का अध्ययन ज्ञान-मीमांसा तथा आचार-मीमांसा के द्वारा ही सम्भव है।

द्वितीय खण्ड

ज्ञान तथा आचार
(KNOWLEDGE AND CONDUCT)

७

सोफिस्ट (THE SOPHISTS)
विधि (LAW) तथा प्रकृति (NATURE)

अब हमें एक ऐसे युग पर विचार करना है जो विच्छेद तथा पुनर्निर्माण का काल है। जगत् को बुद्धिगम्य बनाने के सारे प्रयत्न विज्ञान द्वारा हो चुके थे, तथा परिणामस्वरूप सत् का ऐसा रूप सामने आया, जिसका इन्द्रिय-ज्ञान से नितांत विरोध था। स्पष्ट है कि विज्ञान ने जिस जगत् की व्याख्या की, वह हमारे इन्द्रिय-जगत् से भिन्न जगत् था, अतएव इस जगत् के बारे में क्या कहा जाय ? अनुभव-जगत् की अपेक्षा विज्ञान-जगत् को किस आधार पर अधिक सत्य माना जाय ? अन्ततः वह जगत् मानव-चिन्तन का ही परिणाम है, अतः हम यह कहने में समर्थ नहीं कि विचार इन्द्रियों की अपेक्षा कम भ्रामक हैं। विज्ञान का कार्य इस परिकल्पना से प्रारम्भ होता है कि एक ऐसी मूलभूत सत्ता (phusis) है जिसका हम अन्वेषण कर सकते हैं। परन्तु इसके लिए निश्चयात्मकता (guarantee) क्या ? यह अत्यन्त साधारण बात है कि सही तथा गलत, उचित तथा अनुचित के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण एक समूह से दूसरे समूह अथवा एक नगर से दूसरे नगर में ही बदलते जाते हैं, अतः उनमें किसी भी प्रकार की मूलभूत सत्ता नहीं है। उसी प्रकार वैज्ञानिक सम्प्रदाय केवल एक ही बात में एकमत हैं, और वह यह है कि अन्य सभी सम्प्रदाय गलत हैं। इनमें से किसी भी सम्प्रदाय को पूर्ण सत्य की उपलब्धि ठीक उसी प्रकार से नहीं हुई थी, जैसे यवन अथवा विदेशी किसी भी राष्ट्र ने अपने क्षेत्र के अन्तर्गत प्रकृति के सच्चे विधान की स्थापना नहीं की थी। ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी के मध्य संस्कृत व्यक्तियों के मस्तिष्क में इसी प्रकार के विचार गूँजते रहे होंगे।

यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि ज्ञान तथा आचार दोनों से सम्बन्धित जिन कठिनाईयों का अनुभव किया गया, उन्हें प्रकृति (nature) तथा विधि (law) के एक ही प्रतिपक्षक में समाहृत किया गया, यद्यपि विधान का सम्बन्ध मुख्यतः आचार से है, तथा प्रकृति मुख्यतया ज्ञान से सम्बद्ध है। इसका अर्थ यह है कि दोनों समस्याओं को एक-सा ही माना गया। 'विधि' (law) शब्द का प्रयोग स्पष्टतः पुरोगामी शताब्दियों में महान् वैधानिक क्रिया के कारण हुआ। प्राचीन काल में मानव-जीवन की नियमितता को प्रकृति के नियमों की अपेक्षा कहीं अधिक महसूस किया गया। मनुष्य तो विधि तथा रुढ़ियों के मोहक चक्र में जीवन व्यतीत करता था, परन्तु उसके आसपास का जगत् अभी भी विधान-हीन लगता था। और बाद में जब प्रकृति की नियमित कार्यविधि का अवलोकन होने लगा तो इसके लिए उन्हें धर्म (right) अथवा न्याय (justice, dike) से अच्छा शब्द नहीं मिला। इस शब्द का वास्तविक तात्पर्य था, मानव-जीवन को निर्देशित करने वाली अपरिवर्तनशील रुढ़ियां (custom) हम देख चुके हैं कि एक तत्त्व के द्वारा दूसरे तत्त्व पर अतिक्रमण को एनेक्जि़-मेण्डर ने 'अन्यास' कहा (अव० ६), तथा हेराक्लीटस के अनुसार यह धर्म की दण्ड-धात्री दासियां इरिनीस (Erinyos) हैं, जो सूर्य को अपनी 'मर्यादा का उलंघन' (अव० ४२) नहीं करने देती। परन्तु जेल्यूकस (Zaleukos), करोण्डस (Charondas) अथवा सोलोन (Solon) जैसे मानव-विधायकों द्वारा प्रस्तुत विधान-संहिता को वस्तुओं के शाश्वत नियम के अंग के रूप में पुराने ढंग से स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह स्पष्टतः एक 'निर्मित' वस्तु थी, तथा इसका सरलता से अन्यथा निर्माण हो सकता था, अथवा निर्माण के बिना भी वह रह सकता थी। जिस पीढ़ी ने इन विधानों को बनते हुए देखा है, वह अपने आप इस प्रश्न के पूछे बिना नहीं रह सकती कि क्या समस्त परम्परागत नैतिकता का इसी प्रकार से निर्माण हुआ। इसीलिए हम पाते हैं कि यह शब्द विधायक की कार्यवाही[1] में सार्थक रूप से अनुप्रयुक्त होने के साथ-साथ इस सम्बन्ध में 'विधि' (law, nomos) के लिए भी समानार्थक ढंग से प्रयुक्त होता है।

हेरोडोटस की कृति इस प्रकार के अनुभव की अवस्था के लिए सर्वोत्तम प्रमाण है। वह थूरियाइ मे निश्चित रूप से प्रोटागोरस से परिचित रहा होगा,

---

१. जहाँ से 'प्राकृतिक' विधि के विरुद्ध 'विध्यात्मक' हो।

तथा कुछ लोगों ने तो उसकी रचनाओं पर प्रोटागोरस के प्रभाव को निरुपित करना सम्भव बताया है। यह सम्भव है, परन्तु यह भी सम्भव है कि वह उस युग में व्याप्त उस अनुभूति का प्रवक्ता हो, जिसे प्रोटागोरस ने भिन्न ढंग से व्यक्त किया। जो भी हों, उसे पुराने ढंग की नैतिकता तथा धर्म का प्रतिनिधि मानना सर्वथा भ्रामक है, वह अत्यन्त संशयवादी है, तथा प्रथाओं के प्रति उसका सम्मान उसके संशयवाद के कारण है, जैसा कि प्रोटागोरस में मिलता है। कैम्बिसेस (Cambyses) नामक राजा के पागल होने का प्रबलतम तर्क उसने यह दिया कि उस राजा ने अन्य राष्ट्रों के कृत्यों तथा रूढ़ियों का परिहास किया, मानो उसके अपने कृत्य तथा रूढ़ियां कम बनावटी हों। यदि हम सभी लोगों के सामने विकल्प देकर उनसे वर्तमान सभी व्यवहारों तथा परम्पराओं में से सर्वोत्तम का चयन करने को कहें, तो उनका परीक्षण करने के उपरान्त प्रत्येक व्यक्ति अपने ही राष्ट्र की प्रथाओं का चुनेगा। अतः पागल व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसी बातों का उपहास नहीं करेगा, तथा पिण्डर [Pindar] ने ठीक ही कहा कि 'विधि सबका सम्राट है'।[1]

जिन लोगों के बारे में अब हम अध्ययन करने जा रहे हैं उन्हें 'सोफ़िस्ट' कहा जाता है। तथा दूसरे लोग भी उन्हें इसी नाम से पुकारते थे। परन्तु हमारे लिए सोफ़िस्ट नाम कई दृष्टियों से भ्रमोत्पादक है। यदि इस शब्द का प्रयोग इन लोगों के तथा इनके पूर्व की पढ़ी के विचारकों तथा उपदेशकों के बीच विरोध को प्रगट करने के लिए किया जाय तो यह भ्रामक होगा। हेरोडोटस ने पाइथागोरस को सोफ़िस्ट कहा (IV. ९५)। यह शब्द उस दशा में और भी अधिक भ्रामक होगा, यदि हम यह सोचें कि इस नाम से पुकारे जाने वाले लोग किसी प्रकार के संघ अथवा सम्प्रदाय के सदस्य थे, अथवा ऐसे उपदेशक थे जिनके लक्ष्य एवं पद्धति में समानता थी, एक अन्य कठिनाई यह है कि ईसा पूर्व चौथी शताब्दी तक इस शब्द ने वह अर्थ ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया था जो आज भी जन-सामान्य की भाषा में मिलता है। सम्भवतः इसका प्रारम्भ साक्रेटीज़ [Isokrates] के द्वारा हुआ, जो 'दर्शन' की अन्य स्तर के बौद्धिक अनुशीलनों से भिन्न मानने के लिए आतुर था। प्लटो भी कुछ कारणों से, जिसके बारे में

१. Herod, iii. ३८ पिण्डर का अभिप्राय यदि कुछ भिन्न माना जाय तो उसका उद्धरण और भी महत्त्वपूर्ण होता (आगे देखिये, अव० ६७)। अतः यह एक ऐसा सुपरिचित 'पाठ' था, जिसका कुछ भी अर्थ लगाया जा सकता था।

हम आगे विचार करेंगे, 'सोफ़िस्ट' को 'दार्शनिक' से पृथक् करने के लिए उत्सुक था, तथा एक परवर्ती संवाद में उसने सोफ़िस्ट की परिभाषा देते हुए कहा है कि वे लोग धनी तथा विशिष्ट युवकों के वेतनभोगी आखेटक (शिकारी) थे। एरिस्टॉटल ने इन सब का निरूपण कर उस व्यक्ति को सोफ़िस्ट बताया जो दृष्टिगोचर होने वाले प्रज्ञान को बेचकर धन उपार्जित करता है।

अब हम यह देखेंगे कि यहाँ जिन सोफ़िस्टों का उल्लेख किया जा रहा है वे, प्रथमतः पाँचवीं शताब्दी के प्रसिद्ध उपदेशक नहीं हैं जिन्हें प्रायः सोफ़िस्ट कहा जाता है, वरन् मुख्यतः स्वयं साक्रेटीज़, प्लेटो तथा एरिस्टॉटल के समकालीन थे। तथा बाद की एक पीढ़ी की वाद-कला (polemics) को प्रोटागोरस तथा जार्जियस की वाद-कला से अन्तरण (transfer) करने का हमें कोई अधिकार नहीं है। अतएव एरिस्टॉटल ने सोफ़िस्ट की जो परिभाषा दी है, उसका विवरण देना सर्वथा अनाश्वयक है। हम देखेंगे कि साक्रेटीज़ जिन लोगों को सोफिस्ट नाम से पुकारता है, वे उन लोगों से निश्चय ही भिन्न हैं, जिन्हें आज का पाठक स्वभावतः सोफ़िस्ट मानता है। प्लेटो जब पाँचवीं शताब्दी के महान् सोफ़िस्टों का नाम लेकर विचार करता है तब हम उसे विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक मान सकते हैं। हम देखेंगे कि 'सोफ़िस्ट' नामक अपने एक संवाद-ग्रन्थ में प्लेटो ने जो सामान्य विवेचन किया है उसका कुछ भिन्न अभिप्राय है।

प्लेटो के द्वारा हमें ज्ञात होता है कि इस नाम के प्रति पाँचवीं शताब्दी में भी पूर्वग्रह था, जिसके कारण चौथी शताब्दी में वर्तमान प्रतिकूल अर्थ की प्राप्ति सम्भव हुई। उस पूर्वाग्रह के दो रूप हुए, एक अभिजात्य तथा दूसरा जनतांत्रिक। जनतांत्रिक दृष्टिकोण से तो जिन दोषों की स्वयं Sophos (चतुर, Clever) शब्द के साथ के साथ संयुक्त नहीं किया जा सकता, उन्हें 'सोफ़िस्ट (कुशलSophistes) उपाधि के साथ भी सम्बद्ध नहीं किया जा सकता 'अधिक चालक' होना सदा एक प्रकार का अपराध था, तथा Apology नामक संवाद में साक्रेटीज 'बुद्धिमान मनुष्य' होने के आरोप का ही खण्डन करता है। अभिजात्य या कुलीन तांत्रिक दृष्टि से इस नाम पर एक अन्य आपत्ति की गयी, इसके रूप से व्यवसायवाद (Professionalism) ध्वनित[२] होता था, और इस

---

१. Plato, Soph. २२३b, Arist. Soph. El. १६५a, २२.

२. जिस प्रकार वीणा-कौशल (Kitharistes) के कारण वीणा-वादन का व्यवसाय बनता है, उसी प्रकार कौशल (Sophistes) से 'चातुर्य' अथवा 'विदग्धता' का व्यवसाय बनता है।

बाद से अभिजात यवन स्वभावतः हिचकता था। सर्वोपरि तथ्य तो यह था कि ये विशिष्ट लोग चूँकि विदेशी थे, अतः एथेन्स में वे लोकप्रिय नहीं हो सके। एथेन्स की जनता स्वयं पूर्वाग्रहों से पूर्ण थी, और विदेशियों के विरुद्ध उनके पूर्वाग्रह तो बहुत बढ़े हुए थे। नागरिकता के अधिकारों की रक्षा के लिए जो दृढ़ बन्धन विकसित हो रहे थे, उनका यह अंशतः कारण था, और अंशतः परिणाम भी। एथेन्सवासी वक्ता अथवा हास्य कवि के पास किसी पर आरोप लगाने के लिये सर्वाधिक शक्तिशाली अस्त्र यह था कि अमुक ने विदेशी उद्धरण दिया है। हम वर्तमान काल में भी इस प्रकार की राष्ट्रभक्ति से परिचित है, तथा जनतांत्रिक एथेन्स में यह एक अत्यन्त प्रभावशाली शक्ति थी। इन कारणों से स्पष्ट होता है कि क्यों प्लेटो ने प्रोटागोरस को सोफ़िस्ट उपाधि को शौर्य-पूर्वक ग्रहण करते हुए उपस्थित किया।[1]

यह मत वर्तमान काल में प्रायः सामान्य आधार माना जाता है; परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि इसके सभी परिणाम हमें पूर्णतया ज्ञात हैं। विशेष रूप से, जर्मन लेखक आज भी 'सोफिस्टो के युग' तथा अठारवीं शताब्दी के 'प्रबोध' (Aufklarung) के बीच बाह्य सादृश्य से बहुत प्रभावित है, तथा इसका परिणाम यह हुआ कि लेखक के व्यक्तिगत पूर्वानुराग के अनुसार सोफ़िस्टों को या तो धर्म तथा नैतिकता के विनाशक के रूप में देखा जाता है, अथवा स्वतंत्र विचार के सेनानी के रूप में। परन्तु सत्य तो यह है कि यदि यूनानी विचार के इतिहास में कहीं पर Auflklarung (प्रबोध) से कोई समानता है तो यह बहुत पहले ही उपलब्ध है, तथा इसका अग्रदूत (apostle) जेनोफ़ेनीज है, न कि प्रोटागोरस। प्रोटागोरस तथा जोर्जियस जिसके प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति (attitude) प्रदर्शित करते हैं, वह धर्म नहीं वरन् विज्ञान है, तथा यदि हम इस मौलिक भेद को ध्यान में नहीं रखते, तो उन्हें कभी भी समझने में समर्थ नहीं होंगे। 'सोफ़िस्ट-युग' तो सर्वोपरि विज्ञान के विरुद्ध प्रतिक्रिया का युग है।

यह पहले कहा जा चुका है कि सोफ़िस्टों का कोई संघ नहीं था, परन्तु यह सत्य है कि उनकी शिक्षाओं में कुछ बातें सामान्य थीं, उन सबका प्रमुख लक्ष्य व्यावहारिक साध्यों की ओर था। उनका कहना था कि वे शुभ (Goodness, arete) की शिक्षा देते हैं, और शुभ से उनका तात्पर्य एसी शक्ति से

---

१. Prot. ३१७ b.

था जिससे राज्य तथा परिवार का समुचित निर्देशन हो सके। विशेषतः एथेन्स जैसे जनतांत्रिक राज्य में इसे व्यवहार में क्रियान्वित करने में एक विशेष सरलता थी। जो लोग सोफ़िस्टों को धन दे सकते थे उन्हें वे अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से शिक्षा देते थे। और ये लोग प्रायः उच्चकुलोत्पन्न तथा धनाढ्य होते थे, और इस कारण वे स्वभावतः जनतन्त्र के शिकार रहते थे। अतः सोफ़िस्ट लोग बहुधा यही शिक्षा देते थे कि यदि कोई व्यक्ति जनतांत्रिक शासक वर्ग में नहीं आता हो तो भी वह कैसे सफल हो। विशेष रूप से उसे यह शिक्षा दी जाती थी यदि न्यायालयों में उस पर कोई आरोप लगा हो तो उससे कैसे मुक्त हो। सोफ़िस्ट लोगों के कार्य के इस पक्ष पर आपत्ति हो सकती है, परन्तु केवल इसी कारण से स्वयं उन व्यक्तियों पर आरोप लगाना अधिक उचित नहीं। यह तो एथेन्स की तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का स्वाभाविक परिणाम था। यदि प्रोटागोरस अपने को शुभ का उपदेशक माने तो उसको अपने व्यवसाय में पूर्ण निष्ठा में सन्देह का कोई स्थान नहीं। यह अवश्य हैं कि उसके मुवक्किलों (clients) ने जिस शुभ को उससे अपेक्षा की थी वह कुछ भद्दे प्रकार का था। तथा व्यवहार में उसकी शिक्षाएं अधिकाधिक वक्तृत्व कला एवं विवाद में सीमित होती गयी। यदि उसे राजनीति तथा विधिशास्त्र में वस्तुतः पर्याप्त कोशल न प्राप्त होता, तो पेरिक्लीज़ ने उसे थूरियाई के लिए विधान-संहिता बनाने जैसा अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य कभी न सौंपा होता। परन्तु जिन युवकों को उसे प्रशिक्षित करना पड़ा वे सब विधान-निर्माण की अपेक्षा राज्य के विरुद्ध षड़यन्त्र में अधिक व्यस्त थे। यह उसका दोष नहीं था, और यदि हम एक बात ध्यान में रखें, तो सोफ़िस्टों को अधिक अच्छी तरह समझने में सहायता मिलेगी। और वह बात यह है कि वह परिस्थिति ही ऐसी थी कि सोफ़िस्टों को मुख्यतया अपनी आजीविका के लिए उन लोगों पर आश्रित रहना पड़ा, जिन्होंने बाद में अल्पतांत्रिक क्रांतियां की। वे लोग केवल इसी अर्थ में जनतन्त्र की उत्पत्ति थे! कोई निष्ठावान परन्तु विनम्र अतन्त्रवादी उनके बारे में क्या सोचता होगा, इसका कुछ अनुमान हम प्लेटो के ग्रन्थ मीनो (Meno) (91csqq) में एनिटस (Anytos) के कथन से लगा सकते हैं।

प्रोटागोरस (PROTAGORAS)

'सोफ़िस्ट' शब्द की जिस अर्थ में हमने अभी व्याख्या की है इस अर्थ में

एब्डेरा (abdera) निवासी प्रोटागोरस प्रथम सोफ़िस्ट है। प्लेटो ने अपने 'प्रोटागोरस' नामक संवाद में उसकी एथेन्स की द्वितीय यात्रा का वर्णन किया है। उसने एथेन्स की यात्रा एक बार पहले भी की थी, जब एथेन्सवासी युवक हिप्पोक्रेटीज़ अपनी बाल्यावस्था में साक्रेटीज से प्रोटागोरस का परिचय कराने के लिए उनसे अनुमति माँगी थी । इस बार हिप्पोनिकस के पुत्र कैलिअस (Kallias) के आवास पर यवन-जगत्‌के सभी भागों से आये हुए सोफ़िस्टों का एक विशाल सम्मेलन हुआ था। कैलिअस अपने समय में सोफ़िस्टों पर सर्वाधिक धन व्यय करने के लिए प्रसिद्ध था। यह स्वाभाविक है कि पेलोपोनेसियन युद्ध के प्रथम चरण में इस प्रकार का सम्मेलन कभी भी सम्भव नहीं हो सकता था। उस समय तक एल्किबिआडीज़ (Alkibiades) की दाढ़ी निकल रही थी, परन्तु था वह किशोर ही (३०९ a)। प्रोटागोरस को साक्रेटीज़ की अपेक्षा अधिक आयु वाला दिखाया गया है, तथा वह कहता भी है (३१७ c) कि उस मण्डली में (जिसमें हिप्पियस तथा प्रॉडिकस भी थे) ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है, जिसका वह पिता नहीं हो सकता, तथा वह अपने व्यवसाय में बहुत वर्षों से संलग्न है। वह अपने भाषणों में श्रोताओं को सदा इस रूप में सम्बोधित करता है मानो वे सब नई पीढ़ी के हों। 'हिप्पियस बृहद्' (Hippis mair २८२९) नामक संवाद में हिप्पियस का कथन है कि प्रोटागोरस स्वयं उसकी अपेक्षा बहुत वृद्ध था। 'मीनो' (Meno) नामक संवाद से हमें और भी बातें ज्ञात होती हैं। यह संवाद साइरस (Cyrus) के अभियान (ई० पू० ४०१) के पहले का माना जाता है, जिसमें मीनो ने भाग लिया था, तथा वहाँ ९१ e) यह कहा गया है कि प्रोटागोरस काफी समय पूर्व दिवंगत हो चुका था, मृत्यु के समय उसकी सत्तर वर्ष की आयु थी, तथा उसने चालीस वर्ष तक सामाजिक कार्य किया था। इन चालीस वर्षों की अवधि में उसने इतना धन अर्जित किया था, जो फीडिअस (Pheidias) तथा अन्य किन्हीं दस मूर्तिकारों की आय को एक साथ एकत्रित करने से भी अधिक था। अन्त में थीटियस (Theaetetus) नामक संवाद में, जिसे साक्रेटीज़ के मुकदमे के ठीक पहले घटित माना जाता है, प्रोटेगोरस का इस रूप में उल्लेख किया गया है। मानो उसकी पहले मृत्यु हो चुकी हो।

इन सभी कथनों की एक दूसरे से पूर्ण संगति बैठती है, तथा इनका जो समग्र प्रभाव हमारे ऊपर पड़ता है। वह एक या दो गौण काल-गणना-भ्रम

हों भी तो उनके कारण परिवर्तित नहीं हो सकता।[1] उनका तात्पर्य यह है कि प्रोटागोरस का जन्म ई० पू० ५०० वर्ष के उपरान्त नहीं हुआ था, तथा एथेन्स की उसकी द्वितीय यात्रा ई० पू० ४३२ के वाद नहीं हुई होगी। इससे कुछ वर्ष पहले भले ही वह यात्रा हुई हो, तथा उसकी मृत्यु पेलोपोनेसियन युद्ध के शुरु के वर्षों में हुई। ये तिथियां उस सुप्रमाणित तथ्य से पूर्णतः संगत हैं, जिसके अनुसार प्रोटागोरस ने ई० पू० ४४४/३ में थूरिआई का संविधान बनाया था,[2] तथा वे सब इस कथन से सर्वथा असंगत हैं, कि चतुर्थ शताब्दी [ई० पू०४११] में उसे अधार्मिकता (impiety) के लिए दण्डित तथा तिरस्कृत किया गया था। वास्तव में प्लेटो का साक्रेटीज़ तो ऐसी बातें कहता है जिनके कारण यह विश्वास ही नही होता कि प्रोटागोरस को अधार्मिकता के आरोप में कभी दण्डित किया गया था।[3] 'मीनो' नामक संवाद में (९१९) एक विशेष तथ्य का

१. यद्यपि प्रोटागोरस को हिप्पोनिकस के पुत्र कैलियस के साथ निवास करते हुए दिखाया गया है (Prof. ३११ a), इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हिप्पोनिकस की मृत्यु हो गयी हो। Republic (३२८ b) में साक्रेटीज़ तथा अन्य लोग पॉलिमार्कस की ओर जाते हैं, यद्यपि केफालस (Kephalos) निश्चित रूप से जीवित है। अद्यतनभूत क्रिया घोषणा' से विवक्षित होता है कि हिप्पोनिकस उस समय भी जीवित था।

२. प्रोटागोरस की परम्परागत तिथि पूर्णतः इसी पर निर्भर है। जो लोग थूरियाई से सम्बद्ध थे उन्हें इसकी स्थापना के वर्ष में प्रौढ़ माना गया, तथा प्रौढ़ता की आयु चालीस वर्ष मानी गयी। इसी कारण एम्पीडोक्लीज, हेरोडोटस तथा प्रोटागोरस सभी का जन्म ई० पू० ४८४/३ में माना गया। तथापि, यह सम्भव है कि किसी विधि-निर्माता की आयु चालीस वर्ष से ऊपर रही हो।

३. यह कथन (Diog Laert. ix. ५४) कि पॉलिजेलम के पुत्र पाइथागोरस ने प्रोटागोरस पर आरोप लगाया था, कुछ अत्युक्ति-सा लगता है, परन्तु उसके ठीक वाद के शब्दों, परन्तु एरिस्टॉटल कहता है कि वह यूथ्लोस (Eudthlo)s था' से स्पष्ट होता है कि इस निविक्ष का सम्बन्ध प्रसिद्ध 'अपने शुल्क के लिए दावा' से है। कहानी इस प्रकार है (वही ix. ५५) कि अपना पहला मुकदमा जीतने पर यूथ्लोस को शुल्क (पारिश्रमिक) देना था। जब प्रोटागोरस ने इसकी मांग की, तब उसने कहा, "हमने अभी मुकदमा नहीं जीता है"। समाधान यह निकला कि प्रोटागोरस उस पर दावा करेगा और तब उसे शुल्क देना होगा। "यदि मैं जीतता हूँ तो इसलिए कि मैं जीत चुका हूँ, यदि तुम जीतते हो तो इसलिए कि तुम विजयी हो"।

उल्लेख किया गया है कि उसके दीर्घ-कालीन जीवन की अवधि में कभी भी किसी ने यह नहीं कहा कि उसके द्वारा किसी को किसी प्रकार की क्षति पहुँचायी गयी हो तथा उसकी कीर्ति उसकी मृत्यु के अनेक वर्षों बाद भी, जब यह संवाद लिखा गया तब तक, निष्कलंक चलती रही। पुनश्च, 'एपॉलाजी' नामक संवाद में प्रोटागोरस पर लगाये गये आरोप का उल्लेख नहीं है परन्तु यदि ऐसा आरोप वस्तुतः लगा होता, तो उसका उसमें उल्लेख प्रायः निश्चित था।[1] साक्रेटीज़ को अपने मुकदमे के समान उदाहरण सर्वप्रथम एनेक्जागोरस के मुकदमें में मिला। अतः इस कथन को यहीं समाप्त कर देना उचित है।

प्लेटो ने प्रोटागोरस का जो चित्र खींचा है उसे व्यंग्य-चित्र (caricature) कहा गया है, परन्तु उसे व्यंग्य-चित्र मानने का कोई विशेष आधार नहीं प्रतीत होता है। प्रथमतः, हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि स्वयं प्लेटो उसके बारे में कोई कथन नहीं करता। उसका उल्लेख साक्रेटीज करता है तथा वह भी प्रोटागोरस के प्रति उसी व्याज (irony) का प्रयोग करता है जिसको वह अपने आप पर प्रयुक्त करने का अभ्यासी है। इस प्रकार के उदात्त मनोरंजनपूर्ण परिहास महान् लोगों के उत्साही प्रशंसकों के लिए प्रयुक्त होते हैं। वस्तुतः हम यह अनुभव करने के लिए बाध्य होते हैं कि स्वयं प्रोटागोरस के प्रति साक्रेटीज के मन में हार्दिक सम्मान था। यह सत्य है कि 'थीटिटस' नामक संवाद में वह प्रोटागोरस की शिक्षाओं का मजाक उड़ाता है, परन्तु वह तुरन्त यह स्वीकार करता है कि यह मजाक है, तथा उसके बाद उसका अधिक सहानुभूति पूर्ण विवरण प्रस्तुत करता है।

प्रोटागोरस के ग्रन्थों के नाम तथा उनकी संख्याओं के बारे में पर्याप्त अनिश्चितता है। इसका निश्चित रूप से कारण यह है कि पाँचवीं शताब्दी में इनके नाम आधुनिक अर्थ से अज्ञात थे।[2] जिस ग्रन्थ को प्लेटो 'सत्य' (The

---

१. यहाँ पर उल्लेख करना उचित है कि इस कथा का जो प्राचीनतम रूप मिलता है (Timon, fr. ५ Diels) उसमें प्रोटेगोरस पर दोषारोपण साक्रेटीज के उपरान्त किया गया प्रतीत होता है साक्रेटीज तथा प्लेटो के बीच कुछ भ्रम (confusion) के कारण उसे प्लेटो का समकालीन बताया गया, तथा तदनुसार उसे डेमोक्रिटस का शिष्य बताया गया, जो वास्तव में एक पीढ़ी के बाद पैदा हुआ था।

२. यह कथन प्रमुखतः गद्यात्मक ग्रन्थों की ओर निर्देश करता है। नाटकों के नामकरण की भी एक शैली थी (यथा उनका नाम गायक-समूह (chorus) अथवा मुख्य प्रवक्ता (protagonist) के अनुसार होता था) तथा प्लेटो ने अपने संवादों का नामकरण करने में इस रीति का अनुसरण किया।

Truth, Aletheia) कहता है, वह सम्भवतः अन्यत्र 'प्रक्षेपक' (The Throwers)[1] नाम से ज्ञात ग्रन्थ ही था, तथा निस्सन्देह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ था। यदि हम प्रोटागोरस पर अधार्मिकता के आरोप वाले प्रसंग को अस्वीकार कर दें तो हमें उस कथानक का भी निषेध करना होगा जिसके अनुसार किसी जन-अधिकारी द्वारा उसके ग्रन्थ की सारी प्रतियां नष्ट कर दी गयी थीं। परन्तु यह सभी दृष्टियों से विसंगत (Absurd) है। कहा जाता है कि प्रोटागोरस की मृत्यु के बहुत वर्षों बाद भी उस ग्रन्थ का विस्तृत क्षेत्रों में अध्ययन होता था। प्लेटो के ग्रन्थ 'थीटिटस' (१५२ a) में वह किशोर, जिसके नाम पर यह संवाद रचित है, कहता है कि उसने उपरोक्त ग्रन्थ को कई बार पढ़ा है। 'हेलेन' (Helen) नामक ग्रन्थ में साक्रेटीज कहता है: "यह कौन नहीं जानता कि प्रोटेगोरस तथा उस काल के सोफ़िस्टो ने विशद ग्रन्थों की रचना की, तथा वह हमें वे ग्रन्थ दे गये?" और यह एथेन्सवासी इतने मूर्ख रहे हों कि नगर में उपलब्ध सभी प्रतियों को जला दिया हो, तो भी उसकी बहुत-सी प्रतियाँ ग्रीक-जगत् के एब्डेरा से सिसली तक के विस्तृत क्षेत्र में अवश्य फैली होंगी, तथा एथेन्स के अधिकारियों का इन पर कोई वश नहीं होगा। अतः यह स्पष्ट है कि प्लेटो ने जब इस ग्रन्थ को उद्धृत किया, तब यह उपलब्ध तथा बहु-पठित था। प्लेटो के लिए यह भी सम्भव नहीं था कि वह प्रोटेगोरस के ऐसे सिद्धान्तों की व्याख्या उस अर्थ में करें जिसको वह ग्रन्थ वस्तुतः ध्वनित न करे।

उसका प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि 'मानव सभी वस्तुओं का मापदण्ड है, जो वस्तुएं उसके सापेक्ष्य हैं उनका अस्तित्व है, और जो उसके सापेक्ष्य नहीं है, उनका अस्तित्व नहीं है।" (Man is the measure of all things, of things that are that they are, and of things that are not that they are not) इस उक्ति के तात्पर्य का विवेचन तो बहुत हुआ है, परन्तु 'माप-दण्ड' शब्द के विलक्षण प्रयोग पर भली-भाँति ध्यान नहीं दिया गया है। हम लोग इस कथन से इतने अधिक अभ्यस्त हो गये हैं कि यह हमें खटकता नहीं है। तथापि प्रोटेगोरस के कथनों के जो अर्थ लगाये गये हैं, उनको स्पष्ट

---

१. इस प्रसंग में कुश्ती की उपमा प्रायः दी जाती है तथा Katabanglein का अर्थ होता है 'प्रक्षेपण'। इन्द्रिय-प्रत्ययों के प्रक्षेपण का तकनीकी अर्थ हो गया, 'संवेदन को ज्ञान का स्रोत मानने के मत पर प्रहार'।

करने की यह निश्चित रूप से सर्व-सुलभ विधि नहीं है। 'मापदण्ड' क्यों ? इसे समझने के लिए हमें शायद इस शब्द के अंकगणितीय अर्थ से प्रारम्भ करना होगा। ऐसा प्रमाण मिलता है कि प्रोटागोरस गणित पर, तथा विशेष रूप से उस सिद्धान्त पर आक्षेप करता है जिसके अनुसार स्पर्शी रेखा (tangent) वृत्त को किसी एक बिन्दु पर स्पर्श करती है। उसका कहना है कि वृत्त तथा सीधी रेखा में जब सम्पर्क होता है तो बिन्दु नहीं, तनी रेखा होगी।[1] अतः यह सम्भव है कि उसका 'मापदण्ड' शब्द का प्रयोग पाँचवीं शताब्दी में प्रसिद्ध असम्मेयता (incommensurability) के बारे में विवादों के कारण हो। रेखा-गणित के विद्वान् यह कहते हैं कि शायद उसने यह माना हो कि वर्ग की भुजा तथा विकर्ण में कोई उभयनिष्ठ मापदण्ड नहीं है, परन्तु ऐसी स्थितियों में मनुष्य ही मापदण्ड है। तात्पर्य यह है कि सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए वे सम्मेय हैं, अतः जो सिद्धान्त मनुष्य के सामान्य अनुभव के विरोध रूप में उपस्थित होते हैं, उनकी सरलता से अवहेलना की जा सकती है, हम देखेंगे कि अन्य समस्याओं के प्रति भी प्रोटागोरस ने इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया। विधि तथा प्रकृति के प्रसिद्ध विवाद में वह निश्चित रूप से विधि के पक्ष में रहा।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेख करना समीचीन है कि परम्परा के अनुसार प्रोटागोरस तथा ज़ीनो के बीच एथेन्स में मिलन बताया गया है, और सम्भव है कि प्रोटागोरस उससे मिला भी हो। कहा जाता है कि उन दोनों के मध्य एक संवाद भी हुआ था, जिसमें उन दोनों ने सातत्य की समस्या से घनिष्ट सम्बन्ध रखने वाले एक प्रश्न पर विचार-विमर्श किया था। उस संवाद का एक उद्धरण सुरक्षित है, तथा एरिस्टॉटल ने भी इसका उल्लेख किया है।[2] अतः इसकी प्रमाणिकता सम्पुष्ट होती है। जीनो ने प्रश्न किया, "प्रोटागोरस, तुम मुझे यह बताओ के बाजरे का एक दाना गिरने पर आवाज करता है अथवा उसका दसहजारवाँ भाग ?" और जब उसने नकारात्मक उत्तर दिया, तब जीनो ने उससे पूछा 'एक द्रोण (bushel) बाजरा जब गिरता है तब आवाज होती है या नहीं ?' और जब उसने कहा, हाँ, तब जीनो ने प्रत्युत्तर दिया, तब क्या ?

---

१. Arist. Met. B, २. ९९८ a, २.

२. Simplicius, Phys. ११०८, १८ (R. P. १३१), Arist. Phys. २५० a, २०. प्लेटो के ग्रन्थ Parmenides की प्राक्कल्पना है कि इस प्रकार के संवादों का अस्तित्व था, यह स्वयं को उनमें से एक मानता है।

'क्या एक द्रोण बाजरे तथा एक दाना बाजरे और उसके दस हजारवें भाग के बीच कोई अनुपात नहीं हैं ? जब उसने कहा कि अनुपात है, तब जीनों ने पूछा, "तब उनके बीच की ध्वनियों के अनुपात भी क्या उसी प्रकार नहीं होंगे ? जिस प्रकार ध्वनि करने वाली वस्तुओं का आपस में सम्बन्ध होगा, उसी प्रकार उनके बीच की ध्वनियों का भी। और यदि यह सत्य है तो यदि बाजरे के द्रोण से आवाज होती है । तो एक दाने तथा उसके दस हजारवें अंश से भी आवाज निकलेगी" इस उद्धरण से कम से कम इतना तो सिद्ध होता ही है कि प्रोटागोरस तथा जीनों के बीच इस प्रकार के प्रश्नों पर विमर्श वाञ्छित माना गया। इससे उस मत की भी पुष्टि होती है कि वास्तव में इलियाटिक द्वन्द्वन्याय (dialectic) के कारण ही लोग विज्ञान के प्रति उदासीन हो गये। पुनश्च, पोरफिरी (Porphyry) ने कहा कि उसे प्रोटागोरस का एक ग्रन्थ मिला, जिसमें एक-सत्तावाद के समर्थकों के विरुद्ध तर्क समाविष्ट थे।[१]

प्रश्न है कि कौन सा 'मनुष्य' इस प्रकार सभी वस्तुओं का मापदण्ड है ? प्लेटो इस सिद्धान्त के तात्पर्य की अनेक बार व्याख्या करते हुए कहता है कि मेरे लिए वस्तुएं वैसी हैं, जैसी हमें दीख पड़ती हैं, तथा दूसरों के लिए वैसी हैं जैसी उन्हें दिख पड़ती हैं। यह सम्भव है कि यह शब्दशः उद्धरण न हो, परन्तु यह मानना कठिन है बिना इस प्रकार के आधार के प्लेटो ने ऐसी व्याख्या करने का साहस किया हो। हमें यह भी प्रतीत होता है कि आधुनिक दृष्टि-कोण, जिसके अनुसार प्रोटागोरस व्यक्तिगत मनुष्य को नहीं, वरन् 'शुद्ध मानव' (Man as such) को सम्बोधित करता है, उसके ऊपर ही एक ऐसे वैशिष्ट्य का आरोपण करता है जिसे वह समझा ही न हो, और यदि समझा भी हो, तो स्वीकार नहीं किया हो। प्लेटो की सद्भावना की पुष्टि पुनः उसके द्वारा 'थीटिटस' में दिये गये संकेत से होती है जिसे वह विकसित करने की उक्ति पर आधारित संवेदनवादी सिद्धान्त को विकसित करने के प्रसंग में देता है, तथा कहता है कि स्वयं प्रोटागोरस द्वारा इसका इस भाँति विकास नहीं हो पाया था। वह कहता है कि इस सिद्धान्त को उसने सामान्य जन-समूह से छिपाये रखा, तथा केवल अपने शिष्यों को एकान्त में बताया। उसने सरलतम ढंग से कहा कि इस सिद्धान्त को प्रोटागोरस की पुस्तक में नहीं ढूंढ़ा जा सकता।

प्लेटो इस उक्ति की इस प्रकार की व्याख्या करने वाला अकेला व्यक्ति

१. Eus. P. E. X३, २५ (Bernays, Ges. Abh. i. १२१.)

नहीं है। प्रोटागोरस का कनिष्ठ सह-नागरिक डेमोक्रिटस का भी इस सिद्धान्त का ठीक यही अर्थ समझा। प्लूटार्क का कहना है कि एपिक्यूरियन कोलोटीज (Kolotes) ने डेमोक्रिटस पर यह आरोप लगाया कि उसने अपनी शिक्षा कि 'कोई भी वस्तु अमुक होने की अपेक्षा अमुक नहीं है' (Nothing was such rather than such) के कारण मानव-जीवन को विभ्रम में डाल दिया। प्लूटार्क (अथवा सम्भवतः उसका प्राधिकारी) उत्तर देता है कि डेमोक्रिटस ने इस प्रकार के मत धारण करने के विपरीत इस मत के समर्थक प्रोटागोरस से प्रतिवाद किया, तथा उसके विरुद्ध अनेक प्रत्यायक प्रमाण दिये।[1] इस तथ्य की अवहेलना करना सम्भव नहीं, तथा डेमोक्रिटस का प्रामाण्य न केवल अपने आप में सर्वोत्तम मूल्य का है, वरन् इसका प्लेटो से स्वतन्त्र अस्तित्व है।

इन सब बातों से व्यावहारिक निष्कर्ष यह निकलता है कि प्रत्येक विषय के बारे में दो परस्पर विरोधी कथन सम्भव हैं, तथा दोनों 'सत्य' होंगे, यद्यपि उनमें से एक कथन 'सबल' होगा तथा दूसरा 'निर्बल'। शास्त्रार्थ करने वाले का यह कर्तव्य है कि वह निर्बल कथन को सबल बनावे, और यह एक ऐसी कला है जिसका प्रशिक्षण दिया जा सकता है। यहाँ यह ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि यह अपने आप में कोई शाश्वत सिद्धान्त नहीं है। प्लेटो स्पष्ट रूप से यह कहता है कि यद्यपि प्रोटागोरस के अनुसार सभी विश्वास समान रूप से सत्य हैं तथापि कोई विश्वास दूसरे विश्वास की अपेक्षा श्रेष्ठतर (better) हो सकता है, तथा ऐसा प्रतीत होता है कि प्रोटागोरस ने उन विश्वासों को श्रेष्ठतर माना जो सामान्य शरीर तथा मनःस्थिति वाले व्यक्ति के विश्वासों के अनुरूप हों। जिन लोगों को पीलिया (jaundice) रोग है, वे सभी वस्तुओं को पीली देखते हैं। उसी प्रकार यह सम्भव है कि किसी व्यक्ति के नैतिक विश्वास उसकी आत्मा की असामान्य स्थिति के कारण रंगे हों। पीलिया-ग्रस्त आँखों के लिए पीली दीखने वाली वस्तुएँ वास्तव में पीली ही हैं परन्तु इससे इस तथ्य में कोई परिवर्तन नहीं आता कि यदि रोगी को वे वस्तुएं पीली न दिखती तो उसके लिए श्रेष्ठतर था, उसका विश्वास सत्यतर नहीं होगा, परन्तु श्रेष्ठतर अवश्य होगा। अतएव जिस प्रकार चिकित्सक का यह कार्य है कि वह अपने रोगी के शरीर को इस स्थिति में लावे ताकि वह सामान्य ढंग

१. Plut. adv. Col. ११०८ f.sq Cf Sextus Empiricus, adv. Math. vii ३८९.

से देख सके, उसी प्रकार सोफ़िस्ट का यह कर्तव्य है कि वह किसी प्रदत्त प्रसंग के निर्बल कथन को न केवल श्रेष्ठतर बनावे, वरन् प्रबलतर सिद्ध करे।

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि क्यों प्लेटो ने प्रोटागोरस को विधि के एक कृतनिश्चय सेनानी के रूप में उपस्थित किया, जिसने दिशा-निर्देश के लिए प्रकृति की ओर उन्मुख होने के सभी प्रयासों का विरोध किया। व्यवस्थित समाज में उसका दृढ़ विश्वास था, तथा उसकी मान्यता थी कि संस्थाओं तथा प्रथाओं के कारण ही मनुष्य पशुओं से ऊपर उठ पाया है। वस्तुतः प्लेटो ने प्रोटागोरस के मुख से उसके नाम से ख्यात संवाद ग्रन्थ में जो मिथक कहलाया है उसका यही अर्थ है। अतः वह क्रान्तिकारी होने की अपेक्षा परम्परागत नैतिकता का सेनानी था। परन्तु उसकी नैतिकता का आधार प्राचीन ढंग का पूर्वाग्रह नहीं था, वरन् सामाजिक प्रथाओं के मूल्यों में दृढ़ विश्वास था। इस अर्थ में उसकी न केवल यह मान्यता थी कि वह स्वयं 'शुभ' का उपदेश देता है, वरन् उसका विश्वास था कि राज्य की विधियों तथा जनता के मत द्वारा भी 'शुभ' की शिक्षा दी जा रही है, परन्तु सम्भवतः यह शिक्षा सम्यक् प्रकार से नहीं हो रही हो। इस प्रकार के उपदेश की उपयोगिता में उसका दृढ़ विश्वास था, तथा उसकी धारणा थी कि इसका प्रारम्भ बाल्यकाल के प्रारम्भिक दिनों में होता है। उसने कुछ वस्तुओं को अन्यों की अपेक्षा जितना ही कम सत्य माना, उतना ही उसका यह विचार दृढ़ होता गया कि सामान्य तथा साधारणतया मान्यता प्राप्त वस्तुओं के प्रति हमें आबद्ध रहना चाहिये।

'प्रोटागोरस की धर्म के प्रति अभिवृत्ति को साधारणतया उस पर अधामकता के अत्यन्त असम्भाव्य आरोप के कथानक के परिपेक्ष्य में देखा जाता है उसके ग्रन्थ 'देवताओं' के प्रति (On the Gods) की एक पंक्ति आज भी उपलब्ध है, और वह निम्नलिखित है, "देवताओं के बारे में निश्चित रूप से हम न तो यह कह सकते हैं कि वे हैं, न यह कह सकते हैं कि वे नहीं हैं, तथा हम यह भी नहीं कह सकते कि उनकी आकृति किस प्रकार की है, क्योंकि इस विषय में सुनिश्चित ज्ञान के मार्ग में अनेक अवरोध हैं। यह विषय दुर्बोध है तथा मानव-जीवन अल्प है।" इन शब्दों में किसी प्रकार की अधार्मिकता नहीं दीखती, तथा यूनानी दृष्टीकोण से तो निश्चित रूप से कोई अधार्मिकता यहाँ नहीं है। इस प्रकार के विषयों पर परिकल्पनात्मक मत देना यूनानी धर्म का कार्य नहीं था। यूनानी धर्म पूर्णतया उपासना-परक (worship) था, न कि ईश्वर-

परक विधि–निषेधात्मक,[1] पुनश्च, यह उद्धृत वाक्य किसी अन्य वस्तु की प्रस्तावना की भाँति अपने नगर की पद्धति के अनुरूप उपासना की संस्तुति का का आमुख भी हो सकता है। इस प्रकार की संस्तुति प्रोटागोरस के अन्य दृष्टि-कोणों से पूर्णतः संगत होगी। यदि हम स्वतः देवताओं के बारे असंदिग्ध ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ हैं तो हमें मान्य उपासना स्वीकार कर लेना ही उचित हैं, प्रकृति के विरुद्ध विधि के अग्रदूत से हमें इसी प्रकार के कथन की आशा करनी चाहिये।

हिप्पियस तथा प्रोडिकस
(HIPPIAS AND PRODIKOS)

कैलियस के आवास पर उपस्थित जिन अन्य सोफ़िस्टों का उल्लेख है, वे दर्शन के इतिहास के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। परन्तु विलक्षण व्यक्तित्व के रूप में वे पर्याप्त रोचक हैं। एलिस (Elis) का निवासी हिप्पियस सार्व-भौमिकता की दिशा में अपने प्रयासों के कारण मुख्य रूप से स्मरणीय है। वह सभी विशेषतावाद (specialism) का शत्रु था, तथा ओलम्पिया में एक अत्यन्त शोभन वेश में अलंकृत होकर उपस्थित हुआ, जो पूर्णतया उसके ही हाथों द्वारा निर्मित था, यहाँ तक कि उँगली की अंगूठी भी। वह खगोल-विज्ञान से लेकर इतिहास तक, किसी भी विषय पर किसी के समक्ष भाषण देने को तैयार था। ऐसे व्यक्ति के लिए अच्छी स्मरण शक्ति आवश्यक है, तथा हमें ज्ञात है कि उसने स्मरण-शास्त्र (mnemonics) की एक पद्धति का आविष्कार किया था। परन्तु उसके चरित्र का एक अधिक गम्भीर पक्ष भी था। वह समय था जब लोग रेखागणितीय पद्धति से वृत को वर्ग में परिण्ति करने के लिए आतुर थे। चिऑस (chios) निवासी हिप्पोक्रेटीज की अर्धचन्द्रकार आकृतियाँ (lunules) इसी समय की थीं, तथा बहुमुखी प्रतिभावान हिप्पियस यहाँ भी निष्क्रिय न रहा होगा। उसने द्विघाती (quadratrix) वक्र (curve) का आविष्कार किया, और यदि इसकी यांत्रिक व्याख्या हो सके तो समस्या का समाधान हो जाय। किऑस (keos) निवासी प्रोडिकस (Prodikos) को आज हम मुख्यतया जेनोफ़न द्वारा सुरक्षित 'हेराक्लीज का चयन' [Choice of Herakles] सम्बन्धी शुष्कप्राय नीति-कथा [apologue] के कारण जानते हैं। हम अभी यह देखेंगे कि उन दिनों हेराक्लीज़ का व्यक्तित्व कितना महत्त्वपूर्ण था। प्रोडिक़स का प्रमुख कार्य सम्भवतः पर्यायवाचियों का विवेचन करना था, और लगता है कि व्याकरण

---
१. Cf. अव०/१४०

की शैशवास्था में इसे महत्त्वपूर्ण माना जाता था। प्रोटागोरस का भी व्याकरण में योगदान था। उसने कुछ व्याकरण सम्बन्धी लिंगों की अनियमित प्रकृति की ओर ध्यान दिया। यह सत्य है कि यह सब उसने विधि अथवा प्रथा क आधिपत्य के उदाहरण-स्वरूप किया। उसने वाक्यों का आदेश, इच्छा, इत्यादि में जो वर्गीकरण किया, उसके कारण भावदशा (moods) के प्रभेद का मार्ग प्रशस्त हुआ।

जॉर्जियस (GEORGIAS)

सिसली स्थित लियोण्टिनाई (Leontioni) नगर का निवासी जॉर्जियस ई० पू० ४२७ में अपने नगर से राजदूत बनकर एथेन्स आया था, और उस समय तक वह प्रौढ़ हो चुका था। यद्यपि आयु में उसे हिप्पियस तथा प्रोडिकस से छोटा नहीं होना चाहिये, परन्तु उसका प्रभाव प्रोटागोरस के बाद वाली पीढ़ी पर पड़ा था। ऐसा लगता है कि वह एम्पीडोक्लीज़ का शिष्य था। प्लेटो के संवाद 'मीनो' (Meno, ७६ c) के एक प्रसंग से हमें ज्ञात होता है कि अपनी वृद्धावस्था में जब वह थेसली के लेरिसा (Larissa) स्थान पर निवास कर रहा था, तब भी अपने गुरू के निःस्रवण (effenences) के सिद्धान्तों पर प्रवचन करता था। कहा जाता है कि वह लम्बी आयु तक जीवित रहा। परन्तु उसकी मृत्यु की कोई निश्चित तिथि ज्ञात नहीं। प्लेटो ने उसका जो विवरण प्रस्तुत किया है, उससे स्पष्ट होता है कि प्रोटागोरस की भाँति राजनीति का शिक्षक होने की अपेक्षा वह अलंकार शास्त्र (Rhetoric) का शिक्षक था। इसके कारण थे पेलोपोनेसियन युद्ध तथा पेक्लीज़ की मृत्यु के कारण राजनैतिक स्थिति में हुए परिवर्तन। जनतन्त्र तथा समृद्ध वर्गों के बीच सम्बन्ध कटुतर हो रहे थे, अतः कानूनी वाग्मिता का महत्त्व दिनोंदिन बढ़ रहा था। सिसली में वर्ग-संघर्ष के दिनों में कलात्मक गद्य के माध्यम से अनुनयन (persuation) की जिस पद्धति का विकास हुआ था उससे जॉर्जियस ने एथेन्स को परिचित कराया। एथेन्स के साहित्य पर उसका अद्भुत प्रभाव था। एथेन्स के साहित्य के माध्यम से सम्पूर्ण यूरोपीय गद्य शैली के विकास पर भी जॉर्जियस का विपुल प्रभाव था। प्रसंगवशात् यहाँ पर यह उल्लेख करना अनावश्यक न होगा कि आकृति (figure) तथा विचित्र स्पर्श-समतल (trope) शब्दों को जिनका प्रयोग उसने उपदेशों में वाग्मिता की युक्तियों के लिए किया, पाइथागोरसीय संगीत के सिद्धातों (अव० ३२) से ग्रहण किया गया है, तथा कुछ

शैलियों में शब्दों का विन्यास, उनका प्रारम्भिक अर्थ है।[1]

प्रोटागोरस की ही भाँति जॉर्जियस को भी इलियाटिक द्वन्द्वन्याय के कारण बाध्य होकर विज्ञान में अविश्वास करना पड़ा। जैसा कि हमने देखा, प्रोटागोरस पुनः सामान्य बोध (common sense) की ओर उन्मुख हुआ, परन्तु जॉर्जियस की पद्धति कुछ अधिक उग्र थी। यदि प्रोटागोरस ने उपदेश दिया कि सभी मत सत्य हो सकते हैं, तो जॉर्जियस की मान्यता थी कि कहीं भी सत्य नहीं है। अपने ग्रन्थ 'प्रकृति' या 'असत्' (On nature or the non existent)[2] में उसने सिद्ध करना चाहा कि (१) किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है, (२) यदि अस्तित्व हो भी तो उसे हम नही जान सकते, तथा (३) यदि इसे हम जान भी लें, तो अपने ज्ञान को दूसरों को समझा नहीं सकते। इन कथनों को सिद्ध करने के लिए दिये गये उसके तर्कों के प्रायः दो स्वतन्त्र विवरण मिलते हैं, और यद्यपि दोनों विवरण एक दूसरे से सहमत है, तथापि निश्चित रूप से परवर्ती काल की भाषा में दिये गये पढान्तय हैं, हम यह स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि वे मुख्यतया ज़ीनों तथा मेलिसस के कथनों से ग्रहीत हैं, और यह इस बात का संकेत है कि मूलतः वे प्रामाणिक हैं। साक्रेटीज, जो जॉर्जियस का शिष्य रह चुका है, उसके (जॉर्जियस) हेलेन (Helen १०·३) नामक ग्रन्थ के एक कथन का उल्लेख करता है कि 'किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है' (Nothing is), तथा वह उसके नाम को जीनो तथा मेलिसस के साथ सम्बद्ध करता है। इस प्रकार एक सामान्य ढंग से वह परवर्ती विवरणों को सम्पुष्ट करता है। ज़ीनों तथा मेलिसस की तर्क-पद्धति ऐसी थी जिससे दो विरोधी अर्थ निकलते हैं और जॉर्जियस ने उसी विरोध को स्पष्ट किया। उसने जो तर्क दिया, वह इस प्रकार का है : 'जो वस्तु नहीं है, उसका अस्तित्व नहीं है, अर्थात् इसका भी उतना अस्तित्व है जितना किसी वस्तु का', यहाँ पर जो समस्या उठायी गयी, उसका स्पष्टीकरण तब तक नहीं हुआ, जब तक प्लेटो ने 'सोफ़िस्ट' (Sophist) नामक संवाद की रचना नहीं कर ली, जब हम वहाँ पहुँचेंगे, तब इस विषय पर विचार करेंगे।

आचार-शास्त्र के क्षेत्र में इस नास्तिवाद (nihilism) का प्रतिरूप

---

१. Taylor, Varia Socratica. १. पृष्ठ २०६, नं० २. Cf. also the uses of eidos and for eidullion poems.

२. चूंकि विकल्प के लिए अथवा का प्रयोग किया गया है, अतः इस शीर्षक का प्राचीन रूप यह नहीं हो सकता।

सिद्धान्त यह होगा कि उचित [right] तथा अनुचित [wrong] के बीच कोई प्राकृत भेद नहीं है। परन्तु प्लेटो ने अत्यन्त सावधानी से काम लिया, तथा स्वयं जॉर्जियस को इस प्रकार के निष्कर्ष निकालते हुए नहीं प्रदर्शित किया, यहाँ तक कि जॉर्जियस का पट्ट शिष्य पोलोस (Polos) भी प्राकृतिक अधिकारों विरुद्ध वैधानिक अधिकारों के आत्यन्तिक निष्कर्षों पर पहुँचने में हिचकता है। इस प्रकार के निष्कर्ष कैलिक्लीज़ (Kallikles) द्वारा निकाले गये हैं, जिसका ऐथेन्स के जनतंत्रिक राजनीतिज्ञ के रूप में परिचय कराया गया है। उसके बारे में इसके अतिरिक्त हम कुछ नहीं जानते, परन्तु वह एक जीवन्त व्यक्ति के रूप में हमें प्रभावित करता है। संवाद में अभी भी वह अपरिपक्व है, तथा सम्भव है कि क्रान्ति की अवधि में वह अदृश्य हो गया हो। प्लेटो काल्पनिक पात्रों का परिचय नहीं कराता, तथा वह समकालीन जीवित व्यक्तियों का भी, कुछ स्थानों के अतिरिक्त, यथा 'फीडो' (Phaedo) में, जहाँ ऐतिहासिक कारणों से आवश्यक हो, परिचय नहीं कराता। जो भी हो, हमारे पास इस तथ्य के लिए पर्याप्त प्रमाण है कि कैलिक्लीज द्वारा मान्य सिद्धान्त कि 'शक्ति ही उचित है' (might in Right) पांचवीं शताब्दी के अन्त में एथेन्स में प्रचलित था। मेलियन (Melian) संवाद में थूसिडाइड्स (Thucydides) ने हमें यह दिखाया है कि कैसे साम्राज्यिक जनतन्त्र का उसके अधीन मित्र-राष्ट्रों के प्रति धारणा के औचित्य को सिद्ध करने के लिए इस सिद्धान्त का प्रयोग किया जा सकता है। यूरीपीडीज़ (Euripides) लिखित 'हेराक्लीज़' (Herakles) इसी समस्या का एक अध्ययन है।[1] इस ग्रन्थ की विषय-वस्तु यह है कि 'शक्तिशाली व्यक्ति अपने आप में पर्याप्त नहीं हैं, तथा वह तभी तक सुरक्षित है, जब तक अपने बल का प्रयोग जन–सामान्य की सेवा के लिए करता है। शक्तिशाली व्यक्ति' का यह सम्प्रत्ययन (जिसका हेराक्लीज सुन्दर उदाहरण है) अपने आप में निकृष्ट नहीं है। इसका उत्तम पक्ष भी था। पिण्डर (Pinder) वर्णन करता है कि कैसे हेराक्लीज़ ने गेरयोनीज़ (Geryones) के बैलों को बिना मूल्य दिये उस उच्चतर विधि का हवाला देकर ले लिया, तथा यह विधान

---

१. देखिये, मेरा लेख 'दि रिलीजस एण्ड मारेल आइडियाज ऑफयूरी पीडीस इन दि प्रोसिडिंग्स ऑफ दि क्लासिकल एसोसियेशन ऑफ स्काटलेण्ड, "The Religious and Moral Ideas of Euripides in the procedings of the Classical Association of Scotland, १९०७-८, pp. ९६ क्रमशः।

अत्यन्त हिन्सात्मक कृत्य को भी दोनों हाथ उठाकर औचित्य प्रदान करता है'। यह वाक्यांश प्लेटो के संवाद 'ज़ॉर्जियस' (Georgias, ४८४ b) में सम्यक् रूपेण उद्धृत है। इस प्रकार के सिद्धान्त सामान्येतर सभी वस्तुओं के प्रति जनतन्त्र के मूलवद्ध द्वेष के विरुद्ध स्वाभाविक प्रतिक्रिया हैं। आधुनिक युग में कार्लाइल (Carlyle) तथा नीत्शे (Nietzsche) इसी प्रकार के मत का प्रतिनिधित्व करते हैं। पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व में भी प्रायः उन्नीसवीं शताब्दी जैसी प्रभावों के कारण ही ऐसे बलवान व्यक्ति अथवा 'नायक' की उपासना को प्रश्रय दिया गया, जो वस्तुतः 'अतिमानव' (superman) की सभी तुच्छ नैतिक प्रथाओं से ऊपर उठ सके। अत. यह स्पष्ट हो गया कि कैलिक्लीज़ का सिद्धान्त भी पूर्णतया आचार-शास्त्रीय नास्तिवाद नहीं है। शक्ति वस्तुतः उचित है। यह कथन उस कथन से अत्यन्त भिन्न है कि 'औचित्य शक्ति है' (Right is might)।

'रिपब्लिक' (Republic) नामक ग्रन्थ में थ्रेसिमेकस (Thrasymachos) इसी मत को प्रतिपादित करता है। उसके अनुसार उचित कुछ भी नहीं है। जिसे हम उचित कहते हैं, 'वह शक्तिशाली का स्वार्थ है, जिसे वह अपनी शक्ति के कारण दुर्बलों पर वैधानिक तथा मान्य कह कर आरोपित करता है। यहाँ पर यह ध्यान देना आवश्यक है कि थ्रेसिमेकस उस पीढ़ी का व्यक्ति था जिसके बारे में हम विचार कर रहे हैं। हमें बार-बार यह ध्यान में रखना होगा कि एक भ्रान्ति के कारण 'रिपब्लिक' के पाठक प्रायः परिकल्पना कर बैठते हैं कि प्लेटो वहाँ पर अपने समय के विवादों पर विचार कर रहा है। इसलिए यह स्मरण रखना होगा कि एरिस्टोफेनीज़ की सर्वप्रथम सुखान्तिकी (comedy) में थ्रेसिमेकस का उल्लेख वाग्मिता के प्रसिद्ध शिक्षक के रूप में किया गया है, तथा इस ग्रन्थ की रचना ई० पू० ४२७ में हुई थी, और उसी वर्ष प्लेटो का जन्म हुआ था, तथा उसी वर्ष जॉर्जियस एथेन्स आया था। यह परिकल्पना नहीं की जा सकती कि जब 'रिपब्लिक' लिखा जा रहा था, तब तक थ्रेसिमेकस जीवित था। वह उस युग का व्यक्ति था जो बीत चुका था। यह कल्पना करना कठिन है कि प्लेटो के समय में कोई व्यक्ति इस प्रकार प्रबल मत का प्रतिपादन करेगा, परन्तु पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इसका अधिवक्ता मिलना प्रायः स्वाभाविक है। जॉर्जियस के विश्वविज्ञान सम्बन्धी नास्तिवाद का यह वास्तव में आचार-शास्त्रीय प्रतिरूप है।

सोफिस्टो (जिस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग हम अधुना कर रहे

है) के बारे में प्लेटो का अन्तिम निर्णय उसके संवाद 'लाज' (Laws, ८८९ e) में उपलब्ध है। वह निर्णय यह है कि विधि तथा प्रकृति के बीच विरोध पर इस प्रकार का बल देकर सोफिस्ट चाहते थे कि उचित तथा अनुचित का भेद मिटा दिया जाय। यदि इस भेद का मूल प्रकृति में नहीं पाया जाता, तथा यदि यह मानवीय विधानों तथा संस्थाओं पर आश्रित है तो इसका अस्तित्व तभी तक है जब तक हम इसे मान्यता देते हैं। दूसरी ओर, यदि हम मानवीय विधि के स्तर से एक उच्चतर मान्य विधान-प्रकृति के विधान–को सम्बोधित करें, तो सभी प्रतिबन्ध निरस्त हो जाते हैं। प्लेटो ने सोफिस्टों का जो विवरण प्रस्तुत किया है उसके आधार पर किसी भी महान् सोफिस्ट में किसी प्रकार का अनैतिक अभिप्राय नहीं दिखता। परन्तु पाँचवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में एथेन्स की सामाजिक व्यवस्था पर उनकी शिक्षाओं के अनिवार्य परिणामों का अनुमान प्लेटो ने लगाया है, उस पर हम सन्देह नहीं कर सकते हैं। यह एक पक्षपातहीन ऐतिहासिक निर्णय है, क्योंकि प्लेटो के समय में वास्तविक अर्थों में सोफ़िस्ट नहीं रह गये थे।

समन्वयवादी तथा प्रतिक्रियावादी
(ECLECTICS AND REACTIONARIES)

इन लोगों के अतिरिक्त बहुत-से ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें उनके समकालीन 'सोफ़िस्ट' कहते थे, तथा जो आयोनियन विश्व-विज्ञान के सम्प्रदाय की परम्परा को अक्षुण्ण रखने का प्रयास करते थे। वे लोग प्रोटागोरस तथा जॉर्जियस के समान विशिष्ट तो नहीं थे, परन्तु इतिहास में उनका स्थान एक ऐसे माध्यम के रूप में है जिसके द्वारा आयोनियन विज्ञान की मान्यताएं साक्रेटीज़ तथा उसकी मण्डली तक पहुँची। इस दृष्टि से आपोलोनिया निवासी डायोज़िनीज़ (Diogenes) उनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था। उसके काल के बारे में एक मोटा अनुमान हम थियोफ्रेस्टस के एक कथन के आधार पर लगा सकते हैं कि वह एनेक्ज़ागोरस तथा ल्यूसिपस का ऋणी था। इससे यह सिद्ध होता है कि ई० पू० पांचवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वह विद्यमान था।

डायोजिनीज की रचना के पर्याप्त अवशेष हमें प्राप्त हैं। ये रचनाएं आयोनिक गद्य में होने के कारण कुछ हिप्पोक्रेटयन रचनाओं के समान हैं। यहाँ पर प्रथम बार द्रव्य के एक होने के प्राचीन माइलेशियन मत का विस्तार से औचित्य प्रतिपादित किया गया है। अनेकत्ववाद के उद्भव के कारण इस परि-

कल्पना की रक्षा आवश्यक हो गयी थी। उसका कहना है कि वस्तुओं की एक दूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रिया की व्याख्या केवल इसी भाँति हो सकती है। एक अन्य स्थल पर एनेक्जागोरस का प्रभाव भी देखा जा सकता है। डायोजिनीज़ का यह कथन कि मूल द्रव्य कोई एक 'देवता' है, कोई नवीन तथ्य नहीं था, परन्तु यह महत्त्वपूर्ण है कि उसने इसका मनस (Mind, nous) के साथ तादात्म्य स्थापित किया। दूसरी ओर वह एनेक्ज़िमेनीज़ का इस मान्यता में अनुयायी है कि यह मूल द्रव्य 'वायु' है, तथा इसी से विरलीकरण तथा संक्षेपण (condensation) पद्धति से सभी वस्तुएँ निष्पन्न होती हैं। प्रज्ञान तथा श्वास लेने वाली वायु की शुष्कता के बीच जो घनिष्ट सम्बन्ध वह स्थापित करता है उससे उस पर हेराक्लीटस का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उसकी एक उक्ति थी 'आर्द्रता विचार का व्यवधान है', और इसीलिए' बादल' (clouds, २३२) में इसका उपहास किया गया है। केवल एक ही क्षेत्र में डायोजिनीज़ ने अपनी कुछ मौलिकता का प्रदर्शन किया है, और वह है उसका चिकित्सा-कार्य, उसका नाड़ियों का विवरण प्रसिद्ध है, तथा यहाँ उस पर एम्पीडोक्लीज़ का प्रभाव पड़ा है।

सेमास निवासी हिप्पन (Hippon) का व्यक्तित्व कुछ कम महत्त्वपूर्ण है। उसने थेलीज़ के सिद्धान्त को पुनर्जीवित किया कि जल प्राथमिक तत्त्व है, तथा शरीर-क्रियात्मक आधारों पर इसको प्रमाणित भी किया। मेनन की आयट्रिका (Iatrica) से हमें ज्ञात होता है कि वह आयुर्विज्ञान का लेखक था, तथा क्रोटन का मूल निवासी था। अतएव वह उन लोगों में से एक था जिन्होंने पाश्चात्य चिकित्सा को आयोनिया में प्रवेश दिलाया था, तथा इसके द्वारा उन तर्कों की व्याख्या हो जाती है जिन्हें उसने अपने अभिमत (thesis) को प्रमाणित करने के लिए दिये थे। यह सम्भव है कि एरिस्टॉटल ने जिन तर्कों को थेलीज़ द्वारा प्रवर्तित होने का अनुमान लगाया हो, वे वस्तुतः हिप्पन के हों। यह निश्चित है कि थेलीज ने अपने सिद्धान्त को शरीर-विज्ञान के आधार पर नहीं वरन् मौसम-विज्ञान सम्बन्धी (meteorological) आधारों पर प्रमाणित किया था। यह केवल दो युगों (periods) के बीच का भेद है।

एथेन्सवासी आर्किलाओस (Archilaos) एनेक्जागोरस का शिष्य तथा विज्ञान अथवा दर्शन में रुचि लेने वाला प्रथम एथेन्सवासी था। उसका उल्लेख करना यहाँ उचित है, क्योंकि सार्क्रेटीज़ तथा प्लेटो के बाद इसके अतिरिक्त अन्य कोई एथेनियन दार्शनिक नहीं है। इस कथन में जरा भी सन्देह नहीं कि

साक्रेटीज़ उसका शिष्य था। उनका समसामयिक दुःखान्तिकी कवि, चिऑस निवासी ईऑन (Ion) अपने 'संस्मरणों' (Memoirs) में कहता है कि साक्रेट्रीज़ सेमॉस में अर्किलाओस के सान्निध्य में एक युवक के रूप में आया था। हमें ज्ञात है कि ई० पू० ४४१/४० में सेमॉस नगर के घेराव के समय सोफोक्लीज़ तथा पेरिक्लीज़ की यात्रा का ईऑन विवरण प्रस्तुत करता है, तथा यह कथन भी उसी अवसर से सम्बद्ध है[1] साक्रेटीज़ की आयु उस समय लगभग अठ्ठाइस वर्ष की होगी, एरिस्टोजेनस सदा की भाँति आर्किलाओस तथा साक्रेटीज के बारे में परिवादों को दुहराता रहता है। उन पर विश्वास करना हमारे लिए आवश्यक नहीं है परन्तु यदि साक्रेटीज़ का आर्किलाओस से सम्पर्क समान्यतया विदित न होता, तो ये आक्षेप निराधार होते। एरिस्टोजेनस कहता है कि जब वह सत्रह वर्ष का था, तब यह साहचर्य प्रारम्भ हो चुका था, तथा यह बहुत वर्षों तक बना रहा।[2] यद्यपि प्लेटो आर्किलाओस के नाम से उल्लेख नहीं करता, वह निश्चित रूप से उल्लेख करता है कि साक्रेटीज़ अपने प्रारम्भिक यौवन में उसके सिद्धान्तों से प्रभावित था। तथा यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि एनेक्जागोरस के ग्रन्थ को जिस व्यक्ति द्वारा उच्च स्वर से पढ़े जाने का उल्लेख आया है, वह व्यक्ति उसके एथेनियन शिष्य अर्किलाओस के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हो सकता।[3] अतएव यह कथन कि साक्रेटीज़ उसका अनुयायी था, गलत माना जाय तो यह सर्वथा अनुचित है। यह प्रायः समकालीन प्रामाण्यों पर आधारित है, तथा थियोफ्रेस्टस ने इसे स्वीकार किया था।[4]

---

१. ईऑन, खण्ड, ७३ (Kopke) ईऑन के ग्रन्थ का शीर्षक था 'यात्राएँ (Visits) इस कथन में तथा प्लेटो के कथन में (Crito, ५२ b.) कि सैनिक सेवा के अतिरिक्त साक्रेटीज एथेन्स से कभी बाहर नहीं गया, कोई असंगति नहीं। सैनिक सेवा के अन्य अवसरों, जिन पर बाद में हम सीधे विचार करेंगे, की भाँति यह भी एक सैनिक सेवा का अवसर है। कुछ लोगों ने कहा है कि ईऑन का यहाँ किसी दूसरे साक्रेटीज़ से तात्पर्य है, परन्तु यह अत्यन्त असम्भावित है।

२. Aristoxenos, fr. २५ (F. H. G. ii. २८०.)

३. Phaedo, ९६b, ९७b, मेरी टिप्पणियों के साथ। उष्ण तथा शीत ने सड़ने की क्रिया (Putrefaction) द्वारा एक दुर्गन्धमान अवपंक (slime) उत्पन्न हुआ, जिससे प्रथम जीवों का पालन हुआ, यह सिद्धान्त अर्किलाओस का है तथा साक्रेटीज़ ने जिन सिद्धान्तों पर विचार करना शुरू किया उनमें से यह प्रथम है।

४. Phys. Op. fr. ४ (Diels).

८

साक्रेटीज़ का जीवन-वृत्त
(THE LIFE OF SOKRATES)
समस्या (THE PROBLEM)

प्लेटो के संवादों के आधार पर साक्रेटीज़ (सुकरात) के जीवन-वृत्त की रूपरेखा तैयार करना सम्भव है। इन संवादों में साक्रेटीज़ के व्यक्तित्व तथा जीवन-पद्धति का सुबोध तथा संगत विवरण उपलब्ध होता है। साक्रेटीज़ के वास्तविक वार्तालापों को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से जेनोफेन के तीन या चार ग्रन्थ हमें उपलब्ध हैं। जेनोफेन साक्रेटीज़ को अपनी युवावस्था से ही जानता था, परन्तु उसका साक्रेटीज़ से अन्तिम मिलन उसके स्वयं-सेवक के रूप में साइरस के अभियान में भरती होने (ई० पू० ४०१) के ठीक पहले हुआ। वह बताता है कि कैसे उसने इस कदम के औचित्य के बारे में साक्रेटीज़ से विचार विमर्श किया, तथा साक्रेटीज़ ने उसे डेल्फिक देववाणी (Delphic oracle) की ओर निर्दिष्ट किया। वह इतना सतर्क अवश्य था कि उसने देववाणी से यह नहीं पूछा कि वह उस अभियान में जाय या नहीं, उसने केवल इतना ही पूछा कि उसकी मनोवाञ्छित यात्रा में अभीष्ट प्राप्ति के लिए किस देवता की उपासना तथा यज्ञ करना चाहिये। वह निःसंकोच बताता है कि इस अवहेलना के लिए साक्रेटीज़ ने उसकी भर्त्सना की। उन दोनों के परिसंवाद के बारे में वस्तुतः हमें केवल इतना ही ज्ञात है। यदि इससे कुछ अधिक ज्ञातव्य हो, तो यह निश्चित है कि जेनोफेन ने उसे अवश्य बताया होता, क्योंकि वह स्वयं अपने बारे में बात करने में संकोच नहीं करता। इस समय उसकी आयु तीस वर्ष से कम थी, तथा जब वह एशिया से लौटा तब साक्रेटीज़ की मृत्यु हो चुकी थी। साक्रेटीज़ के वार्तालापों के जो वृत्तान्त उसने दिये हैं, उनमें से कई ऐसे विषयों पर हैं जिनके बारे में हम जानते हैं कि वह स्वयं रुचि लेता था तथा उनमें

प्रतिपादित मतों को वह अन्यत्र अपने नाम से अथवा अपने बाल्यकालीन रोमांस के नायक साइरस (Cyrus) के मुख से कहलवाता था। अतएव 'ऐतिहासिक साक्रेटीज़' की प्रमाणिकता के लिए कोई भी व्यक्ति 'पूर्ण गृहस्थ' (The complete Householder) जैसे ग्रन्थों की ओर उन्मुख नहीं होता। 'एपॉलाज़ी (Apology) तथा 'सिम्पोज़ियम' (Simposium) दो अन्य ऐसी रचनाएँ हैं जो प्लेटो के संवादों द्वारा प्रेरित लगती हैं. तथा उनके शीर्षक भी वही हैं। परन्तु इन ग्रन्थों की भी सामान्यतया उपेक्षा की जाती है। परन्तु अठारवीं शताब्दी से ही एक ग्रन्थ को अपवाद रूप में ग्रहण करने की प्रथा-सी बन गयी है। यह ग्रन्थ है 'स्मरणीय तथ्य' (Memorabilia)। जिसकी रचना निष्काषित जेनोफ़न ने यह दिखाने के अभिप्राय से की थी कि साक्रेटीज़ अधार्मिक नहीं था, तथा अपने युवकों को पथ-भ्रष्ट करने की अपेक्षा अपने वार्तालापों द्वारा उनकी बहुत भलाई की। अब यह समझना सरल है कि क्यों अठारवीं शताब्दी में प्लेटो के संवादों के साक्रेटीज़ की अपेक्षा 'मेमोरेबिलिया' (Memorabilia) के साक्रेटीज़ को प्राथमिकता दी गयी।[1] 'स्मारिका' का साक्रेटीज़ उस समय के आदर्श दार्शनिक के स्वरूप के पर्याप्त निकट है।' अन्य दृष्टियों से उसकी सन्तुष्टि के लिए वहाँ आधार मिलना कठिन है। यह सर्वमान्य है कि जेनोफ़न विश्वसनीय इतिहासकार नहीं था, तथा 'साइरोपीडिया' (cyropaedia) में उल्लेख है कि उसकी रूचि दार्शनिक रोमांस की ओर थी। 'स्मरणीय तथ्य' को जेनोफेन की साक्रेटीज़-सम्बन्धी अन्य रचनाओं से पृथक् करना पद्धति की दृष्टि से अवाञ्छित है, जब तक कि पृथक्करण के लिए अत्यन्त प्रबल तर्क उपस्थित न किये जाय। सर्वोपरि तथ्य तो यह है कि मात्र 'स्मरणीय तथ्य' से साक्रेटीज़ का पूर्ण चित्र प्राप्त करना सर्वथा असम्भव है। अत: व्यवहार में सभी लेखक 'मेमोरेबिलिया' से प्राप्त रूपरेखा में साक्रेटीज़ के बारे में अपनी पूर्व

---

१. 'प्लेटो के साक्रेटीज़' की अपेक्षा 'मेमोरेब्रिलिया' के साक्रेटीज़ को प्राथमिकता देने वालाप्रथम लेखक ब्रूकर (Brucker १७४१) था। वह यह तर्क देता है कि जेनोफ़न का केवल एक ही गुरु था, जिससे उसने न केवल नैतिक-दर्शन प्राप्त किया, वरन् जीवन में समन्वय भी। इसके विपरीत प्लेटो अनेक सिद्धान्त के 'सहतिवाद' से प्रभावित था। वह साक्रेटीज़ के बारे में एक उक्ति का उल्लेख करता है कि (Lysis) के एक पाठ को सुनकर साक्रेटीज़ ने कहा,'हे ईश्वर ! युवक हमारे बारे में कितना झूठ बोलते हैं"। परन्तु 'लाइसिस' की रचना के पूर्व ही साक्रेटीज़ की मृत्यु हो चुकी थी।

धारणा के अनुकूल 'प्लेटो' के साक्रेटीज़' से प्राप्त अधिकतम सामग्री भरने का प्रयास करते हैं।[1] इस प्रकार की प्रणाली पूर्णतया यदृच्छात्मक है, तथा यह हमें सत्यापनातीत परिकल्पना के गर्त में डाल देगी। इसकी अपेक्षा हमारे लिए यह कहना अधिक उत्तम होगा कि साक्रेटीज़ के विषय में हम कुछ नहीं जान सकते, तथा हमारे लिए वह केवल एक संज्ञा (Mr.x) है। तथापि 'प्लेटो' का साक्रेटीज़' पर्याप्त वास्तविक है, और यही एकमात्र ऐसा साक्रेटीज़ है जिसके बारे में हम विस्तृत जानकारी की आशा कर सकते हैं। यदि वह काल्पनिक चरित्र है तो भी बहुत-से सजीव लोगों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। अतएव हमारे लिए एक मात्र उपयुक्त पद्धति यह होगी कि सर्वप्रथम हम अन्य स्रोतों को छोड़कर केवल इसी आधार पर उसके जीवन तथा विचारों का वर्णन करें। ऐसा करने के उपरान्त ही हमारा इस विषय पर विचार करना लाभदायक होगा कि इस पद्धति से प्राप्त साक्रेटीज़ विषयक ज्ञान जेनोफ़न के अपूर्ण चित्रण को समझने में कितना सहायक है, हमें यह भी विचार करना होगा कि एरिस्टोफेनीज़ ने 'मेघों' (clouds) में साक्रेटीज़ का जो व्यंग्यचित्र खींचा है उससे यह साक्रेटीज़ कहाँ तक मिलता है।

प्लेटो का साक्रेटीज़

[THE PLATONIC SOKRETES]

एलोपेकी मण्डल (Deme Alopeke) के निवासी सोफ्रॉनिस्कस (Sophroniskos) के पुत्र साक्रेटीज़ की जब मृत्यु हुई (ई० पू० ३९९)[2] तब उसकी आयु सत्तर वर्ष या इससे कुछ अधिक थी। अतः उसका जन्म सेलामिस (Salamis) के प्रायः दस वर्षों बाद लगभग ई० पू० ४७० में हुआ, तथा उसकी

---

१. सुकराती व्याज (irony) पूर्णतया प्लेटो पर आधारित है। स्मरणीय तथ्य' के साक्रेटीज़ के समक्ष कोई सन्देह अथवा समस्या नहीं है।

२. Apol. १७d. Crito. ५२e. उसकी मृत्यु की तिथि हमें डिमेट्रिअस फेलेरियस तथा संगमरमर नगरी (the Marmor Parium) से ज्ञात होती है। प्लेटो के जिन अनुच्छेदों पर यह विवरण आधारित है, उनका मैंने विस्तृत उल्लेख नहीं किया है। वे सुप्रसिद्ध तथा सुलभ्य हैं। मैं नहीं समझता कि मैंने कोई ऐसी बात कही है, जिसे प्लेटो के संवादों में न कहा गया हो, अथवा प्लेटो के कथनों से जिनका तुरंत अनुमान न किया जा सके। यदि साक्रेटीज़ सम्बन्धी इस विवरण को कल्पना (construction) कहा जाय, तो यह कल्पना मेरी नहीं, प्लेटो की है।

युवावस्था के प्रारम्भिक दिन पेरिक्लियन युग के चरमोत्कर्ष में बीते थे। उसके परिवार वाले अपने को डायडलोस (Diadalos) का वंशज मानते थे। तात्पर्य यह कि उसका वंश कुछ पुरातन था। सॉफ्रॉनिस्कस ने कुछ सम्पत्ति अवश्य छोड़ी होगी, क्योंकि हम उसे सशस्त्र स्थल-सैनिक (hoplite) के रूप में कार्य करते हुए पाते हैं, उसकी माता का नाम फ़ीनरीट (Phainarete) था, और वह एक धात्री (mid, wife) थी। एक अन्य पति से उसको पेट्रोक्लीज़ (Patrokles) नामक दूसरा पुत्र प्राप्त हुआ था। यह उल्लेखनीय है कि महान् एरिस्टेडीज़ (Aristedes) उसी मण्डल का था, तथा उसका पुत्र लिसिमेकस (Lysimachos) 'लैचीज़' (Laches) नामक ग्रन्थ में सॉफ्रॉनिस्कस को पारिवारिक (सगोत्रीय) मित्र बताता है, वह कहता है कि उसकी मृत्यु तक उससे कोई मत-भेद नहीं हुआ था। अतः यह स्पष्ट है कि सॉफ्रॉनिस्कस का अपने मण्डल (deme) में कुछ महत्त्वपूर्ण स्थान था। एक दूसरा सहगोत्री (fellow demes-man) व्यक्ति था, धनिक क्रिटन (kriton), जो सात्रेटीज़ की ही आयु का था, तथा अन्त तक उसका अत्यन्त घनिष्ठ मित्र रहा।

काफी उम्र होने पर साक्रेटीज़ ने जेन्थिप्पी (Xanthippe) से विवाह किया, तथा उससे तीन पुत्र उत्पन्न हुए। सबसे बड़ा लड़का लैम्प्रोक्लीज़ (Lamprokles) अपनी पिता की मृत्यु के समय किशोर था, परन्तु अन्य दो, सॉफ्रॉनिस्कस तथा मेनीजेनस (Menexenos) अभी बालक थे। सबसे छोटा तो वस्तुतः गोद का बच्चा था। प्लेटो के संवादों में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता कि जेन्थिप्पी का स्वभाव उग्र था। उसके स्वयं के नाम में तथा उसके ज्येष्ठ एवं कनिष्ठ पुत्रों के नाम से यह अनुमान लगता है कि वह सम्भ्रान्त परिवार की महिला थी।[1] 'फ़ीडो' में यह कथन है कि कारागार का कपाट खुलने पर साक्रेटीज़ के मित्रों ने वहाँ पर अपने शिशु के साथ जेन्थिप्पी को पाया। माँ-बेटे ने रात वहीं व्यतीत की होगी, तथा माँ उस समय अत्यन्त उत्तेजनापूर्ण स्थिति में थी। साक्रेटीज़ ने उसे घर भेज दिया, परन्तु बाद में दिन को वह परिवार की अन्य महिलाओं के साथ पुनः चली आयी, तथा एक भीतरी कक्ष में साक्रेटीज़ के साथ कुछ समय तक रही, तथा वहाँ विश्वास-पात्र क्रिटन की उपस्थिति

१– यहाँ उल्लेखनीय है कि साक्रेटीज़ के पिता के नाम से पुकारा जाने वाला यह उसका 'द्वितीय' पुत्र है।

में उसने पति से अन्तिम निर्देश प्राप्त किया ।[1]

साक्रेटीज रूपावान बिल्कुल नहीं था, उसकी नाक चपटी थी, तथा आँखें विचित्र ढंग से आगे निकली हुई थीं । उसकी चाल भी अनोखी थी, तथा एरिस्टोफेनीज़ ने उसकी उपमा जलकुक्कुट (waterfowl) जैसे पक्षी की मस्त चाल से दी । अन्य स्थानों पर उसकी आकृति की तुलना एक विद्युत-मछली (torpedofish), नशीले मोटे वृद्ध (silenos) अथवा वनेचर (satyr अर्धमानव, अर्ध पशु) से की गयी है । कुछ विशेष अवसरों के अतिरिक्त वह प्रायः नंगे पैर घूमता था । सैनिक सेवा के अतिरिक्त, तथा एक बार इस्थ्मियन (Isthmian) खेलों के अतिरिक्त, कभी वह अपने शहर को छोड़कर बाहर नहीं गया ।

साक्रेटीज़ अन्य दृष्टियों से भी विलक्षण थे । यह प्रसिद्ध था कि बचपन से ही उन्हें एक 'वाणी' प्राप्त थी, जिसे वे 'दिव्य संकेत' (divine sign) मानते थे, और उनकी मान्यता थी कि यह उनकी विशेष तथा अद्वितीय सम्पत्ति है । यह 'वाणी' उनके समक्ष प्रायः उपस्थित होती थी, तथा कभी-कभी अत्यन्त तुच्छ अवसरों पर भी प्रकट हो जाती थी, इसके बारे में उल्लेखनीय है कि वाणी साक्रेटीज़ को कोई कार्य करने के लिए कभी प्रेरित नहीं करती थी । यदि वह कोई कार्य करने को उद्यत होता था, तो यह वाणी उसका विरोध करती थी[2] । इसके अतिरिक्त साक्रेटीज को भावातिरेकी उपसमाधियाँ (Trances) भी लगती थी । वे कभी-कभी वाह्य जगत् से सर्वथा विस्मरित होकर घण्टों खड़े-खड़े विचारों में मग्न रहते थे । उनके मित्र ऐसी स्थितियों के अभ्यासी थे, तथा जब ऐसी स्थिति आती थी तब उसमें विघ्न नहीं डालते थे । जब तक वे

---

१. परिवाद-व्यवसायी एरिस्टोजेनस़ ने साक्रेटीज़ पर दो पत्नियाँ रखने का आरोप लगाना चाहा । उसने कहा कि साक्रेटीज ने जेन्थिप्पी के साथ ही साथ एरिस्टीडीज़ की पुत्री मिर्टो (Myrto) से भी विवाह किया था । एरिस्टीडीज़ की मृत्यु ई० पू० ४६८ में हुई, अतः मिर्टो साक्रेटीज़ की समवयस्क अथवा उससे बड़ी रही होगी ।

२. इस प्रसंग में प्लेटो के विरुद्ध जेनोफ़न एक तथ्य प्रस्तुत करता है । वह कहता है कि 'वाणी' निषेधात्मक तथा विध्यात्मक दोनों प्रकार की चेतावनी देती थी । यदि कोई युवक साक्रेटीज से यह पूछता कि वह सैनिक अभियान में जाय या नहीं और यदि 'वाणी' कोई संकेत न दे, तो इसकी विध्यात्मक व्याख्या यह हो सकती है कि वह जाने की सलाह दे रही है । प्रच्छन्न-प्लेटोनिक ग्रन्थ Theages इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डालता है ।

स्वयं चैतन्य स्थिति में नहीं आते तब तक उन्हें अकेला छोड़ दिया जाता था। 'सिम्पोजियम' संवाद में पोटेडेइया (Poteidaia) शिविर के एक प्रसिद्ध अवसर का उल्लेख है, उस समय साक्रेटीज़ की आयु चालीस वर्ष से कम थी। वहाँ पर एक दिन साक्रेटीज़ प्रातःकाल से दूसरे दिन सूर्योदय तक निःस्पन्द विचार-मग्न खड़ा रहा। उसके फौजी साथियों को बड़ा आश्चर्य हुआ, तथा उनमें से कुछ तो अपने शिविर से विस्तर लेकर बाहर यह देखने चले आये कि क्या वह वास्तव में में पूरी रात खड़ा रहेगा? दूसरे दिन प्रातःकाल जब सूर्योदय हुआ, तब उसने प्रार्थना की, तथा अपने काम पर चला गया।[1]

इस प्रकार की चित्त-प्रकृति के व्यक्ति के लिए स्वाभाविक है कि वह अपने युग के धार्मिक आन्दोलन से प्रभावित हो, तथा प्लेटो के संवादों से यह संकेत मिलता है कि वह प्रभावित था। आत्मा के अमृतत्व तथा पुनर्जीवन में उसका दृढ़ विश्वास था। वे दोनों सिद्धान्त उस युग के एथेन्सवासियों के लिए अनोखे तथा अपरिचित थे। कुछ शर्तों के साथ वह पुनर्जन्म तथा अनुस्मरण (Reminiscence) में भी विश्वास करता था। यदि उससे इन विश्वासों के आधार के बारे में पूछा जाता, तो वह न केवल पिण्डर (Pindar) जैसे प्रेरित कवियों का उल्लेख करता, वरन् उन पुजारियों तथा पुजारिनों की ओर भी संकेत करता था जो अपने कृत्यों का पूरा अर्थ नही समझ पाते।[2] उसका कहना था कि मेन्टिनिया की डायोतिमा (Diotima) नामक एक बुद्धिमती महिला से उसे विशेष रूप से निर्देश मिले हैं। अपने जीवन के अन्त तक वह 'पुराख्यानों अथवा प्राचीन कथनों' में गहन रुचि लेता था, और स्पष्टतया मानता था कि ये कथन ऑर्फियस (Orpheus) के हैं,[3] जिसका यह कहना है कि शरीर एक ऐसी कब्र है जिसमें आत्मा-सुरक्षित रखी जाती है। आत्मा ईश्वर की चल सम्पत्ति (Chattel) है, तथा जब तक ईश्वर इसे शरीर से पृथक् नही करता, तब तक यह पूर्ण शुद्धावस्था को नहीं प्राप्त कर सकती, तथा स्वयं असंग स्थिति नहीं प्राप्त कर पाती। इसके बाद ही यह ईश्वर के साथ निवास कर सकती है। अतः जो व्यक्ति दर्शन का, जो उच्चतम संगीत है, अनुसरण करता है वह आत्मा को आत्म-केन्द्रित करने का अभ्यास कर अपने जीवन-काल

---

१. Symp., २२० c-d, यदि यह सत्य न हो तो कथन निरर्थक होगा।
२. Meno, १८१a
३. Crat ४००c.

में ही मृत्यु का अनुभव करेगा, और इस प्रकार इस जगत् में रहकर यथासम्भव ऐसा प्रज्ञान (wisdom) प्राप्त कर सकेगा।

परन्तु यह सब होते हुए भी साक्रेटीज मात्र द्रष्टा (visionary) नहीं था। उसके अन्दर कुशल व्यावहारिक बुद्धि का प्रवाह था, जिसके कारण वह कभी भी आर्फिक तथा पाइथागोरियन धर्म के विलक्षण विवरणों का अनुयायी नहीं हुआ, यद्यपि इन विस्तृत विवरणों ने उसकी कल्पना को सशक्त रूप से प्रभावित किया था। शरीर में आत्मा के बन्धन के सिद्धान्त को उसने 'उच्च तथा दुर्बोध' कहा, और यद्यपि उसकी दृढ़ धारणा थी कि धर्मप्राण व्यक्तियों की आत्माएं शरीर के बन्धन से मुक्त होने के बाद ईश्वर के साथ रहेंगी, परन्तु ये आत्माएं संतों के साथ रहेगी या नहीं, इस बारे में वह उतना निश्चित नहीं था। वह प्रायः आर्फिक शैली में परलोक सम्बन्धी मिथकों को सुनाया करता था, और जब वह ऐसा करता था तब अपने श्रोताओं को चेतावनी दे देता था कि ये मिथक अधिक से अधिक सत्य के सदृश हैं, कोई भी समझदार व्यक्ति उनकी शाब्दिक सत्यता पर जोर नहीं देगा। वह अनुग्रह तथा क्षमा के सम्बन्ध में आर्फिकों की सामान्य श्रेणी तथा अन्य व्यवसायियों का स्वस्थ आलोचक था, तथा उन पर यह आक्षेप लगाया करता था कि स्वर्ग-लोक के ऐश्वर्यों विश्वास से पूर्णतया सगत है कि आर्फिसिज्म के अन्तर्गत, भले ही वह क्षीण मात्रा में हो, एक ऐसा महान् सत्य वर्तमान है जो राज्य के सामान्य धर्म में उपलब्ध नहीं। इस सत्य के प्रकट होने की प्रणाली की तुलना वह आख्यानों (fables) तथा पहेलियों (riddles) से करता था, जिनके सही तात्पर्य का सभी लोग अनुमान नहीं लगा सकते।

वास्तविकता तो यह है कि उसके चरित्र के दो अत्यन्त स्पष्ट पक्ष थे। निःसंदेह वह 'द्रष्टा' अथवा ग्रीक अर्थों में उत्साही (enthusiast) था, परन्तु वह असाधारण रूप से कुशल भी था। उसके आलोचक उसे 'धूर्त' (sly) कहते थे। इस शब्द (eiron) का प्रयोग प्रायः लोमड़ियों के लिए ही होता है, स्काट्स शब्द 'चतुर' (canny), जिसका सदा प्रशंसात्मक प्रयोग नहीं होता, ग्रीक अर्थ के निकटतम है। वह अपनी दृष्टि-सीमा के बाहर की वस्तुओं के लिए वचन-बद्ध नहीं होना चाहता था, तथा अपनी एवं अन्य लोगों की शक्ति के अवमूल्यन को उद्यत रहता था। यह बनावटी प्रदर्शन नहीं था। अतिरेक तथा निष्ठाहीनता के प्रति उसमें सदा सहज संकोच ही इसका कारण था। जैसा कि बताया जा

चुका है, साक्रेटीज़ के विरोधियों ने ही उस पर अपलाप (irony) का आरोप लगाया। 'अपलाप' शब्द से निश्चित रूप से 'प्रवंचना' (humbug) का अर्थ ध्वनित होता था। परन्तु साक्रेटीज़ के चरित्र के जिस पक्ष को उद्घाटित करना इस अप्रशंसापूर्ण विवरण का लक्ष्य था, उसका वास्तविक लक्षण प्लेटो ने बार-बार स्पष्ट किया, परिणाम यह हुआ कि 'अपलाप' शब्द का अर्थ ही बदल गया। इस परिप्रेक्ष्य में हम समझते हैं कि साक्रेटीज के 'अभ्यस्त अपलाप' (accustomed irony) का प्रायः वही अर्थ था जो 'प्रहास' (humour) का है, जिसके कारण हम वस्तुओं को उनके सम्यक् परिमाण में देख सकते हैं।

रहस्यवादी ढंग के धर्म में रुचि होने के कारण स्वभावतः साक्रेटीज़ अपने युग के विज्ञान से दृष्टि प्राप्त करने के लिए उद्यत हुए। जैसा कि एम्पे-डोक्लीज़ पर विचार करते समय हमने देखा, उस काल में इन दोनों का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध था। 'फ़ीडो' (९६ a क्रमश:) में प्लेटो ने साक्रेटीज़ से उसके बौद्धिक विकास का विवरण प्रस्तुत कराया है। इसका अभिप्राय ऐतिहासिक लगता है, क्योंकि उसके मस्तिष्क में गूंजने वाले प्रश्न वहीं है जिनमें साक्रेटीज़ की युवावस्था का एथेन्स रुचि रखता था। इन प्रश्नों में अन्य किसी युग अथवा स्थान के लोगों ने रुचि नहीं दिखाई।[1] उसने स्वयं से प्रश्न किया कि क्या प्राण की उत्पत्ति उष्ण तथा शीत के विलय से होती है, (हमें ज्ञात है कि यह आर्कि-लाओस का सिद्धान्त है], तथा क्या पृथ्वी चपटी [जैसा कि आयोनियन्स ने बताया), अथवा गोल (जैसी कि पाइथागोरियन्स की मान्यता थी) है। वह

---

१. इनके विस्तृत विवेचन के लिए मेरे द्वारा सम्पादित Phaedo में उपयुक्त स्थान पर टिप्पणियाँ देखें। मुख्य बात यह है कि साक्रेटीज़ वहाँ आयोनिक सिद्धान्त (जैसा कि उसने आर्किलाओस तथा डायोजिनीज़ [Cp.अव.९३] से सीखा होगा) तथा इटालिक सिद्धान्तों (जिनमें से कुछ एम्पेडॉक्लीज़ के सम्प्रदाय के हैं, तथा अन्य पाथागोरीयन्स हैं) के बीच तर्क-वितर्क करता हुआ दिखाया गया है। साक्रेटीज़ ने परवर्ती सिद्धान्त को प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से फाइलोलॉस से सीखा होगा। एम्पेडॉक्लीज़, जिसने थुरियाई के उपनिवेशीकरण में भाग लिया, सम्भवतः एथेन्स गया था, (क्योंकि हमें ज्ञात है कि क्रिटियस (Kritias) ने उसके संवेदन के सिद्धान्त को अपनाया था) तथा यह अनुमान करना कठिन नहीं कि फाइलोलॉस भी वहाँ गया था। एथेन्स ही एक मात्र ऐसा स्थल है जहाँ आयोनिक तथा इटालिक दर्शन इस प्रकार के स्पष्ट विरोध में आ सकते हैं, तथा केवल पाँचवीं शताब्दी का मध्यकाल ही वह युग है, जब ऐसा होना सम्भव है।

संवेदन, विश्वास तथा ज्ञान (अल्क्मेइअन द्वारा उपस्थित समस्या) के परस्पर सम्बन्ध में रुचि लेता था तथा उसने इस विषय पर विचार-विमर्श किया कि जिसके सहारे हम चिन्तन करते हैं वह वायु (डायोज़िनीज़ का सिद्धान्त) है, अथवा रक्त (एम्पेडोक्लीज़ का मत)। वस्तुत: पाँचवीं शताब्दी के मध्य में एथेन्स में जितने मत प्रचलित थे, प्राय: उन सबका साक्रेटीज़ पर प्रभाव बताया जाता है। परन्तु इनमें से कोई भी मत उसको सन्तोषजनक नहीं लगा। क्योंकि वह जिस तथ्य को मुख्य रूप से जानने को उत्सुक था, उस पर ये मत प्रकाश नहीं डालते। वह वस्तुओं का कारण (cause) जानना चाहता था कि क्यों वस्तुएँ जैसी हैं वैसी ही रहती हैं, तथा क्यों वे वैसी बन जाती हैं जैसी बनती हैं। वे मत सभी वस्तुओं की यान्त्रिक व्याख्या करते थे, जब कि साक्रेटीज़ यह देखना चाहता था कि प्रत्येक वस्तु वैसी इसलिए है क्योंकि वैसा होना ही उसके लिए सर्वोत्तम है। प्रारम्भ में उसे एनेक्जागोरस का दर्शन अधिक आशाजनक लगा, क्योंकि उसने जगत् की उत्पत्ति मनस् (Mind) से मानी। परन्तु यह निराशाजनक सिद्ध हुआ। क्योंकि एनेक्जागोरस ने मनस् का प्रयोग केवल उन्हीं स्थानों पर किया, जहाँ कोई दूसरा सिद्धान्त प्रयुक्त नहीं हो सकता था। अन्यथा अन्य मतों की भाँति उसने भी 'वायु' तथा 'आकाश' की ही बातें कहीं। अत: साक्रेटीज़ ने इन सभी परिकल्पनाओं से विमुख होकर स्वयं एक नयी पद्धति के निर्माण का निश्चय किया।

प्लेटो के अनुसार साक्रेटीज़ काफी छोटी उम्र में ही इस निश्चय पर पहुंच गया होगा, क्योंकि वह दिखाता है कि साक्रेटीज़ अपने नये मत के सम्बन्ध में पार्मेनीडीज़ तथा ज़ीनो से उस समय विचार-विमर्श करता है जब वे दोनों पाँचवीं शताब्दी के मध्य के थोड़े समय बाद ही एथेन्स आये थे (अव० ६३)। यह भी स्पष्ट रूप से ज्ञात है कि अत्यन्त कम आयु में ही वह अपने समय के महान् 'सोफ़िस्टों' के सम्पर्क में आ चुका था। ईसा पूर्व ४४४ में पेरिक्लीज़ द्वारा प्रोटागोरस को थूरिआई का विधान बनाने जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपे जाने के पूर्व ही प्रोटागोरस एथेन्स की प्रथम यात्रा कर चुका होगा। तात्पर्य यह है कि उसकी यह यात्रा पार्मेनीडीज़ तथा जीनो की यात्रा के काफी आसपास हुई होगी, तथा हम यह देख चुके हैं कि यह परम्परागत मान्यता है कि जीनो तथा प्रोटागोरस में परस्पर विवाद हुआ था। अनेक वर्षों बाद जब प्रोटागोरस ने एथेन्स की दूसरी यात्रा की, तब युवक साक्रेटीज़ उसे अच्छी तरह याद रहा। उसका कथन है कि जितने लोगों से वह मिलता है, उनमें से वह साक्रेटीज़ की

सर्वाधिक प्रशंसा करता है, और विशेष रूप से उस उम्र के अन्य लोगों की अपेक्षा उसे बहुत अधिक चाहता है।[१] पार्मेनीडीज़ के मुख से भी इसी प्रकार की प्रशसा करवायी गयी है।[२] प्लेटो हमें यह स्पष्ट रूप से बताना चाहता है कि जब साक्रेटीज लगभग पच्चीस वर्ष का था तभी वह अपने समय के अत्यन्त विशिष्ट लोगों का ध्यान आकर्षित कर चुका था।[३] वह हिप्पियस तथा प्रॉडिकस से भी अन्तरंग था, तथा कहा करता था कि वह पर्यायों पर प्रॉडिकस के एक सस्ते पाठ्यक्रम में भी उपस्थित रहा है। दूसरी ओर, साक्रेटीज़ के चालीस वर्ष से ऊपर होने तक भी जॉर्जियस एथेन्स नहीं आया था।

परन्तु यह स्पष्ट है कि साक्रेटीज़ किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा ज़ीनो, जिसे 'इलियाटिक पालामिडीज़' (Eleatic Palamedes)[४] कहा जाता है, से अधिक प्रभावित था। जैसा कि एरिस्टॉटल ने कहा,[५] वह (ज़ीनो) द्वन्द्वन्याय (Dialectic) अर्थात् प्रश्नोत्तर विधि से तर्क की कला, का वास्तविक आविष्कर्ता था। यदि पेरिक्लियन युग का कोई साहित्य हमें उपलब्ध होता, तो एथेन्स में उसके कार्य के बारे में हम जितना जानते हैं उससे सम्भवतः कहीं अधिक तथ्य ज्ञात होते। परन्तु पाँचवीं शताब्दी के मध्य काल में एथेन्स के निवासियों ने ग्रन्थ नहीं लिखे। तथापि उसने जो प्रभाव छोड़ा, उसके पर्याप्त संकेत उपलब्ध हैं। 'पार्मेनीडीज़' नामक संवाद में एथेन्स के उसके युवक सहयोगियों के बारे में बताया गया है, तथा यह उल्लेख है कि स्वयं पेरिक्लीज ने उसके वार्तालाप सुने थे (अव० ६३)। हम आगे देखेंगे कि मेगारा में इलियाटिक दर्शन का बड़ी निष्ठा से संवर्धन होता था, तथा वहाँ इसके द्वन्द्वात्मक पक्ष का और अधिक विकास हुआ। द्वन्द्वन्याय मूलतः वार्तालाप अथवा परि-

---

१. Prct. ३६१ e. प्रोटेगोरस पुनः कहता है कि यदि साक्रेटीज बुद्धिमत्ता के लिए प्रख्यात रहा तो आश्चर्य की बात नहीं। यह निश्चित रूप से एक कम आयु के युवक के प्रति एक वृद्ध व्यक्ति का कथन है, न कि किसी चालीस वर्ष से ऊपर के व्यक्ति के प्रति साठ वर्ष से नीचे के व्यक्ति का।

२. Parm. १३० a. Cf. २ b १३५d.

३. यह एरिस्टोजेनस के इस कथन से भली-भाँति संपुष्ट होता है कि साक्रेटीज सत्रह वर्ष की आयु में आर्किलॉओस का शिष्य बन गया। (p. १२४, r. २)।

४. Phaedr., २६१ d.

५. उसके 'सोफ़िस्ट' नामक संवाद में (ap. Diog. Laert. ix. २५)

चर्चा की कला है, तथा इसकी पद्धति दृढ़ नियमों से नियमित है, उत्तरपक्षी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रश्नकर्त्ता का अत्यन्त संक्षिप्त शब्दों में समाधान करे, तथा प्रश्न जिस ढंग से पूछा गया है उसी के अनुसार उत्तर दें। उसको अन्य प्रश्न पूछने अथवा पूछे गये प्रश्नों के रूप पर शंका करने का अधिकार नहीं है। स्पष्ट है कि इस प्रणाली का अत्यन्त दोषपूर्ण ढंग से ही प्रयोग हो सकता है, तथा 'यूथिडेमस' (Euthydemus) नामक संवाद में इसका उपहासात्मक चित्रण भी रोचक ढंग से किया गया है परन्तु अत्यन्त सामान्य दोषों के स्वरूप की ओर ध्यान आकृष्ट करने का यह भी एक ढंग था, तथा इससे वास्तविक कठिनाइयों को ढूंढनें की दिशा में सहायता मिलती थी। चाहे जो हो, यह पद्धति साक्रेटीज़ को अत्यन्त उपयोगी प्रतीत हुई, तथा इसमें सन्देह नहीं कि उसने इस विधि को ज़ीनों से सीखा। 'फ़ीडो' (९६ e) से भी ज़ीनो का उस पर प्रभाव प्रमाणित होता है, जहाँ साक्रेटीज़ न केवल एनेक्जागोरस तथा आर्विलॉओस की 'वृद्धि की समस्या' (Problem of growth) के कारण व्यग्र दिखलाया गया है, वरन् 'ईकाई की समस्या' ने, जिस पर ज़ीनो ने विशेष रूप से विचार किया था उसे कुछ और भी अधिक व्यग्र बनाया।

यदि हम यह ध्यान में रखें कि साक्रेटीज़ ने जब अपने लिए एक नये पथ-निर्माण का प्रारम्भ किया था तब वह युवक ही था, तथा किसी एथेन्सवासी के लिए इस प्रकार की समस्याओं पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करना असामान्य था, तो हमें यह देखकर आश्चर्य न होगा कि युवकों के बीच साक्रेटीज़ के अनेक उत्साही प्रशंसक थे 'प्रोटागोरस' संवाद के प्रथम भाग में हम पाते हैं उस समय भी कुछ युवक उससे दिशानिर्देश पाने की कामना करते थे, तथा अपने अध्ययन के बारे में उससे विचार-विमर्श करते थे। इन युवकों में से केरिफ़न (Chairephon) नामक युवक विशेष रूप से उत्साही था, तथा उसने वस्तुतः 'डेल्फिक वाणी' से पूछा कि साक्रेटीज़ से अधिक बुद्धिमान कोई है या नहीं, पाइथिया (The Pythia) का तो उत्तर था कि उससे अधिक बुद्धिमान कोई व्यक्ति नहीं है। इससे साक्रेटीज़ के जीवन में एक नया मोड़ आया। परन्तु प्लेटो ने यह बताने में सावधानी दिखायी है कि साक्रेटीज ने दिव्यवाणी के इस उत्तर को ऐसे ही स्वीकार नहीं कर लिया। वह अपने आप से भी परिहास करने में कुशल था, तथा वह तुरन्त यह सिद्ध करने के लिए उद्यत हो गया कि देवता का वह कथन असत्य है। वह किसी ऐसे व्यक्ति को ढूंढेगा जो उससे अधिक बुद्धिमान हो, तथा उसका उपयोग वह वाणी का खण्डन करने के लिए करेगा।

इस प्रकार वह एक राजनीतिज्ञ के पास जाता है, जिसके नाम का उल्लेख करना वह अनावश्यक समझता है, तथा बात करने पर यह पाता है कि स्वयं उसकी दृष्टि में तथा अन्य लोगों की दृष्टि में भी वह बुद्धिमान है, परन्तु वास्तव में अज्ञानी है। इसी प्रकार का अनुभव उसे विभिन्न वर्गों के लोगों के साथ होता है। कवि लोग स्वयं अपनी ही रचनाओं की बोधगम्य व्याख्या नहीं कर सकते थे। स्पष्ट है कि किसी दिव्य प्रेरणा से ही वे सफलता प्राप्त करते थे, क्योंकि वे स्वयं नहीं जानते थे कि यह कैसे होता है। शिल्पी (Craftsmen) नियमित रूप से अपने व्यवसाय के बारे में कुछ अवश्य जानते हैं, परन्तु भ्रान्तिवश, इस आंशिक ज्ञान के आधार पर वे यह मान लेते हैं कि उन्होंने अन्य बहुत-सी बातें जान ली हैं, जिनके बारे में वस्तुतः उन्हें कोई जानकारी नहीं, उदाहरणार्थ, साम्राज्य का नियन्त्रण करना। अन्त में सात्क्रेटीज़ को देववाणी का अभिप्राय समझ में आया। न तो सात्क्रेटीज़ को, न किसी अन्य व्यक्ति को किसी प्रकार का ज्ञान है, परन्तु सात्क्रेटीज़ अन्य लोगों की तुलना में केवल एक दृष्टि से अधिक बुद्धिमान है। वह यह कि उसे अपने अज्ञान का ज्ञान है, तथा अन्य लोगों को यह ज्ञात नहीं कि वे अज्ञानी हैं। इस अवसर के बाद उसने यह माना कि अपने सह-नागरिकों के प्रति उसका एक कर्तव्य (मिशन) है। ईश्वर ने अन्य लोगों को उनके अज्ञान की जानकारी कराने के निमित्त उसे चुना है।

प्लेटो का कहना है कि ये सब घटनाएँ पेलोपानेसियन युद्ध के प्रारम्भ होने के पूर्व ही घट चुकी थी, क्योंकि पोटेडेइया से लौटने के बाद ही सात्क्रेटीज़ को उपरोक्त मिशन का कार्य प्रारम्भ करते हुए दिखलाया गया है।[१] अतएव उसकी लगभग पैंतीस वर्ष की आयु के पूर्व ही इस देववाणी का समय माना जायेगा। यह स्पष्ट है कि उस समय तक वह सुविख्यात हो चुका था। यदि कोई अन्य परिकल्पना की जाय तो चेरिफ़न के परिप्रश्न की व्याख्या नहीं हो सकेगी। उस समय तक स्वयं प्लेटो का जन्म नहीं हुआ था, और वह जो कुछ बतलाता है वह सब स्वयं सात्क्रेटीज़ के, तथा चेरिफ़न के, कथन पर आधारित होना चाहिये। यह समझने में किसी बड़े साहित्यिक चातुर्य की आवश्यकता नहीं है कि सात्क्रेटीज़ ने देववाणी को पूर्ण गम्भीरता से नहीं ग्रहण किया, तथा आर्फिक तथा अन्य पुराण-विद्याओं (mythologics) की व्याख्या के लिए उसने सामान्यतया जिन पद्धतियों का उपयोग किया, उन्हीं पद्धतियों को देववाणी की

१. Charm. १५३,a

व्याख्या में भी प्रयुक्त किया। दूसरी ओर, उसका स्पष्ट विश्वास था कि यह सर्वथा सम्भव है कि मानवीय जीवों से सम्पर्क के लिए परा शक्ति देव-वाणी, स्वप्न इत्यादि का प्रयोग करती है। इन विषयों के सम्बन्ध में वह बहुत कम मताग्रही था। उसकी अपनी 'वाणी' तथा दृष्टियां इस सन्दर्भ में उदाहरण के रूप में ली जा सकती है। यह सर्वथा निर्विवाद है कि उसका दृढ़ विश्वास था कि ईश्वर ने उस पर मिशन का कार्यभार सौंपा है। इसके लिए उसने सब कुछ छोड़ दिया, तथा बाद के जीवन में उसकी गरीबी का यही कारण था। वह अपनी ईश्वर-सेवा के बारे में बताता था, तथा अपने को अपोलो के हंसों का सह-दास कहता था, प्लेटो के अनुसार यह विशुद्ध आस्था (faith) है, तथा उसकी इसमें प्रगाढ़ निष्ठा थी।

पेलोपोनेसियन युद्ध छिड़ जाने के कारण साक्रेटीज़ के मिशन में व्यव-धान उपस्थित हुआ। इस युद्ध में नागरिक-सिपाही के रूप में अपना कर्तव्य निभाने के लिए उसका आवाहन हुआ था। उसने पोटेडइया (४३२ ई० पू०), डेलिअन (४२४ ई० पू०) तथा एम्फिपोलिस (४२२ ई० पू०) नामक स्थानों पर लड़ाइयाँ लड़ी, तथा रणभूमि में उसके पराक्रम का उल्लेख प्लेटो ने बड़ी कुशलता से किया है।[1] 'सिम्पोज़ियम' (२२० d sq), में प्लेटो उसके आचरण का एल्किबिआडीज़ (Alkibiades) द्वारा सुन्दर वर्णन कराता है। एक लड़ाई में एल्किबिआडीज़ आहत हो गया था, तथा साक्रेटीज़ ने उसकी तब तक देख-भाल की, जब तक खतरे की स्थिति पार न हो गयी। इस प्रकार साक्रेटीज ने उसकी प्राण-रक्षा की, जनरलों ने एल्किबिआडीज़ को शौर्य के लिए पुरस्कार प्रदान किया, परन्तु उसका स्वयं का मत था कि यह पुरस्कार साक्रेटीज को मिलना चाहिये। पुनः जब डेलिफन के पास एथेन्सवालों को पीछे हटना पड़ा तब एल्किबिआडीज़ बतलाता है कि कैसे लेचीज (Laches) के साथ साक्रेटीज़ लौटा, तथा साक्रेटीज की अत्यन्त विदग्ध प्रत्युत्पन्नमति के कारण दोनों बिना आहत हुए वापस लौट आये। 'लेचीज़' नामक संवाद में (१८१, b) लैचीज़ द्वारा उसी घटना का उल्लेख कराया जाता है, जहाँ वह कहता है कि यदि

---

१. हमने देखा है (अव० ९८) कि उसने संभवतः सेमॉस में ४४१/० में कार्य किया था, परन्तु प्लेटो को इसका उल्लेख करने का अवसर नहीं मिला। संवादों के अधिकांश वक्ताओं के समय पूर्व की यह बात है। यह रोचक विचार है कि साक्रेटीज़ ने मेलिसस द्वारा नियन्त्रित सेना के विरुद्ध लड़ाई लड़ी।

अन्य लोगों ने भी साक्रेटीज़ की ही भाँति अपना कर्तव्य निभाया होता, तो पराजय विजय में बदल गयी होती। साक्रेटीज की अवस्था उस समय लगभग छियालीस वर्ष की थी।[1]

जैसा कि हम देखेंगे, इस काल तक साक्रेटीज़ के चारों ओर सहयोगियों का एक मण्डल (circle) बन चुका था, परन्तु उसके सामाजिक मिशन की अवधि में प्रभावित युवकों से इन सहयोगियों को भिन्न मानना होगा। सबसे पहली बात तो यह लगती है कि जो लोग 'पेशेवर' सैनिक (Professional soldier) बनने के नये आह्वान पर अपने को न्यौछावर करना चाहते थे, उनके मन को साक्रेटीज ने आश्चर्यजनक रूप से मुग्ध किया, और यह स्वाभाविक था। रिपब्लिक, नामक संवाद में प्लेटो दिखाता है कि साक्रेटीज एक व्याव-सायिक सेना की आवश्यकता पर बहुत बल देते हैं। हमें ज्ञात है कि इनके अतिरिक्त सम्भ्रान्त परिवारों के ऐसे बहुत से युवक थे जिनका कोई ऐसा व्यवसाय नहीं था जिस पर जिरह की जा सके। परन्तु ये युवक दूसरों के अज्ञान को प्रकट करने में बहुत आनन्द लेते थे। उनमें से कुछ की तो यहाँ तक धारणा थी कि सामाजिक जीवन की तैयारी के लिए किसी पेशेवर सोफ़िस्ट के शिक्षण की अपेक्षा साक्रेटीज का भाषण सुनना अधिक उपयोगी है। यह निश्चित है कि क्रिटियस इसी भावना से साक्रेटीज के सम्पर्क में आया था, परन्तु वह उसके साथ अधिक दिनों तक नहीं रह सका। अन्य लोगों के बारे में भी हम ऐसी बातें सुनते हैं, उदाहरणार्थ लिसिमेकस का पुत्र एरिस्टेइडीज़ (Aristeides) जो साक्रेटीज़ के ही प्रमण्डल का निवासी था, तथा उसने जल्दी ही साथ छोड़ दिया। यह निर्विवाद है वे सब सफलता की विद्या सीखना चाहते थे, जबकि साक्रेटीज़ का आग्रह था कि राजनीतिज्ञ को किसी भी अन्य शिल्पी की भाँति गम्भीर अध्ययन करने की आवश्यकता है। कुछ अन्य लोग ऐसे भी थे जो साक्रेटीज के प्रति वास्तव में निष्ठावान थे। उनमें एल्किबिआडीज़ तथा चार्मि-डीज़ (Charmides) के नाम उल्लेखनीय हैं। चार्मिडोज़ प्लेटो के चाचा थे, तथा इसमें सन्देह नहीं कि इन्हीं के माध्यम से प्लेटो साक्रेटीज़ के सम्पर्क में आये। परन्तु इन लोगों को साक्रेटीज का शिष्य नहीं माना जा सकता। ये लोग

---

१. प्लेटो जिस ढंग से साक्रेटीज़ की सैनिक ख्याति पर बल देता है उस पर ध्यान देना आवश्यक है। बाद में मीनो, जेनोफ़ेन तथा अन्य लोगों ने उसके बारे में जो रुचि ली, उसका भी यही कारण है। 'फ़ीडो (प्राक्कथन, पृष्ठ १४) का मेरा संकरण देखिये।

चेरिफ़न (Chairephon) की भाँति सही अर्थों में उसके सहयोगियों की कोटि में भी नहीं आ सकते। 'एपॉलाजी' में साक्रेटीज़ उनके बारे में कहता है कि ये वे लोग हैं 'जो अपने को मेरा शिष्य बतलाते हैं'।[१]

इन युवकों से अपने सम्बन्ध को बताने में साक्रेटीज़ अभ्यासवशात् प्रेम की भाषा का प्रयोग करता था, परन्तु उसमें उसके विख्यात कुशल परिहास का पुट अवश्य रहता था। इसे समझने के लिए हमें स्मरण होगा कि थीबीज़ (Thebes) तथा एलिस (Elis) में तथा डोरियन राज्यों में इस प्रकार की आसक्तियों को सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। उनकी उत्पत्ति यूनानी मध्य युगों में नाइट, महाशय तथा बाल-सेवक के रोमान्टिक सम्बन्धों में हुई, तथा 'सैनिक प्रयोजनों में उनको बहुत मूल्यवान समझा जाता था'।[२] 'लाज' (Laws ६३६, b क्रमशः) में एथेनियन अन्यजन (Athenian stranger), जो कि स्वयं प्लेटो था, स्पार्टा तथा क्रीट की संस्थाओं (institutions) या प्रथाओं की आलोचना केवल इसी आधार पर करता है कि वे इस प्रकार के सम्बन्धों के दुष्परिणामों में सहायक हो सकती हैं।[३] दूसरी ओर आयोनियन राज्यों में सामान्यतया उन्हें निम्न कोटि का माना जाता था,[४] तथा यद्यपि डोरियन और सोलन के काल के पूर्व ही एथेन्स पहुँच चुकी थी, परन्तु कानून तथा जनमत दोनों ही उसके दुरुपयोग का तिरस्कार करते थे।[५] प्लेटो ने इसे पर्याप्त रूप से स्पष्ट कर दिया है कि स्पार्टन जीवन के अनेक पक्षों में से इस पक्ष का अनुकरण करना कुलीन घरानों में फ़ैशन बन गया था। एल्किबिआडीज़ के मुख से

---

१. Apol. ३३ a. अपने Bousiris (११.५) में सॉक्रेटीज़ ने इस प्रसंग को ठीक वैसे ही उपस्थित किया है वे जैसे प्लेटो ने साक्रेटीज़ को स्वयं को उपस्थित करते हुए दिखाया है, वह पॉलिक्रेटीज की आलोचना इसलिए करता है (Cf. अव० ११६, नीचे) कि वह एल्किबिआडीज़ को साक्रेटीज़ का शिष्य बताता है, जबकि किसी को भी यह ज्ञात नहीं कि उसने कभी साक्रेटीज़ से शिक्षा प्राप्त की।

२. देखिये, Bethe in Rehin. Mus. xii (१९०७), pp. ४३८ क्रमशः

३. एक स्पार्टन तथा एक क्रीटन को सम्बोधित करते हुए वह कहता है (६३६), "इन संस्थाओं में सर्वदा प्राचीन तथा नैसर्गिक रीतियों को भ्रष्ट करने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।"

४. Plato, Symp. (१८२ b).

५. Plato Pheadr. २३१ e. "यदि जनमत आपके विरुद्ध हो, तथा आप पहिचान तथा तिरस्कार से दूर रह सकें।" Aischines Against Timarchos fassim.

इस प्रसंग का जो अत्यन्त स्पष्ट विवरण उसने प्रस्तुत किया है उस पर यदि हम विश्वास कर सकें, और यदि यह प्लेटो की अपनी कल्पना है, तो निश्चय ही विलक्षण है – तो पायेंगे कि स्वयं एल्किबियाडीज़ ने ही सर्वप्रथम सात्रेटीज़ का प्रियपात्र (eromenos) होने का अभिनय किया, यद्यपि यह सर्वथा स्पष्ट है कि यह केवल अभिनय ही था। सात्रेटीज़ का वैयाक्तिक इन्द्रिय-संयम पूरी कहानी का आधार माना गया है, अतः उसकी भाषा का स्थूल अर्थों में व्याख्या करने का हमें कोई अधिकार नहीं। आधुनिक पाठक को जिस बात पर आश्चर्य होता है, वह है इस प्रकार के सम्बन्धों के बारे में इतिवृत्तात्मक (matta-of-fort) कथन-पद्धति जिसके द्वारा इस प्रकार के सम्बन्धों को तिरस्कृत किया गया है। यदि हम यह याद रखें कि एथेन्स से कुछ ही मील दूर मेगारा में इसे बुरा नहीं माना जाता था, तो इस सम्बन्ध को समझने में सुविधा हो सकती है। इस विषय पर आधुनिक काल में जिस प्रकार का वाणी-संयम सामान्यतया पाया जाता है उसी प्रकार का वाणी-संयम उन परिस्थितियों में कठिनाई से मिलेगा, यद्यपि प्लेटो ने सुस्पष्ट ढंग से इसका तिरस्कार किया है।

इसका एक अन्य पक्ष सात्रेटीज़ को आकर्षक लगा, और यहां एक बार पुनः हम उसके उस परिहास को देखते हैं जिसका वह अभ्यस्त था। आत्मा में विचारों की उत्पत्ति को वह एक ऐसी भाषा में व्यक्त करता था जो उसकी माँ के व्यवसाय से सम्बद्ध थी। उसने यह स्वीकार किया कि वह स्वयं प्रज्ञान को जन्म नहीं दे सकता, परन्तु उसका दावा था कि वह एक निपुण धात्री (mid-wife) है, जो नये विचारों के प्रजनन की कला में अत्यन्त कुशल है। इसके अतिरिक्त, जैसे दाइयां विवाह-प्रसंग में कुशल मध्यस्थ (घटक) होती हैं, उसी प्रकार उसका यह दावा था कि युवकों के लिए सर्वोत्तम शिक्षक कौन हो सकता है, यह जानने के लिए उसके पास विशेष प्रतिभा थी। ये सब बातें तो विनोदात्मक हैं, परन्तु हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि सात्रेटीज़ रहस्यवादी तथा परिहासपटु दोनों था, तथा रहस्यवादी सदा अपने विचित्र अनुभवों को व्यक्त करने के लिए किसी अन्य भाषा की अपेक्षा प्रेम की भाषा को अधिक उपयुक्त पाते हैं। सुन्दर शरीर के प्रति प्रेम तो किसी ऊँची वस्तु का केवल पार्थिव रूप है। यह हमें सुन्दर आत्मा के प्रति प्रेम, उत्तम अध्ययन तथा श्रेष्ठ जीवन-पद्धति की ओर उन्मुख करता है, तथा यह अन्त में हमें उस दिव्य लोक में पहुंचा देता है जहां पर सौन्दर्य, धार्मिकता, तथा पवित्रता के रूप (form)

की निवास-भूमि है, और हम उनके सान्निध्य में रहते हैं।[1] इस प्रकार जब इन 'रूपों' को प्रेम का विषय मान लिया जाता है तब ये रूप ऐसी सत्ताएं बन जाते हैं जिनकी इस जगत् की वस्तुएं छाया मात्र हैं, तथा ये वस्तुएं अपनी अपूर्ण सत्ताएं भी इन्हीं से प्राप्त करती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि प्लेटो का उद्देश्य हमें इस बात के लिए विश्वास दिलाता है कि साक्रेटीज़ को वास्तव में यह पारमार्थिक दृष्टि प्राप्त हो चुकी थी। सिम्पोज़ियम' में जो वार्तालाप संगृहीत है उसके ठीक पहले साक्रेटीज़ को एक उपसमाधि की अवस्था में दिखाया जाना निरुद्देश्य नहीं है। इसका उद्देश्य चौबीस घण्टे लम्बी उस उपसमाधि (ट्रान्स) पर प्रकाश डालना होगा, जो बारह वर्षों से भी पूर्व पोटेडेइया के शिविर में लगी थी। जिस व्यक्ति ने अपनी निर्भीक निष्ठा के कारण रणक्षेत्र में एल्किबियाडीज़ की प्राण रक्षा की, वह इस प्रकार के सौन्दर्य से कहीं ऊँचे सौन्दर्य पर ध्यान लगाने के बाद तुरत उठा था।

साक्रेटीज़ के सम्भाषणों का युवकों के ऊपर पड़ने वाले प्रभाव के अनेक विवरण प्लेटो ने सुरक्षित रखे हैं। उनमें से उन शब्दों को उद्धृत करना वाञ्छनीय होगा जिन्हें प्लेटो मीनो जैसे संकोची प्रशंसक तथा एल्किबियाडीज़ जैसे उत्साही प्रशंसक के मुँह से कहलाता है। मीनो कहता है ('मीनो', ७९ e):

आपसे मिलने के पूर्व हमें बताया गया था कि आपने स्वयं को तथा अन्य लोगों को भ्रम में डालने के अतिरिक्त कुछ नहीं किया। और अब मुझे वस्तुतः अनुभव हो रहा है कि आप मुझे मोहित कर रहे हैं, तथा मेरे ऊपर मन्त्र तथा जाल फेंक रहे हैं, ताकि मैं पूर्णतः भ्रमित हो जाऊँ। यदि मुझे कुछ परिहास करने की अनुमति दी जाय, तो मेरा विचार है कि आप न केवल आकृति में, वरन् अन्य अर्थों में भी, विद्युत-मछली से बहुत मिलते हैं। जो कोई भी इसके निकट आता है, तथा इसे छूता है उसे यह मछली स्तम्भित कर देती है, और आपने मुझे ठीक वैसा ही कर दिया है। मेरी आत्मा तथा मेरी वाणी दोनों वस्तुतः स्तम्भित हो गये हैं. तथा मैं आपको क्या उत्तर दूं यह मुझे ज्ञात नहीं। मैंने विशाल समुदायों के समक्ष अनेक बार 'शुभत्व' (goodness) पर भाषण दिये हैं, तथा उनमें पूर्ण सफलता भी मुझे मिली, परन्तु इस समय इसके

---

१. Phaedr. २४७ c. क्रमशः मुझे विश्वास नहीं कि यह स्वयं प्लेटो के अनुभव का विवरण है। साक्रेटीज़ की चित्त-प्रकृति के बारे में हमें जो कुछ ज्ञात है, उससे यह पूर्ण संगत है।

बारे में कुछ भी नहीं कह पा रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि यह आपकी विलक्षण दूरदर्शिता (prudence) ही है कि आपने कोई यात्रा नहीं की, तथा अपने देश को छोड़कर कहीं अन्यत्र नहीं गये। यदि आपने ये सब कार्य किसी विदेशी भूमि में अपरिचित के रूप में किये होते, तो सम्भवत: आपको मायावी माना गया होता।

तथा एल्किबियाडीज़, जो दुर्गुणी होने पर भी, अथवा उन्हीं दुर्गुणों के के कारण, साक्रेटीज़ का अत्यन्त प्रिय था, कहता है (symposium, २१५ a):

"प्रतिमाओं (images) के सहारे जहाँ तक सम्भव होगा मैं साक्रेटीज़ की प्रशंसा करने का प्रयास करूंगा, परन्तु मैंने प्रतिमा का चयन इसकी सत्यता के लिए किया है न कि इसकी विसंगति (absurdity) के लिए। मेरे विचार से वह मूर्तिकारों की दुकानों में रखी सिलेनस (Silenos) की मूर्तियों की भाँति हैं जिनके हाथों में मुरली अथवा बाँसुरी रखी रहती है, तथा जब हम दूकानों के अन्दर जाते हैं तब वहाँ पर देवताओं की आकृतियाँ पाते हैं। इसके अतिरिक्त मैं यह भी कहता हूँ कि वह वनदेवता मर्स्याज़ (Marsyas) की भाँति है। साक्रेटीज़! आप देखने में इनके सदृश लगते हैं, तथा मैं समझता हूँ कि आप स्वयं यह अस्वीकार नहीं करेंगे। और अब मैं बताता हूँ कि कैसे आप अन्य दृष्टियों से भी उनके सदृश हैं। आप विलासी हैं, क्या यह सच नहीं? यदि आप इसे नहीं मानते, तो मैं गवाहों को बुलाऊँगा। अरे, क्या आप मुरलीवादक (piper) नहीं हैं? उसकी (मर्स्याज़) की अपेक्षा आप कहीं अधिक आश्चर्यकारी मुरलीवादक हैं! वह अपने वाद्य-यन्त्रों के द्वारा लोगों को मुग्ध करता था, ...आप उसे पराजित करते हैं, क्योंकि आप बिना वाद्य-यन्त्रों के केवल शब्दों के द्वारा ठीक वही प्रभाव डालते हैं। जब हम किसी अन्य वक्ता का भाषण सुनते हैं, भले ही वह कुशल वक्ता हो, तो हम लोग उसकी जरा भी परवाह नहीं करते। परन्तु जब कोई भी व्यक्ति आपका भाषण सुनता है, अथवा आपके शब्दों को किसी के द्वारा दुहराये जाते हुए सुनता है, और यदि वह वक्ता भले ही अपरिचित हो, और वह पुरुष, स्त्री, अथवा किशोर ही क्यों न हो, तो हम सभी विह्वल (confouned) तथा उत्प्रेरित (inspired) हो जाते हैं। मेरे मित्रों, यदि आप मुझे मदिरोन्मत्त न समझें, तो मैं आपसे शपथ लेकर कहूँगा कि उसके शब्दों ने मुझ पर कैसा प्रभाव डाला था तथा वह प्रभाव आज भी है। जब मैं उसका भाषण सुनता हूँ तो कोरिबेन्टिक हर्षातिरेक में पड़े व्यक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक तेजी से मेरा हृदय उछलता है, तथा उसके

शब्दों के कारण मेरी आँखों मे आँसू छलक पड़ते हैं। तथा मैं देखता हूँ कि ऐसे बहुत-से लोग हैं जिन पर ठीक ऐसा ही प्रभाव पड़ता है। जब मैं पेरिक्लीज़ तथा अन्य अच्छे वक्ताओं का भाषण सुना करता था, तब मेरी धारणा थी कि वे बहुत अच्छा व्याख्यान देते हैं, परन्तु उस समय मुझे इस प्रकार की अनुभूतियां नहीं होती थीं। मुझे ऐसी स्थिति का आभास नहीं होता था कि मेरी आत्मा दास बन गयी है, और मेरी आत्मा को ऐसे विचार व्याकुल अथवा क्रोधित नहीं करते थे। परन्तु यहाँ पर इस मर्स्याज़ ने अनेक बार मेरे सामने ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी कि मैं सोचने लगा कि यदि मेरी स्थिति पूर्ववत् रही होती तो जीवन निरर्थक होता। यह निश्चित है कि यदि मैं पुनः उसके शब्द सुनूं, तो मैं अपने को नियन्त्रण में नहीं रख सकता, तथा पुनः उसी प्रकार के अनुभव होंगे। वह मुझे यह स्वीकार करने के लिए बाध्य कर देता है कि यद्यपि मुझमें अनेक त्रुटियां हैं, मैं स्वयं अपनी अवहेलना कर एथेन्स के धन्धों मे अपने आप को फंसाये रहता हूँ। अतः जैसे भोपूं के पास से लोग भाग जाते हैं, वैसे ही मैं अपने कान बन्द कर उसके पास से भाग जाता हूँ, ताकि उस स्थान पर जम न जाऊँ, तथा उसके समीप रहते-रहते मैं बूढ़ा न हो जाऊँ। वह एकमात्र ऐसा व्यक्ति है जिसकी उपस्थिति में मैं लज्जा का अनुभव करता हूँ, जबकि सामान्यतया मैं लज्जित होने वाला व्यक्ति नहीं हूँ। मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि यदि वह मुझे कोई कार्य सौंपे तो मैं उसको न करने का कोई तर्क नहीं प्रस्तुत कर सकता। परन्तु जब मैंने उसका साथ छोड़ दिया तब मेरी प्रसिद्धि मेरे लिए भार बन गयी। अतः मैं पलायित गुलाम अथवा भगेडू जैसा व्यवहार करता हूँ, तथा जब भी मैं उसे देखता हूँ तब अपने द्वारा की गयी स्वीकृतियों के लिए लज्जित होता हूँ। अनेक बार मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि यदि उसका अस्तित्व पूर्णतया समाप्त कर दिया जाय, तो मैं प्रसन्न होऊँगा, परन्तु यदि ऐसा हो जाय तो मैं जानता हूँ कि मैं उसके प्रभाव से मुक्त होने की अपेक्षा कहीं अधिक संतृप्त होऊँगा। वस्तुतः मुझे स्वयं नहीं मालूम कि उसके बारे में क्या किया जाय।"

यह सत्य है कि प्लेटो स्वयं बहुत छोटी उम्र का होने के कारण एल्किबियाडीज़ के इस प्रकार के सम्भाषण को नहीं सुन पाया था, परन्तु साक्रेटीज से उसके सम्बन्धों को जानने के लिए उसको पर्याप्त अवसर उपलब्ध थे। कम से कम यह तो स्पष्ट है कि उसे यह विश्वास था कि साक्रेटीज़ एल्किबियाडीज़ पर ईसा पूर्व ४१६ तक भी अपना मोहक प्रभाव डालने में समर्थ था, जिस वर्ष

'सिम्पोजियम' में वर्णित भोज का समय माना जाता है। यह भी स्वाभाविक है कि स्वयं प्लेटो की युवावस्था में उस पर सात्रेटीज़ के भाषणों का क्या प्रभाव पड़ा यह जानने के लिए उस अनुच्छेद को प्रमाण माना जाय।[1]

ईसा पूर्व ४२३ में एरिस्टोफ़ेनीज ने 'क्लाउड्स' (Clouds) नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ का मुख्य पात्र साक्रेटीज़ था, तथा ग्रन्थ-रचना के समय साक्रेटीज की आयु सैंतालीस वर्ष की थी। वहाँ पर उसका जो चित्र उपस्थित किया गया उसके बारे में, बाद में, कुछ बताना आवश्यक होगा। यहाँ पर हमारा सम्बन्ध केवल इस बात से है कि प्लेटो इस विषय पर क्या कहता है। यह सत्य है कि 'एपॉलाजी' नामक संवाद में प्लेटो ने साक्रेटीज़ के मुख से कहलाया है कि जनता में उसके प्रति जो प्रतिकूल धारणा बन गयी है उसका अधिकांश कारण 'क्लाउड्स' ग्रन्थ है। वहाँ पर उसके बारे में कहा गया है कि वह हवा पर चलता है, तथा स्वर्ग एवं पाताल की वस्तुओं के बारे में व्यर्थ की बातें करता है। साक्रेटीज़ कहता है इन्हीं कारणों से यह धारणा बनी कि वह अधार्मिक है। यह बहुत सम्भव है कि उसके मुकदमे के समय इसका कुप्रभाव पड़ा हो, जबकि 'क्लाउड्स' की पुरानी स्मृतियों के कारण न्यायाधीशों के मन में साक्रेटीज़ पर लगाये गये आरोपों की की पुष्टि हो गयी हो। परन्तु प्लेटो की रचनाओं से हम अनुमान लगाते हैं कि उस समय कोई भी व्यक्ति इस बात पर गम्भीरता से ध्यान नहीं देता था, और साक्रेटीज़ तथा उसकी मण्डली के लोग तो उस पर और भी कम ध्यान देते थे। 'सिम्पोज़ियम' में यह दिखाया गया है कि 'क्लाउड्स' की रचना के छह या सात वर्षों बाद तक भी साक्रेटीज़ तथा एरिस्टोफ़ेनीज़ घनिष्ठ मित्र थे, तथा उसी नाटक से साक्रेटीज़ की चाल का हास्योपादक विवरण उद्धृत करने में एल्किबियाडीज़ जरा भी नहीं हिच-कता। अतः हमें यह समझना चाहिये कि उस समय इसे अपराध नहीं माना जाता था, तथा हमें अपनी ओर से इस परिकल्पना की आवश्यकता नहीं है कि उसका तात्पर्य अपराध था। 'क्लाउड्स' के बारे में प्रतिरोध तो बाद की घटनाओं के कारण हुआ, तथापि इस विषय को 'एपॉलाजी' में सर्वथा गौण स्थान दिया गया है।

भावी काल अधिक कठिनाइयों वाला था। हम देख चुके हैं कि

१. यह कल्पना करना सरल नहीं कि जेनोफ़ेन की Memorabilia में पाये जाने वाले भाषण भी इन्हीं भाषणों जैसे प्रभावोत्पादक थे।

साक्रेटीज़ ने एक सिपाही के रूप में अपना कर्तव्य किया, परन्तु उसने कोई पद नहीं लिया। उसकी 'वाणी' ने उसे राजनीति में भाग लेने की स्वतन्त्रता नहीं दी। परन्तु ईसा पूर्व ४०६ में उसे पाँच सौ लोगों की परिषद् का सदस्य बनना पड़ा। बात ऐसी हुई कि परिषद् की कार्यकारिणी-समिति में आने के लिए उस एन्टिऑचिस (Antiochis) नामक उपकुल, जिसमें साक्रेटीज का मण्डल आता था, के पचास प्रतिनिधियों की बारी थी और इस समय उन्हें उन जनरलों पर मुक़दमा चलाना था, जो एर्गिनुसाई (Arginousoai) के नौसैनिक युद्ध के उपरान्त मृत शवों को ढूँढने में असमर्थ पाये गये थे। मुक़दमे की कार्रवाई से यह स्पष्ट होता है कि प्रजातन्त्र का रूप विकृत हो रहा था। प्रत्येक जनरल के मामले को अलग-अलग सुनने की अपेक्षा सभी जनरलों की एक साथ सुनवाई करने का प्रस्ताव आया। यह नियम के विरुद्ध था, तथा साक्रेटीज़ ने, जो उसका अध्यक्ष था, जन-सामान्य के रोष के बावजूद भी सभा में प्रश्न रखना अस्वीकार कर दिया। अन्ततोगत्वा, एक अवैधानिक ढंग से जनरलों को सज़ा दी गयी, परन्तु साक्रेटीज़ के कृत्य ने गम्भीर प्रभाव डाला, जिसके बारे में वह अपने मुक़दमे के समय पर्याप्त गर्व से उल्लेख करता है। थोड़े दिनों बाद तीस पार्षदों के अवैधानिक शासन की अवधि में उसे यह प्रदर्शित करने का भी अवसर मिला कि वह दूसरे पक्ष के द्वारा भी डराया नहीं जा सकता। तीस पार्षदों ने उसे चार अन्य लोगों के साथ बुलाया और यह आदेश दिया कि सेलेमिस निवासी लिअन (Leon) को बन्दी बनाकर उसकी हत्या कर दी जाय। अन्य चार व्यक्तियों ने आदेश का पालन किया। परन्तु साक्रेटीज़ चुपचाप अपने घर चला गया। प्लेटो उसके मुख से कहलाता है कि यदि उसके थोड़े ही समय बाद वे पार्षद सत्ताच्युत न हो गये होते तो उसे इसके कारण सम्भवतः दण्ड भोगना पड़ा होता। इससे हम अनुमान कर सकते हैं, और हम आगे देखेंगे कि यह तथ्य उपयोगी होगा, कि साक्रेटीज़ ने यह आवश्यक नहीं समझा कि एथेन्स को प्रजातान्त्रिकों के हाथ सौंप कर वहाँ से चला जाय, यद्यपि उसके निष्ठावान शिष्य केरीफ़न ने एथेन्स त्याग दिया।

एरिस्टोफेनीज़ तथा जेनोफ़न
(ARISTOPHENES AND XENOPHEN)

आइये अब हम यह विचार करें कि साक्रेटीज़ के बारे में दिया गया विवरण एरिस्टोफेनीज़ तथा जेनोफ़न द्वारा पुष्ट हुआ है अथवा नहीं। सर्वप्रथम

हमें यह देखना चाहिये कि प्लेटो साक्रेटीज़ के जीवन को दिव्यवाणी की अनु-क्रिया (response) के आधार पर दो स्पष्ट भागों में विभाजित करता है। प्रथम भाग में वह मुख्यतया अपने युग के धार्मिक तथा वैज्ञानिक आन्दोलनों में व्यस्त रहा तथा इसी समय उसने 'आकरों' में दृष्ट वस्तुओं की भागग्राहिता के नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। जीवन के परवर्ती भाग में उसकी मुख्य तथा प्राय: एक मात्र रुचि थी, अपने सह–नागरिकों के प्रति कर्तव्य (मिशन), यद्यपि अपने दण्डादेश तथा मृत्यु के बीच की एक माह की अवधि के अन्तर्गत वह स्वभावतया अपनी युवावस्था में पोषित विषय-वस्तु (Theme) की ओर पुन: आकर्षित हुआ। यहाँ पर यह भी द्रष्टव्य है कि एरिस्टोफेनीज़ का प्रामा-ण्य इन दो कालों में से प्रथम काल से सम्बन्धित है, तथा जेनोफ़न का द्वितीय से। क्लाउड्स (Clouds) की रचना (ई०पू० ४२३) डेलियन तथा एम्फिपो-लिस (Amphipolis) की लड़ाइयों के मध्य वाले वर्ष में हुई थी, तथा साक्रे-टीज़ ने इन दोनों लड़ाइयों में भाग लिया था। उसके मिशन का प्रारम्भ हो गया था, परन्तु उसमें व्यवधान पड़ गया, तथा एरिस्टोफेनीज़ के सामने मुख्यतया प्रथम काल के साक्रेटीज़ का ही चित्र रहा होगा। इस प्रश्न पर विचार करते समय कालक्रम महत्वपूर्ण है, तथा हमें कभी भी यह नहीं भूलना चाहिये कि जब एरिस्टोफेनीज़ ने क्लाउड्स' की रचना की तब साक्रेटीज़ की आयु केवल सैंतालीस वर्ष की थी तथा उस समय प्लेटो एवं जेनोफ़न बच्चे थे। अत: एरिस्टोफ़ेनीज़ ने जो व्यंग्य चित्र खींचा है, उसकी तुलना हमें प्लेटो द्वारा वर्णित युवक साक्रेटीज़ से करनी चाहिये, न कि उसके द्वारा चित्रित परवर्ती काल के साक्रेटीज़ से।

इसमें सन्देह नहीं कि 'क्लाउड्स व्यंग्यचित्रात्मक है, तथा हमें इसकी व्याख्या भी उसी दृष्टि से करनी चाहिये। सुखान्तिकी (Comedy) की व्याख्या के लिए दो ऐसे सामान्य नियम हैं जिनकी प्राय: अवहेलना की जाती है। प्रथम, किसी सुखान्तिकी में किसी कथन की स्थिति-मात्र से हम यह प्राकल्पना कर लेते हैं कि यह कथन केवल इतिवृत्तात्मक नहीं हैं। तथ्यात्मक कथन हास्यपूर्ण नहीं होते। दूसरी ओर, ऐसे प्रत्येक कथन का कुछ न कुछ तथ्यात्मक आधार होना आवश्यक है, क्योंकि किसी वास्तविक व्यक्ति के बारे में शतप्रतिशत कल्पितार्थ भी हास्योत्पादक नहीं हो सकता अत: प्रश्न यह है कि अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में साक्रेटीज़ का व्यक्तित्व कैसा रहा होगा, जिसके कारण 'क्लाउड्स' का व्यंग्यचित्र बन पाया। सर्वप्रथम, वह

प्राकृतिक-विज्ञान का अध्येता रहा होगा,तथा किसी न किसी समय आकाश तथा पाताल की वस्तुओं के बारे में रुचि दिखायी होगी। प्लेटो साक्रेटीज के मुख से यह घोषणा कराता है कि युवावस्था में उसने मुख्यतया इन्हीं विषयों का अध्ययन किया था। एरिस्टोफेनीज़ साक्रेटीज़ को एक ऐसे दर्शन का अनुयायी मानता है जो अपोलोनिया निवासी डायोजिनीज (Diogenes) का दर्शन प्रतीत होता है, और इसी कारण समवेतगान (chorus) में बादल रहते हैं। हमें ज्ञात है कि डायोजिनीज़ ने एनेक्जिमेनीज़ के सिद्धान्त का पुनरावर्तन किया था कि सभी वस्तुएं संकुचित अथवा विरलीकृत 'वायु' हैं। तथा वायु के संकुचित होने से जो वस्तुएं पहले बनी, उनमें बादलों का भी स्थान है। ठीक इसी प्रकार प्लेटो साक्रेटीज़ से कहलाता है कि अन्य प्रश्नों के साथ उसने यह भी अध्ययन किया था कि जिसके आधार पर हम विचार करने में समर्थ हैं, वह 'वायु' है (डायोजिनीज़ का सिद्धान्त), अथवा रक्त (एम्पीडोक्लीज़ का सिद्धान्त) तथा एरिस्टोफेनीज़ उसको एक टोकरी में झूलते हुए दिखाता है, ताकि अपने चिन्तन के लिए वह शुद्ध तथा शुष्क वायु पा सके। एरिस्टोफेनीज़ को साक्रेटीज़ के आध्यात्मिक धात्री होने वाली बात भी ज्ञात थी, क्योंकि वह विचार की असंगति के बारे में एक परिहास करता था। दूसरी ओर, वह साक्रेटीज़ को एक आध्यात्मिक माध्यम के रूप में उपस्थित करता है, तथा वह फ्रोन्टिस्टे-रियन (Phrontisterion) के सह-निवासियों को 'आत्मन' (souls) कहता था, जबकि सामान्य एथेन्सवासी इस शब्द को भूत-प्रेत के अर्थ में जानते थे। उन लोगों के नंगे पैर घूमने तथा स्नान न करने की आदत के लिए भी वह उनका उपहास करता है, तथा उनको 'अर्ध–शव' कहता है। साक्रेटीज़ के आत्मा तथा 'मृत्यु के अभ्यास' (Practice of death) के सिद्धान्त के बारे में प्लेटो जो हमें बताता है उसमें इन सबका, तथा इस प्रकार की और बहुत-सी बातों का, पर्याप्त आधार है। प्लेटो से हमें जो जानकारी मिलती है और उसमें जो बात असंगत प्रतीत होती है वह यह है कि यहाँ साक्रेटीज़ अपने शिष्यों के दुर्बल तर्कों को प्रबल बनाना सिखाता है। इस अर्थ में तो प्रोटागोरस भी ऐसी शिक्षा नहीं देता था, तथा धार्मिक एवं दुष्ट 'लोगस' (परावाक्) का समावेश (सम्भवत: बाद में प्रक्षिप्त) सीमा से भी अधिक विस्तृत प्रतीत होता है। तथापि, यदि हम निकट से देखें, तो पायेंगे कि प्लेटो के साक्रेटीज़ की शिक्षाओं में ऐसे पर्याप्त स्थलों के संकेत हैं जो एक नातिसूक्ष्मदर्शी सुखान्तिक कवि द्वारा की गयी विकृति को स्पष्ट करते हैं। हमें प्लेटो के ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि

साक्रेटीज़ की नवीन पद्धति यह थी कि वस्तुओं का अध्ययन प्रतिज्ञप्ति (propostiion) की दृष्टि से होना चाहिये, व कि तथ्यों (facts) के दृष्टिकोण से। रूढ़िवादी एथेन्सवासी 'तर्कवाक्य की कला' को तथ्यात्मक दृष्टिकोण से पृथक् करने में न तो समर्थ थे, न इसकी चिन्ता ही करते थे। जहाँ तक इस अभिमत का प्रश्न है कि इस कला का उपयोग अनैतिक निष्कर्षों की स्थापना के लिए किया जाता था, हमें केवल इतनी ही परिकल्पना करनी होगी कि 'हिप्पयस माइनर' में उल्लिखित ढंग की गोष्ठियां पर्याप्त वहुर्चचित रहीं, जो स्वाभाविक ही है। साधारण व्यक्ति को यह बात अत्यन्त स्पष्ट प्रतीत होगी कि कोई भी ऐच्छिक दुष्कर्मी को अनैच्छिक दुष्कर्मी की अपेक्षा श्रेष्ठ मानता है वह अवश्य ही नैतिकता के विध्वंस में अनुरक्त होगा। अतएव मेरा निवेदन है कि यदि इस काल का साक्रेटीज अधिकांशतः वैसा ही है जैसा कि प्लेटो उसे प्रस्तुत करता है तब 'क्लाउड्स' का व्यंग्यचित्र समझ में आता है, और यदि वह वैसा नहीं था, तब यह व्यंग्यचित्र सर्वथा निरर्थक है।

परन्तु सर्वोपरि बात तो यह है कि. साक्रेटीज़ के कुछ शिष्यों के बीच स्पष्ट अन्तर को अत्यन्त विस्तार से बताकर एरिस्टोफेनीज़ ने प्लेटो के कथनों की सम्पुष्टि की है। केरिफ़न इन शिष्यों में प्रमुख था, तथा ये शिष्य उसकी वैज्ञानिक विद्यापीठ (School) के स्थायी सहयोगी थ तथा ये युवक उसकी संस्था (Society) में प्राय: जाया करते थे, अथवा अपने माँ-बाप द्वारा जीवन में सफलता प्राप्त करने की शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजे जाते थे। लिसिमेकस (Lysimachos) तथा एरिस्टेइडीज़ (Aristeides) के बारे में प्लेटो जो कुछ हमें बताता है[1] वह स्ट्रेप्सियाडीज़ तथा फेइडिप्पीडीज़ (Pheidippides) की हास्योत्पादक आकृतियों के औचित्य-स्थापन के लिए पर्याप्त है। परन्तु 'फ्रोन्टिस्टेरियन' की मशीनरी से यह स्पष्ट होता है, कि बात कुछ और गम्भीर थी। प्राय: यह कहा जाता है कि एरिस्टोफेनिज़ साक्रेटीज़ को उस युग के एक सोफ़िस्ट के रूप में मानता है, परन्तु यह मत अमान्य है। सर्वप्रथम यह प्राचीन सुखान्तिकी प्रतिरूपों का नहीं, वरन् व्यक्तियों का अध्ययन करती है, तथा जब एरिस्टोफेनीज़ 'बर्ड्स' (Birds) में एक प्रतिरूप या जाति (Tpye) का वर्णन प्रारम्भ करता है, तब वह उसे एक काल्पनिक नाम प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, उस युग के सोफ़िस्टों के स्थायी सहयोगी नहीं

---

१. Laches, १७८ a क्रमशः ; Theaet. १५१ a.

होते थे। वे आज यहाँ तो कल दूसरी जगह घूमा करते थे, तथा वे केवल सीमित व्याख्यानों के पाठ्यक्रम सुनाया करते थे, और उनके श्रोतागण भी सदा बदलते रहते थे। पुनश्च, एरिस्टोफेनीज़ जिन वैज्ञानिक अन्वेषणों का मजाक उड़ा रहा है, उन अन्वेषणों के बारे में सोफ़िस्टों ने कभी भी चिन्ता नहीं की। 'फ्रोन्टिस्टेरियन' तो वस्तुतः एक ऐसी संगठित वैज्ञानिक संस्था का हास्यपूर्ण वर्णन है, जिस प्रकार की संस्थाएं आयोनिया तथा इटली में सुविख्यात थीं, परन्तु एथेन्स में आर्किलॉस के द्वारा एक संस्था की स्थापना के पूर्व उनका कोई अस्तित्व नहीं था, यदि साक्रेटीज़ वास्तव में ऐसी सस्था का अध्यक्ष नहीं था, तो क्या हम यह परिकल्पना कर सकते हैं कि स्वयं एरिस्टोफेनीज़ ने एक वैज्ञानिक संस्था के विचार की कल्पना की, अथवा किंवदन्ती द्वारा अन्य शहरों में ऐसी संस्थाओं के बारे में ज्ञान के आधार पर उसने एथेन्स में भी ऐसी संस्था की कल्पना कर ली? यदि ऐसा हुआ हो; तो उसका अभिप्राय समझना अत्यन्त कठिन है, और मेरे विचार से हमें यह निष्कर्ष निकालना चाहिये कि उसे अपने श्रोताओं से इस प्रकार की संस्था के बारे में जानकारी की अपेक्षा थी। यदि एरिस्टोफेनीज़ ने स्वेच्छया अथवा बाध्यता के कारण साक्रेटीज़ को किसी अन्य व्यक्ति के साथ गड़बड़ाया (confused), तो वह प्रोटागोरस तथा जॉर्जियस अथवा उनके अनुयायियों जैसे लोगों के साथ नहीं, वरन् एनेक्ज़ागोरस तथा आर्किलॉस जैसे व्यक्तियों के साथ। और यदि आर्किलस ने किसी स्थायी संस्था की स्थापना की, तो निश्चित रूप से साक्रेटीज़ उसका उत्तराधिकारी एवं अध्यक्ष होगा। मुझे तो इस विषय की सर्वाधिक प्रसम्भाव्य (Probable) व्याख्या यही प्रतीत होती है। हम यह देख चुके हैं कि साक्रेटीज़ अनेक वर्षों तक आर्किलॉस का शिष्य रहा।[1]

जेनोफ़न के सम्बन्ध में विचार करते समय सर्वप्रथम हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि जब उसको साक्रेटीज़ के बारे में जानकारी हुई, तब वह बहुत छोटा था, तथा साक्रेटीज वृद्ध हो चुका था, एवं साक्रेटीज़ को मृत्यु-दण्ड मिलने के लगभग तीन वर्ष पहले वह एथेन्स छोड़ चुका था, तथा फिर कभी वहाँ लौटकर नहीं आया। दूसरी बात जो हमें स्मरण रखनी चाहिये, वह यह है कि 'मेमोरेबिलिया' एक नीतिकथा (apologia) है, तथा इसके बारे में निर्णय इस प्रकार की रचनाओं पर प्रयुक्त आलोचना के सिद्धान्तों के आधार

---

१. देखिये, पृष्ठ १०१, टिप्पणी, १.

पर होना चाहिये। इनमें से प्रमुख सिद्धान्त यह है कि उन कथनों को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानना चाहिये जो ग्रन्थ के प्रमुख उपपाद्य से प्रत्यक्षत: सम्बद्ध न हों। जेनोफेन यह सिद्ध करना चाहता था कि साक्रेटीज़ पर अधार्मिकता का आरोप लगाना अन्यायपूर्ण था, तथा उसके सम्भाषण युवकों को दुश्चरित्र बनाने की अपेक्षा उन्हें बहुत श्रेष्ठ बनाते थे। उसकी स्वस्थ धार्मिक प्रवृत्ति के लिए एक प्रमुख तर्क यह है कि उसने प्राकृतिक-विज्ञान के अध्ययन में व्यस्त रहना स्वीकार नहीं किया, तथा दूसरों को भी उसके अध्ययन से अलग करने का प्रयत्न किया। साक्रेटीज़ की एनेक्ज़ागोरस से निराशा तथा अल्पायु में ही भौतिक परिकल्पना से विरक्ति के बारे में प्लेटो जो कहता है वह जेनोफ़न के कथन को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। तथापि जेनोफ़न ऐसा अनुभव करता है कि उसने सीमा का अतिक्रमण कर दिया। वस्तुत: उसने एक कथन – 'तथापि स्वयं वह इन विषयों से अनभिज्ञ नहीं था' – को दुहराकर अपने ही पक्ष को कमजोर कर दिया। इन विषयों की वह एक सूची भी देता है, और यह सूची उस समय के अत्यन्त भली-भाँति विकसित गणित तथा खगोलविज्ञान से पूर्णतया संगत है।[1] पुन:, उसे यह ज्ञात था कि एरिस्टोफेनीज़ 'फ्रोन्टिस्टेरियन' में जिसका उपहास कर रहा था वह यथार्थ था, क्योंकि वह साक्रेटीज़ के मुंह से एन्टिफ़न (Antiphon) नामक सोफ़िस्ट को, जो उसके शिष्यों को साक्रेटीज़ से विमुख करने का प्रयास कर रहा था, सम्बोधित करते हुए कहलाता है कि वह वस्तुत: अपने मित्रों के साथ प्राचीन दार्शनिकों की रचनाओं का अध्ययन करता है। और यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कथन है। वह कहता है, "मैं उनके साथ प्राचीन लोगों को उन सम्पदाओं के अन्वेषण में समय व्यतीत करता हूँ, जिन्हें उन लोगों ने ग्रन्थों के रूप में लिखकर हमारे लिए छोड़ रखे हैं"।[2] इस प्रकार की स्वीकारोक्तियां उन असंस्कृत शब्दों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं जो वैज्ञानिक अध्ययन के बारे में साक्रेटीज़ के मुख से कहलाये गये हैं। उस प्रकार का असंस्कृत भाषण करने वाला कोई भी व्यक्ति थीबीज़ जैसे सुदूर स्थान से केबीज (kebes) तथा सिम्मियस (Simmias) जैसे पाइथेगोरियन्स को भाषण सुनने के लिए आकृष्ट नहीं कर सकता, और जेनोफ़ेन भी यह स्वीकार करता है कि साक्रेटीज के भाषणों ने इन्हें आकृष्ट किया था।[3]

---

१. Mem. iv. ७,३,५.
२. Mem. १,६,१४.
३. Mem iii. ११,१७.

इस प्रकार की और बहुत-सी स्वीकारोक्तियां जेनोफ़ेन में प्राप्त हो सकती हैं, परन्तु मुझे यह स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आता कि 'मेमोरेबिलिया' को किस स्तर तक स्वतन्त्र रूप से प्रामाणिक माना जा सकता है। वस्तुतः इस बात की अधिक सम्भावना है कि जेनोफ़ेन को साक्रेटीज़ के बारे में अधिकांश जानकारी प्लेटो के संवादों से हुई हो। अन्यथा, साक्रेटीज के द्वन्द्वन्याय में प्राक्कल्पना (Hypothesis) के महत्व का उसके द्वारा श्रवण अत्यन्त सार्थक होगा।[1] मैं ऐसी बातों को अपरोक्ष साक्ष्य के रूप में ग्रहण नहीं कर पाता, अत: मैं उनका उपयोग भी नहीं करता। दूसरी ओर, जो लोग 'मेमोरेबिलिया' को ऐतिहासिक ग्रन्थ मानते हैं। वे बहुत-सी ऐसी बातों को स्वीकार करने के लिए बाध्य है जिनकी यह मानकर व्याख्या करना कठिन है कि साक्रेटीज का व्यक्तित्व वैसा ही था जैसा जेनोफ़ेन हमें स्वीकार करवाना चाहता हैं। वस्तुत: जेनोफ़ेन द्वारा साक्रेटीज के लिए दी गयी सफाई अतिशयोक्तिपूर्ण है। यदि वह वैसा रहा होता तो उसे मृत्यु-दण्ड नहीं मिलता।

अतएव मेरी दृष्टि से जो अनिवार्य निष्कर्ष निकलता है वह यह है कि यद्यपि एरिस्टोफ़ेनीज द्वारा उपस्थित साक्रेटीज तथा जेनोफ़ेन द्वारा प्रदर्शित साक्रेटीज को एक ही व्यक्ति मानना सर्वथा असम्भव है, परन्तु हमें यह मानने मे कोई कठिनाई नहीं है कि ये दोनों प्लेटो के द्वारा निरूपित साक्रेटीज के विकृत प्रतिरूप हैं। एरिस्टोफ़ेनीज ने सुखान्तिक प्रभाव डालने के लिए जो विकृति की, वह वैध है, परन्तु जेनोफ़ेन ने नैतिक कारणों से जो विकृति की वह उतनी तर्क संगत नहीं। भ्रम निवारण के लिए मैं कहना चाहूंगा कि प्लेटो के सम्वादों को मैं वास्तविक वार्तालापों का वृत्तान्त नहीं मानता, परन्तु मेरे विचार से यह प्रसम्भाव्य है कि ऐसे वार्तालाप उन संवादों में संनिहित हों। मैं यह पूर्णतया स्वीकार करता हूँ कि प्लेटो का साक्रेटीज वही साक्रेटीज है जैसा कि प्लेटो ने उसे देखा था, तथा उसके प्राणोत्सर्ग के कारण प्लेटो के मन में, उसके प्रति जो धारणा थी वह कुछ हद तक रूपान्तरित हो सकती है। हम यह निश्चित नही कर सकते कि यह रूपान्तरण किस सीमा तक हुआ था, परन्तु मुझे विश्वास है कि इस रूपान्तरण से उसके चित्र में कोई गम्भीर विकृति नहीं आयी। शेक्सपीयर की ही भांति प्लेटो में भी एक विलक्षण प्रतिभा यह थी कि नाटक-रचना के समय वह अपने व्यक्तित्व को नियन्त्रित रखता था। इसीलिए उसका (प्लेटो का) व्यक्तित्व इतना बहुमुखी है, तथा इसी कारण से साक्रेटीज

---

१. Mem. iv ६.१३.

के व्यक्तित्व को प्रायः उस पर अध्यस्त किया गया है। जब हम प्लेटो पर विचार करेंगे, तो इस बात की चर्चा होगी। परन्तु यहाँ पर मैं पाठकों को चेतावनी देना चाहता हूँ कि साक्ष्य के बारे में एक अन्य मत भी है जिसके अनुसार प्लेटो, एरिस्टोफ़ेनीज तथा जेनोफ़ेन तीनों के साक्रेटीज समान रूप से शुद्ध काल्पनिक हैं, अतः साक्रेटीज के बारे में वस्तुतः हम कुछ भी नहीं जानते। इस विषय के एक सर्वाधिक आधुनिक लेखक[1] ने साक्रेटीज के अभियानों की कथा में जरा भी सत्य होने में सन्देह किया है, तथा साक्रेटीज एवं एल्किबियाडीज के बीच किसी भी प्रकार के सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार यह पॉलिक्रेटीज़ नामक सोफ़िस्ट की दुर्भावनापूर्ण कल्पना थी।[2] इसी ने साक्रेटीज़ के विरुद्ध ई०पू० ३९० के पूर्व एक पुस्तिका लिखी थी। प्लेटो ने इस सर्वसुलभ पुस्तिका के खण्डन हेतु निम्नस्तर पर उतरना आवश्यक नहीं समझा। इसके अतिरिक्त, साक्रेटीज़ तथा एल्किबियाडीज़ को एक दूसरे के निकट लाने का विचार उसे जंच गया, अतः उसने इस विचार की पृष्ठ-भूमि में एक रोचक वृत्त लिख डाला। ये सिद्धान्त चाहे जितने भी अतिरंजित प्रतीत हों, ये वस्तुतः उसकी अपेक्षा कहीं अधिक विश्वसनीय हैं कि प्लेटो की रचनाओं में से मनमाने ढंग से चयन कर हम उसे जेनोफ़ेन के सादे कथानक के ऊपर अलंकृत कर दें। मुझे तो ऐसा लगता है कि हमें प्लेटो के साक्रेटीज़ तथा उपरोक्त पूर्ण नास्तिवादी मत के मध्य के विकल्पों में से किसी एक को वरण करना होगा। जेनोफ़ेन के सुकरात को परिरक्षित (preserve) करना वास्तव में असम्भव है, भले ही वह परिरक्षण के योग्य हो। और यदि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रसंगों पर प्लेटो के प्रामाण्य पर हम अविश्वास करें, तो अन्य प्रामाण्यों के

---

१. A. Gercke in Gercke - Norden, Einlteung, vol. ii. p.३६६ क्रमशः

२. यह कथन साक्रेटीज़ के the Bousiris (II. ५), के एक अंश पर आधारित है, जिसका अर्थ यह समझा जाता है कि एल्किबियाडीज को साक्रेटीज का शिष्य मानने वाले कथन का जरा भी आधार नहीं है। जैसा कि मैंने दिखाया है, [पृ. ११२, टि, १]; प्लेटो भी साक्रेटीज के मुख से ठीक यही बात कहलाता है। प्लेटो के संवादों में कहीं भी यह ध्वनित नहीं होता है कि एल्किबियाडीज़ 'शिष्य' था अथवा साक्रेटीज ने उसे 'शिक्षा' दी। यह भी कहा जा सकता है कि यह प्रायः निश्चित है 'प्रोटागोरस' नामक संवाद पॉलिक्रेटीज़ की पुस्तिका से पहले लिखा गया था, तथा इसमें साक्रेटीज़ तथा एल्किबियाडीज़ के सम्बन्ध पूर्वाभिगृहीत हैं।

आधार पर विश्वास करने के लिए कोई भी तर्क देना सम्भव नहीं। वस्तुतः प्लेटो के साक्रेटीज़ की गणना गल्प (Fiction) के महानतम चरित्रों में होगी, परन्तु जिस प्रकार से यह प्राक्कल्पना प्लेटो को सम्मोहन (Mystification) में समर्थ मानती है, उसे यदि कुछ लोग मान लें तब उन्हें प्लेटो के ग्रन्थों को धैर्य से पढ़ने में बहुत कठिनाई होगी।

९

साक्रेटीज़ का दर्शन
(THE PHILOSOPHY OF SOKRATES)
साक्रेटीज़ के सहयोगी
(THE ASSOCIATES OF SOKRATES)

हम यह बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि अन्तिम समय में साक्रेटीज़ की आन्तरिक मित्र–मण्डली में कौन-कौन लोग थे। 'फ़ीडो' (५९ b) नामक संवाद में उन चौहद सहयोगियों की एक सूची दी गयी है, जो साक्रेटीज़ की मृत्यु के समय उपस्थित थे, और इस सूची में एलिस निवासी फ़ेइडन (Phaidon) को भी जोड़ना चाहिये, जो वर्णनकर्त्ता है, तथा जिसने बाद में अपनी एक संस्था का प्रारम्भ किया। इनमें से नौ एथेन्स के निवासी थे। अपोलोड्रस, क्रिटोबुलस तथा उसका पिता क्रिटन, हिप्पोनिकस का पुत्र हर्मोज़िनीज़, एपिजेनीज़, एइश्चिनीज़ एन्टिस्थेनीज़, पेइयानियाँ निवासी टेसिप्पस, तथा मेनेक्जेनीज़, जेनोफ़न भी साक्रेटीज़ के सच्चे अनुयायियों की एक सूची देता है (Mem. १, २,४८)। इस सूची में केरिफ़न का नाम सन्निविष्ट है, परन्तु प्लेटो की सूची में यह नाम इसलिए नहीं उपलब्ध है क्योंकि 'एपॉलाजी' में उल्लेख है कि उसके थोड़े समय पूर्व ही उसका देहान्त हो चुका था। इसमें क्रिटन तथा क्रिटोबुलस का भी उल्लेख है, परन्तु अन्य एथेन्सवासियों का नहीं। अपोलोड्रस तथा एपिजेनीज़ के नाम 'मेमोरेबिलिया' के दूसरे भागों में आते हैं, तथा जेनोफ़न यह स्वीकारोक्ति करता है कि साक्रेटीज़ के मुकदमे के बारे में उसे जानकारी हर्मोजेनीज़ से प्राप्त हुई।

सूची के बारे में सर्वाधिक उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें कुछ ऐसे विदेशियों के भी नाम संग्रहीत हैं जो इटली की दार्शनिक शाखाओं के सदस्य हैं, तथा उनके बारे में यह कहा गया है कि उनके एथेन्स आने का एकमात्र उद्देश्य

था कि साक्रेटीज़ को उसकी मृत्यु के पूर्व वे देख सकें। सिम्मियस, केबीज़ तथा फेइउन्डस नाम के तीनों थीवन्स (Thebans) पाइथागोरसवादी थे, तथा निर्वासित फाइलोलास के शिष्य थे। 'क्रीटो' नामक संवाद (४५ b) से हमें ज्ञात होता है कि सिम्मियस अपने साथ पर्याप्त मुद्राएं इसलिए लाया था ताकि साक्रेटीज़ को बच निकलने में सहायता मिल सके। जेनोफेन भी सच्चे साक्रेटीज-वादियों की सूची में इन तीनों का नाम समाविष्ट करता है, तथा एक अन्य स्थल (iii. II. १७) पर वह हमें बताता है कि साक्रेटीज ने इन्हें थीवीज से आकृष्ट किया था, तथा इन तीनों ने कभी भी उसका साथ नहीं छोड़ा। 'फ़ीडो' (५८ d) में फ्लेइअस (Phleious) के पाइथागोरसवादी भी समान रूप से परम भक्त के रूप में दर्शाये गये हैं। एचीक्रेटीज (Echekrates) कहता है कि अपने अतिथि फ़ेइडन (Phaidon) के समान वे सब साक्रेटीज को स्नेह करते हैं तथा उसके सम्बन्ध में कुछ कहना और सुनना सर्वाधिक पसन्द करते हैं। यूक्लीडीज (Eukleides) तथा टेर्प्सन (Terpsion) भी उसी भाँति उल्लेखनीय है। वे इलियाटिक्स थे, तथा मेगारा में रहते थे। सिसरो द्वारा सुरक्षित शैक्षणिक परम्परा के कारण यूक्लीडीज पार्मेनीडीज तथा जीनो का उत्तराधिकारी बन पाया, तथा कहा जाता है कि उसने पार्मेनीडीज के सिद्धान्तों का 'संचालन' भी किया। मेगारा के इलियाटिक्स तथा साक्रेटीज के बीच निकट सम्बन्ध को पुनः 'थीटिट्स' (Theaetetus) में दिखाया गया है, जहाँ (१४३ a) यह कहा गया है कि यूक्लीडीज ने साक्रेटीज के सम्भाषणों को सुनकर शब्दबद्ध भी किया, तथा अपने आचार्य की मृत्यु के बाद प्लेटो सहित साक्रेटीज के कुछ अनुयायी इसी की शरण में आगये। इन लोगों के अतिरिक्त किरीन (Kyrene) वासी एरिस्टिपस तथा क्लीओम्ब्रोटस के भी आने की सम्भावना थी, परन्तु वे दोनों समय से न आ सके। यह स्पष्ट है कि साक्रेटीज के दण्ड ने यवन प्रदेश (Hellas) के सभी दार्शनिक सम्प्रदायों को गम्भीर रूप से विक्षुब्ध कर दिया था?

प्लेटो निस्सन्देह यह सिद्ध करता है कि पाइथागोरियन्स भी साक्रेटीज के दर्शन को मानते थे, तथा वे उसे इस दर्शन के एक अत्यन्त प्रामाणिक व्याख्याता के रूप में देखते थे। साक्रेटीज भी उन्हें कुछ ऐसे प्राचीन सिद्धान्तों का उपदेश देता है जिन्हें समकालीन पाइथागोरियन्स ने छोड़ दिया था, तथा साक्रेटीज ही थीबीज तथा फ्लेइअस दोनों स्थानों पर मान्य उस सिद्धान्त का खण्डन करता है जिसके अनुसार आत्मा शरीर का ही एक स्वर है। इलियाटिक यूक्ली-

डीज ने न केवल साक्रेटीज के व्याख्यानों को ही शब्दबद्ध किया, वरन् जब साक्रेटीज एथेन्स आया, तब उससे इन लेखों की शुद्धता को सम्पुष्ट भी कराया। वस्तुत: प्लेटो के अनुसार ये सभी लोग साक्रेटीज को अपने गुरु के रूप में मानते थे, तथा यह मानना सम्भव नहीं कि प्लेटो ने उनके विचारों को गलत रूप से प्रस्तुत किया हो, क्योंकि उसके समय में उनमें से अधिकांश जीवित थे, तथा उससे उनका निकट रूप से अन्तराविषयिक संव्यवहार होता था। ऐसा संकेत मिलता है कि फाइलोलास के इटली चले जाने पर साक्रेटीज, जितने भी पाइथागोरियन्स वहाँ बच गये थे, उन सबका नेता बन गया, एक स्थल (६१ d) पर वह आश्चर्य प्रकट करता हुआ दिखाया गया है कि सिम्मियस तथा केबीज को फाइलोलास ने उपदेश नहीं दिया, तथा फ्लेइअस निवासी एचीक्रेटीज को ज्योंही साक्रेटीज यह बताता है कि वह आत्मा को शरीर का स्वर नहीं मानता, त्योंही उसका विश्वास हिल उठता है (८८ d)। वह ज्योंही साक्रेटीज के मुख्य सिद्धान्त को सुनता है त्योंही उसे स्वीकार कर लेता है (१०२ a)।

एरिस्टोजेनस (Aristoxenos) के बारे में हमें जो कुछ ज्ञात है उससे प्लेटो का विवरण पुष्ट होता है। हमें ज्ञात है कि वह (एरिस्टोजेनस) फ्लेइअस के पाइथागोरियन्स की अन्तिम पीढ़ी से परिचित था, तथा एरिस्टॉटल का अनुयायी बनने के उपरान्त भी वह फाइलोलास के इस सिद्धान्त को मानता रहा कि आत्मा एक ध्वनि है। हम यह भी देख चुके हैं (अव० ७०) कि उसने तथा उसके मित्र डिकाइआर्कस ने मिलकर एक महत्त्वपूर्ण स्थापना यह की थी बहुधा पाइथागोरस के बारे में कहा जाता है कि वह वैरागियों के समान संयम तथा शुद्धि की क्रियाओं का अभ्यास करता था, जो सर्वथा असत्य है। साक्रेटीज तथा प्लेटो के बारे में अधिकांश अपयशपूर्ण गप्पों का कारण एरिस्टोजेनस ही है। वह टेरास (Taras) से आया था, तथा डिकाइआर्कस मेसेनी (Messene) से, तथा एरिस्टोजेनस कहता है कि साक्रेटीज के बारे में उसे जानकारी उसके पिता स्प्रिन्थेरस (Sprintharos) से मिली थी, जो उसे व्यक्तिगत रूप से जानता था। साक्रेटीज के चरित्र को कलुषित करने के लिए टेरेन्टाइन (टेरास-निवासी) क्यों इतना तत्पर होगा? अनुमानित उत्तर यह है कि फाइलोलास के मित्रगण साक्रेटीज से इसलिए असंतुष्ट थे क्योंकि उसने उनके द्वारा मान्य आत्मा की प्रकृति के सिद्धान्त को भ्रष्ट किया था, पाइथागोरसवाद के रहस्यवादी पक्ष को, जिससे वे अपने को सदा के लिए मुक्त समझ बैठे थे (अव० ७०,७५), उसने पुनर्जीवित कर दिया था। चाहे जो भी कारण रहा हो, यह तो सत्य है

कि वे लोग आत्मा के उसी सिद्धान्त पर विशेष बल देते थे जिसे प्लेटो ने साक्रेटीज द्वारा खण्डन करते हुए दिखाया है। उन लोगों की दृष्टि से साक्रेटीज केवल एक दूसरा हिप्पासस (Hippasos) होगा।

आकार (THE FORMS)[1]

'फ़ीडो' में यह दिखाया गया है कि साक्रेटीज तथा पाइथेगोरियन्स बुद्धिगम्य आकारों (intelligible forms) के सिद्धान्त को समान रूप से ग्रहण करते हैं, तथा हम उन आधारों को भी देख चुके हैं जिनके कारण यह विश्वास होता है कि इस सिद्धान्त की उत्पत्ति पाइथेगोरियन स्रोत से हुई है (अव० ३२)। पुनः, यह बताया गया है कि साक्रेटीज ने इस मत के लिए एक महत्त्वपूर्ण मौलिक योगदान किया था, जिसके कारण यह मत वस्तुतः पूर्ण तथा रूपान्तरित हो गया। आधुनिक लेखक इसे बहुधा कल्पना मानते हैं, तथा आकारों के सिद्धान्त को 'प्रत्ययवाद का सिद्धान्त' (the Ideal theory) अथवा प्रत्ययवाद (the theory of Ideas) नाम से प्लेटो पर अध्यारोपित करते हैं, इस अध्यारोपण का मुख्य आधार यह है कि यह सिद्धान्त साक्रेटीज से अत्यन्त घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित संवादों में उपलब्ध नहीं है। प्रायः यह कहा जाता है कि 'फ़ीडो' नामक संवाद में इसका सर्वप्रथम दर्शन होता है। परन्तु यह तो चक्रक तर्क है, क्योंकि कुछ संवादों को विशेष रूप से साक्रेटीज से सम्बद्ध केवल इसीलिए माना जाता है। क्योंकि उनमें यह सिद्धान्त अनुपलब्ध समझा जाता है। इस विचार का कोई भी तर्क-संगत आधार नहीं है कि साक्रेटीज अपने सभी वार्तालापों में इसे बलात् समाविष्ट करेगा। वस्तुतः उसने यदि इस सिद्धान्त को इन लोगों के समक्ष उपस्थित किया होता, जो लोग इसे समझ न पाते, तो उसके लिए यह असंगत होता। अतः अधिकांश संवादों में यदि वह इस विषय पर मौन है, और विशेष रूप ऐसी दशा में जबकि उसका मौन भंग हो जाता, तो उससे कुछ भी अनुमान नहीं लगता। तर्क में एक विचित्र गौण अधिचक्र (epicycle) के द्वारा हमें यह चेतावनी मिलती है कि जब साक्रेटीज से सम्बन्धित किसी प्रमुख संवाद में इस सिद्धान्त का उल्लेख मिलता है तब उन शब्दों से हमें वह अर्थ नहीं ग्रहण करना चाहिये जो उन शब्दों को बाद में प्राप्त हुआ। इनके अर्थों में अत्यन्त स्वेच्छा-

---

१. मैंने जानबूझकर 'विज्ञान' (idea) शब्द को प्रयुक्त नहीं किया है। इस शब्द से अनिवार्यतः यह ध्वनित होता है कि रूप (ideal) सम्प्रत्यय (concepts) हैं, चाहे वे हमारे अपने सम्प्रत्यय हों, या ईश्वर के, और इसके कारण इस सिद्धान्त की ठीक व्याख्या असम्भव है।

चारिता पायी जाती है।[1] यहाँ पर यह कहना अधिक समीचीन होगा कि आकारों का सिद्धान्त जिस अर्थ में 'फ़ीडो' तथा 'रिपब्लिक' में मान्य है, उस अर्थ में उन संवादों में पूर्णतया अनुपलब्ध है, जिन्हें हम अत्यन्त स्पष्ट रूप से से प्लेटो के विचारों का प्रतिपादक मानते हैं, यथा, जिनमें साक्रेटीज़ प्रमुख वक्ता नहीं रह गया है। उस अर्थ में केवल एक अपवाद (टिमियस, ५१ c) में, जहाँ कि वक्ता एक पाइथागोरियन है, के अतिरिक्त इस सिद्धान्त का' पार्मेनीडीज नामक संवाद (जहाँ पर इसका खण्डन हुआ है) के बाद भी किसी संवाद में उल्लेख तक नहीं हुआ है दूसरी ओर, प्लेटो जिस ढंग से इस सिद्धान्त को साक्रेटीज का मत बताता है, उससे अधिक स्पष्ट कुछ सम्भव नहीं है। फ़ीडो (१०० ब) में बताया गया है कि इस मत में 'कोई नवीनता नहीं' हैं, इसके बारे में साक्रेटीज प्रायः बातें करता ही रहता था। पार्मेनीडीज नामक संवाद (१३० b) में इलियाटिक मत का प्रवर्तक साक्रेटीज़ से पूछता है कि क्या वह इस सिद्धान्त को स्वयं अपना मानता है, और उत्तर स्वीकारात्मक है। इस घटना को प्लेटो के जन्म से कम से कम बीस वर्ष पूर्व का माना जाता है। पुनः 'फ़ीडो' (७६ b) में सिम्मयस का कथन है कि अब साक्रेटीज़ की मृत्यु के उपरान्त उसे सन्देह होता है कि कल कोई भी व्यक्ति ऐसा मिल सकेगा जो आकारों की पर्याप्त व्याख्या करने में समर्थ होगा। यदि यह सब कल्पित है, तो कम से कम सुविचारित है, और पहले की भाँति ही[2] मैं पुनः पूछना चाहूँगा कि कोई भी दार्शनिक यदि यह माने कि कोई विचार उसके मस्तिष्क में आने से कुछ वर्षों पूर्व ही उसके अनेक गणमान्य समकालीन चिन्तकों के पूर्ण रूप

---

१. उदाहरणार्थ, 'यूथिफ्रो में साक्रेटीज़ आग्रह करता है कि धार्मिकता (piety) को सभी प्रसंगों में एक रूप होना चाहिये (५ d), तथा देवताओं की इन सभी कथाओं की सत्यता के बारे में पूछता है (६ c) इसका उल्लेख वह उदाहरण (haradigm) के रूप में भी करता है (६ c) 'क्रेटिलस' (३८ e b) नामक वसंाद में हमें अत्यन्त परिभाषिक शब्द' निर्माणाधीन तुरी (shuttle) का प्रयोग मिलता है। मैं प्रोफेसर शोरी (Shorey, Unity of Plato's thought, Chicago, १९०३) से इस मान्यता में पूर्णतः सहमत हूँ कि प्लेटो के संवादों में 'रिपब्लिक' तक किसी प्रकार के विचार-भेद अथवा विकास को ढूंढना निरर्थक है। परन्तु जैसा कि स्पष्ट होगा, इसके अतिरिक्त मेरी उनसे सहमति नहीं है।

२. Early Greek Phil. p. ३५५

से ज्ञात रहा है, तो क्या वह कभी भी किसी नये मत की स्थापना कर सकता है ?

जिस मत को 'फ़ीडो के प्रथम भाग में न केवल सिम्मियस तथा केबीज ने, वरन् फ्लेइअस पर एचीक्रेटीज ने भी, जिन्हें वह वार्तालाप निवेदित किया गया है, मान लिया है वह निम्नलिखित है। विचार-जगत् की वस्तुओं में तथा इन्द्रिय-जगत् की वस्तुओं में स्पष्ट पार्थक्य है। अस्तित्व (being) केवल विचार-जगत् की वस्तुओं का ही है, इन्द्रियानुभव की वस्तुएं केवल सम्भव न (becoming) हैं। यह स्पष्ट कर दिया गया है कि इस मत की उत्पत्ति गणित के अध्ययन में ढूंढनी चाहिए, तथा अस्तित्व (being) एवं सम्भवन (becoming) के वीच भेद की व्याख्या तदनुसार करनी चाहिये। 'समान' से हमारा क्या तात्पर्य है यह हम जानते हैं, परन्तु हमने समान छड़ियां अथवा पत्थर कभी नहीं देखे हैं। जिन संवेद्य वस्तुओं को हम समान कहते हैं, वे सभी समान बनने की ओर 'प्रवृत्त' है, अथवा 'प्रयास' कर रही हैं, परन्तु बन नहीं पाती। तथापि वे इस दिशा में प्रयत्नशील हैं, और इसी कारण से उन्हें सम्भवन कहा जाता है। संवेद्य समानता मानो 'निर्माणाधीन' समानता है, परन्तु यह वास्तविक समानता के चाहे जितना भी निकट पहुंच जाय, यह उसे कदापि प्राप्त नहीं कर सकती। जीनो द्वारा उठायी गयी कठिनाइयों का इससे सम्बन्ध सुस्पष्ट है। अनिश्चित नैकट्य की समस्या उस युग की एक ऐसी समस्या थी जो कभी भी समाधान नहीं प्राप्त कर सकी।[1]

जैसा कि हम देख चुके हैं, इस मत का गणितीय पक्ष मूलतः पाइथागोरियन है। जब गणितीय रूपों के समान ही नैतिक तथा सौम्दर्यात्मक आकारों का भी इस मत में क्रमबद्ध ढंग से समावेश होने लगता है तब यह मत पाइथागोरियन मत से भिन्न हो जाता है। जैसे हमने कभी भी 'मात्र समान' (Just equal) वस्तु नहीं देखी, उसी प्रकार हमने 'मात्र सुन्दर' अथवा 'मात्र शुभ' भी नहीं देखे है। इसका आशय आकारों के उस पक्ष पर बल देना है जिसमें वे प्रतिमान, अथवा दृष्टान्त, ऊपरी सीमा माने जाते हैं, तथा अनुभव जगत् की बहुरूपात्मक तथा अपूर्ण वस्तुएं यथासम्भव जिससे समान होना चाहती है। यह कहना कुछ विचित्र-सा लगेगा कि एक समद्विबाहु समकोणीय त्रिभुज यदि सम्भव हो तो त्रिकोणीय संख्या बन जायेगा, परन्तु जब हम नैतिक तथा सौन्दर्यात्मक आकारों

---

१. भाव तथा सम्भवन के सम्बन्ध की व्याख्या हम किसी भी संख्या के दशमलव स्थानों के साथ के मान द्वारा कर सकते हैं।

का समावेश कराते हैं तो इस प्रकार की कथन–शैली सर्वथा स्वाभाविक हो जाती है। इस मत के विकास में साक्रेटीज की आचार-शास्त्रीय विषयों से सम्बद्ध प्रवृत्ति को एरिस्टॉटल जब इतना महत्त्व देता है तब उसका यही अभिप्राय प्रतीत होता है। वह बताता है कि पाइथागोरसवादियों ने अवसर, न्याय, विवाह जैसी कुछ ही बातों का संख्यात्मक निर्धारण किया था, तथा वे ऊपरी सादृश्यों द्वारा प्रभावित हुए हैं।[1] गणित के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में सामान्य (universal) की व्यवस्थित खोज का सुझाव साक्रेटीज ने दिया था।[2] पुनश्च, हम यह देखेंगे कि 'फ़ीडो' में आकारों को संख्याओं से सम्बद्ध करने का कोई भी प्रयास नहीं किया गया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जिन व्यक्तियों के बारे में एरिस्टटॉल उल्लेख करता है कि वे 'प्रथम लोग थे जिन्होंने कहा कि आकारों का अस्तित्व है, तथा इसी आधार पर वह उन्हें प्लेटो से पृथक् करता है,[3] वे वही लोग हैं जो 'फ़ीडों' में अपने को 'हम' (we) शब्द से सम्बोधित करते हैं। परन्तु मैं उसे बाह्य साक्ष्य के रूप में उद्धृत नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि मेरे विचार से हमें यह मानने के लिए पर्याप्त आधार मिलेगा कि साक्रेटीज के बारे में जो कुछ भी एरिस्टॉटल बताता है, वह सब प्लेटो के संवादों, और मुख्यता 'फ़ीडो' से ही लिया गया है।[4]

साक्रेटीज ने 'फ़ीडो' में आकारों के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के लिए जिस क्रम का उल्लेख किया है उसका सम्भवतः सम्यक् मूल्यांकन इसलिए नहीं

---

१. Met. M ३, १०७८ b, २१; A. ५. ९८७ a, २२.
२. Met. A. ६, ९८७ b, I.
३. Met. M. ४, १०७८ b. II.
४. यह स्मरण रखना होगा कि एरिस्टॉटल अठारह वर्ष की आयु में पहली बार जब एथेन्स आया तब लगभग तीस वर्षों पूर्व ही साक्रेटीज की मृत्यु हो चुकी थी। अतः उसके संक्षिप्त तथा अत्यन्त अस्पष्ट कथनों की, यदि सम्भव हो तो, दूसरे साक्ष्यों के प्रकाश से व्याख्या होनी चाहिए। इनके खण्डन हेतु उनका उपयोग करना मुझे पद्धति की दृष्टि से सुदृढ़ नहीं प्रतीत होता। यह तो किसी अपरोक्ष प्रामाण्य का अपमान करने के लिए जनश्रुति तथा अनुमान का प्रयोग करने जैसा हुआ। ऐतिहासिक तथा न्यायिक जाँचों में साक्ष्य के लिए कुछ अपने व्यक्तिगत ढंग से देखने की प्रणाली को हम स्वीकार कर लें, तो मेरा विश्वास है कि उसके कथनों की ऐसी व्याख्या हो सकती है, जिससे तथ्यों को कोई हानि न पहुँचे। परन्तु यदि ऐसा नहीं कर सकते, तो समस्या एरिस्टॉटल के व्याख्याकार की है, न कि साक्रेटीज के व्याख्याकार की।

हो पाया क्योंकि उसे अनुस्मरण (Reminiscence) के सिद्धान्त की रहस्यात्मक भाषा में व्यक्त किया गया है, जिसके बारे में 'मीनों' (८६, b, ६) में सचेत कर दिया गया है कि इसे शब्दशः नहीं ग्रहण करना चाहिये। वास्तव में प्रश्न यह है कि हमें कैसे वह प्रतिमान प्राप्त होता है जिसके आधार पर संवेद्य वस्तुओं को हम अपूर्ण घोषित करने में समर्थ होते हैं यह निश्चित है कि प्रारम्भ से ही ऐसा कोई प्रतिमान हमारे पास नहीं रहता; संवेद्य वस्तुओं के अनुभव के कारण ही हमारे अन्दर इस प्रकार के प्रतिमान का अवबोध (apprehension) होता है, दूसरी ओर, प्रतिमान का हमारा अवबोध उत्पन्न होता है तब संवेद्य वस्तुओं के द्वारा नहीं उत्पन्न होता, क्योंकि यह किसी एक अथवा समस्त वस्तुओं की सीमा के बाहर की बात है। जब हमें किसी वस्तु का बोध होता है, तथा इस अवबोध से तत्काल एक दूसरी वस्तु का विचार उत्पन्न होता है, जो पहली वस्तु के समान अथवा उससे भिन्न है, तो इसे हम 'स्मरण' अथवा एक वस्तु द्वारा दूसरी वस्तु को मन में जाग्रत करना कहते हैं (७३ c) जिन छड़ियों तथा पत्थरों को हम समान कहते हैं, वे समान के सदृश हैं, तथा जिन्हें हम असमान कहते हैं वे उसके सदृश नहीं है, परन्तु सादृश्य तथा भिन्नता दोनों ही 'शुद्ध समान' (Just equal) के विचार को जन्म देते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि चूंकि हमारे मन में इसकी उत्पत्ति इसके सदृश तथा इससे भिन्न दोनों प्रकार की वस्तुओं से होती है, अतः 'समान' का हमारा ज्ञान अनुभव से सर्वथा स्वतन्त्र होना चाहिये। 'मात्र सुन्दर' तथा 'मात्र शुभ' के बारे में भी यही बातें कही जा सकती हैं।

इसे एरिस्टॉटल अपने ढंग से व्यक्त करते हुए कहता है कि सर्वव्यापक परिभाषाएं (univercal definitions) तथा आगमनात्मक तर्क (inductive reasening) दोनों के लिए साक्रेटीज को श्रेय देना उचित है। 'प्राक् विश्लेषणिका (prior Analytics, ६७ a, २१) में वह 'मीनों' के 'सीखना अनुस्मरण है' (learning) के सिद्धान्त को किसी विशेष प्रसंग में सामान्य के प्रत्यभिज्ञान से निःसन्देह सम्बद्ध करता है। वह कहता है, 'किसी भी दशा में हम यह नहीं पाते कि विशेषों (particulars) का हमें पूर्व ज्ञान है, वरन् विशेषों का ज्ञान हमें आगमन के क्रम में मानो उनके प्रत्यभिज्ञान द्वारा होता है।' अतः एरिस्टॉटल के इस कथन में कोई भी सन्देह नहीं है कि आगमनात्मक तर्क के सूत्रपात का श्रेय साक्रेटीज को मिलना चाहिये, तथा ठीक यही क्रम 'फ़ीडो' में वर्णित है। उसका यह कथन भी सही है कि इस पद्धति से जिस सामान्य या सार्वभौम को हम प्राप्त करते हैं वह 'किमेदम्' (the what is it?) है, क्योंकि

आकारों में जिस प्रकार की सत्ता निहित है उसका 'फ़ीडो' (७८ d) में वर्णन करते हुए साक्रेटीज़ कहता है कि 'हमारे प्रश्नोत्तरों में जिस प्रकार की सत्ता का स्वरूप मिलता है, वह वैसी ही है, अर्थात्, द्वन्द्वन्याय प्रणाली में उद्घाटित सत्ता जैसी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यहाँ पर किसी वर्ग (class) के सामान्य गुणों (attributes) के अमूर्तीकरण के उपरान्त एक वर्ग सम्प्रत्यय (class-concept) की स्थापना नहीं हो रही है वह एरिस्टॉटल के शब्दों की आधुनिक टीका है, तथा उसने 'मीनो' का जो सन्दर्भ दिया है उससे स्पष्ट होता है कि वह अनुस्मरण-सिद्धान्त के वास्तविक तात्पर्य से परिचित था, अतः इस अनुमान के लिए कोई आधार नहीं है कि इस विषय में एरिस्टॉटल जो कुछ कहता है उसका स्रोत प्लेटो के संवादों के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र है. इसमें सन्देह नहीं कि उसने इस तथ्य को अपने ढंग से व्यक्त किया है, तथा यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि इससे साक्रेटीज़ के सिद्धान्त के साथ पूर्ण न्याय होता है या नहीं, परन्तु यह एक भिन्न प्रसंग है, इसकी अभिव्यक्ति यदि उसे अपनी शब्दावली में करनी थी, तो उसे इससे भिन्न कुछ कहना कठिन था, तथा अंततोगत्वा स्वयं उसका आगमन सम्बन्धी मत कुछ पाठ्य-ग्रन्थों में दिये गये इसके हास्यजनक रूप की अपेक्षा अनुस्मरण के सिद्धान्त के अधिक अनुरूप है। यहाँ पर यह कह देना भी आवश्यक है कि जब एरिस्टॉटल यह कहता है कि कुछ बातों के लिए साक्रेटीज को 'समुचित' (fairly) ढंग से श्रेय दिया जा सकता है, तब वह यह सोच रहा है, जैसा कि वह प्रायः करता है, कि उसके दर्शन के निर्माण में पूर्व के दार्शनिकों ने कुछ योगदान दिया है, तथा इस प्रसंग में वह साक्रेटीज की पाइथागोरियन्स से भिन्नता का विवेचन कर रहा है। यहाँ पर वह 'ऐतिहासिक' तथा 'प्लेटो के' साक्रेटीज के बीच किसी प्रकार के भेद के बारे में नहीं सोच रहा है, तथा उसने कभी भी इस प्रकार का भेद किया हो, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

आकारों का अवरोध हम तर्कना (reasoning) के माध्यम से आत्मा द्वारा प्राप्त करते हैं, तथा विशेषों का अववोध हमें संवेदन के माध्यम से शरीर द्वारा होता है। वस्तुतः शरीर तथा इसकी इन्द्रियाँ सही प्रज्ञान प्राप्त करने में केवल व्यवधान ही उपस्थित करती हैं, तथा इनसे हम अपने को जितना ही स्वतन्त्र रख सकें, उतना ही हम सत तथा सत्य ज्ञान को शीघ्रता से प्राप्त कर सकते हैं। हम देख चुके हैं कि संवेद्य वस्तुओं में सत्ता नहीं होती, उनमें केवल सम्भवन अथवा परिणाम होता है, तथा वे ऐसे शाश्वत तथा अविकार्य (immutable) प्रतिमानों अथवा प्रतिरूपों (patterns) की प्रतिभाएँ (images)

अभ्युपगमित करने के लिए हम विवश हैं। ज्ञान केवल इन्हीं का सम्भव है, संवेद्य वस्तुओं का हमारा अवबोध तो मात्र 'कल्पना'[1] है अथवा जिसे हम विश्वास (belief) भी कह सकते हैं। यदि हमें सत्य ज्ञान हो, तो यथासम्भव इस जीवन में हमें शरीर से अपने को मुक्त करना चाहिये; क्योंकि शरीर से पृथक् होने के बाद ही आत्मा शुद्ध ज्ञान प्राप्त कर सकती है। तथापि इस जीवन में भी प्रतिदिन मृत्यु के अभ्यास द्वारा शरीर को इस प्रकार चैतन्य-शून्य कर सकते हैं कि थोड़े समय के लिए शाश्वत सत्ताओं का दर्शन प्राप्त कर सकते हैं, तथा इस प्रकार 'शरीर के बाहर' होकर अमृतत्व की प्रागनुभूति कर सकते हैं। 'फ़ीडो' के प्रथम भाग की यही शिक्षा है, तथा इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह इन्द्रिय-जगत् को विचार-जगत् से प्रायः पूर्णतया पृथक् करने की ओर इंगित करता है।

परन्तु, जैसी कि प्लेटो के संवादों की विशेषता है, एक नाटकीय चमत्कार द्वारा हमें आध्यात्मिक उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर पहुँचाने के बाद एक बार पुनः धरातल पर उतार दिया जाता है, और तब हम यह अनुभव करते हैं कि यह सिद्धान्त चाहे जितना भी सुन्दर एवं ज्ञानवर्धक हो, इससे हम वस्तुतः सन्तुष्ट नहीं हो सकते। किसी तर्क के विभिन्न अनुभागों के पहले आने वाले विषयान्तरों की लम्बाई तथा विस्तार की चर्चा कर उन अनुभागों के महत्त्व-प्रदर्शन का प्लेटो का यह अपना ढंग है। वर्तमान प्रसंग में वह अपने कौशल के प्रत्येक स्रोतों का प्रयोग कर हमारे अन्दर यह भावना उत्पन्न करना चाहता है कि हम किसी मौलिक सत्य के निकट पहुँच रहे हैं। सर्वप्रथम, एक दीर्घ तथा लाक्षणिक मौन (८४ c) मिलता है, जो बाद में सिम्मियस तथा केबोज़ के मध्य मरमर वार्तालाप से भंग होता है। साक्रेटीज़ अनुभव करता है कि वे दोनों संशय रहित नहीं हो पाये हैं, अतः उनसे अपनी समस्याएं बताने के लिए आग्रह करता है। क्योंकि वह स्वीकार करता है कि यदि इस सिद्धान्त का गम्भीरता से विवेचन किया जाय, तो इसमें अनेक आपत्तियाँ निहित दिखलाई पड़ती हैं। है इसके उपरान्त (८४ e) वह ओजस्वी अंश आता है जिसमें वह अपनी तुलना मरते हुए हँस से करता है जो उनके उभयनिष्ट स्वामी अपोलो का प्रशस्ति-गान करता है। अपोलो डेल्फोइ (Delphoi) तथा डेलास का अधिष्ठा-

---

१. Rep. ५३४ a : यहाँ पर शब्दों का एक अनुवादातीत खेल है, क्योंकि 'कल्पना' (eikases, imagination) का मूल अर्थ है 'वितर्क' (guess-work), परन्तु इससे प्रतिमाओं का अवबोधन भी ध्वनित होता है।

देव है, तथा स्वयं साक्रेटीज़ के जीवन में उसकी अत्यन्त रहस्यपूर्ण भूमिका रही है और वह पाइयागोरियन्स का भी सर्वप्रमुख देवता था। सिम्मियस उत्तर देता है (८५ c) कि साक्रेटीज भी उसके समान ही यह अनुभव करता है कि ऐसे विषयों पर निश्चयात्मक ज्ञान असम्भव है, परन्तु हमें सभी मतों की परीक्षा करनी चाहिये, और यदि कोई दिव्य सिद्धान्त न मिल सके, तो मानवीय सिद्धान्तों में से ही जो सर्वोत्तम प्रतीत हो, उसी का अधिकतम उपयोग करना चाहिये। जिस सिद्धान्त के बारे में वह विशेष कठिनाई अनुभव करता है। और जिसके महान् ऐतिहासिक महत्त्व को हम देख चुके हैं, वह यह है कि आत्मा शरीर का स्वर (attunement) है, अतः अमृत नहीं हो सकती (८५ c)। केबीज का एक भिन्न मत है, जिसके बारे में अन्यत्र कोई उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु उसकी उत्पत्ति हेराक्लिटियन प्रतीत होती है। वह मत यह है कि आत्मा शरीर का व्यवस्थापक तत्त्व है, जो शरीर को एक वस्त्र की भाँति बुनता है। शरीर सदा जीर्ण होता रहता है, तथा पुनः नये ढंग से बुना जाता है, अतः यह निश्चित प्रतीत होता है कि आत्मा अनेकों शरीर धारण करती है (तुलना कीजिये, गीता, ११,२२ अनु०)। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि इनमें से कोई शरीर अन्तिम नहीं होगा, तथा आत्मा का इससे पूर्व नाश नहीं होगा (८८ b)। कहा गया है (८८ c) कि इन शब्दों का मन्तव्य मण्डली में एक घोर विरक्ति की भावना उत्पन्न करना था। चूंकि इस सिद्धान्त का शीघ्र खण्डन हो गया, अतः उन लोगों को ऐसा अनुभव हुआ कि अब पुनः वे किसी भी सिद्धान्त पर विश्वास नहीं कर सकते। प्रसंग में व्यवधान भी आता है, और हमें पुनः फ्लेइअस पहुंचाया जाता है, जहाँ एचीक्रेटीज कहता है कि वही प्रभाव उस पर भी पड़ा। इसके पश्चात साक्रेटीज 'द्वेष विद्या (misology) अथवा सिद्धान्तों के प्रति घृणा के बारे में चेतावनी देता है। यह जन-द्वेष (misanthropy) के समान है, जो मनुष्यों से व्यवहार करने की कला के अज्ञान से उत्पन्न होता है। जिस प्रकार लोकविद् व्यक्ति यह जानता है कि अत्यन्त सज्जन तथा अत्यन्त दुष्ट दोनों ही प्रकार के लोग दुर्लभ हैं, उसी प्रकार से जो व्यक्ति मतों का विवेचन करने की कला में निपुण है, वह दार्शनिक सिद्धान्तों से बहुत अधिक अपेक्षा नहीं करेगा, परन्तु वह कभी निराश भी नहीं होगा (८९ d sq.) इन सब विषयान्तरों का अभिप्राय हमारे ऊपर यह प्रभाव डालता है कि इस संवाद के प्रथम भाग में रूपों के सिद्धान्त की जो व्याख्या हुई वह किंचिद् अपर्याप्त है, तथा हम इसके लिए तैयार हैं कि बाद

में इसका पर्याप्त रूपान्तरण होगा। हमें यह भी समझाने का प्रयास किया गया है कि आत्मा सम्बन्धी परवर्ती पाइथागोरियन दृष्टिकोण स्वस्थ सिद्धान्त-रचना के मार्ग में गम्भीर व्यवधान उपस्थित करता है।

यह मत बिना किसी विशेष कठिनाई के मुख्यतया इस विमर्श के द्वारा खण्डित हो जाता है कि यदि आत्मा एक स्वर है, तथा शुभत्व एक अन्य स्वर (attunement) है, तब हमें स्वर का भी एक स्वर मानना होगा, ताकि एक स्वर दूसरे स्वर की अपेक्षा अधिक लय-युक्त होगा। परन्तु केबीज का मत अपेक्षाकृत एक बहुत मौलिक प्रश्न उपस्थित करता है। और वह प्रश्न है उत्पत्ति एवं विनाश के कारण का यह कहना कि सम्भवन या परिणाम सत्ता की प्रतिमा अथवा सादृश्य है, कुछ भी स्पष्ट नहीं करता है। यह तो वस्तुतः इस कथन के समान है कि अनुभव का एक जगत् है, जो निरर्थक आडम्बर है, तथा इसका सत् से कोई भी बुद्धिगम्य सम्बन्ध नहीं है। जब तक हम आभास और सत् के पृथकत्व को किसी न किसी प्रकार समाप्त न कर पावेंगे, तब तक कुछ भी कहना सम्भव नहीं, तथा आत्मा के अमृतत्व के सम्बन्ध में कथन तो और भी असम्भव है। हमें न केवल सत्ता के मत की आवश्यकता है, वरन् परिणाम के मत की भी आवश्यकता है। इस स्थल पर साक्रेटीज़ अपने बौद्धिक विकास का चित्रण करता है, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है (अव० १०३), तथा यदि शब्दों के कुछ अर्थ होते हैं, तो यहाँ पर अर्थ निहित है कि अब हम इस सिद्धान्त से सम्बन्धित उसके व्यक्तिगत योगदान के समीप आ रहे हैं। अपने स्वाभाविक व्यंग्य की भाषा में वह इस मत को 'मूर्खतापूर्ण तथा दूषित बताता है (९७ b, १०० d), तथा इसे काम-चलाऊ अथवा भ्रष्ट (pis-aller, ९९ d) मानता है, परन्तु इस कथन पद्धति से हमें भ्रमित नहीं होना चाहिये। यह वह प्राक्कल्पना है जहाँ से उसे कोई भी हिला नहीं सकता, तथा उसे विश्वास है कि यह प्राक्कल्पना अनुभव-जगत् में सृष्टि तथा विनाश का कारण बताने में समर्थ है, जब कि इस मत के पहले के रूप इस कारण का कोई भी बुद्धिगम्य विवरण प्रस्तुत करने में असमर्थ थे।

अतएव साक्रेटीज कहता है कि अपने युग के विज्ञान में उसे जब सन्तोष नहीं प्राप्त हुआ, तथा विशेष रूप से उसे परिणाम तथा विनाश के कारण सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर नहीं मिला, तब उसने अन्वेषण की नयी पद्धति अपनाने का निश्चय किया। वह इस प्रश्न पर वस्तुओं के दृष्टिकोण से विचार नहीं करेगा, वरन् उनके बारे में हम जो निर्णय (Judgment) करते हैं, तथा

जिन प्रतिज्ञप्तियों में उन्हें व्यक्त किया जाता है, उन दृष्टिकोणों से विचार करेगा। 'मीनो' तथा 'फ़ीडो' दोनों ही संवादों में यह दिखाया गया है कि वह गणितज्ञों की उस 'प्राक्कल्पना' प्रद्धति की शक्ति से बहुत प्रभावित है। जिसे ज़ीनों ने उस समय तक एथेन्स में प्रचारित कर दिया था। 'प्राक्कल्पना' (hypothesis) शब्द के अर्थ को समझने के लिए इस समय हमें एरिस्टोटेलियन तर्कशास्त्र में प्रयुक्त इसके विशेष अर्थ को छोड़ना पड़ेगा, तथा उस अर्थ को भी छोड़ना पड़ेगा जिस अर्थ में प्लेटो ने 'रिपब्लिक' (५११ b) में इस शब्द की प्रचलित व्युत्पत्ति का निर्देशन करते हुए इसका प्रारम्भिक अर्थ 'नींव' अथवा 'आधार' बताया है; परन्तु इस अर्थ में यह शब्द अत्र प्रयुक्त नहीं होता। यदि हम ऐसा करें, तो हमें यह तथ्य पाकर तुरन्त आश्चर्य होगा कि इसकी संवादी क्रिया के दो अभिप्राय होंगे, प्रथम, अपने या दूसरों के समक्ष सम्पादन के लिए एक कार्य उपस्थित करना, तथा दूसरा, अपने समक्ष या दूसरों के समक्ष विवेचन के लिए एक विषय प्रस्तुत करना, उदाहरणार्थ, वक्तव्य अथवा नाटक में। इस प्रकार का प्रयोग होमर के समय से ही चला आ रहा है,[१] तथा स्वाभाविक विस्तार द्वारा इस क्रिया का आयोनिक भाषा में कार्यक्रम के अर्थ में बहुधा प्रयोग मिलता है। इस कथन-पद्धति से यूक्लिड द्वारा प्रयुक्त 'प्रदत्त' (given) शब्द का, तथा 'इसे दिया जाय' (let is be given) जैसे परोक्ष भूत विधिलिंग शब्दों का भी स्पष्टीकरण होता है। मूल विचार यह है कि कोई ऐसा कार्य है जिसे सम्पन्न करना चाहिये, तथा उसी के अनुसार वह तर्क वाक्य इस कथन के साथ समाप्त होता है कि यह सम्पन्न हो गया।

प्राक्कल्पना की विधि निम्नलिखित है। यह अभिगृहीत किया जाता है कि 'प्राक्कल्पना' में कहा गया तर्कवाक्य सत्य है (अथवा आवश्यक नियमों की पूर्ति हो चुकी है), और तत्पश्चात् उस अभिग्रहण के फलवाक्यों को तब तक निगमित किया जाता है जब तक एक ऐसी प्रतिज्ञप्ति नहीं प्राप्त होती जिसे हम जानते हैं कि यह सही है (अथवा एक ऐसी संरचना जिसके सम्पादन में हम समर्थ हों)। परन्तु यदि हमें कोई ऐसी प्रतिज्ञप्ति मिलती है जो विसंगत (ab-

१. देखिये, Liddell and Scott, S. V. (Hypotithemi नींव, ii.२, hyhothesis) (नींव, पूर्वभूमि, प्राक्कल्पना) शब्द के सही विवरण की सामग्रियाँ Liddell and Scott, s. v. में मिलेंगी, परन्तु उनका पुनर्व्यवस्थापन अपेक्षित है। इस लेख को निम्नक्रम से पढ़ना चाहिये, iii, iv, i.२, iii.२, ii,१.

surd) (अथवा ऐसी संरचना जो असम्भव हो), तब प्राक्कल्पना 'विनष्ट' हो जाती है, तदनुसार नियमित शब्दावली होगी : 'यदि 'अ' 'ब' हो तो क्या परिणाम होगा ?, तथा इसके स्पष्ट होता है कि क्यों 'यदि' को प्राक्कल्पना का लक्षण माना गया है। प्लेटो का 'पार्मेनीडीज़' नामक संवाद इन सबके लिए सर्वश्रेष्ठ स्थल' (Locusclassicus) है, परन्तु पद्धति प्राचीन है। हिप्पोक्रेट-यन ग्रन्थ 'प्राचीन आयुर्विज्ञान' (Ancient Medicine) में एम्पेडोक्लीज तथा अन्य लोगों के आधार-भूत सिद्धान्तों की प्राक्कल्पनाएं कहा गया है, तथा इस प्रकार की कथन शैली का सूत्र भी प्लेटो के 'फ़ीडो' में उपलब्ध है। वहाँ पर पार्मेनीडीज़ के सिद्धान्त का उल्लेख 'यदि सत्ता एक है' (If it is one) को प्राक्कल्पना के रूप में किया गया है, तथा उसके विरोधियों के मत का 'यदि-सत्ता अनेक है' की प्राक्कल्पना के रूप में किया गया है।[1] उसी प्रकार एम्पी-डोक्लीज़ की प्राक्कल्पना का कथन भी इस ढंग से किया जा सकता है कि 'यदि सत्ता चार है'। यह इलियाटिक द्वन्द्वन्याय का एक परिणाम है। यहाँ पर यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि पार्मेनीडीज अथवा एम्पीडोक्लीज ने अपने मतों को 'मात्र सापेक्ष' समझा। इस शब्द का ऐसा प्रयोग बहुत बाद में हुआ। यहाँ पर तात्पर्य केवल यही था कि उनकी अभिव्यक्ति की पद्धति थी कि उनके मूलभूत अभ्युपगमों (Portulater) के फलवाक्य ढूंढ निकाले जाय। हम स्वतः यह देख सकते हैं कि पार्मेनीडीज अपने काव्य में यही करता है। ज़ीनो ने इस पद्धति को व्यवस्थित किया, तथा निम्सन्देह साक्रेटीज़ ने इसे जीनो से सीखा था।

द्वन्द्वन्याय की सभी पद्धतियों की भांति यह विधि भी कठोर नियमों से नियन्त्रित है। सर्वप्रथम, हम एक ऐसा कथन लेते हैं जिसमें सम्भावना की सर्वाधिक मात्रा दिखायी पड़ती है, तथा जो कुछ भी इससे सम्मत होता है उसे सत्य मानते हैं, तथा जो कुछ असम्मत होता उसे असत्य। जब तक यह नहीं हो जाता और जब तक यह नहीं देख लिया जाता कि प्राक्कल्पना के फलवाक्य असंगति की ओर तो नहीं ले जाते, तब तक उत्तरपक्षी को स्वयं प्राक्कल्पना के बारे में किसी भी प्रकार का प्रश्न करने की स्वतन्त्रता नहीं होती। यदि वे असंगत नहीं होते, और इसके बाद भी प्राक्कल्पना के बारे में कोई सन्देह रह जाता है, तब उत्तरपक्षी उस पर प्रश्न कर सकता है, परन्तु इसके पूर्व कदापि नहीं। फलवाक्यों के निगमन को प्राक्कल्पना की सत्यता सम्बन्धी प्रश्न से

---

१. Parm. १२८.d, ५. सर्वश्रेष्ठ हस्तलिखित प्रति तथा प्रॉक्लस (Proclus) का पाठ है : "यदि उसकी प्राक्कल्पना मात्र सिद्ध हो जाय।

सर्वथा पृथक् रखना चाहिये। तब भी यदि फल वाक्य स्वीकृत नहीं होते, तो हम यह दिखाने के लिए आगे बढ़ते जायेंगे कि यह किसी ऐसी ऊँची प्राक्कल्पना का फल वाक्य है जिसे हम उसी भाँति अभिगृहीत करते हैं यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक अन्त में हम ऐसी प्राक्कल्पना पर नहीं पहुँच जाते जिसे उत्तरपक्षी स्वेच्छया स्वीकार न करे (१०१ d)। हम देखेंगे कि इस मूल प्राक्कल्पना को निरूपित करने का कोई प्रश्न नहीं है, यह सत्य केवल इसलिए है क्योंकि विवाद-प्रसंग में यह दूसरे पक्ष द्वारा मान्य है। वाद-विवाद में दोनों पक्षों की सहमति ही सम्पूर्ण प्रासाद का आधार है।

वर्तमान प्रसंग में जिन प्राक्कल्पना से साक्रेटीज प्रारम्भ करता है वह है संवेद्य तथा बुद्धिगम्य में भेद, जिसे उसका पाइथागोरियन प्रतिवादी बिना किसी संकोच के सत्य मान लेता है (१०० स)। अतएव यह मान करके कि सुन्दर का एक आकार (form) होता है, हम पुनः यह प्रश्न करते हैं कि क्यों हम किसी वस्तु-विशेष को सुन्दर कहते हैं। यह कहना कि अमुक वस्तु चमकदार है, अथवा इसी प्रकार के अन्य गुण हैं, इस प्रश्न का उत्तर नहीं। इससे 'यह वस्तु सुन्दर है' इस कथन के अर्थ पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। दूसरी ओर, यह तो विधेयता (predication) की समस्या है, यथा 'अ ब है।' परन्तु 'फ़ीडो' में इस प्रश्न का यह रूप प्राप्त नहीं होता। यहाँ हम सृष्टि तथा विनाश का विवेचन कर रहे हैं, अथवा, दूसरे शब्दों में, हम यह प्रश्न कर रहे हैं कि सत्ता-जगत् (जो ज्ञान का एक मात्र विषय है) के साथ ही साथ परिणाम-जगत् कैसे सम्भव है। यह प्रश्न अधिक अच्छे ढंग से निम्नलिखित रूप में पूछा जा सकता है, "कोई वस्तु सुन्दर क्यों होती है?' साक्रेटीज इसका सहज उत्तर यह देता है; 'यदि स्वयं सौन्दर्य के अतिरिक्त कोई वस्तु सुन्दर है, तो सौन्दर्य ही उसे सुन्दर बनाता है'। और इसकी व्याख्या करते हुए कहा गया है कि किसी वस्तु में अनुस्यूत आकार ही उसे सुन्दर, अथवा उसे हम चाहे जो भी कहें, बनाता है। किसी प्रतिज्ञप्ति का विधेय सदा आकार ही होता है, तथा कोई संवेद्य वस्तु अनेक विधेयों के, जिनमें से प्रत्येक बुद्धिगम्य आकार होता है, उभयनिष्ठ स्पर्श-बिन्दु के अतिरिक्त कुछ नहीं है, तथा उस अर्थ में विचार-जगत् तथा इन्द्रिय-जगत् के बीच कोई भेद नहीं रह जाता। दूसरी ओर, किसी वस्तु पर जिन आकारों का विधान किया जाता है उनमें से कोई भी आकार उस वस्तु में पूर्णतया उपस्थित नहीं रहता, तथा इस सम्बन्ध को इस कथन द्वारा व्यक्त किया जाता है कि वस्तु अपने अन्दर

विद्यमान आकारों में भाग ग्रहण (partakes) करती है । इन आकारों के अतिरिक्त इसमें कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, और यदि हम उन सभी आकारों को जान लें, जिनमें कोई वस्तु भाग लेती है, तो इस वस्तु के बारे में कुछ ज्ञातव्य बचता ही नहीं है। इस सिद्धान्त को 'रिपब्लिक' (४७६) a में अत्यन्त स्पष्ट ढंग से रखा गया है। वहाँ पर बताया गया है कि प्रत्येक आकार एक हैं, परन्तु उनके कार्यों तथा शरीरों एवं एक दूसरे के मध्य सायुज्यता (Communion) के कारण वे सर्वत्र दिखायी पड़ते हैं, तथा उनमें से प्रत्येक अनेक जैसे प्रतीत होते हैं।[1] केवल इसी अर्थ में साक्रेटीज ('फ़ीडो' तथा 'रिपब्लिक' का साक्रेटीज) आकारों को संवेद्य वस्तुओं के जगत् से पृथक् नहीं करता,[2] तथा इसी कारण वह संवेद्य वस्तुओं में उनके अन्दर विद्यमान आकारों से निष्पन्न सत्ता के अतिरिक्त किसी भी सत्ता का निषेध करता है। पाइथागारियन अनुकरण (imitation) सिद्धान्त ने संवेद्य तथा बुद्धिगम्य जगतों को दो पृथक् स्तरों पर रखा। भाग-ग्रहण सिद्धान्त के अनुसार संवेद्य वस्तुओं में आकार समग्र न दीखकर बहुप्रकारक दीखते हैं, तथा वस्तुओं में वे केवल अपूर्ण ढंग से ही समाविष्ट हैं। परन्तु भाग-ग्रहण सिद्धान्त संवेद्य तथा बुद्धिगम्य दोनों को अपृथक् मानता है। जब तक आकार वस्तु के अन्दर यथार्थतः विद्यमान न हों, तब तक उस वस्तु के आकार का विधान करने का हमें अधिकार नहीं।

अतः हम कह सकते हैं कि साक्रेटीज की समस्या थी कि संवेद्य वस्तुएँ सत् कैसे हो सकती हैं। तथा इसके उत्तर में वह यह कह सकता है कि जहाँ तक वे वस्तुएँ सत्ता में भाग ग्रहण करती हैं, अथवा जहाँ तक सत्ता उनमें विद्यमान है, वहाँ तक वे वस्तुएँ भी सत् हैं। वह यह समझता है कि ये सब लाक्षणिक अभिव्यक्तियाँ हैं, तथा संवाद के परवर्ती भाग में वह जिस नियम को विकल्प के रूप में मानता है, यथा, आकार विभिन्न विशेष वस्तुओं में रहते हैं। इस विषय को इस ढंग से उपस्थित करने का प्रसंग आत्मा की अमरता के लिए दिये जाने वाले अन्तिम तर्क के अन्तर्गत आता है, और यह आत्मा यद्यपि इन्द्रिय-प्रत्यक्ष का विषय नहीं है, तथापि यह एक वस्तु-विशेष ही है, आकार नहीं। संक्षेप में इसकी उपपत्ति यह है कि

---

१. संवेद्य-जगत् में रूपों की परस्पर सायुज्यता प्लेटो द्वारा बताये गये बुद्धिगोचर जगत् के रूपों की परस्पर सायुज्यता से सर्वथा भिन्न है। जैसा कि हम देखेंगे, यह ऐसा प्रसंग है जहाँ प्लेटो का साक्रेटीज़ से भिन्न मत है।

2. Ar. Met. M.४. १०७८ b, ३०.

आत्मा प्रकृत्या जीवन के आकार में भागग्रहण करती है. अथवा इसके द्वारा 'अधिभुक्त' होता है, तथा यह बताया गया है कि यदि कोई वस्तु अनिवार्यत: एवं अपनी प्रकृति के कारण किसी 'आकार' के द्वारा अधिभुक्त है तो उस आकार के विरोधी आकार को स्वीकार नहीं करेगी। यदि विरुद्ध रूप द्वारा यह आक्रान्त होगी, तो या तो परावृत् हो जायगी, अथवा नष्ट हो जायगी, परन्तु आत्मा का नाश नहीं हो सकता, अत: अनिवार्यत: यह परावृत् होगी। इस तर्क से स्वयं सात्रेटीज पूर्णतया संतुष्ट नहीं हो पाया, और कारण स्पष्ट है। अमृतत्त्व में विश्वास की रक्षा के लिए प्लेटो ने सर्वथा भिन्न मार्ग अपनाना आवश्यक समझा। 'फ़ीडो' का वास्तविक निष्कर्ष यह नहीं है। उसका निष्कर्ष केवल यह है कि कोई भी वस्तु तब तक कुछ नहीं बन सकती, जब तक बनने वाली वस्तु के आकार में भाग ग्रहण न करे, अथवा उसके आकार द्वारा अधिभुक्त न हो, तथा यदि वह आकार में भाग्र-ग्रहण कर देना समाप्त न कर दे, तो वह वस्तु नष्ट भी नहीं हो सकती।[1] प्लेटो ने इसी सिद्धान्त को सात्रेटीज का बताया, तथा यह सिद्धान्त प्लेटो के अपने सिद्धान्त से भी उसी प्रकार स्पष्टत: पृथक् है जिस प्रकार पाइथागोरियन सिद्धान्त से।

पाइथागोरियनों ने संवेद्य वस्तुओं तथा विचार–जगत् की वस्तुओं के बीच जो पृथक्करण किया था वह यद्यपि समाप्त हो गया, तथापि यह सत्य है कि संवेदन की अस्पष्ट भिन्नताओं (manyfold) तथा 'फ़ीड्रस' (Phaedras, २४७ c) में जिसे 'रंगहीन, आकृतिहीन, अस्पर्श्य सत्ता' कहा गया है, तथा जो बुद्धि द्वारा ही ग्राह्य है उसके मध्य अन्तराल बना ही रहा। आत्मा इस अन्तराल को समाप्त करने के लिए उद्यत है, तथा इसके उद्यम का वर्णन केवल आसक्ति-पूर्ण प्रेम की भाषा में हो सकता है। यह अर्थ तो 'दर्शन' शब्द में ही अन्तर्निहित है, तथा दार्शनिकों को जब हम 'ज्ञान के प्रेमी' (lovers of wisdom) कहते हैं तो इस अर्थ का परिचय मिलता है, तथा इसके शाब्दिक स्पन्दन का अभिप्राय इस नाम के मूल अर्थ का स्मरण दिलाना है। जो लोग पूर्णतया मन्द तथा मूर्ख हैं, अथवा जो लोग ईश्वर की भाँति सर्वज्ञ हैं, उन्हें इस प्रकार की तीव्रइच्छा (craving) का अनुभव नहीं होता। प्रेम दरिद्रता तथा साधन की सन्तान है (love is the child of poverty and resource) स्वयं प्रेम को तथा इसके

---

१. एरिस्टॉटल Gen. Corr. B. ६. ३३५ b. १०. में 'फ़ीडो' के मत को इसी प्रकार उपस्थित करता है। वह इसको प्लेटो का न बताकर 'फ़ीडो' के सात्रेटीज का बताता है।

प्रयत्नों को केवल रहस्यात्मक भाषा में ही सम्यक्-रूपेण व्यक्त किया जा सकता है, क्योंकि उनकी स्थिति मध्य क्षेत्र में है, जो अभी तक पूर्णतः बुद्धिग्राह्य नहीं हैं। परन्तु इसकी अभिलाषा के विषय कदापि रहस्यात्मक नहीं हैं। उन्मत्त प्रेमी गणितज्ञ की भाँति ही, अथवा उससे अधिक, बुद्धिगम्य की खोज में है, तथा मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दीखता, जिसके कारण यह माना जाय कि 'फीड्रस' में आकारों को किसी प्रकार की अलौकिक वस्तुओं जैसा स्वीकार किया गया है। 'खगोलातीत प्रदेश' को स्पष्टतया शुद्ध विचार के क्षेत्र से अभिन्न माना गया है, तथा जिन आकारों को मन अपने अन्दर ग्रहण करता है, यथा शुद्ध नीतिपरायणता, शुद्ध संयम, शुद्ध ज्ञान, ये रूप किसी भी प्रकार की असंस्कृत चित्रात्मक कल्पनाओं में नहीं उलझते। यह सत्य है कि इस परम सत्ता के साथ हमारे सम्बन्ध को केवल भावनात्मक भाषा में ही व्यक्त किया जा सकता है, परन्तु जब और जहाँ तक हम इस सत्ता का अवबोध करते हैं तो वह अनुभूति (feeling) द्वारा सम्भव नहीं। स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि मन के द्वारा ही इसका दर्शन सम्भव है। जब तर्क एवं बुद्धि इसको ग्रहण नहीं कर पाते तब इसे जानने का अन्य कोई भी माध्यम नहीं दीखता जिसका हम सहारा ले सकें। दूसरे शब्दों में, किसी तर्कातीत सत्ता को अभिव्यक्त करने के लिए रूपक तथा मिथक का प्रयोग नहीं होता। इनका प्रयोग यथासम्भव तर्क-बुद्धि से नीचे की वस्तुओं को चित्रित करने के लिए किया जाता है। इसका स्थान सीढ़ी के आधे भाग पर है, न कि शिखर पर, क्योंकि प्रेम जिस दरिद्रता को अपनी माँ से उत्तराधिकार में पाता है, उसी के कारण इन रागात्मक वात्सल्यभावों का उदय होता है। जब इनकी संतुष्टि हो जाती है, तब उद्यम तथा अभिलाषा को स्थान नहीं। मैं समझता हूँ कि सभी सच्चे रहस्यवाद की यही प्रकृति है, तथा भावना को ज्ञान के माध्यम के रूप में तर्कबुद्धि (reason) से ऊपर प्रतिष्ठित करना इसी का विपर्यास (perversion) है। वह चाहे जैसा भी हो, मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि रूपों के सिद्धान्त के रहस्यात्मक पक्ष का श्रेय साक्रेटीज को है, न कि प्लेटो को। हमें उसके बारे में कुछ ऐसे तथ्य ज्ञात हैं, यथा उसकी 'वाणी' तथा उसकी उपसमाधियां, जिनसे यह सिद्ध होता है कि उसकी चित्त-प्रकृति रहस्यात्मक थी, तथा हमें कुछ ऐसे तथ्य भी ज्ञात हैं जिनके आधार पर रहस्यात्मक प्रेम को किस रूप में वह धारण करता है, इसकी व्याख्या हो सकती है। दूसरी ओर, उसके स्वभाव का एक दूसरा पक्ष भी हम देख चुके हैं जिसके कारण उस पर मिथ्या रहस्यवादी होने का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

आकारों के सिद्धान्त के उभय पक्षों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की आवश्यकता[1] से मैं पूर्णतया, सहमत हूँ, परन्तु जिस आत्मा में इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक तथ्य अत्यन्त सरलता से पाये जा सकते हैं वह आत्मा मेरे विचार से साफ्रॉनिस्कस के पुत्र साक्रेटीज़ की है। उसके व्यक्तित्व का अत्यन्त स्पष्ट चित्रण 'सिम्पोज़ियम' में ही उपलब्ध होता है, और यहाँ पर उत्साह तथा व्यंग्य दोनों का पूर्ण समन्वय हुआ है।

परन्तु 'फ़ीडो' का साक्रेटीज अपने समक्ष उपस्थित लक्ष्य तक पहुँचने में सफल न हो सका। वह अपने युग के विज्ञान से इसीलिए विमुख हो गया था क्योंकि विज्ञान के द्वारा उसे यह स्पष्टतः नहीं दिखता था कि क्यों समस्त वस्तुओं का जो स्वरूप है वैसा इसलिए है क्योंकि वैसा ही होना उनके लिए सर्वोत्तम है, तथा यद्यपि सृष्टि तथा विनाश की व्याख्या कुछ अर्थों में हो चुकी है, परन्तु इससे हम लक्ष्य-प्राप्ति के निकट पहुँचते हैं, यह नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि हमने कुछ आकारों को अभिगृहीत कर लिया है जिनसे अनुभव-जगत् की व्याख्या में सहायता मिलती है, परन्तु हमने स्वयं इस प्राक्कल्पना की किसी श्रेष्ठतर प्राक्कल्पना के प्रकाश में परीक्षा नहीं की, अतः अनुभव-जगत् के अस्तित्व के औचित्य के बारे में हम कुछ नहीं कह सकते। 'रिपब्लिक' में साक्रेटीज को इस समस्या से पूर्णतः अवगत दिखाया गया है। वहाँ पर (५०५ क्रमशः उससे कहलाया गया है कि हमें अन्य सभी रूपों को शुभ (good) के रूप के प्रकाश में ही देखना चाहिये। यह 'शुभ' मात्र प्राक्कल्पना नहीं है, वरन् ज्ञान का वास्तविक प्रस्थान-बिन्दु है। परन्तु वह इसे स्वीकार करता है कि इसका वर्णन वह केवल एक दृष्टान्त-कथा (parable) के द्वारा कर सकता है, एवं प्लेटो के संवादों में पुनः इसका उल्लेख कभी नहीं आता। यदि हम शुभ की सूर्य से तुलना करें तो इसका धूमिल ज्ञान हो सकता है। सूर्य संवेद्य-जगत् के विकास तथा उसकी दृष्टि दोनों का कारण है, परन्तु यह स्वयं न तो विकास है, न दृष्टि है। उसी भाँति शुभ बुद्धिगम्य-जगत् में ज्ञान तथा सत्ता दोनों का कारण है, परन्तु वह न ज्ञान है, न सत्ता। वह

---

१. देखिये, प्रोफेसर स्टेवार्टस्, मिथस् ऑफ प्लेटो, यह इस विषय पर उपलब्ध सर्वोत्तम विवेचन है। यह स्पष्ट है कि कुछ महत्त्वपूर्ण बातों पर मेरा इससे मतवैभिन्य है, परन्तु उसके कारण इस ग्रन्थ के बारे में मेरी प्रशंसा में व्यवधान नहीं पड़ता।

तेजस्विता तथा शक्ति में इन दोनों में बहुत परे हैं।[1] साक्रेटीज़ का यह कहना अत्यन्त सार्थक है कि शुभ के पूर्णतः अभावात्मक चित्रण के कारण उसके वास्तविक स्वरूप का अवबोध सम्भव नहीं। परवर्ती युग के विचारक इसे भावात्मक सिद्धान्त के रूप में उपस्थित करके ही सन्तुष्ट हुए। साक्रेटीज ने भी वस्तुतः इसके बारे में कुछ भावात्मक कथन किया था, यह इस तथ्य से सिद्ध होता है कि मेगारा निवासी यूक्लिडीज़ ने इस शुभ को इलियाटिक 'एकम्' से अभिन्न बताया था। लगता है कि इस प्रकार उसने अपने इलियाटिकवाद को तथा स्वयं साक्रेटीज का 'सहयोगी' होने की स्थिति के बीच समाधान प्रस्तुत किया। 'फीडो' के सिद्धान्त को स्वीकार करने में पाइथागोरियन्स को कोई कठिनाई नहीं होगी, परन्तु कोई इलियाटिक आकारों के बहुत्व से सन्तुष्ट नहीं होगा। यदि साक्रेटीज ने शुभ में समस्त रूपों के चरम ऐक्य की ओर संकेत किया, तो यूक्लिडीज का अभिप्राय हम समझ सकते हैं, अन्यथा उसे समझना अत्यन्त दुष्कर होगा। तथापि यहां पर साक्रेटीज की संस्था के सिद्धान्त में मतभेद है, और हम देखेंगे कि बाद की पीढ़ी में यह भेद कितना महत्त्वपूर्ण हो गया।

शुभत्व (GOODNESS)

ज्ञान तथा सत्ता के जिस मत पर हम विचार करते आ रहे हैं केवल उसी के प्रकाश में शुभत्व का सिद्धान्त समझा जा सकता है, जिसका श्रेय प्लेटो ने साक्रेटीज को दिया। सर्वप्रथम, यह स्पष्ट कर दिया गया है कि इसको सूत्रित करने के लिए वह उद्यत इसलिए हुआ क्योंकि वह 'सोफ़िस्टों' के उपदेशों से असन्तुष्ट था, तथा हमें यह समझने का प्रयास करना चाहिये कि उसका उनसे वस्तुतः कहाँ मतभेद था। शुभत्व तथा ज्ञान के तादात्म्य क सिद्धान्त तथा इसके उपसिद्धान्त, कि कोई भी व्यक्ति स्वेच्छया दुष्ट नहीं है,

---

१. इस प्रकार की भाषा के कारण ही कुछ लोगों ने शुभ के रूप तथा ईश्वर के बीच तादात्म स्थापित किया है। परन्तु वह सर्वथा असंगत है, ईश्वर एक आत्मा है, न कि रूप, तथा 'टिमियस' में (जैसा कि हम देखेंगे; इस ग्रन्थ में पाइथागोरियनिज्म का अत्यन्त विकसित स्वरूप उपलब्ध है) शुभ को ईश्वर के ऊपर स्थान दिया गया है, इस सिद्धान्त में उत्पन्न कठिनाइयों के कारण बाद में एक सर्वोच्च तथा अज्ञेय ईश्वर तथा एक गौण स्रष्टा (प्रजापति) का सम्प्रत्ययन बना, परन्तु यवन (hellenistic) युग तक इसका कोई भी संकेत नहीं मिलता। वहाँ पर 'टिमियस के स्रष्टा को ही सर्वोच्च ईश्वर माना गया है।

से बढ़कर अन्य कोई भी मत साक्रेटीज के नाम के साथ न सम्बद्ध है, न प्रमाणित है। किसी भी व्यक्ति को यदि शुभ तथा अशुभ के बारे में यथार्थ ज्ञान होगा तो वह अशुभ की ओर यथासम्भव उन्मुख नहीं होगा। अतः अशुभ अन्ततोगत्वा एक प्रकार का अज्ञान है। साक्रेटीज़ के बारे में अन्य किसी तथ्य की अपेक्षा यह बात अधिक सर्वमान्य है कि वह इस सिद्धान्त को मानता था।

ऐसी स्थिति में यह बात कम महत्त्वपूर्ण नहीं है कि प्लेटो ने अपने बहुत से सम्वादों में साक्रेटीज को इस सिद्धान्त के प्रचलित अर्थ के विरुद्ध तर्क देते हुए दिखाया है। उदाहरणार्थ, उसके द्वारा कहलाया गया है कि शुभत्व ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि यदि ऐसा होता तो एथेन्स के प्रसिद्ध राजनयिकों ने निश्चित रूप से अपनी सन्तानों को अपनी अच्छाई की शिक्षा दी होती, परन्तु उनमें से अधिकांशतः पूर्णतया असफल रहे। यह भी नहीं कहा जा सकता कि सोफिस्ट इसकी शिक्षा दे सकते हैं, क्योंकि उस दशा में इन राजनयिकों ने अपने बच्चों को शुभत्व का प्रशिक्षण उसी प्रकार कराया होता, जिस प्रकार उन्हें घुड़सवारी तथा संगीत सिखाया जाता है। वस्तुतः प्रतीत होता है कि शुभत्व ऐसी वस्तु है जो अकस्मात् या दैवी कृपा से कुछ लोगों के पास आती है, और अन्य लोगों के पास नहीं। जिनको यह उपलब्ध है वे इसका वर्णन नहीं कर सकते; वे यह भी नहीं कर सकते कि यह है क्या, अतः वे इसकी शिक्षा प्रदान करने में सर्वथा असमर्थ हैं। वे उन कवियों के समान हैं जो किसी प्रेरणा के वशीभूत होकर रचना करते हैं, परन्तु स्वयं अपने ही शब्दों की बुद्धिगम्य व्याख्या नहीं कर सकते। 'एपॉलाजी' में साक्रेटीज के मिशन के बारे में जो कहा गया है उसका इससे स्पष्ट सम्बन्ध है।

तथापि इन कथनों एवं 'शुभत्व' ज्ञान है इस सिद्धान्त के बीच जो परस्पर विरोध है वह प्रथम दर्शन में भ्रामक लगता है। यद्यपि यह कहा गया है कि इन सम्वादों में प्लेटो 'ऐतिहासिक साक्रेटीज' की अपेक्षा एक अधिक विकसित सिद्धान्त की ओर अग्रसर हो रहा है. परन्तु इस प्रकार की व्याख्या सदा की भाँति खण्डित हो जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राजमर्मज्ञों तथा उनके पुत्रों के बारे में युक्तियों का प्रयोग वस्तुतः स्वयं साक्रेटीज ने किया था, एवं 'मीनो' तथा जेनोफ़ेन के आधार पर हमें ज्ञात होता है कि एनिटस (Anytos) जिन कारणों से रुष्ट हुआ था उनमें से एक कारण यह भी था। जहाँ तक प्लेटो का सम्बन्ध है, वह अभी भी अपने अन्तिम ग्रन्थ 'लाज' (Laws, ८६०a) में यह मानता है कि शुभत्व ज्ञान है, तथा कोई भी व्यक्ति

स्वेच्छया दुष्ट नहीं होता।

यदि हम यह स्मरण रखें कि शुभत्व तथा ज्ञान का तादात्म्य वस्तुतः साक्रेटीज का कोई अपना विशेष सिद्धान्त नहीं था, वरन् उस युग के सामान्य विश्वास – कि 'शुभत्व शिक्षणीय है' – में ही आपादित है, तो इस समस्या को समझने में सुविधा होगी। साक्रेटीज तथा उसके समकालीन लोगों के बीच प्रश्न वह नहीं था। प्रश्न यह था कि किस शुभत्व का ज्ञान से तादात्म्य है, ताकि उसकी शिक्षा दी जा सके। सोफ़िस्ट लोगों की यह मान्यता गलत नहीं थी कि शुभत्व शिक्षणीय है। वे गलत इसलिए थे कि जिस शुभत्व की शिक्षणीयता का वे दावा करते थे, वह ज्ञान न होने के कारण शिक्षणीय नहीं था। उनकी यह भी त्रुटि थी कि उन्होंने उस उच्च स्तर के शुभत्व की अवहेलना की, जो एक मात्र ज्ञान होने के कारण शिक्षणीय था। यदि हम यह मानें कि साक्रेटीज ने ऐसा भेद किया था, तो इस विषय में सम्बद्ध संवादों में कोई वास्तविक अन्तर्विरोध नहीं मिलेगा।

इस दृष्टिकोण को पुष्ट करने के लिए बाह्य साक्ष्य भी हैं। साक्रेट्रीज के 'हेलेन' (Helen, १०·१) में कथन है कि कुछ ऐसे भी लोग हैं जो कोई विरोधाभास उपस्थित कर उसके पक्ष में पर्याप्त तर्क प्रस्तुत करने में गर्व का अनुभव करते हैं। "कुछ लोग यह स्वीकार करते-करते बूढ़े हो गये कि मिथ्या-भाषण, अथवा प्रतिवाद करना अथवा किसी एक ही वस्तु के बारे में दो विरोधी कथन सम्भव हैं"। इसका संकेत निश्चित रूप से एन्टिस्थेनीज की ओर है। "अन्य लोग विस्तार से यह सिद्ध करना चाहते हैं कि न्याय तथा साहस तथा प्रज्ञान एक ही वस्तु है, तथा इन वस्तुओं को स्वभाव (प्रकृति) से निष्पत्ति का निषेध यह कहकर करते हैं कि इन सबका एक ही ज्ञान है।" मेरी समझ से यह उल्लेख साक्रेटीज के लिए है। "अन्त में कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं, जो अपना समय विरोधों (contention) में बिताते हैं।" प्लेटो भी इस शब्दावली का प्रयोग करता है, तथा इसके उपनय (application) पर हमें बाद में विचार करना होगा। थोड़ा आगे जाने पर (१०·५) साक्रेटीज ज्ञान तथा विश्वास के भेद पर प्रकाश डालने के लिए कहता है कि अनुपयोगी वस्तुओं के यथार्थ ज्ञान की अपेक्षा उपयोगी वस्तुओं के बारे में उचित विश्वास श्रेष्ठतर है। उसी प्रकार अपनी पुस्तिका 'सोफिस्टों के विरुद्ध' (Against the Sophists) में वह उन लोगों के बारे में कहता है (१३·१), "जो अपना समय विवादों में व्यतीत करते हैं, तथा यह मानते हैं कि वे युवकों को उनके कर्त्तव्य के बारे में

तथा सुख प्राप्ति के उपाय के बारे में शिक्षा देते हैं" (१३·३)। यहाँ पर भी ज्ञान तथा विश्वास में भेद दिखाया गया है, तथा अन्त में साक्रेटीज यह अस्वीकार कर देता है कि धार्मिकता तथा नैतिकता सीखी जा सकती है।

यह विश्वास करना अत्यन्त कठिन है कि इन सन्दर्भों में से किसी का भी संकेत प्लेटो के लिए है, जैसा कि प्रायः लोग मानते हैं। साक्रेटीज आयु में प्लेटो से बड़ा था, तथा 'हेलेन' एवं लघु प्रवन्ध 'सोफ़िस्टों के विरुद्ध' की सम्भावित तिथि ई० पू० ३९० के पहले वतायी जाती है, इस वर्ष में साक्रेटीज ने अपनी संस्था प्रारम्भ की थी, अतः प्लेटो के शिक्षक के रूप में आने के कुछ समय पूर्व की यह वात है। यह अत्यन्त स्पष्ट है कि साक्रेटीज अपने सद्यः पुरोगामियों के शैक्षणिक मतों से सम्बन्धित था, तथा यह स्वाभाविक नहीं लगता कि वह अपने मार्ग से दूर जाकर एक कनिष्ठ समकालीन व्यक्ति पर आक्रमण करेगा, जिसे उस समय तक अपना प्रतिद्वन्दी मानने का कोई आधार नहीं प्राप्त कर पाया हो। दूसरी ओर, साक्रेटीज का प्रश्न उस समय अत्यन्त जटिल रूप में उपस्थित था, क्योंकि सोफ़िस्ट पॉलिक्रेटीज ने उसके विरुद्ध ठीक उसी समय एक पुस्तिका प्रकाशित की थी, जिसका अभिप्रायः यह प्रदर्शित करना था कि साक्रेटीज को उसकी शिक्षा के दुष्परिणामों के लिए जो मृत्यु दण्ड दिया गया, वह उचित था। 'बुसिरिज' (Bousiris) से भी हमें ज्ञात होता है कि साक्रेटीज इस पुस्तिका से बहुत उलझा था। अतः उसकी यह इच्छा अवश्य रही होगी कि वह साक्रेटीज को अपनी धारणा के बारे में स्पष्ट बता दे, तथा वह उसी समय प्लेटो के बारे में चिन्तित हो, ऐसा कोई कारण नहीं दिखता। परन्तु, यदि स्थिति यह है, तो विश्वास और ज्ञान के बीच भेद के लिए, तथा इस सिद्धान्त के लिए कि शुभत्व एक है, तथा इसका ज्ञान भी एक ही है, के लिए श्रेय साक्रेटीज को विना किसी कठिनाई के दिया जा सकता है, और फिर इसका अर्थ यह होगा कि प्लेटो के प्रारम्भिक सम्वादों से लेकर 'मीनो' तक, तथा मूलतः 'रिपब्लिक' में भी प्रतिपादित शुभत्व का सम्पूर्ण सिद्धान्त साक्रेटीज का मानने में कोई कठिनाई नहीं।

'शुभत्व' का उस युग की शब्दावली में क्या तात्पर्य था, इसके बारे में अब हमें कोई सन्देह नहीं है। हम देख चुके हैं कि सोफिस्ट यह मानते थे कि वे व्यक्ति तथा नागरिकों के शुभत्व की शिक्षा देते थे, तथा इसकी व्याख्या राज्यों तथा परिवारों के सम्यक् प्रवन्ध के रूप में की जाती थी। वस्तुतः इसे हम दक्षता (efficiency) कहते हैं। ग्रीक्स के लिए शुभत्व की सर्वदा कुछ

विध्यात्मक अर्थ था, यह आत्मा की ऐसी प्रकृति के अर्थ में प्रयुक्त होता था जिसके कारण वह व्यक्ति कोई कार्य कर सके, न कि ऐसी आदत के रूप में जिसके कारण व्यक्ति-विशेष हानिकारक कृत्य से निवृत्त हो सके, जैसा कि साधारणतया हम इसका अर्थ समझते हैं। परन्तु कोई भी ग्रीक किसी व्यक्ति को इस प्रकार के शुद्ध नकारात्मक आधारों पर सज्जन नहीं कहेगा; उसे किसी भावात्मक कार्य के आधार पर ही भला कहा जायेगा। यहाँ तक साक्रेटीज प्लेटो तथा एरिस्टॉटल में से कोई भी प्रचलित मत से जरा भी असहमत नहीं होगा। तथापि, जैसा कि हमने देखा है, (अव० ८८) उन दिनों एथेन्स की राजनैतिक परिस्थिति ऐसी थी कि इस शब्द को एक विलक्षण अर्थ में प्रयुक्त किया जाने लगा। यह अन्य स्थलों की अपेक्षा सर्वोत्तम ढंग से थुसिडाइडीज के एक अनुच्छेद में व्यक्त होता है, जहाँ वह बताता है कि एन्टिफन, जो 'चतुःशतकों के आन्दोलन' का मुख्य संचालक था, शुभत्व (सज्जनता) में किसी भी एथेन्सवादी की अपेक्षा कम न था। वस्तुतः यही एक मात्र शुभत्व है जिसे सिखाने का सोफ़िस्टों को अवसर मिलता था, क्योंकि जो लोग शुल्क देते थे वे इसी को सीखना चाहते थे। दलीय विदग्ध-नीति की कलाओं में कौशल की अपेक्षा यह कुछ अधिक दुष्कर था।

जिस शुभत्व का साक्रेटीज ने ज्ञान के साथ तादात्म्य स्थापित किया वह स्वभावतः एक भिन्न स्तर का था, परन्तु व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए 'सच्चे विश्वास' के सापेक्षित मूल्य को उसने सर्वदा स्वीकार किया। 'मीनो' (९७b) में। वह कहता है कि यदि कोई व्यक्ति लारिसा (Larissa) जाना चाहता है तो मार्ग के बारे में सच्चे विश्वास अथवा ज्ञान दोनों के द्वारा पहुंच सकता है। उसकी ज्ञान-मीमांसा के बारे में हमने जो उल्लेख किया है उस परिवेश में उसकी इस प्रकार की स्वीकारोक्ति आश्चर्यजनक नहीं। जैसा कि हमने देखा है, वह सामान्य अनुभव के सापेक्षिक महत्त्व का कभी निषेध नहीं करता था। इसके भी विषय वही हैं जो ज्ञान के हैं। अन्तर केवल इतना है कि अनुभव के विषय अपूर्ण तथा भ्रमयुक्त हैं। उसके कथन का कभी भी यह अभिप्राय नहीं था कि एथेन्स के महान् राजमर्मज्ञों ने कोई उत्तम कार्य नही किया, अथवा कवियों की रचनाओं का कोई मूल्य नहीं। यदि भूतकाल के राजनयिकों में स्वयं अपनी सज्जनता न होती तो उनके द्वारा अपने पुत्रों को शुभत्व की शिक्षा प्रदान करने में असफलता पर कोई आश्चर्य नहीं होता। परन्तु इस प्रकार के शुभत्व में त्रुटि यह है कि यह किसी बौद्धिक सिद्धान्त पर आश्रित न होने के

कारण विश्वसनीय नहीं है। यह मुख्यत: चित्तप्रकृति तथा अनुकूल अवसर की बात है। 'मीनो' (९८ a) में बताया गया है कि तर्कपूर्ण ज्ञान के द्वारा जब इसको उसके कारण से सम्बद्ध कर दिया जाता है तभी यह डायडलॉस (Daidalos) की मूर्तियों की भाँति विचलित नहीं हो सकेगा। और केवल तभी वह शुभत्व ज्ञान होगा, और तदुपरान्त इसकी शिक्षा दी जा सकती है।

हम यह देखेंगे कि शुभत्व तथा शुभ का यह मत ज्ञान तथा सत्ता के उस मत का ठीक प्रतिरूप है जिसे प्लेटो ने साक्रेटीज का बताया है, तथा उस अध्यारोपण के सत्य होने का यह भी एक संकेत है। जिस प्रकार से उत्पत्ति तथा विनाशशील जगत् में वस्तुओं के कारण की हम तब तक व्याख्या नहीं कर सकते जब तक उन्हें बुद्धिगम्य रूपों में भाग-ग्रहण करता हुआ या भाग न ग्रहण करता हुआ न मान लें, उसी प्रकार वास्तविक शुभत्व की प्राप्ति जब तक नहीं होगी जब तक प्रत्येक कार्य को तर्कबुद्धि उसके सच्चे कारण की ओर निर्दिष्ट न करे, दैनन्दिन शुभत्व इन्द्रियानुभव जगत् की ही भाँति अस्थिर तथा अपरिवर्तनशील है। वास्तविक शुभत्व को स्थिर तथा अपरिवर्तनशील होना चाहिये, 'फीडो' (८२ a) के अनुसार साक्रेटीज इन दोनों में भेद करते हुए इन्हें 'दार्शनिक शुभत्व' तथा 'लौकिक शुभत्व' अथवा 'नागरिकों का शुभत्व' कहता है। दार्शनिक शुभत्व प्रज्ञा [intellect] पर आधारित है, तथा लौकिक शुभत्व अभ्यस्तता (hebit) पर। दार्शनिक शुभत्व ही शिक्षणीय हो सकता है, क्योंकि ज्ञान केवल यही है, तथा ज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का शिक्षण नहीं हो सकता। पश्चादुक्त शुभ केवल वहीं तक है जहाँ तक वह पूर्वोक्त में भाग-ग्रहण करता है। अन्यथा यह चलायमान तथा अनिश्चित वस्तु है।

शुभत्व सम्यक् अर्थों में ज्ञान है, न कि एक कला अर्थात् यह ऐसी वाह्य निपुणता नहीं है जिसे कोई भी सम्पादित कर सके, तथा जिसका वह अपनी इच्छानुसार उपयोग करे या न करे। प्लेटो ने इस विषय पर दो अत्यन्त समान तर्कों को विस्तार से प्रस्तुत किया है, इसके पर्याप्त संकेत मिलते हैं कि वे तर्क वस्तुत: साक्रेटीज के हैं। वे हमेशा शिल्पकारों के व्यवसाय का जो उल्लेख करते हैं, वह विशेष रूप से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, 'रिपब्लिक' में पालिमार्कस के साथ किया गया तर्क सर्वाधिक प्रसिद्ध है, और यदि इसे 'हिप्पियस माइनर' में पाये जाने वाले दूसरे तर्क के प्रकाश में पढ़ा जाय तो कम भ्रामक होगा। 'रिपब्लिक' (३३२e, क्रमश:) में इस तर्क के द्वारा यह दिखाया गया है कि 'शुभत्व यदि एक कला है (यह मत पॉलिमार्कस का है, न कि साक्रेटीज का)

तो ईमानदार व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ चोर होगा, जैसे चिकित्सक सफलतम हत्यारा होगा। 'हिप्पियस माइनर' का तर्क है कि सत्य बोलने के लिए जितने प्रज्ञान की आवश्यकता है उतने ही, अथवा उससे भी अधिक, प्रज्ञान की आवश्यकता असत्य बोलने के लिए है, तथा स्वेच्छया अशुभ कर्म करना उसे अनिच्छा से करने की अपेक्षा श्रेष्ठतर है। दोनों प्रसंगों का मन्तव्य एक ही है। कला या क्षमता हमेंशा 'विपक्षों' की होती। जो व्यक्ति इसका सदुपयोग कर सकता है वह इसका दुरुपयोग भी कर सकता है, अतएव शुभत्व में इसकी अपेक्षा कुछ अधिक निहितार्थ होना चाहिये। वह भी सोफ़िस्टों के आचरण द्वारा साक्रेटीज़ पर बलात् आरोपित कर दिया गया। जॉर्जियस के शिष्य उससे सीखी हुई वाग्मिता (Rhetonic) का जो भी उपयोग करते हैं उसका उत्तरदायित्व वह अपने ऊपर नहीं लेता। वह कहता है (४५६ d) कि जिस प्रकार मुष्टियुद्ध (बाक्सिग) के प्रशिक्षक का कोई शिष्य अपनी कला से अपने किसी पड़ोसी को आहत कर दे तो उसके लिए प्रशिक्षक को दोषी नहीं ठहराया जा सकता, उसी प्रकार वाग्मिता के शिक्षक को उसके शिष्यों के दुष्कृत्यों के लिए दोषी नहीं बनाया जा सकता। पॉलिमार्कस के साथ विवाद में निहित प्रश्न वस्तुः वही है। क्या यह सम्भव है कि शुभत्व को हम केवल इस प्रकार की तटस्थ निष्पत्ति मानें, अथवा यह अपने आधार पर आत्मा के स्वभाव के अन्तर्गत आने वाली कोई वस्तु है, जिनके कारण किसी भले व्यक्ति के लिए अशुभ कार्य करना अथवा किसी को आघात पहुँचाना वस्तुतः असम्भव हो ?

एक अन्य प्रश्न जिस पर इस समय विचार करना आवश्यक है वह है शुभत्व की एकता, तथा साक्रेटीज़ के अनुसार इस प्रश्न का दूसरे प्रश्न से घनिष्ट सम्बन्ध है। शुभत्व के व्यावसायिक प्रशिक्षण से यह संकेत प्राप्त होता है कि इसकी किसी एक शाखा को हम सीख सकते और किसी दूसरी शाखा का ज्ञान हम नहीं प्राप्त कर सकते। उदाहरणार्थ, ईमानदारी सीखे बिना हम साहस का प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं, अथवा साहस सीखे बिना इमानदारी सीख सकते हैं। यदि शुभत्व के विभिन्न प्रकार अनेक 'कलाएँ' अथवा बाह्य निपुणताएँ हैं, तो उनमें आपस में कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। तथा हम यह नहीं कह सकते कि शुभत्व 'एक' है। साक्रेटीज इस प्रश्न पर शुभत्व के विभिन्न भेदों के दृष्टिकोण से विचार करता है, उदाहरणार्थ 'लैचीज'(Laches) नामक संवाद का प्रारम्भ साहस से होता है, तथा चार्मिडीज (Charmides) का शालीनता से। दोनों स्थलों पर जिस सद्गुण-विशेप पर विचार हो रहा है वहाँ

उस सद्‌गुण (virtue) का ज्ञान के साथ तादात्म्य स्थापित किया गया है, परन्तु यह तादात्म्य साक्रेटीज ने नहीं किया। इसके विपरीत, वह अपने तर्क द्वारा यह दिखाने का प्रयास कर रहा है कि यदि हम शुभत्व के किसी विशेष रूप को ज्ञान के साथ अभिन्न मानें तो उसमें तथा शुभत्व के किसी अन्य रूप में कोई भेद करना सम्भव नहीं होगा। उस दृष्टिकोण से वे सभी एक में विलीन हो जाते हैं।

शुभत्व की एकता का सिद्धान्त तथा वह सिद्धान्त जो किसी कला का शुभत्व के साथ तादात्म्य स्थापित करना अस्वीकार करता है, दोनों एक अन्य तर्कपद्धति द्वारा पुष्ट होते हैं जो साक्रेटीज को प्रिय हैं। 'रिपब्लिक' (३३२ c) में पॉलिमार्कस के साथ तर्क में इसका एक अच्छा उदाहरण मिलता है, तर्क यह है कि यदि हम शुभत्व के किसी रूप का किसी कला से तादात्म्य स्थापित करें, तो इसका कोई उपयोग होना सम्भव नहीं। सारा क्षेत्र पहले से ही प्रत्येक विभाग के लिए उपयुक्त विभिन्न कलाओं से आप्लावित है, अतः सद्‌गुण (virtue) के लिए कोई स्थान ही नहीं है। कोई व्यक्ति यह मान सकता है कि ईमानदारी अथवा न्याय साझेदारियों के लिए एक उपयोगी गुण है, परन्तु हम सभी को किसी कौशलपूर्ण खेल में ईमानदार व्यक्ति की अपेक्षा एक अच्छे खिलाड़ी को अपना साझेदार बनाना चाहिये, तथा गायन में अच्छी संगत करने वाले व्यक्ति को। यदि शुभत्व को इस दृष्टि से देखा जाय, तो इसके लिए कोई विशेष कार्य नहीं रह जायेगा। अन्य कलाओं की भाँति इसके लिए कोई स्थान नहीं रहेगा। यह हानिकारक हो सकता है, क्योंकि यह विपक्षों की सामर्थ्य है, तथा अन्ततोगत्वा यह अनावश्यक है।

तब वह कौन-सा ज्ञान है जिससे वास्तविक शुभत्व का तादात्म्य स्थापित किया जाय? सर्वप्रथम, यह वह ज्ञान है जो मानव-आत्मा के लिए शुभ है। इस स्थल पर हम अत्यन्त स्पष्ट रूप से देखते हैं कि किस प्रकार साक्रेटीज की ज्ञान-मीमांसा की ही भाँति उसके द्वारा बताया हुआ आचरण का सिद्धान्त पाइथागोरियन मत से प्रभावित था। पाइथागोरियन ने पहले ही आत्मा के स्वास्थ्य को शरीर के सादृश माना था, तथा यह उनके लिए एक रूपक (metaphor) से कहीं अधिक था। हम देख चुके हैं (अव० ७५) कि किस प्रकार वे लोग स्वर अथवा मिश्रण (blend) के अपने मूलभूत प्रत्यय पर पहुँचे थे। तथा इसी ने पाइथागोरियन प्रभाव के अन्तर्गत आने वाले सभी चिकित्सा-सिद्धान्तों पर आधिपत्य जमाया। शुभत्व की इस ढंग की व्याख्या की अनिवार्यता ने, कुछ सीमा तक, साक्रेटीज को बाध्य किया कि वह परवर्ती पाइथागोरियन मत, यथा आत्मा

स्वयं एक समस्वर है (अव० १२४), को अस्वीकृत करे। और उसने आत्मा के अंशों के दृष्टिकोण से इस विषय का विश्लेषण करना अधिक उचित समझा, तथा यह दृष्टिकोण सम्भवतः पूर्ववर्ती पाइथेगोरियन मत है। 'जॉर्जियस' (५०४ a, क्रमशः) में साक्रेटीज़ कहता है कि आत्मा में व्यवस्था तथा नियम होने के कारण ही शुभत्व की स्थिति है, तथा यह केवल ज्ञान से ही उत्पन्न हो सकता है, अभ्यास अथवा नित्य-क्रम द्वारा नहीं। 'रिपब्लिक' में इसी मत का अत्यन्त विस्तार से निरूपण किया गया है। वहाँ पर कहा गया है कि आत्मा के तीन भाग होते हैं, दार्शनिक अथवा तर्कना (reasoning), मनोदशा (temper) तथा एषणा (desire)। इनमें से प्रत्येक के विशेष सद्‌गुण हैं, क्रमशः प्रज्ञान, साहस, तथा धैर्य। न्याय अथवा धार्मिकता ऐसा तत्त्व है जो इन सबको इनके उचित स्थान पर प्रतिष्ठित रखता है। यह दिखाया गया है कि किसी सुव्यवस्थित राज्य में कैसे इनमें से प्रत्येक सद्‌गुण का वर्ग-विशेष में प्रतिनिधित्व होता है, तथा इस पर विचार करने से हम यह सीखते हैं कि आत्मा के आन्तरिक राज्यतन्त्र (polity) को कैसे नियमित किया जाय। हम देखते हैं कि यहाँ प्रज्ञान आदेशकर्त्ता होता है, तथा मनोदशा इन आदेशों के क्रियान्वयन में सहयोग प्रदान करती है, तथा एषणाओं (इच्छाओं) के लिए यह उचित है कि वे अन्य दोनों के लिए आवश्यक आधार-भूत सामग्री की पूर्ति करे, तथा यह भी देखते हैं कि किसी प्रकार यह सब न्याय द्वारा चरितार्थ होता है। न्याय ही इन सबके योग्य कार्यों का वितरण करता है, तथा यह देखता है, कि प्रत्येक अपने कार्य को करता है। वहाँ पर यह भी दिखाया गया है कि किस प्रकार आत्मा के निम्नस्तरीय अंगों में से किसी एक का बलात् आधिपत्य होने के कारण निकृष्ट प्रकार के राज्य का आविर्भाव होता है, तथा किसी प्रकार इनमें से प्रत्येक के संवादी निम्नकोटि के चरित्र होते हैं, जिनकी उत्पत्ति के वही कारण हैं। इनमें सन्देह नहीं कि 'रिपब्लिक' में इस विचार का विस्तृत चित्रण हमें मिलता है उसका प्रमुख श्रेय प्लेटो की कलात्मक प्रतिभा को है, परन्तु मुझे यह सर्वथा असंदिग्ध प्रतीत होता है कि मौलिक विचार साक्रेटीज का है, तथा वह पाइथागोरियन धारा का विचार है। आत्मा के बारे में स्वयं प्लेटो का अपना मत इतना भिन्न था कि वह स्वयं इस प्रकार की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं अपनायेगा, परन्तु यह सर्वथा सम्भव है कि लोकप्रिय व्याख्या के लिए उसने इसका उपयोग किया हो। जैसा कि हम देखेंगे, यह सम्भावित नहीं कि 'रिपब्लिक' की रचना के समय उसका कोई अपना सुनिश्चित मौलिक दर्शन

बन गया हो ।[1]

प्लेटो ने अपने गुरु की मृत्यु के लगभग पन्द्रह वर्षों के भीतर साक्रेटीज के दर्शन को जिस रूप में प्रचलित किया उसी का यह संक्षिप्त विवरण है। मेरा यह विश्वास है कि यह बुद्धिगम्य तथा संगत विवरण है, तथा ऐरिस्टॉटल जिन बातों के लिये स्वयं प्लेटो को श्रेय देता है उनसे वह सर्वथा भिन्न हैं। यदि इस दर्शन का मूल उपदेशक प्लेटो रहा, तथा जिस सिद्धान्त को एरिस्टॉटल प्लेटो का मानता है वह यदि उसकी परिपक्वावस्था में विकसित हुआ, तो यह निश्चित है कि इस मत के उल्लेखनीय परिवर्तन के बारे में हमने कुछ अवश्य सुना होता। परन्तु स्थिति यह है कि एरिस्टॉटल के ग्रन्थों में कहीं भी यह संकेत नहीं मिलता कि जिसे वह प्लेटो का मौलिक सिद्धान्त मानता है उसके अतिरिक्त प्लेटो ने कभी कोई शिक्षा दी हो। यद्यपि प्लेटो के दर्शन को जाने बिना इस प्रसंग पर अन्तिम निर्णय लेना सम्भव नहीं, परन्तु इस विषय को समाप्त करने के पूर्व हम दो विचारों को रखना चाहेंगे प्रथम, यदि हम प्लेटो के संवादों को उनके स्वाभाविक अर्थ में ग्रहण करने का प्रयोग करें, तो यह निस्सन्देह उपयुक्त होगा। इसी 'प्राक्कल्पना' को आधार मानकर इस ग्रन्थ का प्रारम्भ किया गया है, तथा यह प्राक्कल्पना विनष्ट तभी होगी जब हम ऐसे निष्कर्षों पर पहुँचे, जो असम्भव अथवा असत्य हो। द्वितीय, मेरा निवेदन है कि इसे सिद्ध करने का दायित्व उन लोगों पर नहीं है जो इस प्राक्कल्पना को मानते हैं, वरन् उन पर है जो इसे अस्वीकार करते हैं। जब तक वस्तुतः कोई प्रबल तर्क न प्रस्तुत हो, तब तक हम लोगों को प्लेटो के साक्रेटीज को कल्पित मानने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता, तथा ऐसा कोई प्रबल तर्क कभी उपस्थित किया गया है इसकी मुझे जानकारी नहीं। हम यह कदापि नहीं मानते कि प्लेटो सदा एक वृत्तान्त-लेखक(redorter) मात्र रहा। वह निश्चित रूप से एक नाटकीय कलाकार है, तथा अपनी सामग्री को कलात्मक रंग से व्यवस्थित करता है। परन्तु वह साक्रेटीज से भली-भांति परिचित था, तथा उसने लिखा भी था उन्हीं लोगों के लिए जो साक्रेटीज से सुपरिचित थे। इस चित्रण में प्रयुक्त सभी संवाद सम्भवतः उस समय के पूर्व लिखे गये थे जब प्लेटो स्वयं दर्शन के उपदेशक के रूप में जनता के सामने आया। यदि प्लेटो के साक्रेटीज को वास्तविक साक्रेटीज नहीं माना जायेगा तो उसे किस अर्थ में ग्रहण किया जाय यह मेरी समझ में नहीं आता।

---

१. 'रिपब्लिक' में दिये गये तर्क को विस्तार से देना मैंने आवश्यक नहीं समझा, क्योंकि वर्तमान समय में इसके अनेक उत्कृष्ट विवरण उपलब्ध हैं।

१०

साक्रेटीज़ का परीक्षण (TRIAL)

भर्त्सना (दण्डादेश) (THE CONDEMNATION)

ई० पू० ३९९ में साक्रेटीज़ को तीन व्यक्ति अन्वीक्षा के लिए लाये। ये व्यक्ति थे जनतान्त्रिक नेता एनिटस (Anytos), मेलिटस (Meletos) जो एक 'युवक तथा अप्रसिद्ध' दुःखान्तिकी कवि था, और 'जिसके बाल लम्बे, पतले, दाढ़ी विरल तथा नाक टेढ़ी थी;[1] तथा लाइकन (Lykon), जो और भी प्रच्छन्न वाग्शास्त्री था। साक्रेटीज़ पर यह अभियोग लगाया गया कि राज्य द्वारा उपासित देवताओं की उपासना[2] न कर उसने अन्य नये देवताओं को प्रतिष्ठित किया। इन नये देवताओं के बारे में युवकों को उपदेश देकर उन्हें भ्रष्ट करने का अपराध भी उस पर लगाया गया। 'एपॉलाजी' में प्लेटो ने साक्रेटीज़ द्वारा अपने परीक्षण के समय दिये गये भाषणों को उद्धृत किया है। यहाँ पर भी उसे केवल एक वृत्तान्त लेखक मानना अनुचित होगा। उस समय भाषणों को प्रायः सावधानी से संशोधित तथा प्रकाशन योग्य बनाया जाता था। इसमें सन्देह नहीं कि प्लेटो ने भी साक्रेटीज़ के लिए वही करना चाहा जिसे अन्य अभियुक्त या तो स्वतः करते थे अथवा अधिकांश प्रसंगों में अपने लिए किसी पेशेवर भाषण-लेखक से कराते थे। दूसरी ओर, यह अप्रत्याशित लगता

---

१. यूथिफ़्रो २ b.

२. Novmizein शब्द के कानूनी अर्थ का सर्वाधिक उपयुक्त अनुवाद 'उपासना' (worship) है। इस शब्द का प्राथमिक अभिप्राय 'धार्मिक मत' नहीं, वरन् कुछ प्रचलित प्रथाओं' का पालन है, यद्यपि मेलिटस को भ्रमित करने के लिए प्लेटो साक्रेटीज़ से इसके गौण अर्थ 'चिन्तन' का ही उपयोग कराता है (एपॉलाजी, २६ स)।

है कि उसने न्यायालय के समक्ष साक्रेटीज की अभिवृत्ति (Attitude) को अथवा उसकी सफाई की सामान्य प्रणाली को गलत ढंग से उपस्थित किया हो। यह पूर्णतया सत्य है कि 'एपॉलाजी' सफाई नहीं है, परन्तु इससे उस व्यक्ति का गौरव और बढ़ता है। साक्रेटीज अभियोग का तिरस्कार करता है, तथा वह विषयान्तर में जाकर कुछ ऐसे तथ्य मुकदमें में लाता है जिनसे न्यायाधीशों के सन्देह का समाधान होना कठिन था। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि 'एपालाजी' कल्पना है, जैसा कि कुछ लोग मानते हैं।[१] यह कल्पना कदापि नहीं है।

अभियोग का वास्तविक कार्य-संचालन मेलिटस को सौंपा गया, जिसने, प्लेटो के अनुसार, इसे कुचक्रपूर्ण बनाया, कुशल जिरह के सहारे साक्रेटीज ने उसे यह स्वीकार करने के लिए बाध्य किया कि वह इन्हें (साक्रेटीज को) पूर्णतः अनीश्वरवादी मानता है, परन्तु यह लगाये गये अभियोग से असंगत सिद्ध होता था। तथापि युवकों को पथ-भ्रष्ट करने के आरोप से साक्रेटीज अधिक दुःखी हुआ, तथा उसने अपने सहयोगियों के पिता तथा बड़े भाइयों को तथ्य को सिद्ध करने के लिए आव्हान भी किया, परन्तु वह दोनों आरोपों में से किसी से बचने के लिए चिंतत नहीं हुआ। मेलिटस अभियोग के किसी भी प्रमुख तथ्य को सिद्ध करने में असफल रहा, और लगता है कि उसने इसे स्वयं ठीक से नहीं समझा, परन्तु यह सब होने पर भी साक्रेटीज को दोषी ठहराया गया। बहुमत पर्याप्त था, यद्यपि साक्रेटीज कहता है कि उसे और भी प्रबल बहुमत की आशा थी। अतः उसे निश्चय हो गया कि नये देवताओं को प्रतिष्ठित करने का आरोप निराधार था, जिसे उसने कभी भी गम्भीरता से ग्रहण नहीं किया। वास्तविक आरोप इसके अतिरिक्त कुछ भिन्न था, जिसे उसे बताया नहीं गया।

अभियोक्ता द्वारा प्रस्तावित दण्ड था मृत्यु, परन्तु इसे मानने का कोई आधार नहीं है कि एनिटस की यह इच्छा थी कि इसका क्रियान्वयन किया जाय। एथेन्स के कानून में एक विशेष प्रावधान के अनुसार कुछ वर्ग के अन्तर्गत आने वाले अपराधियों के लिए यह छूट थी कि वे स्वयं अपनी सजा प्रस्तावित करें, इसका अभिप्राय यह था कि इस ढंग से सम्भवतः समुचित दण्ड

१. देखिये, 'एपॉलाजी' के शेन्ज (Schanz) द्वारा सम्पादित संस्करण की जर्मन टिप्पणियों सहित भूमिका।

दिया जा सकता है, दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तावित दण्डों में से एक को स्वीकार करने के लिए न्यायाधीश बाध्य थे, कि तथा उन्हें स्वयं कोई दण्ड प्रस्तावित करने का अधिकार नहीं था। अतः दोषी व्यक्ति का हित इसी में था कि वह कोई ऐसा दण्ड प्रस्तावित करे जिसे न्यायाधीशों द्वारा मान लेने की सम्भावना हो, इसमें सन्देह नहीं कि यदि साक्रेटीज ने निष्कासन अथवा दण्डशुल्क भुगतान की अवधि तक कारावास प्रस्तावित किया होता तो सभी लोग सन्तुष्ट हो गये होते, परन्तु उसने इस प्रकार का कोई प्रस्ताव करना अस्वीकार कर दिया। उसने कहा कि अपने आप दण्ड प्रस्तावित करने का अर्थ होगा अपराध स्वीकार कर लेना। यदि अपने योग्य कोई दण्ड प्रस्ताव उसे करना ही है, तो अपनी सजा के बारे में वह जनता के खर्चे पर आयोजित प्रिटेनियन (सामाजिक कक्ष) (the Prytaneion)में खुली सभा में विचार करेगा। यह सम्मान कभी कभी ओलम्पिक के विजेताओं तथा सर्वोपकारियों (Public Benefactors) को दिया जाता था। परन्तु अन्त में उसने एक मिनस (Mina) का अर्थ-दण्ड प्रस्तावित किया, जो अत्यन्त तुच्छ था। परन्तु अपने मित्रों के अनुरोध पर उसने इसे बढ़ाकर तीस मिनस कर दिया, ताकि इसके भुगतान में कोई आशंका न रह जाय, उन मित्रों में से प्लेटो भी एक था, और अपने एक मात्र इसी कार्य को उसने सार्वजनिक-अधिलेखा (Public Record) के योग्य समझा।

स्पष्ट है कि न्यायालय के प्रति उसके इस व्यवहार से न्यायाधीशों को क्रोध आया, क्योंकि जितने बहुमत से उन लोगों ने साक्रेटीज को अपराधी सिद्ध किया था उसकी अपेक्षा अधिक बहुमत से उन लोगों ने उसे मृत्यु-दण्ड दिया। इसके उपरान्त जिन न्यायाधीशों ने उसके विमोचन के पक्ष में मत दिया था, उन्हें सम्बोधित कर उसने एक संक्षिप्त भाषण दिया। उसने कहा कि यदि मृत्यु को सभी वस्तुओं का अन्त मान भी लिया जाय, तो यह स्वप्न-रहित निद्रा से बढ़कर अमंगल (evil) नहीं है, तथा ऐसी किसी रात्रि की अपेक्षा कुछ जाग्रत दिवस श्रेष्ठतर है। उसने अत्यन्त स्पष्ट रुप से यह भी यह भी संकेत किया कि उसका अपना विश्वास है कि आत्मा अमर है, तथा सज्जन व्यक्ति को दूसरे जन्म में भयभीत होने का कोई कारण नहीं। इस प्रकार उसने अपने न्यायाधीशों से बिदा ली। "अब प्रस्थान का समय आ गया है, मुझे मृत्यु-पथ पर जाना है, और तुम्हें जीवन-पथ पर। इनमें से कौन-सा मार्ग उत्तम है इसे ईश्वर के अतिरिक्त और

कोई नहीं जानता"।[1]

आरोपित अपराध

अब प्रश्न यह है कि साक्रेटीज़ के ऊपर अधार्मिकता का आरोप क्यों लगाया गया, तथा उसे मृत्यु-दण्ड क्यों दिया गया। हमें इस धारणा का तत्काल परित्याग कर देना चाहिये कि देवताओं के बारे में कथाओं पर अविश्वास करने के कारण यह सब हुआ। किसी भी शिक्षित व्यक्ति के लिए इनमें विश्वास करना अस्वाभाविक है, तथा अशिक्षित लोग सम्भवतः उनके बारे में बहुत कम जानते थे।[2] उस समय चर्च तथा पुजारी के पद नहीं थे, अतएव धार्मिक अनुपन्थिता (Orthodoxy) के सम्प्रत्यय का भी अस्तित्व नहीं था। जहाँ तक पुराख्यान का प्रश्न है, आप को सभी प्रकार की स्वतन्त्रता है। एस्चिलस (Aischylos) को उसके Prometheus (ग्रीक पुराख्यान के एक व्यक्ति से सम्बद्ध कृति) के लिए कोई भी दोषी नहीं बनाना चाहता। परन्तु आधुनिक प्रतिमानों के आधार पर यदि निर्णय लिया जाय तो वह विशुद्ध धर्म-निन्दा है। उसे कुछ इलूसिनियस सूत्र को असावधानी से बताने के कारण थोड़ी परेशानी अवश्य उठानी पड़ी। दोनों का वैषम्य यहाँ उल्लेखनीय है। यदि किसी के लिए यह आवश्यक होता है कि वह देवताओं से सम्बन्धित कथाओं का आदर करें, तो एरिस्टोफ़ेनीज़ साक्रेटीज़ से मुक्त नहीं रह पाता। वह जियस (Zeus) का भी मजाक उड़ाने में नहीं हिचकता, तथा एक सुखान्तिकी में डायोनिसस को एक असभ्य पुरुष की भाँति प्रदर्शित करता है, जो सुखान्तिकी उसी देवता की उपासना की वस्तुतः एक अंग थी, तथा उसके पुरोहित की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। 'फ़ीड्रस' (२२९c sqq) में दिखाया गया है कि पुराख्यानों की सत्यता के बारे में साक्रेटीज़ पूर्णतया उदासीन है, यद्यपि वह बौद्धिक इतिहासकारों के 'असंस्कृत परिहासों' द्वारा उत्पन्न पाठान्तरों की अपेक्षा

---

१. 'एपॉलाजी' से वस्तुतः यह अनुमान लगाया गया है कि 'ऐतिहासिक साक्रेटीज़' का अमरता में कोई निश्चित विश्वास नहीं था, तथा इसका प्रयोग 'फ़ीडो' को अविश्वसनीय सिद्ध करने के लिए किया गया है ऐसा मत धारण करने वाले व्यक्ति से मेरा केवल इतना ही अनुरोध है कि इस अंश को स्वर से पढ़े, तथा यह देखें कि उन पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है। यह सत्य है साक्रेटीज जहाँ भाषण दे रहा था वह एक ढंग से आमसभा ही थी, तथा वह जानता था कि उसके कुछ श्रोताओं का यही मत था। अतः यहाँ पर कुछ अनिवार्य संकोच है, परन्तु मात्र इतना ही।

२. Arist. Poet. १४५१ b, २५,

उन कहानियों के परम्परागत पाठों को अधिक पसन्द करता था। एक बात में वह अवश्य दृढ़-निश्चयी है। वह यह कि जो कथानक देवताओं की असत्य-वादिता, चातुर्य तथा कलह से सम्बन्धित हैं उनको दुहराना घातक है, तथा 'यूथिफ़्रो' (६ a) में वह इंगित करता है कि सम्भवतः इसी कारण उसे धर्म में एक नयी परम्परा का प्रवर्तक माना जाता है। परन्तु इस संकेत में कोई गम्भीरता नहीं है, तथा इससे यूथिफ्रो भी आश्चर्य-चकित नहीं, होता यद्यपि वह स्वयं इस प्रकार की कथाओं को विदेशी मानता है। तथ्य यह है कि किन्हीं आख्यानों में विश्वास करना प्राचीन धर्म का अंग नहीं था। कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा नुसार इन्हें स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने में स्वतन्त्र था। पुराख्यानों को कवियों की कृति माना जाता था, तथा 'कवि अनेक मिथ्या बातें करते हैं। 'किसी को भी 'धार्मिक मत'[१] के कारण दण्डित नही किया जा सकता।

यह भी विश्वास नहीं होता कि दिव्य 'वाणी' का अभियोग (Prosecution) से कोई सम्बन्ध था। यह सत्य है कि यूथिफ़्रो को इस प्रकार के निष्कर्ष पर जल्दी से पहुँचते हुए दिखाया गया है, क्योंकि इस प्रकार की बात में वह स्वयं उत्सुक था। साथ ही साथ वह इसे अत्यन्त स्पष्ट कर देता है कि उसके मत के अनुसार साक्रेटीज को इस प्रकार के आरोप से भयभीत नहीं होना चाहिये, यद्यपि उसे यह उम्मीद करनी चाहिये कि लोग उस पर हँसेंगे। 'एपॉलाजी' में प्लेटो ने स्वयं साक्रेटीज को यह कहते हुए दिखाया है कि सम्भवतः दिव्य वाणी को ही मेलिटस ने विकृत किया, तथा अपने अभियोग में आरोप का आधार बनाया। परन्तु जिस ढँग से वह इसे कहता है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि मेलिटस का ऐसा कोई अभिप्राय न था, न ही उसने 'वाणी' के बारे में कुछ कहा है।[३] एथेन्स के लोग साक्रेटीज को उसकी वाणी तथा उसकी उप-समाधियों के कारण उसे विपथगामी (cceentric) समझ सकते थे, तथा समझे भी, तथा जैसा कि यूथिफ्रो कहता है, ऐसी बातों में लोगों को शीघ्र

---

१. cf. p. ७६, n.२.

२. Euthyphro, ३b sq.

३. Apology, ३१d प्रोफेसर टेलर की (Varia socratica, i. ८. १४) की व्याख्या ही मुझे सन्तोषजनक लगती है। साक्रेटीज कहता है कि जब मेलिटस ने 'अभियोग में' देव (Demon) शब्द का प्रयोग किया तो उसका अभिप्राय दिव्य वाणी से था। अतः यह स्पष्ट है कि मेलिटस ने 'अपने भाषण में' इसके बारे में कुछ नहीं कहा।

भ्रान्ति होती है,[1] तथा लोगद्वेष करने लगते हैं। परन्तु 'अधिकार' (possession) में विश्वास अत्यधिक दृढ़ता से स्थापित हो चुका था, तथा इसके उदाहरण भी बहुत प्रचलित हो गये थे, जिसके कारण इस प्रकार की किसी बात को आधार मान कर अधार्मिकता का आरोप लगाना सम्भव हुआ। यह सर्वमान्य मत था कि इस प्रकार की बातें एक ढंग की व्याधि हैं जिनका उपचार 'शुद्धियों' से हो सकता है, परन्तु ऐसा माना जाता था कि पागलपन तथा मूर्च्छा से भी रोगी 'पावन' (holy) होता है। सामान्य एथेन्सवासी के दृष्टिकोण से अधार्मिक वह व्यक्ति होगा जो 'वाणी' का अनादर करता हो।[2]

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि नये देवताओं को प्रतिष्ठित करने का आरोप कोई नया नहीं था, क्योंकि इसका निश्चित रूप से एक पीढ़ी पहले ही एरिस्टोफ़ेनीज ने विधान कर दिया था। 'क्लाउड्स' में साक्रेटीज घोषणा करता है कि जीयस को पदच्युत कर दिया गया है, तथा उसके स्थान पर 'आवर्त' (Vortex) शासन कर रहा है। वह बादलों की प्रार्थना करता है तथा श्वास (Respiration), अव्यवस्था, (Chaos), तथा वायु (air) का नाम लेकर शपथ ग्रहण करता है। स्मरणीय है कि अपोलोनिया निवासी डायोजिनीज वायु को एक 'देवता' मानता है। ऐसी स्थिति में यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि एरिस्टोफ़ेनीज 'वाणी' की ओर तनिक भी संकेत नहीं करता, यद्यपि उसे इसके बारे में सभी कुछ ज्ञात रहा होगा, और वाणी रोचक प्रहसन का विषय बन जायेगी। उसका अभाव अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि साक्रेटीज की उपसमाधियों के बारे में एक संकेत वर्तमान है (१५०)। जेनोफ़ेन और अधिक उल्लेखनीय है। वह कहता है कि साक्रेटीज के मुकदमे के बारे में उसे हर्मोजिनीज से सूचना मिली, तथा इसमें सन्देह नहीं कि धार्मिक जेनोफ़ेन इस आरोप के अभिप्राय को समझने के लिए सभी सम्भव प्रयास करने को उद्यत रहा होगा। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उसे इसका कोई निश्चित कारण मिला नहीं, क्योंकि वह इसे केवल अपने व्यक्तिगत मत के रूप में व्यक्त करता है कि अभियोक्ताओं ने 'वाणी' को ही अपना प्रमुख आधार बनाया होगा, तथा यह बहुत सम्भव है कि वह प्लेटो की 'एपॉलाजी' तथा 'यूथिफ्रो' की ही बातों का पुनरावर्तन-मात्र कर रहा हो। वह स्वयं अपनी 'एपॉलाजी' में साक्रेटीज से 'वाणी'

---

१. eudiabona शब्द का अर्थ है 'अब अधिक नहीं'।
२. साधारण धर्म-भीरू व्यक्ति के लिए 'वाणी' का अर्थ सामान्यतया कुलदेवता के आदेश जैसा होगा।

के विषय में जो कुछ कहलाता है, वह बहुत कुछ प्लेटो के ग्रन्थों के समान ही है। वह यूथिफ्रो की भाँति साक्रेटीज से कहलाता है कि एथेन्स के लोग इसे विशेष दैवी अनुग्रह समझकर इससे द्वेष करते हैं। वस्तुतः सभी लोग आरोप के कारण के बारे में परिकल्पनाएँ करते हैं, तथा एक तथ्य अत्यन्त स्पष्ट है कि किसी को भी, यहाँ तक कि अभियोग लगाने वाले को भी, इसका कारण ज्ञात नहीं प्रतीत होता। इससे यह अनुमान लगता है कि नये देवताओं को प्रतिष्ठित करने के आरोप का उल्लेख अभियोग में था अवश्य, परन्तु इसे विचारणा के समय न तो स्पष्ट किया गया, न सिद्ध किया गया। ऐसी बातें एथेन्स की न्यायपालिका (dikastry) में सम्भव थीं, जो न्यायालय की अपेक्षा आम-सभा के अधिक निकट थी। वहाँ पर ऐसा कोई न्यायधीश नहीं था जो अभियोग से असंगत चालान पर नियन्त्रण कर सके।

वास्तविक अपराध

परन्तु, यदि तद्विषयक यह विवरण सही है, तो इससे सिद्ध होता है कि यह अभियोग एक पूर्व-भूमिका मात्र था। इससे स्पष्ट होता है कि कैसे मेलिटस सरलता से साक्रेटीज के शब्द-जाल में फँस गया, तथा अनीश्वरवादिता के आरोप के स्थान पर उसने साक्रेटीज पर विदेशी देवताओं को प्रतिष्ठित करने का आरोप लगाया। इससे न्यायाधीशों की कार्य-पद्धति को भी अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है। हमें ज्ञात है कि उनमें से कुछ ने साक्रेटीज के विरूद्ध लगाये गये आरोप के विरूद्ध उसकी मुक्ति के लिए मत देकर बाद में अपनी धारणा बदल दी तथा उसके लिए मृत्यु-दण्ड के पक्ष में मत दिये। इसमें सन्देह नहीं कि आंशिक रूप से इसका कारण था अपने द्वितीय भाषण में साक्रेटीज का रूख। परन्तु केवल इसी से पूरी बात स्पष्ट नहीं होती। न्याया-लय के अपमान के लिए मृत्यु-दण्ड देना अन्तिम दण्ड है; तथा उन न्यायाधीशों ने साक्रेटीज को किसी न किसी बात के लिए दोषी अवश्य समझा होगा। यदि हम यह मान लें कि कुछ कारणवश अभियोग के वास्तविक कारण को अभियोग में उल्लिखित नहीं किया जा सकता था, तथा कुछ न्यायाधीशों ने किसी व्यक्ति को ऐसे अपराध के लिए दोषी ठहराना उचित नहीं समझा, जो अपराध उस पर ओपचारिक रूप से लगाये न गये हों, भले ही वे लोग उसे ऐसे कार्य के लिए दोषी समझते हों, तो सभी बातें स्पष्ट हो जाती हैं। उक्त प्रसंग में उनके विचार-परिवर्तन का स्पष्टीकरण साक्रेटीज की अवज्ञापूर्ण प्रवृत्ति से होता है।

हमें ज्ञात है कि साक्रेटीज ने त्रिशक (Thirty) के अवैधानिक आदेशों का पालन करने से अस्वीकार कर दिया था, परन्तु हमें यह भी ज्ञात है कि वह एथेन्स छोड़कर अन्यत्र नहीं गया। अतः उस पर निष्ठाहीन नागरिकता (incivisme) का सन्देह किया गया, परन्तु क्षमादान के कारण उस पर विशुद्ध राजनैतिक अपराध के लिए आरोप लगाना सम्भव नहीं था। प्लेटो यथासम्भव स्पष्टतम शब्दों के द्वारा यह संकेत करता है कि साक्रेटीज की मृत्यु वास्तव में उसकी राजनैतिक अभिवृत्ति के कारण हुई। ऐसे दो स्थल हैं जहाँ पर यह दिखाया गया है कि वह पेरिक्लीज सहित पाँचवीं शताब्दी के लोकतान्त्रिक नेताओं की अत्यन्त कटु आलोचना करता था। 'जॉर्जियस' (५२१ c) में एक स्थल पर लोकतान्त्रिक राजनियक कैलिक्लीज (kallikles) कठोर शब्दों में उससे कहता है कि यदि वह उनके मार्गों में त्रुटियां दिखाने के स्थान पर लोकतन्त्र का गुणगान करना स्वीकार नहीं करता तो उसे किसी संतप्त पापी द्वारा न्यायालय में बलात् उपस्थित किया जा सकता है, और तब उसकी कोई भी दुर्दशा हो सकती है। दूसरा स्थल 'मीनों' में है जहाँ स्वयं एनिटस को इस प्रकार की चेतावनी देने के लिए मंच पर लाया जाता है। इसका निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण अभिप्राय है। एनिटस प्रमुख वक्ता नहीं हैं, तथा स्पष्ट है कि उसे पूर्णतया इसी प्रयोजन के लिए लाया गया है। लोकतन्त्र के नेताओं के बारे में साक्रेटीज की आलोचनाओं को अधीरता से सुनने के उपरान्त वह कहता है (१४ e), "हे साक्रेटीज मैं समझता हूँ कि तुम लोगों को तिरस्कृत करने के लिए उद्यत हो। यदि तुम मेरी सलाह मान सको तो, मैं तुम्हें सावधान रहने की सलाह दूंगा। मैं समझता हूँ कि दूसरे नगरों में भी किसी बात को सही दिशा में मोड़ने की अपेक्षा अपकार करना अधिक सरल है, तथा इस शहर में ऐसा होना अत्यन्त स्वाभाविक है।" ये बहुत ही व्यापक संकेत हैं, तथा प्लेटो ने जानबूझकर इन्हें घटना के कुछ समय उपरान्त अंकित किया। इनका तात्पर्य यही है कि लोकतन्त्र तथा इसके नेताओं की आलोचना करना ही साक्रेटीज का वास्तविक अपराध था। प्लेटो के संवादों के किसी भी पात्र ने कभी भी उसे यह संकेत नहीं दिया कि अनधिकृत देवताओं के सम्बन्ध में प्राय वह जो बातें किया करता हैं उससे उसे सावधान रहना चाहिये, तथा उससे कोई यह भी संकेत नहीं करता कि यदि वह 'वाणी' को अपने तक ही सीमित रखे, तो अधिक बुद्धिमानी होगी।

इस दृष्टि से 'एपॉलाजो' (३९ d) में साक्रेटीज का वह कथन अत्यन्त

महत्त्वपूर्ण है जिसमें वह कहता है कि यदि उसके देशवासी उसे मृत्यु-दण्ड दे दें तो भी वे अपने को आलोचनाओं से मुक्त नहीं कर सकते। ऐसे बहुत से लोग हैं जो उनके रहस्यों का पर्दाफांश करेंगे, तथा वे युवक होने के कारण और भी अधिक कटु आलोचना कर सकेंगे। तात्पर्य यह कि वस्तुत: कैलिक्लीज तथा एनिटस जिस दोष के बारे में संकेत करते हैं वही अभियोग का वास्तविक आधार था। वह दोष यह था कि साक्रेटीज ने युवकों में ऐसी लोकतन्त्र-विरोधी भावनाओं को बीजारोंपित किया था जिसके कारण अल्पतन्त्रीय (Oligarchical) क्रान्तियाँ हुई। लगभग पचास वर्षों बाद एश्चिनीज इस बात को अत्यन्त कर्कशता से व्यक्त करता है। वह कहता है (१.१७३) कि एथेन्सवासियों ने 'सोफिस्ट साक्रेटीज को इसलिये मृत्युदण्ड दिया क्योंकि उनका विश्वास था कि उसने क्रिटिअस (Kritias) को शिक्षा दी थी', तथा हमने देखा है कि उसके मुकदमे के दस वर्षों के भीतर ही सोस्फ्रिट पॉलिक्रेटीज ने उस पर अल्कि-वियाडीज को शिक्षित करने का अभियोग लगाया। वस्तुत: ऐसा प्रतीत होता है कि पॉलिक्रेटीज ने इस वक्तव्य को लिखा था, और राज-क्षमा यदि मार्ग में अवरोधक न होती तो एनिटस ने विचारणा के समय यह व्याख्यान दिया होता। यह प्रसंग मेलिटस जैसे एक अपेक्षाकृत कम उत्तरदायी व्यक्ति के द्वारा उपस्थित किया गया, यह 'एपॉलाजी' (३३ a) में साक्रेटीज के एक संकेत से स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है। साक्रेटीज कहता है कि "वे लोग जिन्हें हमारा शिष्य बताया जाता है।" जेनोफेन भी अपनी 'स्मरणिका' (memorabilia, १. २. १२. sqq) में इस कथन पर बल देता है कि 'क्रिटियस तथा एल्कि-वियाडीज वस्तुत: साक्रेटीज के शिष्य नहीं थे,

यह कहना अनुचित न होगा कि ऐनिटस स्वयं अपने दृष्टिकोण से सवर्था गलत न था। जेनोफेन ने अवश्य उसे व्यक्तिगत अभिप्रेरणा से प्रेरित बताया है। अपनी 'एपॉलाजी' (२ a) में वह कहता है कि साक्रेटीज से वह क्रुद्ध इसलिये था क्योंकि साक्रेटीज ने उससे कहा था कि उसे अपने लड़के को अपने पैत्रिक चर्मकार के व्यवसाय के स्थान पर उदार (liberal) शिक्षा देनी चाहिये। उसके इस कथन में कितना सत्य है यह कहना कठिन है, परन्तु यह निश्चित है कि कुछ अन्य कारण भी थे जिससे एनिटस साक्रेटीज को एथेन्स से निष्काषित करना चाहता था। इसमें सन्देह नहीं कि पेरिक्लियन लोकतन्त्र का प्रचण्ड विरोधी था, उसके अनुसार इस लोकतन्त्र की मौलिक मान्यता थी कि राजनीति में परिपक्व ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। जलयान-निर्माण अथवा

दुर्ग-निर्माण सम्बन्धी प्रश्नों पर उसे विशेषज्ञों की सलाह की आवश्यकता होगी, परन्तु जब राष्ट्रीय नीति-निर्धारण के समय उचित अथवा अनुचित का महत्त्व-पूर्ण प्रश्न उपस्थित हो, तो जो कोई भी उठकर बोलने लगे, उसी को न्यायाधीश के समान उपयुक्त तथा योग्य मान लिया जाता था। प्लेटो के अनुसार वह इस सीमा तक पहुँचा कि उसने पेरक्लीज सहित सभी लोकतान्त्रिक नेताओं की राजमर्मज्ञ (Statesman) की उपाधियों को अमान्य कर दिया। 'रिपब्लिक' में हम लोकतान्त्रिक राज्य की एक रूप रेखा पाते हैं, और यह निश्चित-रूपेण पाँचवीं शताब्दी के एथेन्स का विवरण है। यह प्लेटो के काल के जड़-पूँजावादी लोकतन्त्र का विवरण नहीं है। और यह विवरण किंचिद् अतिरंजित भी नहीं है। यह सत्य है कि जो युवक सात्रेटीज के आस-पास रहते थे वे उसके विध्यात्मक उपदेशों की अपेक्षा उसकी वर्तमान प्रथाओं की प्रखर आलोचनाओं से अधिक प्रभावित होते थे, सर्व प्रथम तो वे लोकतन्त्र के विरोधी होंगे, तथा इस पर उसके प्रहार से प्रसन्न होंगे। यह सत्य है कि उनमें से अनेक राजमर्मज्ञ होने की अपेक्षा अश्लील अल्पतन्त्री (Oligarch) बन गये। यह परिस्थिति की विडम्बना है। साक्रेटीज इसके लिए उत्तरदायी नहीं था, परन्तु स्थिति तो यही थी। एनिटस तथा उसके साथी पुनः स्थापित लोकतन्त्र को व्यवस्थित करने में व्यस्त थे, तथा वे अपने कार्य को प्रतिक्रिया के भरोसे नहीं छोड़ सकते थे। उन्हें इस विश्वास के लिए पर्याप्त आधार था कि साक्रेटीज की शिक्षा इस विधान में सन्देह उत्पन्न करती है, अतः यदि उन लोगों ने, तदनुसार, कुछ कदम उठाया तो इसमें आश्चर्य को बात नहीं। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि सम्भवतः वे साक्रेटीज को मृत्युदण्ड नहीं देना चाहते थे, परन्तु उसके निष्कासन की इच्छा उनके लिए स्वाभाविक थी। ऐसी परिस्थितियों में हम सरलता से समझ सकते हैं कि क्यों साक्रेटीज की मृत्यु के बाद उसके कुछ मित्रों ने थोड़े समय के लिए एथेन्स छोड़कर बाहर चला जाना हितकर समझा। यहाँ तक कि प्लेटो भी बाहर चला गया था, यद्यपि, हम देखेंगे कि, जिस अल्पतन्त्री क्रान्ति में उसके बन्धुजन व्यस्त थे उसने उनसे अपने को अलग रखा तथा उसकी अभिलाषा थी कि वह पुनः स्थापित लोकतन्त्र के अन्तर्गत सामाजिक जीवन में प्रवेश करे सौभाग्य से उसे अधिक उपयुक्त व्यवसाय मिल गया।

मिथ्यारोपण (PRETEXT)

यदि हम यह मान लें कि अधार्मिकता का आरोप केवल बहाना था, तो भी यह सत्य-सदृश अवश्य रहा होगा, क्योंकि यदि अभियोग लगाने वालों को

पंचमांश मत न मिलते तो उनके समक्ष भारी अर्थ दण्ड लगने का संकट था। अतः हमारे सामने प्रश्न यह है कि आरोप के औचित्य को सिद्ध करने का क्या कोई आधार था, जिसके आधार पर एनिटस जैसा राजमर्मज्ञ व्यक्ति साक्रेटीज के विरुद्ध समुचित पूर्वाग्रह (prejudice) उत्पन्न कर सके। यदि हम यह प्रश्न पूछें तो तत्काल इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि जिस वर्ष साक्रेटीज का परीक्षण हुआ था उसी वर्ष एन्डोकिडीज (Andokides) सोलह वर्ष पूर्व हर्मीज (Hermes) की मूर्तियों को विकृत करने तथा रहस्यों के अपवित्रीकरण से अपने सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए न्यायाधीशों के समक्ष एक बार पुनः उपस्थित हुआ था। हम यह भी पाते हैं कि एनिटस ने उसके पक्ष में कथन किया था, क्योंकि ये तथ्योद्घाटन लोकतान्त्रिक दल के लिए उपयोगी थे। इस प्राचीन परिवाद की सत्यता के बारे में हम कभी भी नहीं जान पायेंगे, परन्तु एन्डोकिडीज का भाषण न केवल उस काल का, वरन् पुनः स्थापित लोकतंत्र का भी, जनता की भावनात्मक स्थिति के लिए बहुमूल्य प्रलेख (document) है। यह निश्चित है कि साधारण एथेन्सवासियों के लिए मूर्तियों की विकृति का रहस्यों के अपवित्रीकरण से घनिष्ट सम्बन्ध है, तथा वे दोनों कार्य किसी न किसी ढंग से से लोकतन्त्र को समाप्त करने में सहायक माने जाते थे। निःसन्देह यह एक भ्रान्ति थी। विकृति का रहस्यों के अपवित्रीकरण से सम्भवतः कोई सम्बन्ध नही था, तथा रहस्य भी जन-मानस में विकलित रूप में उपस्थित हो गये थे। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि एथेन्स के कुछ अत्यन्त प्रतिभाशाली एवं प्रबुद्ध लोग भी इलूसिनियन कर्मकाण्डों के विनोदार्थ शब्द-परिवर्तनों में आनन्द लेते थे, ऐसा केवल एक बार अथवा एक ही स्थान पर नही हुआ, वरन् नियमित रूप से तथा अनेक व्यक्तियों के आवासों पर होता था। दूसरी ओर, ऐसा प्रमाण मिलता है कि कुछ कार्यवाहियां ऐसी हुई जिनका उस पृष्ठभूमि में प्रतिनिधित्व सम्भव है। यह प्रमाण इतना प्रबल है कि इसे अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता, तथा इसमे आधुनिक पाठक के मन में ऐसा विचार उठता है कि वहाँ पर प्रस्तरशिल्पियों को मकानों की बैठकों जैसा कुछ अवश्य रहा होगा, तथा, अतिरंजित जनश्रुति के कारण अत्यन्त पवित्र धार्मिक कृत्य भी धर्म-विरोधी दम्भका रूप धारण कर लिये होंगे।

उन न्यायाधीशों में से बहुत से इस बात को अवश्य ही भली भाँति जानते होंगे कि साक्रेटीज के कुछ अत्यन्त घनिष्ट सहयोगी भी इस कार्य में सम्बद्ध होंगे। उदाहरण के लिए, स्कैम्बोनिडाई निवासी एक्जिओकस (Axio-

chos) तथा अल्किबियाडीज के चाचा, एवं ल्यूकोलोफिडीज के पुत्र एडेमेन्टस के बारे में कोई सन्देह नहीं है।[१] इन तीनों को अल्क्मेनिडीज की पत्नी अगरिस्टे (Agariste) ने तिरस्कृत किया था। अगरिस्टे अपने ही बन्धुजन से विवाह करने के पूर्व एक उच्च कुलोत्पन्न महिला तथा एक डेमन् (Daman) की पत्नी थी।[२] बहुत सम्भव है कि यह वही डेमन हो जिसका उल्लेख साक्रेटीज ने संगीत के विशेषज्ञ के रूप में किया है। यदि यह सत्य है, तो उल्लेखनीय है कि एक अभियुक्त को टोरियस (Taureas) नाम से पुकारा गया, तथा यह उस व्यायामशाला (palaistra) के मालिक का नाम है जिसमें क्रिटियस ने चार्मिडीज का साक्रेटीज से परिचय कराया।[३] पुनश्च, यदि हम यह स्मरण करें कि 'सिम्पोजियम' में उल्लिखित भोज उसी वर्ष दिया गया था जिस वर्ष यह कलंक लगा, तो भी इसमें सन्देह है कि दोषी व्यक्तियों में एकूमेनस (Akoumenos), एरिजिमेकस (Eryximachos) तथा फ़ेड्रस (Phaidros) के भी नाम सम्मिलित थे।[४] एकूमेनस एक प्रसिद्ध चिकित्सक था, तथा उसका नाम भी विचित्र है। इस नाम से किसी दूसरे व्यक्ति के होने का हमें ज्ञान नहीं है। वह उस भोज नें उपस्थित नहीं था, यद्यपि उसके पुत्र एरिजिमेकस ने भी, जो पिता की ही भाँति चिकित्सक था, वहाँ पर भाषण दिया था। फ़ेड्रस अप्रचलित नाम नहीं है, अतः यह निश्चित नहीं कि यहाँ पर मिर्हिनस (Myrrhinous) वासी फेड्रस था, या कोई अन्य। यह अवश्य बताया गया है कि वह एरिजिमेकस का 'सहयोगी' था।[५] तथा यह कोई विशेष उल्लेखनीय संयोग नहीं है कि तीनों नाम वहाँ मिलें। जो भी हो, हम यह जानते हैं कि इस प्राचीन व्यवसाय में जनता की रूचि पुनः जागृत हो गयी थी, और यही आवश्यक पूर्वाग्रह का वातावरण बनाने के लिए पर्याप्त होगा।' 'क्लाउड्स' की स्मृतियाँ बाकी कार्य को पूरा कर देंगी।

पूर्वोक्त कारणों के आधार पर मैं मानता हूँ कि साक्रेटीज के विरुद्ध इस आधार पर अथवा धर्म के विरुद्ध अन्य किसी विशेष अपराध के आधार पर

---

१. उसके जब्त सामानों के आम विक्रय का उल्लेख आज भी अभिलेखों में मिलता है, जहाँ उसका पूरा नाम दिया गया है, एक्जिओकस अल्किबियाडीज स्कैम्बोनिडाई (Dittenberger, Sylloge. ३९. ४१, ४२, ४५).
२. Andok. I. १६.
३. Ib. १. ४७, Plato, Charm. १५३ a.
४. Andok. १. १५, १८, ३५.
५. Plato, Phaedr. २६६ a.

कोई स्पष्ट आरोप नहीं लगाया गया था, परन्तु यह सभी लोग जानते थे, तथा उसके जीवनकाल में ऐसी पर्याप्त परिस्थितियां थीं जिनके कारण उसका इस आरोप से सम्बन्ध जोड़ा जा सकता था। एथेन्स के लोग यह अवश्य मानते थे कि वह एक विचित्र ढंग के धार्मिक कृत्यों में भाग लेता था, क्योंकि एरिस्टोफेनीज को यह विश्वास था कि उसके श्रोता उसके तत्सम्बन्धी संकेतों को समझते हैं। एश्चिनीज (Aischines) ने एक संवाद लिखा जिसमें साक्रेटीज को एक पाइथागोरियन दूर-सन्देशवाहक (Telantes) से वार्तालाप करते हुए दिखलाया गया है। प्लेटो उसको आर्फिक विचारधाराओं से ओतप्रोत व्यक्ति के रूप में उपस्थित करता है, परन्तु, जैसा कि मैंने कहा है, कुछ अनिवार्य कारणों से हम ऐसा नहीं मान सकते कि उसने उन विचारों को बिना विचार किये ही ग्रहण कर लिया। मेरी समझ से उसके पाइथागोरियन मित्रों का इसमें कोई हाथ नहीं था, क्योंकि जो आर्फिक आत्मवाद साक्रेटीज को बहुत आकर्षक लगता था।[1] उसका अभ्यास उन लोगों ने समाप्त कर दिया था। वस्तुतः यह दिखाया गया है कि स्वयं साक्रेटीज ही उन्हें पुनः पूर्ववर्ती पाइथागोरियन विश्वास की ओर अनुरक्त करना चाहता था। इन सबको हम काल्पनिक नहीं मान सकते। इस परिकल्पना में प्लेटो का क्या अभिप्राय रहा होगा ? जहाँ तक हमें ज्ञात है, उसके समय में आर्फिक मत का आशातीत पतन हो चुका था, तथा यह सम्भव नहीं है कि वह इस मत से आकृष्ट हुआ हो, साक्रेटीज की युवावस्था में स्थिति अवश्य कुछ भिन्न रही होगी। हमें ज्ञात है कि साक्रेटीज के जन्म के आस-पास के समय में एक पिण्डार (Pindar) कवि इस सिद्धान्त से अभिप्रेरित हुआ था।

साक्रेटीज की मृत्यु

साक्रेटीज को तत्काल मृत्यु के मुख में नहीं डाला गया। उस समय डेलियन अपोलो (Delian Apollo) का समारोह था, तथा एथेन्स के लोग प्रतिवर्ष जिस जलयान को डेलास(Delos) भेजते हैं उसे परीक्षण के ठीक एक दिन पूर्व विधिवत् पुष्पमालाओं से सुसज्जित किया गया था। उस समय विधान था कि जहाज जब तक डेलास जाकर लौट न आवे, तब तक लोक-

---

१. यह द्रष्टव्य है कि वहाँ पर मैं अपने सहयोगी प्रोफेसर टेलर के Varia Socratica में उल्लिखित निष्कर्षों से असहमत हूँ; तथा मुझे इस पर अधिक बल देना आवश्यक नहीं। अन्य स्थलों पर मेरी उनसे सहमति भी स्पष्ट होगी।

अधिकारी अपने हाथों किसी व्यक्ति का बध करके नगर को दूषित न करें। अतः साक्रेटीज को दण्डादेश के क्रियान्वयन के पूर्व एक मास तक कारावास में बिताना पड़ा। उसने यह अवधि अपने मित्रों से वार्तालाप में बितायी। उनमें से कई ऐसे मित्र भी थे जो उससे विदा लेने के लिए यवन प्रदेश (Hellas) के अन्य भागों से आये थे। एक महीने की अवधि के अन्दर कारावास में से निकल भागना उसके लिए अत्यन्त सरल था, तथा उसके मित्र इसके लिए सभी आवश्यक व्यय वहन करने के लिए तैयार थे। परन्तु, जैसा कि हमने देखा है, साक्रेटीज कानून का दृढ़ समर्थक था, तथा वह स्वयं अपने प्रसंग में ही अपवाद उत्पन्न कर कानून को अयोग्य सिद्ध नहीं करना चाहता था। यह दण्ड चाहे जितना भी अनुचित हो, इसका उद्घोषण वैधानिक था। तथा एक अच्छा नागरिक इसे अस्वीकार नहीं कर सकता। अपने देश के कानूनों के कारण ही उसका सर्वस्व था, तथा उसका यह कर्तव्य नहीं है कि वह उन पर सन्देह करे।

प्लेटो ने 'फ़ीडो' में साक्रेटीज की इस दुनियां के अन्तिम क्षणों का वर्णन किया है। सम्पूर्ण यूरोपीय साहित्य में इस विवरण का समकक्ष मिलना कठिन है, तथा इसका पदान्वय करना असम्भव है। 'फ़ीडो' के अन्तिम शब्द इस प्रकार हैं,—"एचीक्रेटीज ! इस प्रकार हम लोगों के सहयोगी का अन्त हुआ, ऐसा व्यक्ति, जिसे हम उस समय का सर्वश्रेष्ठ पुरुष, सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी, तथा सबसे बड़ा चरित्रवान व्यक्ति कह सकते हैं।"

११

डेमोक्रिटस (DEMOKRITOS)

डेमोक्रिटस द्वारा एक सर्वथा स्वतन्त्र नवनिर्माण का प्रयास किया गया। अपने समकालीन साक्रेटीज़ की भाँति इसे भी ज्ञान के सम्बन्ध में अपने सह-नागरिक प्रोटागोरस तथा अन्य लोगों द्वारा उठायी गयी समस्याओं का सामना करना पड़ा। साक्रेटीज़ की ही भाँति उसने भी चरित्र-सम्बन्धी प्रश्न पर अधिक ध्यान दिया, जिसे सोफ़िस्टों ने बलात् अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बना दिया था। परन्तु साक्रेटीज़ और उसमें असमानता यह थी कि वह बहुत से ग्रन्थों का लेखक था। तथा इसके ग्रन्थों के अवशेषों से हम आज भी यह देख सकते हैं कि वह प्राचीन काल का एक महान् लेखक था। परन्तु हम तो प्रायः ऐसी स्थिति में हैं मानो उसने कुछ लिखा ही न हो, तथा वस्तुतः हम उसके बारे में साक्रेटीज़ की अपेक्षा भी बहुत कम जानते हैं। इसका कारण यह है कि उसका लेखन कार्य एब्डेरा (Abdera) नामक स्थान पर हुआ, तथा उसकी रचनाएं कभी भी एथेन्स में पूर्णतः प्रचलित नहीं हो पायी, जहाँ अकादमी के ग्रन्थालय में एनेक्ज़ागोरस तथा अन्य लोगों कि रचनाओं की भाँति उनके सुरक्षित रहने की अधिक सम्भावना थी। यह स्पष्ट ज्ञात नहीं है कि प्लेटो को डेमोक्रिटस के बारे में पता था या नहीं, क्योंकि 'टिमयस' (Timaeus) में तथा अन्यत्र उपलब्ध जिन कतिपय स्थलों पर वह डेमोक्रिटस को प्रत्युत्पादित करता हुआ प्रतीत होता है उन अंशों की पाइथागोरियन प्रभावों से सरलता से व्याख्या हो जाती है, तथा पाइथागोरियन मत से दोनों ही प्रभावित थे। इसके विपरीत, एरिस्टॉटल डेमोक्रिटस को भली-भाँति जानता था, क्योंकि वह भी उत्तरी क्षेत्र का ही आयोनियन था।

तथापि यह निश्चित है कि डेमोक्रिटियन काम (जिसमें ल्यूसिपस तथा अन्य लोगों के साथ ही साथ डेमॉक्रिटस के भी ग्रन्थ सम्मिलित थे) का अस्तित्व अक्षुण्ण रहा, क्योंकि यह सम्प्रदाय यवन कालों तक भी एब्डेरा तथा टिऑस

(Teos) में प्रचलित रहा। अतः टिवेरियस (Tiberius) के शासन-काल में थ्रेसिलस (Thrasyllos) के लिए यह सम्भव हो सका कि वह डेमोक्रिटस की रचनाओं का एक संस्करण नाटक - चतुष्टय (Tetralogics) के क्रम में प्रस्तुत कर सका, जैसे कि उसने प्लेटो के सम्वादों का एक अपना संस्करण प्रस्तुत किया था। परन्तु इससे भी उसके ग्रन्थों का संरक्षण सम्भव नहीं हो सका। एपिक्यूरियन्स तो डेमोक्रिटस के अत्यन्त ऋणी थे, तथा उन्हें उसके व्यक्तित्व के बारे में अध्ययन करना चाहिये था, परन्तु वे सभी प्रकार के अध्ययनों के प्रतिकूल थे। उन लोगों ने यदि इस लेखक की कृतियों की वहुत-सी प्रतियां करायी होती, तो उनके दर्शन में मौलिकता का जो अभाव है उसके स्थान पर डेमोक्रिटस के ग्रन्थ एक स्थायी शब्द-प्रमाण (Testimony) का कार्य करते।

डेमोक्रिटस के जीवन-वृत्त के वारे में हम वहुत कम जानते हैं। वह थ्रेस के एब्डेरा का निवासी था। यह नगर मन्द गति के लिए प्रसिद्ध था। परन्तु इसी नगर में इस प्रकार के दो महापुरुषों की उत्पत्ति देखकर यह उपाधि सत्य नहीं प्रतीत होती।[1] उसके जन्म-काल के वारे में हमारे पास अनुमान के अतिरिक्त और कुछ नहीं। अपनी एक प्रमुख कृति में उसने लिखा है कि इसकी रचना ट्राय (Troy) के पतन के ७३० वर्षों वाद हुई थी, परन्तु हमें यह ज्ञात नहीं कि उसके अनुसार ट्राय का पतन कव हुआ था। उस समय तथा परवर्ती काल में भी अनेक सम्वतों का प्रचलन था। कहीं पर उसने यह भी कहा है कि एनेक्जागोरस की वृद्धावस्था में वह युवक था, तथा इससे अनुमान लगाया जाता है कि उसका जन्म ईसा पूर्व ४६० में हुआ था। परन्तु यह कुछ अधिक प्राक्तन प्रतीत होता है, क्योंकि यह इस अनुमान पर आधारित है कि जव एनेक्जागोरस से उसकी भेंट हुई तव वह चालीस वर्ष का रहा होगा। परन्तु 'युवक' शब्द से कुछ कम आयु ध्वनित होती है। पुनश्च, ल्युसिपस को हमें इसके तथा ज़ीनों के वीच कहीं रखना पड़ेगा। कहा जाता है कि डेमोक्रिटस का देहान्त नब्वे अथवा सौ वर्ष की आयु के हुआ। यदि यह सत्य है तो प्लेटो द्वारा अकादमी की स्थापना के समय वह जीवित रहा होगा। अतएव शुद्ध कालगणना के आधार पर भी हम डेमोक्रिटस को सात्रेटीज़ के पुरोगामियों की कोटि में नहीं

१. यह संसूचन ग्राह्य प्रतीत होता है। स्वयं डेमोक्रिटस के किसी व्यंग्यात्मक कथन के कारण ही एब्डेरा-वासियों की यह प्रसिद्धि प्रारम्भ हुई होगी। इसी तथ्य का दूसरा पक्ष डेमोक्रिटस को 'हास्य-प्रिय दार्शनिक' बताकर उपस्थित किया गया है, जो सर्वप्रथम होरेस में प्रकट होता है।

रख सकते । यदि हम उसे उस कोटि में रखें, तो यह तथ्य आवृत होगा कि साक्रेटीज़ के समान ही उसने भी अपने विशिष्ट सहनागरिक प्रोटागोरस के प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया ।[1]

डेमोक्रिटस ल्यूसिपस का शिष्य था, तथा हमें रीजन निवासी ग्लाउकस (Glaukos) का समसामयिक प्रामाण्य उपलब्ध है कि पाइथागोरियन्स भी उसके शिक्षक थे । किजिकस निवासी अपोलोड्रस, जो उसी संस्था का एक परवर्ती सदस्य था, कहता है कि उससे फाइलोलास से भी शिक्षा ग्रहण की थी और यह सर्वथा सम्भव लगता है । इससे उसके रेखागणित सम्बन्धी ज्ञान की व्याख्या हो जाती है, तथा हम देखेंगे कि इसके उसके दर्शन के अन्य पक्ष भी स्पष्ट होते हैं । हमें यह भी ज्ञात है कि डेमोक्रिटस ने अपनी कृतियों में पार्मेनीडीज़ तथा ज़ीनों के सिद्धान्तों का उल्लेख किया है । ल्यूसिपस के माध्यम से ही उसे इन सिद्धान्तों का परिचय मिला । जैसा कि हम देख चुके हैं, वह एनेक्जागोरस का उल्लेख करता है, तथा वह ऐसा कहता हुआ प्रतीत होता है कि एनेक्जागोरस का सूर्य तथा चन्द्रमा सम्बन्धी मत मौलिक नहीं था । इसका संकेत ग्रहणों की उस व्याख्या से हो सकता है जिसके लिए एथेन्स तथा आयोनिया में प्रायः एनेक्जागोरस को श्रेय दिया जाता था, परन्तु डेमॉक्रिटस इसे पाइथगोरियन सिद्धान्त समझता था ।

कहा जाता है कि उसने मिश्र की यात्रा की थी, परन्तु जिस खण्ड (खण्ड २९८ ब) में इसका उल्लेख है उसे प्रक्षिप्त मानने के भी कुछ आधार हैं । एक अन्य खण्ड (खण्ड ११६) में वह कहता है: 'मैं एथेन्स गया तथा वहाँ मुझे कोई पहचानता न था ।' यदि उसने यह कथन किया, तो निःसंदेह उसका अभिप्राय यह है कि उसके अधिक प्रतिभाशाली सह-नागरिक प्रोटागोरस ने वहाँ पर जैसा प्रभाव जमाया था, वैसा प्रभाव वह स्वयं उत्पन्न नहीं कर सका था । दूसरी ओर, फालेरन निवासी डिमेट्रियस (Demetrios) का कहना है कि डेमोक्रिटस ने कभी भी एथेन्स की यात्रा नहीं की । अतः सम्भव है कि यह खण्ड भी प्रक्षिप्त हो । चाहे जो हो, उसने अपना अधिकांश समय एब्डेरा में अध्ययन, अध्यापन तथा लेखन में अवश्य व्यतीत किया होगा । वह आधुनिक ढंग का भ्रमणशील सोफ़िस्ट नहीं था । वह एक स्थायी संस्था का अध्यक्ष था ।

---

१. जैसा कि पहले संकेत किया गया है (पृ० ९१, पाद टिप्पणी, १), जिन कहानियों में प्रोटागोरस को डेमोक्रिटस का शिष्य बताया गया है, वे इस भ्रान्ति पर आधारित हैं कि प्रोटागोरस प्लेटो का समकालिक था ।

डेमोक्रिटस की वास्तविक महान्‌ता का कारण परमाणुओं तथा शून्य का सिद्धान्त नहीं है। इसकी तो उसने प्रायः उसी ढंग से व्याख्या की, जैसी कि उसने इसे ल्यूसिपस से सीखा था। सृष्टि-विज्ञानीय निकाय के कारण भी उसकी महत्ता नहीं थी, क्योंकि इसे उसने मुख्यतया एनेक्जागोरस से ग्रहण किया था। वह इन लोगों से सर्वथा भिन्न पीढ़ी का व्यक्ति है, तथा पार्मेनीडीज की समस्याओं का समाधान प्राप्त करने में उसकी कोई विशेष रुचि नहीं है। उसे अपने युग के प्रश्न का हल ढूंढना था। उस समय विज्ञान की सम्भाव्यता को तथा प्रोटागोरस द्वारा उठायी गयी ज्ञान-सम्बन्धी सारी समस्या को अस्वीकृत किया जा चुका था, अतः उसे इस चुनौती का सामना करना था। पुनश्च, आचरण की समस्या भी अनिवार्य बन चुकी थी। अतः डेमोक्रिटस की मौलिकता भी ठीक उसी दशा में है, जिसमें साक्रेटीज़ का मौलिक योगदान है।

ज्ञान-मीमांसा (THEORY OF KNOWLEDGE)

डेमोक्रिटस ने संवेदन (Sensation) का शुद्ध यान्त्रिक विवरण प्रस्तुत करने में ल्यूसिपस का अनुसरण किया, तथा यह सम्भव है कि इस विषय पर विस्तृत परमाणुवादी सिद्धान्त का प्रतिपादक वही हो। चूंकि अन्य सभी वस्तुओं की भांति आत्मा की रचना भी परमाणुओं से हुई है, अतः वाह्य परमाणुओं के आत्मा के परमाणुओं पर समाघात (impact) के कारण संवेदन-क्रिया होनी चाहिये, तथा इन्द्रियाँ संवेदन के द्वार (Passage) मात्र हैं, जिनके द्वारा ये परमाणु प्रवेश करते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दृष्टिगोचर विषय वे वस्तुएँ नहीं हैं, जिन्हें हम देख रहे हैं, किन्तु वे प्रतिबिम्ब (images) हैं जिन्हें विषय सदा प्रसारित करते रहते हैं, आँख के तारा में प्रतिबिम्ब का पड़ना दृष्टि के लिए आवश्यक माना जाता है। परन्तु यह प्रतिबिम्ब जिस वस्तु से आता है उसके ठीक सदृश नहीं होता, क्योंकि यह मार्ग की वायु के कारण विकृत भी होता है। इसीलिए दूर की वस्तुएं धूमिल तथा अस्पष्ट दिखाई देती हैं, तथा यदि दूरी बहुत अधिक हो, तो हम उन्हें जरा भी नहीं देख पाते। यदि हमारे तथा दृष्ट वस्तुओं के मध्य वायु न होती और केवल शून्य होता, तो ऐसी स्थिति नहीं होती, तथा 'हम आकाश में रेंगती हुई चींटी को भी देख लेते।' प्रतिबिम्बों के स्पर्श से चिकने अथवा रूक्ष होने के कारण रंगों में भेद पाया जाता है। इसी प्रकार श्रवण की भी व्याख्या की जाती है। ध्वनि किसी वस्तु से प्रवाहित परमाणुओं का प्रवाह है, जो स्वनित वस्तु तथा कान के मध्य की वायु को गतिमान बना देता है। ये परमाणु कान के पास वायु की उसी

मात्रा के साथ पहुँचते हैं जो उनके अनुरूप हो। स्वादेन्द्रियों के संसर्ग में आनेवाले परमाणुओं की आकृतियों में भिन्नता ही स्वाद में भिन्नता का कारण है। गन्ध की भी इसी प्रकार व्याख्या की गयी, किन्तु इतने विस्तार के साथ नहीं। स्पर्श इन्द्रिय वह है जिसके माध्यम से हम उष्ण तथा शीत, आर्द्र तथा शुष्क इत्यादि की अनुभूति करते हैं। स्पर्शेन्द्रिय इस पर संघर्षण होने वाले परमाणुओं की आकृति तथा परिमाण से प्रभावित होती है।

एरिस्टॉटल का कहना है कि डेमोक्रिटस ने सभी संवेदनाओं का स्पर्श में परिणमन कर दिया, तथा यदि हम स्पर्श का अर्थ उस इन्द्रिय से लगावें जो आकृति, परिमाण, तथा भार जैसे गुणों का प्रत्यक्ष कर सकने में समर्थ हो, तो यह सर्वथा सत्य है। परन्तु स्पर्श की जिस विशेष अर्थ में हमने अभी व्याख्या की है, उसको इससे सावधानी से पृथक् करना होगा। इस तथ्य को समझने के लिए हमें शुद्ध उत्पन्न ज्ञान (trueborn) तथा मिथ्या (bastard) ज्ञान के सिद्धान्त पर विचार करना होगा।

प्रोटागोरस ने घोषणा की थी कि संवेदित (sentient) व्यक्ति के लिए सभी संवेदन समान रूप से सत्य हैं। यहाँ पर प्रोटागोरस से डेमोक्रिटस का स्पष्ट मत-भेद है। डेमोक्रिटस की मान्यता है कि विशेष इन्द्रियों के संवेदनों के लिए संवेदित व्यक्ति के बाहर यदि कोई वास्तविक प्रतिवस्तु न हो तो वे सभी संवेदन मिथ्या होंगे। यहाँ पर वह उस ईलियाटिक परम्परा के प्रति निष्ठावान् है, जिस पर परमाणुवादी मत आश्रित है। पार्मेनीडीज ने स्पष्ट रूप से कहा था कि स्वाद, रंग, तथा शब्द इत्यादी 'नाम' मात्र हैं। यद्यपि हमारे समक्ष यह मानने का कोई आधार नहीं है कि ल्यूसिपस ने इस विषय से सम्बन्ध किसी मत का विस्तृत प्रतिपादन किया था, परन्तु यह सर्वथा सम्भव है कि उसने भी कुछ ऐसी बातें कही हों। चूँकि डेमोक्रिटस प्रोटागोरस के बाद पैदा हुआ था, अतः इस विषय की विस्तृत चर्चा करना उसके लिए आवश्यक था। सौभाग्य से उसका सिद्धान्त उसी के शब्दों में हमें सुरक्षित मिलता है। उसने कहा (खण्ड.१२५) "व्यवहारतः कोई वस्तु मीठी है, व्यवहारतः कोई वस्तु तिक्त है, व्यवहारतः कोई वस्तु उष्ण, तथा व्यवहारतः ही कोई वस्तु शीतल है, व्यवहारतः ही कोई वस्तु रंगीन हैं। परन्तु वास्तव में परमाणु तथा शून्य ही हैं।" यद्यपि हमारे संवेदनों के कारण रूप में कोई बाह्य वस्तुएं अवश्य हैं जिनके वास्तविक स्वरूप को हम किन्हीं विशेष इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं कर सकते, परन्तु ये संवेदन किसी बाह्य वस्तु का प्रतिनिधित्व नहीं करते। इसी

कारण कोई वस्तु हमें कभी मीठी लगती है, तो कभी तिक्त। डेमोक्रिटस ने कहा (खण्ड, ९) "इन्द्रियों के द्वारा हमें वस्तुतः कोई असंदिग्ध ज्ञान नहीं होता हमें कुछ ऐसी वस्तु का ज्ञान होता है जो शरीर की स्थिति के अनुसार परिवर्तित होती है, तथा जो इसमें प्रवेश करती है, अथवा इसका प्रतिरोध करती है" "परन्तु इस प्रकार से हमें सत् का ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि सत् तो गहराइयों (depths) में है" (खण्ड, ११७)। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि द्रव्य के मूल गुणो तथा गौण गुणों में जो आधुनिक भेद किया जाता है उससे यह सिद्धान्त बहुत कुछ मिलता है।

अतएव डेमॉक्रिटस भी पाइथागोरियन्स तथा साक्रेटीज की ही भाँति संवेदन को ज्ञान को स्रोत नहीं मानता; परन्तु जैसा कि उन दोनों ने किया, वह भी विज्ञान की सम्भाव्यता को यह कहकर सुरक्षित कर लेता है कि विशेष इन्द्रियों के अतिरिक्त ज्ञान का एक अन्य स्रोत है। वह कहता है (खण्ड ११) "ज्ञान के दो रूप हैं, सदुत्पन्न तथा मिथ्या। दृष्टि, श्रवण, गन्ध, स्वाद तथा स्पर्श के संवेदन मिथ्या ज्ञान के अन्तर्गत आते हैं। सदुत्पन्न ज्ञान इनसे सर्वथा पृथक् है। "यह डेमॉक्रिटस का प्रोटागोरस के प्रश्न का उत्तर है। उदाहरणार्थ, उसने कहा था कि मधु तिक्त तथा मधुर दोनों है, तेरे लिए मधुर तथा किसी दूसरे के लिए तिक्त। वस्तुतः इसमें "एक की अपेक्षा दूसरा गुण अधिक नहीं है" सेक्सटस एम्पिरिकस तथा प्लूटार्क दोनों ही स्पष्ट रूप से कहते हैं कि डेमोक्रिटस ने प्रोटागोरस के विरुद्ध तर्क दिया, अतः इस तथ्य में किसी सन्देह का स्थान नहीं है।

परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि डेमोक्रिटस ने जिस प्रकार मिथ्या ज्ञान की विशुद्ध यान्त्रिक व्याख्या की थी उसी प्रकार उसने सदुत्पन्न ज्ञान की भी व्याख्या की। वस्तुतः उसकी मान्यता थी कि वाह्य परमाणु संवेदन-इन्द्रियों के माध्यम के विना ही सीधे हमारी आत्मा के परमाणुओं को प्रभावित कर सकते हैं। आत्मा के परमाणु शरीर के कुछ विशेप अंगों में सीमित न रहकर सभी दिशाओं में व्याप्त रहते हैं, तथा उन्हें वाह्य परमाणुओं के साक्षात् संपर्क में आने में कोई व्यवधान नहीं उत्पन्न हो सकता, अतः वाह्य परमाणुओं का यथार्थ स्वरूप ज्ञात हो सकता है, अन्ततः 'सदुत्पन्न ज्ञान' का भी वही स्वभाव है जो मिथ्या ज्ञान का है, तथा डेमोक्रिटस ने भी साक्रे-टीज की ही भाँति संवेदन तथा विचार में आत्यन्तिक पृथक्करण का निषेध किया। वह इन्द्रियों से कहलाता है (खण्ड, १२५) 'वेचारे मन। हम लोगों को समाप्त करने के लिए तर्क तुम हमी से पाते हो। तुम्हारा प्रक्षेप तो पतन

है।"[1] सदुत्पन्न ज्ञान अन्ततः विचार नहीं, वरन् एक प्रकार की आन्तरिक इन्द्रिय है, तथा इसके विषय एरिस्टॉटल के सामान्य संवेद्य' (Common sensibles) जैसे हैं।

जैसी कि पाइथागोरियन्स तथा जीनों के किसी अनुयायी मे आशा की जा सकती है, डेमोक्रिटस सातत्य (Continuity) की समस्या में उलझा रहा। एक उल्लेखनीय स्थल (खण्ड १५५) पर वह इसे निम्नलिखित रूप में व्यक्त करता है। "यदि किसी शंकु को उसके आधार के समानान्तर समतल से विभाजित किया जाय, तो उन दो काँटों (Sections) की सतहों से हम क्या समझेंगे ? वे दोनों समान हैं, अथवा असमान ? यदि वे असमान है, तो शंकु असम (Uneven) होगा, क्योंकि उसमें अनेक सीढ़ीनुमा कटानें तथा खुरदरापन होंगे। यदि वे समान हैं, तो खण्ड भी समान होंगे, और उस दशा में शंकु में वेलन के सभी गुण होंगे, जो असमान की जगह तुल्य वृत्तों से निर्मित होता है। परन्तु यह अत्यन्त असंगत है। "आर्किमिडीज के एक कथन[2] से यह प्रतीत होता है कि डेमोक्रिटस का कहना था कि शंकु का आयतन उसी आधार पर तथा उतनी ही ऊँचाई के वेलन के आयतन का तृतीयांश होता है। इस साध्य को सर्वप्रथम यूडोक्सिस (Eudoxis) ने प्रदर्शित किया था। अतएव यह स्पष्ट है कि वह ऐसी समस्याओं के साथ व्यस्त रहा जिनके कारण अन्ततोगत्वा आर्किमिडीज की अत्यणु (infinitesimal) पद्धति का जन्म हुआ। एक वार पुनः हम देखते हैं कि बौद्धिक अन्तर्वेग (ferment) की दृष्टि से जीनों का योगदान कितना महत्त्वपूर्ण था।

आचार-मीमांसा (THEORY OF CONDUCT)

डेमोक्रिटस के आधार सम्बन्धी विचारों को यदि हम पूर्णतया पुनः उपलब्ध कर सके, तो वे उसकी ज्ञान-मीमांसा से भी अधिक रोचक होंगे। परन्तु उसके नाम पर पाये गये नैतिक उपदेशों में से कौन वस्तुतः मौलिक हैं, यह निर्धारित करना अत्यन्त दुष्कर है। इसमें सन्देह नहीं कि 'उल्लास' (Cheerfulness) नामक कृति उसकी रचना है। सीनेका (Seneca) तथा प्लूटार्क ने इस रचना का मुक्त रूप से उपयोग किया है, तथा इसके कुछ खण्ड आज भी उपलब्ध हैं।

---

१. Cp. p. ९१. n ३.
२. Cf. Diels, Vors. ३ ii, p. ६०, n.

इसका प्रारम्भ (खण्ड, ४) इस सिद्धान्त से होता है कि सुख एवं दुःख से ही आनन्द (happiness) निर्धारित होता है। इसका प्राथमिक तात्पर्य यह है कि हमें वाह्य श्रेयों (goods) में आनन्द नहीं ढूंढ़ना चाहिये। "आनन्द की प्राप्ति न तो पशु-वृन्द में है, न स्वर्ण में; 'देव' (daimon) का निवास-स्थान आत्मा है (खण्ड, १७१)। इसे समझने के लिए हमें यह स्मरण रखना होगा कि 'डेमन' शब्द का, जिसका सामान्यतया अर्थ होता है मनुष्य की प्रतिपालक आत्मा, प्रयोग 'भाग्य' (fortune) के पर्यायवाची अर्थ में होने लगा। जैसा कि कहा जा चुका है, यह 'देवी' (Tuche) का अव्यापक पक्ष है, तथा जिस ग्रीक शब्द का अनुवाद हम 'आनन्द' करते हैं, वह इसी प्रयोग पर आधारित है। अतः अपने एक पक्ष में डेमोक्रिटस द्वारा प्रतिपादित आनन्द का सिद्धान्त साक्रेटीज के सिद्धान्त से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है, यद्यपि यह सुख तथा दुःख पर अधिक वल देता है। "मनुष्य का परम लक्ष्य यह होना चाहिये कि वह अपने जीवन में अधिकतम प्रसन्नता तथा अल्पतम कष्ट की प्राप्ति करें" (खण्ड, १९६)।

परन्तु यह असंस्कृत सुखवाद (hedonism) नहीं है। इन्द्रिय सुखों में वास्तविक सुख की मात्रा उतनी ही कम है जैसे संवेदनों में सत्य ज्ञान् का अंश कम होता है। "शुभ तथा सत्य सभी लोगों के लिए समान है, परन्तु प्रत्येक लोगों का प्रेय भिन्न होता है" (खण्ड, ६९)। पुनश्च, इन्द्रियों के सुखों की अवधि इतनी अल्प होती है कि वे जीवनपर्यन्त वने नही रहते, तथा वे सरलता से विपरीत स्थिति (दुःखों) में वदल जाते है। यदि नैतिक कार्य में हम सुख प्राप्ति को आशा नहीं करते, तो इतना निश्चित है कि उसमें दुःख की अपेक्षा सुख की मात्रा अधिक होगी', (खण्ड, १८९।)

हमारा प्रयास यह होना चाहिये कि हम 'कौशल' अथवा 'उल्लास' प्राप्त करें, और यह आत्मा की एक स्थिति है। इसे प्राप्त करने के लिए हमारे अन्दर यह सामर्थ्य होना चाहिए कि हम विभिन्न सुखों के मूल्य की तुलना, निर्णय तथा भेद कर सकें। साक्रेटीज की ही भांति डेमोक्रिटस भी यह मानता था कि 'श्रेष्ठतर का अज्ञान' (खण्ड, ८३) ही हमारी असफलता का कारण है। लोग भाग्य को दोष देते हैं, परन्तु वह तो एक 'प्रतिमा' (image) मात्र है, जिसको मनुष्य ने अपने अज्ञान के दोषमार्जन के लिए कल्पना की (खण्ड ११९) जिस महान् सिद्धान्त की हमें पथ-प्रदर्शन के लिए चुनना चाहिए, वह है 'संहति' या 'सामञ्जस्य'। यह निस्सन्देह पाइथागोरियन सिद्धान्त है। यदि हम इस कसौटी को सुखों पर लागू करें, तो हमें शान्ति प्राप्त होगी।

शरीर की शान्ति स्वास्थ्य है, तथा आत्मा की शान्ति को उल्लास कहते हैं। वह मुख्यतः आत्मा के श्रेयों में उपलब्ध होता है। "जो व्यक्ति आत्मा के श्रेयों (goods) का वरण करता है, वह अधिक दिव्य वस्तु प्राप्त करता है। जो मण्डप (उदाहरणार्थ, शरीर)[1] के श्रेयों का वरण करता है, वह मानव को चुनता है, (खण्ड ३७)।

अधुना डेमोक्रिटस के विश्वविज्ञान पर विस्तार से विचार करना आवश्यक नहीं है। यह पूर्णतः पश्चगामी (retrograde) है, तथा इससे यह सिद्ध होता है कि उसकी वास्तविक रुचि किसी अन्य दिशा में थी। उसने परमाणुओं तथा शून्य के सिद्धान्त को ल्यूसिपस से प्राप्त किया था, जो उस विषय का वस्तुतः प्रतिभाशाली व्यक्ति था। अन्य बातों में उसने ल्यूसिपस की ही भाँति अपरिष्कृत आयोनिक विश्वविज्ञान को अपनाकर सन्तोष कर लिया। परन्तु उसे फाइलोलास के अधिक वैज्ञानिक दर्शन की जानकारी अवश्य रही होगी। पृथ्वी के गोलाकार होने का ज्ञान डेमोक्रिटस के समय तक काफी प्रसिद्ध हो चुका था, तथा 'फ़ीडों' (१०८ e) में दिखाया गया है कि साक्रेटीज इसे सिद्ध मान चुका है। परन्तु डेमोक्रिटस के लिए पृथ्वी का आकार अभी भी चक्र (disc) की भाँति ही था। एनेक्ज़ागोरस की ही भाँति उसने यह माना कि 'द्रोणी' (trough) के ढक्कन के समान' पृथ्वी वायु पर टिकी हुई है, परन्तु इस मत का भी साक्रेटीज ने प्रचण्ड खण्डन किया है, दूसरी ऐसा प्रतीत होता है कि डेमोक्रिटस का प्राकृतिक-विज्ञान में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। दुर्भाग्य से हमें जो सामग्री तथा सूचनाएं उपलब्ध हैं वे इतनी अल्प हैं कि उनके आधार पर उसके दर्शन का मोटे तौर पर भी पुनर्निर्माण सम्भव नहीं। उसकी ग्रन्थावली का थ्रेसिलस (Thrasyllos) द्वारा किया गया संस्करण लुप्त हो चुका है, तथा यह इस ढंग की हुई अनेक क्षतियों में से अत्यन्त शोचनीय क्षति है, सम्भव है कि उन्हें नष्ट होने से लोगों ने इसलिए नहीं बचाया क्योंकि एपिक्यूरियन्स की जो अपकीर्ति हुई, उसका वह भी भाजन बना। उसके सम्बन्ध में जो कुछ भी हमें मिलता है, वह इसलिए सुरक्षित रह सका, क्योंकि वह कहावतों का एक बहुत बड़ा रचयिता था, तथा ये कहावतें अनेक चयनिकाओं (Anthologies) में

1. Skenos शब्द का शरीर के अर्थ में प्रयोग (सन्तपॉल, 2 Cor. V. 1 में भी उपलब्ध) सम्भवतः पाइथागोरियन है, तथा यह मानव-जीवन की 'लीला' मानने वाले सिद्धान्त से सम्बद्ध है। हमारे शरीर लिए अस्थायी 'कक्ष' (booths) हैं।

उपलब्ध हैं। परन्तु यह सामग्री उस कोटि की नहीं है जिसकी दार्शनिक निकाय की व्याख्या मे आवश्यकता होती है। उसके गम्भीर विचारों में से कुछ भी हम जानते हैं या नहीं, इसमें भी सन्देह है। परन्तु साथ ही साथ हम यह अनुभव करते हैं कि उसकी रचनाओं के साहित्यिक उत्कर्ष के कारण ही हम उनकी क्षति पर पश्चाताप करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वह ग्रीक-दर्शन की मुख्य धारा से पृथक् रहा, और अब हमें उसी मुख्य धारा की ओर लौटना है। हमारे दृष्टिकोण से डेमोक्रिटस के सम्बन्ध में केवल एक ही महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि उसने भी प्रोटागोरस द्वारा उठायी गयी समस्याओं का समाधान करना आवश्यक समझा।

तृतीय खण्ड

प्लेटो
(PLATO)

१२

प्लेटो तथा अकादमी
(PLATO AND THE ACADEMY)
प्लेटो का प्रारम्भिक जीवन

यदि 'पत्रक' (EPISTLES) वास्तविक है, जैसा कि कुछ महान् विद्वान तथा इतिहासकार मानते हैं, तो प्लेटो के जीवन-वृत्त के बारे में किसी भी प्राचीन दार्शनिक की अपेक्षा हमें अधिक जानकारी है।[1] 'पत्रक' के अतिरिक्त भी हमें उसके बारे में पर्याप्त जानकारी है। संवादों से हमें जो कुछ अनुमान हो सकता है उसके अतिरिक्त हर्मोडोरस (Hrmodors) के प्रामाण्य पर आधारित दो एक कथन मिलते हैं। हर्मोडोरस प्लेटो के जीवन-काल में ही अकादमी का सदस्य था। ये सब कुछ ऐसी निर्धारित बातें हैं, जिनसे हम अपना अध्ययन प्रारम्भ कर सकते हैं, परवर्ती 'जीवनियां' प्रायः पूर्णरूपेण कपोल-कल्पित हैं। सम्भव है कि उनमें प्राचीन स्त्रोतों, जो अब लुप्त हो चुके हैं, से मिले हुए दो-एक भूले-भटके तथ्य विद्यमान हों, परन्तु उनका सामान्य स्वरूप ऐसा है कि

१- 'एपिस्टल्स' की अकृत्रिमता को बेन्टली एवं कोबेट जैसे विद्वानों ने, तथा ग्रोटे एवं ई० मेयर जैसे इतिहासकारों ने स्वीकार किया है। व्यवहारतः प्लेटो सम्बन्धी अधिकांश विवरण इन्हीं पर आश्रित है, परन्तु कुछ लोग इसके स्थान पर प्लूटार्क के Life of Dion को उध्दृत करते हैं, जिससे 'एपिस्टल्स' कभी-कभी गौण हो जाते हैं। परन्तु प्लूटार्च हमें जो कुछ बता पाता है उसके लिए अधिकांशतः वह एपिस्टल्स पर ही आधारित है। अतः यह अनुचित अपवञ्चन है। मैं तो कहूँगा कि 'प्रथम पत्रक' (first epist) किसी पर भी आश्रित नहीं है। मेरे मतानुसार यह अपने वर्तमान स्थान पर गल्ती से स्थित है। यह वस्तुतः चतुर्थ शती का पत्र है। परन्तु मैं ऐसा नहीं मानता कि इसका जो भी लेखक रहा हो उसने इसे प्लेटो का पत्र बनाना चाहा था। मैं यह भी नहीं मानता कि वह डिआन था, या डिआन माना जाने वाला व्यक्ति था।

प्रारम्भ में यदि उन्हें ग्रहण न किया जाय, तो अधिक उत्तम होगा। इसके विपरीत 'पत्रकों' में इस प्रकार की दन्तकथा (कपोलकल्पना) नहीं मिलती। यह तव और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जब हमें यह ज्ञात होता है कि स्वयं प्लेटो का भतीजा स्प्यूसिप्पस (Speusippos) भी उसके जन्म को चमत्कारिक मान चुका था। अतः यदि 'पत्रकों' को कृत्रिम मान लिया जाय, तो भी हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वे कम से कम एक शालीन तथा विद्वान् लेखक की कृति है।' लेखक ने अत्ताई (Attic) बोली का प्रयोग किया है, जिससे सिद्ध होता है कि वह प्लेटो का समकालीन रहा। उसने इस भाषा का जैसा अच्छा प्रयोग किया है, वैसा प्रयोग करने वाला पचास वर्षों बाद मिलना असम्भव था।[1] कृत्रिम संवादों में से जो प्राचीनतम तथा अत्यन्त सफल हैं, वे भी पग-पग पर आत्मप्रवंचित होते हैं। हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि 'एपिस्टलस' का सम्भावित कूटलेखक (forger) ऐसा व्यक्ति रहा होगा जिसका साहित्यिक कौशल प्रायः अप्रतिम रहा होगा, वरना प्लेटो के जीवन-काल की जिस अवधि की रचना वे पत्रक माने जाते हैं उस समय की प्लेटो की शैली बहुत सी छोटी-छोटी विशेषताओं का पुनरावर्तन वह न कर पाता। अधिक विस्तृत साहित्यिक कृति की अपेक्षा पत्रों में हम कुछ भिन्नता की आशा कर सकते हैं। मैं समझता हूँ कि सभी महत्त्वपूर्ण पत्र प्लेटो के ही हैं, अतः मैं उनको उपयोग में लाऊँगा, परन्तु चूँकि कुछ ऐसे भी विद्वान् हैं जो अभी इससे सहमत नहीं हैं, अतः मैं पाठकों को यथा-स्थान चेतावनी भी देता जाऊंगा।

प्रेरिक्लीज की मृत्यु के एक वर्ष के कुछ बाद तथा जॉर्जियस के प्रथम बार एथेन्स आने के ठीक पूर्व ईसा पूर्व ४२८। ७ में प्लेटो का जन्म हुआ था[1] 'रिपब्लिक' (३६८ अ) में उद्धृत एक कविता प्लेटो के दो भाईयों-एडेमेण्टस (Adeimentos) तथा ग्लाउकन (Glaukon) को सम्बोधित कर लिखी गयी हैं, तथा उसमें कहा गया है कि प्लेटो का पिता एरिस्टन (Ariston) एक सम्भ्रान्त व्यक्ति था। प्लेटो की बाल्यावस्था में ही उसके पिता का देहान्त हो गया होगा, क्योंकि उसकी माता पेरिक्टिआन (Periktione) ने बाद में पीरिलैम्पीज से विवाह कर लिया। इस दम्पत्ति से एण्टिफन नामक पुत्र हुआ, जो जीनो के एक शिष्य तथा आइसोलोकस के पुत्र पाइथोडोरस [Pythodo-

१. अत्ताईवाद के उद्भव के उपरान्त यह सम्भव हो गया होगा, परन्तु हम जानते हैं कि 'एपिस्टलस' उसके पहले विद्यमान थे।

ros] का सहयोगी था। एडमेण्टस तथा ग्लाउकन प्लेटो के ज्येष्ठ रहे होंगे। यह धारणा कि वे दोनों कनिष्ठ थे, 'रिपब्लिक' की एक भ्रान्ति पर आधारित है। ऐसा माना जाता है कि प्लेटो जिस ढंग से वार्तालाप करता है, वैसा वार्तालाप कोई भी व्यक्ति केवल अपने छोटे भाइयों से ही करता है, परन्तु यहाँ पर, पूर्ववत्, लोग यह भूल जाते हैं कि वहाँ का वक्ता प्लेटो नहीं, साक्रेटीज़ है, 'एपॉलाजी' (३४ अ) में साक्रेटीज कहता है कि एडेमेण्टस को बुलाकर यह पूछा जाना चाहिये कि उसके साथ के कारण क्या प्लेटो को कोई हानि हुई थी, तथा इससे यह स्पष्ट होता है कि एडेमेण्टस आयु में प्लेटो से से इतना बड़ा था कि वह अपने भाई के अभिभावक का स्थान ग्रहण कर सकता था। पुनश्च, 'रिपब्लिक' में उद्धृत कविता से हमें ज्ञात होता है कि मेगारा की लड़ाई में ग्लाउकन तथा एडेमेण्टस दोनों ही विशिष्टता प्राप्त कर चुके थे। अधिक जानकारी के अभाव में यह मानना स्वाभाविक है कि इस लड़ाई का तात्पर्य ई० पू० ४२४ की लड़ाई से है, परन्तु इसके बारे में पूर्ण संदिग्धता नहीं है। चाहे जो हो, यदि दोनों भाइयों ने एक ही लड़ाई में वैशिष्ट्य प्राप्त किया, तो उन दोनों की उम्र में बहुत अधिक अन्तर नहीं होना चाहिए। यहाँ पर यह भी कहा जा सकता है कि प्लेटो ने 'रिपब्लिक' में अपने दोनों भाइयों का जो उल्लेख किया है वह प्लेटो की सामान्य नीति के अनुरूप नहीं होता, यदि इस सम्वाद की रचना के समय वे दोनों जीवित रहते। अतः सम्भवतया 'रिपब्लिक' की रचना के समय उन भाइयों का देहान्त हो चुका था। जेनोफेन (Mem. ii, ६, १) एक प्रसंग का उल्लेख करता है कि ग्लाउकन जब सम्मेलन में बोलने के लिए खड़ा हुआ तब साक्रेटीज़ ने उसे रोक दिया, क्योंकि उसकी आयु अभी बीस वर्ष की नहीं हो पायी थी, जो कानून द्वारा वयस्कता प्राप्त करने के लिए निर्धारित थी। साक्रेटीज ने उससे एथेन्स के वित्त तथा राष्ट्रीय सुरक्षा सम्बन्धी अनेक प्रश्न पूछकर उसे भाषण करने से विमुख किया, तथा इन प्रश्नों को पढ़ते समय हम यह अवश्य अनुभव करते हैं कि जेनोफेन ने इस घटना का समय ई० पू० ४१३ में डिकेलेइया पर कब्जा के कुछ दिनों पूर्व माना है। यह सत्य है कि उसने कहा कि ग्लाउकन के प्रति साक्रेटीज़ इसलिए रुचि दिखाता था क्योंकि चार्मिडीज़ तथा प्लेटो से उसके सम्बन्ध थे, परन्तु यह कथन भूल से भी हो सकता है। चार्मिडीज़ प्लेटो से आयु में कम से कम बीस वर्ष बड़ा था, तथा ई० पू० ४१३ के बहुत पहले प्लेटो इतना छोटा होगा कि उधर साक्रेटीज़ का ध्यान आकृष्ट नहीं होना चाहिये। परन्तु यदि यह भूल है,

तो जेनोफ़ेन कालगणना में जितना लापरवाह लेखक है उसे देखते हुए इसमें कोई आश्चर्य नहीं, तथा इससे अन्य पूर्वाग्रह हल्के नहीं सिद्ध होते। जहाँ तक चार्मिडीज का सम्बन्ध है, हम जानते है कि उससे साक्रेटीज का परिचय प्लेटो के जन्म के चार-पाँच वर्षों पूर्व ही हो तो चुका था, अतः उसके नाम का उल्लेख सर्वथा समीचीन है।

प्लेटो की माँ पेरिक्टिअन का परिवार भी अत्यन्त सम्भ्रान्त था, तथा यह अपने को सोलन के मित्र तथा सजातीय ड्रोपिडीज (Dropides) का वंशज मानता था। वह स्वयं क्रिटियस की मौसी (Consin) तथा ग्लाउकन के पुत्र चर्मिडीज़ की बहन थी। ग्लाउकन का नामकरण उसके नाना के नाम पर हुआ, इस तथ्य चे यह अनुमान लगता है कि वह द्वितीय पुत्र था। जैसा कि 'चार्मिडीज' (१५८ अ) में कहा गया है कि पीरिलैम्पीज़ चार्मिडीज़ का मामा था। हमें अनुमान होता है कि पेरिक्टिअन पीरिलैम्पोज़ की भतीजी (Niece) थी, तथा एरिस्टन की मृत्यु के उपरान्त जब वह विधवा हो गयी तब पीरिलैम्पीज़ ने उससे विवाह कर लिया। यह एथेन्स को प्रथा के अनुरूप रहा। पीरिलैम्पीज़ के बारे में हमें सबसे अन्तिम बात जो ज्ञात होती है वह यह है कि डेलियन की लड़ाई में वह आहत हुआ था। परन्तु पेरिक्टिअन बहुत काल तक जीवित रही, क्योंकि 'एपिस्टल' १३ (३६१ ई) से भान होता है कि वह ३६६/५ में भी जीवित थी, यद्यपि उस समय तक उसकी मृत्यु हो जानी अपेक्षित थी।[१] इन सब बातों का महत्त्व यह है कि इनसे हमें 'पार्मेनीडीज़' के ग्लाउकन तथा एडेमेण्टस की 'रिपब्लिक' में उल्लिखित इन दोनों व्यक्तिओं को अभिन्न मानने में सहायक होती है, तथा इनके आधार पर हम 'रिपब्लिक' के रचना-काल को पॉलीमार्कस के थुरिआई लौटने के उपरान्त मानने की अपेक्षा उसके थुरिआई प्रस्थान के पूर्व मानते हैं। इसमे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि क्यों केफ़ालस (Kephalos) को इस समय तक जीवित माना गया, तथा क्यों लाइसियस (Lysias) इस समय उपस्थित रहने पर भी वार्तालाप में कोई भाग नहीं लेता। हम आगे देखेंगे कि इस पर बहुत सी बातें निर्भर करती हैं।

---

१. इसे एपिस्टल' १३ को वास्तविकता के विरुद्ध तर्क के रूप में प्रयुक्त किया गया है, परन्तु यदि एडेमेण्टस तथा ग्लाउकन ने मेगार में ई० पू० ४२४ में लड़ाई लड़ी, तो भी यह असम्भव नही। एथेन्स की कन्याएँ अल्पायु में ही विवाह कर लेती थी, तथा यह परिवार दीर्घजीवी था। परिशिष्ट में वंशेतिहास की सूची देखिये।

प्लेटो को निस्सन्देह अपने सजातीयों पर गर्व था, तथा वह अपनी रचनाओं में उनका बार-बार उल्लेख करता है। 'चार्मिडीज़' के प्रथम दृष्य में पूरी वंशावली की प्रशस्ति है। इसमें सोलन तथा एनाक्रियन (Anakreon) द्वारा ड्रोपिडीज़ के भवन पर की गयी प्रशंसाओं, चार्मिडीज़ के यौवन का सौन्दर्य तथा शील, तथा पिरिलैम्पीज की गौर आकृति का उल्लेख किया गया है। पीरिलैम्पीज़ को उस समय एशिया का सबसे लम्बा तथा सुन्दरतम व्यक्ति कहा गया था, जब वह राजा के पास दौत्य कार्य के लिए गया था। ज्येष्ठ क्रिटियम की 'टिमियस' तथा अपने नाम से सम्बद्ध संवादों में महत्त्वपूर्ण भूमिका है।[1] प्लेटो स्वयं अपने विषय में कुछ भी कहने में संकोच करता है, परन्तु इसके विपरीत वह अपने परिवार के पुराने सदस्यों की खूब प्रशंसा करता है, जब कि उसके लेखन के समय तक उन लोगों का नाम लोकप्रचलित नहीं रह गया था। मैंने एक अन्य स्थल[2] पर यह उल्लेख किया है कि किस नाटकीय कौशल से उसने अपनी रचनाओं पर क्रान्तियों की छाप नहीं पड़ने दी। उसके सम्वाद न केवल साक्रेटीज़ के स्मारक हैं, वरन् स्वयं उसके परिवार के वैभव-पूर्ण दिनों की भी स्मृति दिलाते हैं। पाँचवीं शताब्दी के अन्त की घटनाओं का प्लेटो ने निकट से अनुभव किया होगा, परन्तु इन सम्वादों में काल दोषों से मुक्त रहने में उसने ऐसी सतर्कता प्रदर्शित की है कि कोई भी व्यक्ति उनके आधार पर यह अनुमान नहीं लगा सकता कि वे उस समय लिखे गये जब क्रिटियस तथा चार्मिडीज का अपमानजनक अन्त हो चुका था।

यह कथन कि प्लेटो का बीस वर्ष की आयु में साक्रेटीज़ से परिचयमात्र हुआ था हर्मोडोरस के प्रामाण्य पर आधारित नहीं है, तथा सर्वथा विस्मयकारी है। चार्मिडीज़ का भतीजा (प्लेटो) साक्रेटीज़ को उसी समय से जानता होगा, जबसे उसे बोध तथा स्मरण की क्षमता प्राप्त हुई होगी। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह साक्रेटीज की निकटवर्ती शिष्य-मण्डली का सदस्य रहा, तथा यह अधिक सम्भव भी नहीं। लगता है कि साक्रेटीज की मृत्यु ने ही उसे दर्शन की ओर आकर्षित किया। कम से कम 'एपिस्टल', VII के पढ़ने से तो ऐसा ही लगता है। वहाँ पर अत्यन्त स्पष्ट रूप से यह कहा गया है (३२४) ब कि उसकी इच्छा राजनैतिक जीवन में प्रवेश करने की थी। क्रिटि-

---

१. देखिये, पृष्ठ २७५, टिप्पणी।
२. 'फ़ीडो' के मेरे द्वारा प्रस्तुत संस्करण की भूमिका अव० ९ देखिये।

यस तथा चार्मिडीज उसको सुझाव देते हैं कि उसे त्रिशकों (Thirty) के अन्तर्गत सामाजिक जीवन में प्रवेश करना चाहिए, परन्तु उनके अतिरेकों के कारण वह क्षुब्ध था, क्योंकि अतिरेकों के कारण पहले का सम्विधान स्वर्ण जैसा बन चुका था (३२४ द), विशेष रूप से सेलामिस के लिअन (Leon) काण्ड में साक्रेटीज के प्रति किये गये व्यवहार के वह बहुत दुःखी था (अव० १११)। जब लोकतन्त्र की पुनः स्थापना हुई तो प्लेटो की एक बार फिर इच्छा हुई कि वह राजनीतिक जीवन में प्रवेश करे, परन्तु साक्रेटीज के अभियोजन तथा मृत्यु से उसने यह धारणा दृढ़ कर ली कि उस समय के एथेन्स में राजनीति में प्रवेश करना सम्भव नहीं। वह कहता है (३२५ द) कि किसी दल का सदस्य बने बिना कुछ नहीं किया जा सकता, तथा उस समय के किसी भी दल से वह सन्तुष्ट नहीं हो पाया। यह अच्छा ही रहा। इस समय एथेन्स की राजनीति महत्त्वपूर्ण नहीं रह गयी थी, तथा जैसा कि वह एक अन्य पत्र में कहता है (v. ३२२ a). "प्लेटो का जन्म अपने देश की सन्ध्या के समय हुआ था"। परन्तु बाद में उसे राजनीति में स्थान अवश्य मिला, और एक विस्तृत रंगमंच पर मिला।

प्रायः यह कहा जाता है कि जन्म तथा सम्बन्धों के कारण प्लेटो को आरम्भ से ही अल्पतन्त्र की ओर आकृष्ट होना चाहिए, परन्तु इससे बढ़कर असत्य कुछ नहीं हो सकता। जैसा कि इस परिवार के सोलन के साथ सम्बन्ध पर बल देकर प्रकट किया गया है, उसकी पारिवारिक परम्पराओं को हम 'सुधारवादी' (Whiggish) कह सकते हैं। चतुः शतको के अल्पकालीन आधिपत्य के समय भी क्रिटियस अल्पतान्त्रिक उग्रवादियों का विरोधी था। युद्ध में चार्मिडीज का जब सब कुछ नष्ट हो गया, तब उसने अल्पतन्त्र को स्वीकार किया, परन्तु प्रारम्भ में उसने राजनीति में कोई भाग नही लिया। जेनोफेन के कथनानुसार साक्रेटीज ही वह व्यक्ति था जिसने उससे आग्रह किया कि वह अपने स्वाभाविक संकोच का त्याग कर सामाजिक जीवन में प्रवेश करे (Men iii. ७)। इसके अतिरिक्त प्लेटो का सौतेला-पिता पीरिलैम्पीज पेरिक्लीज का मित्र तथा निष्ठावान लोकतान्त्रिक था। उसने अपने पुत्र का डेमस नाम कुछ समझकर ही रखा था, 'रिपब्लिक' से भी यह प्रकट होता है कि ग्लाउकन तथा एडेमेण्टस का केफालस के परिवार से घनिष्ट सम्बन्ध था। केफालस एक धनाढ्य परदेशी था, जिसे पेरिक्लीज ने आग्रह पूर्वक पेरेइअस (Peiraious) में बसाया था। वह उसके पुत्र पॉलिमार्कस का मित्र था, जिसकी

बाद में त्रिशकों के हाथ मृत्यु हो गयी। वस्तुतः जहाँ तक हम देख सकते हैं, प्लेटो का आरम्भिक जीवन उसे पेरिक्लियन प्रशासन की ओर उन्मुख करेगा। वह 'सप्तम पत्रक' (३२५ ब) में कहता है कि वह प्रारम्भ में पुनः स्थापित लोकतन्त्र के सुधार से प्रभावित हुआ था, तथा इस प्रकार का विचार उस व्यक्ति के मस्तिक में सामान्यतया नहीं उत्पन्न होता है जो अल्पतान्त्रिक वर्ग में उत्पन्न हुआ हो। अब हम समझ सकते हैं कि क्यों 'स्टेट्समैन' तथा 'लाज' नामक संवादों में लोकतन्त्र के बारे में उसने जब स्वयं अपने कथनों को प्रस्तुत किया, तो उनमें उतनी कठोरता नहीं रही, जितनी कठोरता उसके द्वारा सात्रेटीज से कहलाये गये वाक्यों में होती है।

'फ़ीडो' (५९ ब) में प्लेटो कहता हैं कि साक्रेटीज की मृत्यु के समय वह अस्वस्थ था, अतः वहाँ उपस्थित नहीं हो सका। वह परीक्षण के समय न्यायालय में उपस्थित था, तथा यदि न्यायालय अर्थ-दण्ड को स्वीकार कर लेता, तो अन्य लोगों के साथ वह भी साक्रेटीज की जमानत लेने को तैयार था। हर्मोडोरस का कहना है कि साक्रेटीज की मृत्यु के उपरान्त वह साक्रेटीज के कुछ अन्य अनुयायियों के साथ मेगारा चला गया। हम देख चुके हैं (अव० १४५) कि उन लोगों पर भी कुछ आपत्ति आ सकती थी। यूक्लिडीज अवश्य उनका हार्दिक स्वागत करता, परन्तु हमें यह जानकारी नहीं है कि वे लोग उसके साथ कितना समय व्यतीत किये। परवर्ती 'जीवनियों के अनुसार प्लेटो ने विस्तृत यात्राएं की, परन्तु उनमें से अधिकांश सन्दिग्ध हैं। यह सम्भव है कि उसने मिस्र की यात्रा की हो, परन्तु यह निश्चय नहीं है। 'लाज' (६५६ ई) में उसके कथन से ऐसा लगता है मानो उसने वहाँ के स्मारकों को देखा हो, तथा उसमें मिश्र की शिक्षा-पद्धति का ज्ञान भी झलकता है (८१९ ब)। चाहे जो भी हो, यह निश्चित है कि वह मिश्र गणित के अध्ययन के लिए नहीं गया था, क्योंकि वह मिश्र की कला के सम्बन्ध में जितनी प्रशन्सा करता है, वैसी अच्छी धारणा मिश्र के विज्ञान (७४७ स) के सम्बन्ध में नहीं रखता है। यदि वह मिश्र गया होगा, तो बहुत सम्भव है कि वह साक्रेटीज के मित्र तथा गणितज्ञ थिओडोरस से मिलने काइरेने (Kyrene) भी गया होगा। परन्तु यह भी सम्भव है कि उसने एथेन्स में ही उससे परिचय प्राप्त किया हो, जहाँ वह साक्रेटीज की मृत्यु के ठीक पहले शिक्षण-कार्य कर रहा था। परन्तु यह सब अत्यन्त संदिग्ध है तथा सबसे पहला निश्चयात्मक तथ्य जो हमें ज्ञात है वह है कि उसने चालीस वर्ष की आयु में प्रथम बार इटली तथा सिसली की यात्रा

(पत्रक. vii, ३२४ अ)। सम्भव है कि उन प्रदेशों में एक बार पुनः शक्तिशाली हो रहे प्रसिद्ध पाइथागोरियन्स से परिचय प्राप्त करने की उनकी इच्छा रही हो, तथा सम्भवतः इन्हीं लोगों के माध्यम से उसने डिऑन (Dion) से भी परिचय किया, जिसकी आयु उस समय लगभग बीस वर्ष की थी। इस कारण वह सिराक्यूज में डायोनिसियस प्रथम की सभा में आया, जहाँ की अपनी ऐश्वर्यपूर्ण दिनचर्या से वह खिन्न हो गया। कहानी इस प्रकार की है कि उसके भाषण-स्वातन्त्र्य से डायोनिसियस नाराज हो गया, तथा उसे स्पार्टा के राजदूत पोलिस (Pollis) के सुपुर्द कर दिया। पोलिस ने उसे एजिना (Aigina) में दास की भाँति बेंच दिया। उसके जीवन को भी खतरा था, परन्तु काइरेने के एनिकेरिस नामक एक व्यक्ति ने उसका उद्धार किया, यदि यह कहानी सत्य है, तो 'सप्तम "पत्रक" में इसका उल्लेख न होना आश्चर्यजनक है। प्लेटो ने सम्भवतः सोचा हो कि डिऑन तथा कनिष्ठ डायोनिसियस से उसके सम्बन्धों का वर्णन करना अनावश्यक है। यदि यह कहानी उस समय प्रचलित रही हो तो प्रक्षेपक इसका उल्लेख किये बिना न रहता, परन्तु सम्भवतः स्वयं प्लेटो भी ऐसा कर सकता है जो भी हो, वह थोड़े समय के भीतर ही एथेन्स लौट आया।

इस समय प्लेटो की आयु चालीस वर्ष से थोड़ी ऊपर ही रही थी, तथा साक्रेटीज की मृत्यु हुए बारह वर्ष बीत चुके थे। जैसा कि परवर्ती विवरणों से ज्ञात होता है, उसने इन सारे वर्षों में लगातार केवल यात्राएँ ही नहीं की। यह मानने का एक अच्छा आधार यह है कि इस समय तक वह अपने संवादों में से बहुत से संवादों का लेखन-कार्य अवश्य ही सम्पन्न कर चुका होगा। सम्वादों के लेखन-क्रम के बारे में कुछ निर्णय लिए बिना भी हम पर्याप्त दृढ़ता से कह सकते हैं कि चालीस वर्ष की आयु के पूर्व ही उसने 'यूथिफ्रो', 'एपॉलाजी', 'क्राइटो', 'चार्मिडीज', 'लैचीज', 'लाइसिस', 'यूथाईडीमस', 'प्रोटागोरस', 'जॉर्जियस' तथा 'मीनों' का लेखन-कार्य समाप्त कर लिया था।[1] यदि हम यह मान लें कि साक्रेटीज की मृत्यु के पूर्व उसने कोई संवाद नहीं लिखा था, तो उसने प्रति वर्ष एक संवाद की रचना की। यदि हम यह याद रखें कि महान् दुःखान्तिकी लेखक एक वर्ष में प्रायः चार नाटक लिख लेते थे, तो प्लेटो की लेखन-गति अधिक तेज नहीं लगेगी। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं प्रतीत होता

१. लेविस कैम्पबेल ने १८६७ में शैली सम्बन्धी शोधों का जो प्रारम्भ किया था, मैंने उन्हें मान लिया है। उन पर यहाँ विचार करने में बहुत समय लगेगा।

कि 'सिम्पोजियम' तथा 'फ़ीडो' भी इस समय तक लिखे जा चुके थे, तथा कम से कम 'रिपब्लिक' का अधिकांश भाग भी लिखा जा चुका था। जो भी हो, यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये सब कृतियाँ अकादमी की स्थापना के पूर्व पूर्ण हो चुकी थीं, तथा मेरे विचार से यह मान लेना चाहिए कि 'फीड्रस' भी बहुत बाद की रचना नहीं है। 'रिपब्लिक' के कुछ अंशों के अतिरिक्त इन सभी सम्वादों में नाटकीय अभिरूचि ही अन्य अभिरूचियों की अपेक्षा प्रधान है। प्लेटो की नाटकीय प्रतिभा को यद्यपि शब्दों के माध्यम से स्वीकार किया गया है, परन्तु उसके साथ न्याय कम ही हुआ है। अत्यन्त विरोधी भूमिकाओं के प्रतिपादन की उसमें विलक्षण प्रतिभा थी, तथा इस प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण सिम्पोजियम' नामक संवाद है। यह संवाद प्रारम्भिक काल की रचना नहीं, वरन् 'फीडो' तथा 'रिपब्लिक' का समकालीन है। मैं यह सोच नहीं सकता कि जो व्यक्ति अपने बारे में कुछ भी कहे बिना प्रोटागोरस अथवा जॉर्जियस अथवा एरिस्टोफ़ेनीज अथवा एल्किबियाडीज के चरित्र के माध्यम से निर्बाध कथन कर सकता है उसे स्वेच्छया अथवा अनिच्छया स्वयं अपने लिए साक्रेटीज को माध्यम बनाने की आवश्यकता पड़ेगी। अतः मैं समझता हूँ कि इन संवादों के द्वारा प्लेटो के आन्तरिक विचारों को समझना असम्भव है, तथा मेरे विचार से 'द्वितीय पत्रक' में तद्विषयक एक महत्त्वपूर्ण कथन है। वहाँ (३१४ स) वह कहता है। "प्लेटो की कोई भी रचना नहीं है, न तो भविष्य में ही कभी होगी। उसके नाम से जो भी मिलता है वह, वस्तुतः, साक्रेटीज का है।" ये संवाद वस्तुतः एक पूर्ववर्ती पीढ़ी का चित्र उपस्थित करते हैं, तथा मैं समझता हूँ कि ये मुख्यतया इसी पीढ़ी के हैं। मेरे विचार से प्लेटो के पास इस समय तक कुछ ऐसा चिन्तन नहीं था जिसे वस्तुतः उसका अपना दर्शन कहा जा सके। वह उन लोगों में से लगता है जिनका विशुद्ध बौद्धिक विकास विलम्ब से हुआ, तथा वृद्धावस्था तक बना रहा। प्रारम्भ में उसमें कलात्मक अभिरूचि का प्राधान्य था, तथा जब तक उसकी कलात्मक प्रतिभा का ह्रास नहीं हो गया, तब तक विशुद्ध दार्शनिक प्रतिभा ऊपर नहीं उठ पायी। रिपब्लिक' तथा 'फ्रीड्रस' के केवल कुछ अंशों में ही हमें कुछ ऐसी सामग्री मिलती है जिसे हम साक्रेटीज की न कहकर प्लेटो की कह सकते हैं, तथा मैं समझता हूँ कि वह अपवाद इसलिए मिलता है क्योंकि प्लेटो उस समय शीघ्र ही अकादमी का प्रारम्भ करने वाला था। वहाँ पर जिन पाठ्यक्रमों के चलाने का कार्यक्रम था उसमे से अभिवावकों की उच्च शिक्षा का भी एक कार्यक्रम

प्रतीत होता है, तथा जैसा कि हम देखेंगे, प्लेटो जब साक्रेटीज से घन ज्यामिति के कार्यक्रम के बारे में कहलाता है तब वह स्वयं कुछ उद्विग्न है। साक्रेटीज ने प्रस्ताव रखा था कि समतल ज्यामिति के ठीक बाद ज्योतिष (Astronomy) का अध्ययन किया जाय, परन्तु वह अपनी भूल सुधार कर दोनों के मध्य त्रिविमितीय (three dimensional) ज्यामिति रखता है, जिस पर ग्लाउकन यह कह कर आक्षेप करता है कि इसका आविष्कार हो चुका है, तथा उसके एक मित्र ने ही यह आविष्कार किया है। इसका वहाँ पर प्रवेश कराने में प्लेटो जिस असंगति का अनुभव करता हैं वह मेरे विचार से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि उसने सभी प्रकार की वैज्ञानिक अभिरूचियों को साक्रेटीज पर आरोपित कर दिया होता, जिनसे साक्रेटीज वस्तुत: अपरिचित था, तो वह केवल घन ज्यामिति के सम्बन्ध में ही क्यों संशकित होता ?

अकादमी की स्थापना

एथेन्स लौटने के कुछ ही समय बाद प्लेटो द्वारा अकादमी की स्थापना न केवल उसके जीवन की ही, वरन् यूरोपीय विज्ञान के इतिहास की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। इसमें सन्देह नहीं कि प्लेटो को यह सुझाव सर्वप्रथम मेगारा में यूक्लिडीज की संस्था से, तथा दक्षिण इटली में उसने पाइथागोरियन संस्थानों में जो कुछ देखा उससे, मिला था। 'अकादमी' शब्द एथेन्स की चहार दीवारी के बाहर स्थित एक व्यायामशाला (Gymnasium) से बना है, जिसे किमोन ने आम जनता के उद्यान के रूप में निर्मित किया था। यहाँ पर प्लेटो का एक आवास तथा बगीचा था, तथा बहुत दिनों तक यही संस्था का केन्द्र रहा। सुल्ला [Sulla] ने ई० पू० ८६ में जब एथेन्स पर कब्जा कर लिया तब यह केन्द्र नगर के अन्दर चला आया, तथा वहाँ पर तब तक चलता रहा जब तक सन् ५२९ ई० में जस्टिनियन (Justinian) ने इसे विस्थापित तथा अप्रतिष्ठित नहीं कर दिया। इस ढंग की सभी संस्थाओं की भाँति उसकी भी व्यवस्था एक धार्मिक निगम के रूप में हुई थी। इसमें एक देवालय (Chapel) था जो म्यूजेज (Muses) के नाम समर्पित था, तथा इसमें समय-समय पर यज्ञ भी होते थे। इसके सभी सदस्य अधिकांशत: समान ढंग का जीवन व्यतीत करते थे।

प्रारम्भ से ही बड़ी संख्या में युवक अकादमी की ओर आकर्षित हुए, तथा बाद में उनमें से अनेकों ने ख्याति प्राप्त की। उल्लेखनीय है कि यवन जगत् के लगभग सभी प्रदेशों से ये युवक अकादमी में आते थे। जिन तथ्यों के आधार

पर चतुर्थ शताब्दी को पाँचवीं की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता था उनमें से एक यह भी था कि पाँचवीं शताब्दी में एथेन्स युवक उन विशिष्ट विदेशियों से शिक्षा प्राप्त करने थे जो सयम-समय पर एथेन्स की अल्पकालिक यात्राओं पर आते थे।। चौथी शताब्दी में समस्त यवन देश के युवक आकर एथेन्स के दो नागरिकों – सात्रेटीज तथा प्लेटो के चरणों के समीप वैठकर शिक्षा प्राप्त करते थे। एथेन्स वस्तुतः 'यवन देश का विद्यापीठ' बन चुका था। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि इन युवकों की एक बड़ी संख्या उत्तर से, विशेषतया थ्रेस में तथा काला सागर पर ग्रीक उपनिवेशों से, आती थी। इसका कुछ सम्भावित कारण तो यह है कि किज़िकस (Kyzikos) में गणित का एक विद्यापीठ था, जिसका अधिष्ठाता यूडॉक्सस (Eudoxos) था। जो भी हो, यूडॉक्सस ने अपनी पीठ को स्वयं अपने साथ ही अकादमी में स्थानान्तरित कर दिया। यह विशेष रूप से और भी अधिक उल्लेखनीय है क्योंकि गणित तथा ज्योतिष सम्बन्धी विषयों पर यूडॉक्सस तथा प्लेटो का सर्वदा मत-भेद था। जहाँ तक हमें अकादमी के संगठन के बारे में ज्ञात है, इसमें आयोनिया का अपर्याप्त प्रतिनिधित्व अकारण नहीं हो सकता। आयोनियन्स ने पाइथेगोरियन विज्ञान को अस्वीकृत कर दिया था, जिसका एक कारण यह था कि यह विज्ञान रहस्यवाद से सम्मिश्रित था, डेमॉक्रिटस के सम्प्रदाय का टीऑस (Teos) में यवन-काल तक अस्तित्व था। प्लेटो के यहाँ यूथिडोमस तथा डायोनिसोडोरस (Dionysodoros) चिऑस (Chios) से आये थे, तथा एरिस्टॉटल का प्रतिपक्षी यूबोलीडीज (Euboulides) माइलेशियन था। एथेन्स में आर्किलॉस के काल से ही प्राचीन आयोनिक परम्परा का कोई प्रतिनिधित्व करने वाला नहीं रह गया था तथा सेमॉस निवासी एपिक्यूरस ने इस परम्परा को एथेन्स में जब एक बार पुनः प्रवेश दिलाया, तब तक कि आयोनिया की स्थिति के विषय में अन्य कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

[1]. यहाँ पर यह स्मरण रखना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि प्लेटो द्वारा वास्तविक शिक्षाएँ अकादमी में ही प्रदान की गयी थी, तथा उसके परवर्ती सम्वादों में वही विचार संगृहीत हैं जिनको उसने दर्शन के अन्य सम्प्रदायों के प्रति अपनी धारणा की व्याख्या करने के लिए जनता के सम्मुख रखना आवश्यक समझा। इस तथ्य की लोग प्रायः उपेक्षा कर देते हैं, परन्तु प्लेटो से एरिस्टॉटल तक के विचारों के संक्रमण में हमारे समक्ष जो कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं उनका

इससे बहुत कुछ समाधान हो जाता है। हम अपने को सर्वथा एक भिन्न जगत् में पाते हैं, और यह स्वाभाविक है, क्योंकि हमें न तो प्लेटो के भाषण उपलब्ध हैं (खण्डों को छोड़कर), न तो एरिस्टॉटल के प्रकाशित ग्रंथ, और इस प्रकार हम दो सर्वथा भिन्न वस्तुओं की तुलना कर रहे हैं। यदि हमें केवल प्लेटो का 'शुभ' (The good) पर भाषण तथा एरिस्टॉटल का 'प्रोट्रेप्टिकस' (Protreptikos) उपलब्ध होता, तो हमें अत्यन्त भिन्न प्रकार का अनुभव प्राप्त होता। वर्तमान स्थिति में हम सरलता से यह अनुमान लगा सकते हैं कि प्लेटो के भाषण स्वयं अपने सम्वादों की अपेक्षा एरिस्टॉटल के भाषणों से अधिक मिलते थे।

यदि हम पहले यह विचार करलें कि प्लेटो का 'दर्शन' शब्द से क्या अभिप्राय था, तो अकादमी के उद्देश्य को समझने में पर्याप्त सुविधा होगी। आयोनिया में इसका प्रयोग प्रायः उस वैज्ञानिक जिज्ञासा के लिए होता था जिसके कारण लोग अज्ञात देशों की यात्रा तथा उनके रीतिरिवाजों से परिचय प्राप्त करते थे। इसका प्रयोग माइलेशियन लोगों के अनुसन्धानों लिए भी होता होगा, परन्तु उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। सम्भवतः पाइथागोरस ही वह प्रथम व्यक्ति है जिसने इसे 'संवेग युक्त विज्ञान' (Science touched with emotion) के गम्भीर अर्थ में प्रयुक्त किया, यह तथा निश्चित है कि पाइथागोरियन समाज में ही इसे एक 'जीवन-पद्धति' के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। प्लेटो का कहना है कि साक्रेटीज के लिए भी दर्शन का सर्वश्रेष्ठ रूप जीवन ही था। परन्तु एथेन्स में यह शब्द कुछ अस्पष्ट तथा छिछले अर्थ में प्रयुक्त होता था, जो सम्भवतः आयोनियन प्रयोग से प्रभावित था। वस्तुतः इस शब्द का प्रयोग कुछ उस कोटि के अर्थ में होता था जिसमें हम अपने 'संस्कृति' (Culture) शब्द का प्रयोग करते हैं। साक्रेटीज इस अर्थ में दर्शन का महान् शिक्षक था, जो उस समय में एथेन्स का एकमात्र ऐसा व्यक्ति था जिसके प्रभाव की तुलना प्लेटो से की जा सकती है। इन दोनों व्यक्तियों की एक दूसरे के प्रति क्या धारणा थी, इस विषय में जो कुछ लिखा गया है वह अधिकांश काल्पनिक है, परन्तु मुख्य तथ्य पर्याप्त रूप से स्पष्ट हैं। यहाँ उनका संक्षिप्त वर्णन ही उचित होगा, क्योंकि प्लेटो का समुचित मूल्यांकन करना है, तो साक्रेटीज को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

प्लेटो तथा साक्रेटीज़

प्लेटो तथा साक्रेटीज दोनों ही एक बात में सहमत थे और वह यह है

कि दोनों यह विश्वास करते थे कि यवन देश (Hellas) की दुर्गति का एकमात्र उपचार जागृति (Enlightenment) है, परन्तु किस प्रकार की जागृति अथवा प्रबोध की आवश्यकता है, इस विषय पर दोनों में बहुत बड़ा मतभेद था। 'फीड्रस' के अन्त में एक उल्लेखनीय स्थल है, जहाँ पर साक्रेटीज के माध्यम से साक्रेटीज की लाइसियस जैसे पेशेवर से अधिक वैषम्य दिखाया गया है। वह कहता है :–

"साक्रेटीज अभी भी अल्पायु है, परन्तु तुमको उसके भविष्य के बारे में बताने के लिए मैं तैयार हूँ जहाँ तक प्राकृतिक प्रतिभाओं का सम्बन्ध है, मैं समझता हूँ कि उसमें लाइसियस के भाषणों से कहीं अधिक श्रेष्ठ वस्तुओं की क्षमता है, तथा उसका चरित्र अधिक शालीनतापूर्वक संयमित है। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि आयुवर्धन के साथ जिस भाषण - संरचना के कार्य में वह व्यस्त है, उसमें वह इतना आगे बढ़ जाय कि आज तक जितने भी लोग भाषण - लेखन का कार्य किये हैं, वे सभी उसकी तुलना में बालक जैसे लगे। परन्तु यदि इस कार्य में उसे सन्तोष नहीं मिला, तो इसमें आश्चर्य नहीं कि किसी दैवी आवेग के कारण वह किसी अन्य उच्च वस्तु की ओर उन्मुख हो जाय, क्योंकि हे मेरे मित्र फीड्रस ! उस व्यक्ति में वस्तुतः दार्शनिक प्रवृत्ति विद्यमान है (२७९ अ)। यहाँ पर नाटकीय परिवेश की ओर ध्यान देना आवश्यक है। जो व्यक्ति साक्रेटीज की इतनी सुन्दर प्रशस्ति कर रहा है, वह साक्रेटीज है प्लेटो नहीं। साक्रेटीज भविष्यवक्ता की भाँति केवल उन व्यावहारिक भाषणों के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु के बारे में कथन नहीं कर सकता, तथा इन भाषणों के लिए साक्रेटीज बाद में लज्जित हुआ। दूसरी ओर, प्लेटो भी साक्रेटीज के मुंह से ऐसी कोई भविष्य वाणी नहीं कराता जो बाद में कुछ अंशों में चरितार्थ न हुई हो। अतः मैं समझता हूँ कि यह पूर्णतः निष्कपट प्रशस्ति है, तथा आधुनिक अनुमानों के अनुसार प्लेटो तथा साक्रेटीज के बीच जो मतभेद की बात कही जाती है, उसकी अपेक्षा वह परम्परा अधिक सत्य प्रतीत होती है, जिसके अनुसार दोनों को मित्र बताया जाता है। उनका मौलिक तथ्यों पर मतभेद अवश्य था, जिनके बहुत से विचार, विशेषतः राजनीति-सम्बन्धी, एक दूसरे से मिलते थे। साक्रेटीज का फ़ारस (Persia) के विरूद्ध ग्रीक संघ बनाने का जो आदर्श था, उसे प्लेटो ने समझा होगा, तथा उससे उसकी सहानुभूति भी होगी। साक्रेटीज ने भी प्लेटो की सिसलो की योजना के मूल्य को समझा होगा। इस योजना के बारे में हम बाद में विचार

करेंगे। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि साक्रेटीज ने प्लेटो की इस योजना को पूर्णतया असंगत समझा कि किसी राजकुमार का प्रशिक्षण गणित से प्रारम्भ किया जाय। यहाँ पर मुख्य बात यह है कि साक्रेटीज तथा प्लेटो दोनों को ही यह विश्वास था कि यवन देश का भविष्य राजतन्त्र (Monarchy) के पुनरूद्धार में है, तथा इतिहास ने यह सिद्ध कर दिया कि इस विश्वास का आधार अत्यन्त दृढ़ था।

प्लेटो तथा साक्रेटीज के बीच शिक्षा-सम्बन्धी धारणा में मतभेद था। साक्रेटीज के विचार मानवतावादी (Humanist) थे, तथा उसके एवं प्लेटो के मध्य जो स्पर्धा थी वह वस्तुत: मानवतावाद तथा विज्ञान के दीर्घकालीन संघर्ष का प्रथम अध्याय रहा। परन्तु यहाँ पर हमें यह स्मरण रखना होगा कि हम आज जिसे मानवतावाद कहते हैं उसकी अपेक्षा ग्रीक मानवतावाद अनिवार्यत: कहीं अधिक छिछला था। सर्व प्रथम बात तो यह है कि आधुनिक मानवतावाद का दूसरे लोगों की भाषा तथा साहित्य से और विशेषत: गौरवान्तित प्राक्कालीन लोगों की भाषा तथा साहित्य से, जो सम्पर्क हुआ उसमे इसको बहुत-सी उपलब्धियाँ हुईं। केवल अपने ही देश के साहित्य में व्यस्त रहने से हमेंशा छिछलापन ही आयेगा। उदाहरणार्थ, सिसरो की रचनाओं में उपलब्ध रोमन मानवतावाद भी इसी कारण तत्कालीन ग्रीक काव्यशास्त्र से कहीं अधिक गम्भीर बन गया। इसकी पृष्ठ भूमि में ग्रीक तथा रोमन पुराकाल उपस्थित था, जिससे यह पुष्ट हुआ। पुनर्जागरण - काल का मानवतावाद भी ग्रीक विज्ञान के परिणामों तथा स्वभाव के कारण अत्यन्त संसिक्त (Saturated) हो गया था, जिसके कारण सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी के वैज्ञानिक अनुसन्धानों के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ। इसके विपरीत ग्रीक मानवतावाद ने पाँचवीं शताब्दी के सोफ़िस्टों के विज्ञान तथा वैज्ञानिक पद्धतियों के प्रति बद्धमूल अनास्था को उत्तराधिकार के रूप में ग्रहण किया। अतएव साक्रेटीज के मानवतावाद में वस्तुत: कोई विशेष तत्त्व नहीं था। अत: ग्राम्य वस्तुओं को सुसंस्कृत रूप में उपस्थित करने की कला के अरिरिक्त कोई अधिक उच्च आदर्श इसके समक्ष नहीं था।

इसके साथ ही साक्रेटीज ने जिस आकार (form) आविष्कार किया था, वह अपने ढग से अविकल था, तथा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से उसने आज तक के सभी गद्य लेखकों को प्रभावित किया। असंस्कृत चिन्तन का भी अपना एक मूल्य हो सकता है, तथा इसके महत्त्व का एक सुन्दर परीक्षण इसको

कलात्मक ढंग से व्यक्त कर किया जा सकता है। यदि किसी को अपने विचारों को एक निश्चित योजना के अनुरूप व्यक्त करना पड़े, तो जहाँ तक ये विचार समीचीन होंगे, वहाँ तक उनका स्वरूप स्पष्ट तथा संसक्त हो जायेगा। जो विचार पूर्णतया असंगत होंगे, उन्हें कलात्मक ढंग से व्यक्त नहीं किया जा सकता। इस प्रकार साक्रेटीज यह मानने के लिए सर्वथा अधिकारी है कि उसके उपदेशों से शिष्यों की भलाई होती थी। यद्यपि यह सत्य है कि उसके स्वयं के राजनैतिक विचार हेलेनीज तथा बर्बरों (Barbarians) के काव्य-शास्त्रीय वृतिपक्षों (Antithesis) से अनावश्यक रूप से रञ्जित थे, तथा इस वर्ग के लोगों को प्लेटो अवैज्ञानिक मानता था (पालिटि ०२६२ ड), परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यवनवाद को सम्भव बनाने के लिए उसने बहुत प्रयास किया। साक्रेटीज के बारे में हम चाहे जो भी सोचें, यह निर्विवाद है कि प्लेटो ने उसके गुणों को स्वीकार किया। यहाँ यह दर्शनीय है कि अधिक महत्त्वपूर्ण प्रसंगों पर प्लेटो का उससे जितना ही मतभेद बढ़ता गया, उतना ही वह साक्रेटीज की शैली से मुग्ध होता गया। इन परवर्ती सम्वादों में जहाँ वैज्ञानिक प्रवृत्ति अधिक बलवती होती गयी, वहाँ साक्रेटीज का प्रभाव अधिक स्पष्टता से निरुपित होता है। 'सोफ़िस्ट' जैसी कृति अन्य सभी दृष्टियों से साक्रेटीज के समझ में आने वाली वस्तुओं से दो पृथक् ध्रुवों के सदृश दूर है, परन्तु इसी सम्वाद में प्लेटो सर्व प्रथम विच्छेद (Riatus) से बचने का प्रयास करता है, तथा ऐसा करने के लिए कुछ विशेष साक्रेटियन उपायों की सहायता भी लेता है। ऐसा लगता है कि जब उसने यह अनुभव किया कि उसकी कलात्मक-लेखन की प्रतिभा का ह्रास होने लगा है, तब वह उसे इस भांति शक्ति प्रदान करके प्रसन्न होता है।

साक्रेटीज. 'दर्शन' शब्द से जो अर्थ ग्रहण करता था उससे सर्वथा भिन्न अर्थ में प्लेटो ने इसका प्रयोग किया। यदि हम अकादमी की स्थापना के समय लिखे गये सम्वादों को, तथा विशेषतया 'सिम्पोजियम', 'रिपब्लिक' तथा 'फीड्रंस' को देखें, तो हम यह पावेंगे कि उसने इस शब्द को मुख्यतः दो अर्थों में प्रयुक्त किया। प्रथम, यह आत्मा का परिवर्तन (Conversion) हैं, तथा द्वितीय, यह मानव मात्र की सेवा है। हम पश्चादुक्त प्रसंग पर पहले विचार करेंगे, क्योंकि जब तक यह स्पष्ट न हो जाय, तब तक अकादमी की स्थापना के पीछे प्लेटो का क्या लक्ष्य था, इसे समझना असम्भव है। विशुद्ध उपयोगि-तावादी उद्देश्यों से मुक्त तथा निःस्वार्थ भाव से वैज्ञानिक अध्ययन की आव-

श्यकता पर उसने जितना बल दिया है उतना किसी ने नहीं दिया, परन्तु साथ ही साथ उसके समान किसी अन्य व्यक्ति की यह दृढ़ मान्यता नहीं है कि इस प्रकार के अध्ययन का अन्ततोगत्वा औचित्य तभी है जब यह मानव-जीवन की सेवा के लिये उपयोगी हो। वह कहता है (Ep. vii. ३२६ a) कि सात्रेटीज के इस आग्रह को कि ज्ञानी ही शासन करेगा और भी सुस्पष्ट रूप इस ढँग से दिया जा सकता है कि राजाओं को दार्शनिक होना चाहिए, तथा दार्शनिकों को राजा (Kings should turn into Philosophers or philosophers should become kings)। इस आदर्श से वह कभी विचलित नहीं हुआ, तथा यद्यपि इसके चरितार्थ होने की आशा क्षीण हो चुकी थी, परन्तु इसके क्रियान्वयन के लिए किसी भी उपाय का वह स्वागत करने के लिए तैयार था। यदि दार्शनिक शासक सम्भव न हो सके, तो दार्शनिक तथा निरंकुश शासक यदि आपस में सहयोग करें, तो बहुत कुछ सफलता मिल सकती है। यदि यह निरंकुश शासक आयु में कम हो तथा प्रभावित होने की स्थिति में हो, तो यह विशेष रूप से सरल है, इस धारणा को वह 'लाज' (७०६ इ) में पुनः पुष्ट करता है, यद्यपि इस योजना को एक ही प्रयास में क्रियान्वित करने में वह एक बार असफल हो चुका था। अतएव अकादमी सर्वप्रथम एवं सर्वोपरि शासकों तथा विधायकोंको प्रशिक्षित करने की संस्था थी, तथा अपने इस उद्देश्य में वह अत्यन्त सफल रही। वस्तुतः इसके विरूद्ध यह आरोप लगाया गया कि इस संस्था में निरंकुश शासक उत्पन्न किये जाते हैं। और यदि तथ्यों का उचित मूल्यांकन हो तो यह सत्य है, तथा इससे अकादमी को प्रतिष्ठा मिली।

सात्रेटीज सगर्व कहता है कि उसका प्रशिक्षण उसके विपक्षियों के प्रशिक्षण की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक था, परन्तु उसके अधिकांश शिष्य या तो काव्य-शास्त्र के इतिहासकार हुए अथवा काव्यशास्त्रीय दुःखान्तिकी-लेखक। इसके विपरीत प्लेटो ने राजनयिकों तथा विज्ञानविदों को प्रशिक्षित किया। हम बाद में देखेंगे कि नये समुदायों द्वारा विधायकों की प्रशिक्षित किया गया। हम बाद में देखेंगे कि नए समुदायों द्वारा विधायकों की प्राप्ति के लिए अकादमी के पास प्रायः आवेदन आया करते थे। इस कहानी में तनिक भी असम्भावना नहीं है कि एपामिनोडस (Epameinondas) ने, जो पाइथागोरियन लाइसिस का सहयोगी था, ने स्वयं प्लेटो से यह आग्रह किया था कि वह मेगालोपोलिस के लिए एक विधान-संहिता बनावे, परन्तु कहा जाता है कि प्लेटो ने इसे स्वीकार नहीं किया।

अकादमी की कार्य-प्रणालियाँ

प्लेटो के नाम के साथ दो प्रणालियां विशेष रूप से संयुक्त हैं। पहली विश्लेषण (Analysis) विधि, तथा दूसरी विभाजन (Division) प्रणाली. प्रथम प्रणाली का आविष्कारक प्लेटो बताया जाता है, जिसने इसे लिओडेमस (Leodamas) को 'प्रदान किया'। यह उल्लेखनीय है कि यूक्लिड के खण्ड त्रयोदश में जो प्रमुख अर्थ में अकादमी में रचित ग्रन्थ हैं, प्रथम बार विश्लेषणात्मक तर्क सामान्य तर्कों के अतिरिक्त पृथक् रूप से दिये गये हैं। परन्तु यह मानना कठिन है कि विश्लेषण-विधि प्लेटो के पूर्व नहीं थी। जिसे हम असंगापत्ति-तर्क (Reductio ad absurdum, apagogic) कहते हैं, वह विश्लेषण-प्रणाली का ही एक अनुप्रयोग है, तथा इसमें सन्देह नहीं कि पाइथागोरियन्स ने इसका उपयोग किया था। इसके अतिरिक्त, प्लेटो स्वयं पार्मेनीडीज द्वारा साक्रेटीज को इसे सिखाते हुए दिखाता है, तथा जैसा कि हमने देखा है (अव० १२१) 'मीनों' तथा 'फ़ीडो' में साक्रेटीज स्वयं इसकी व्याख्या करता है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्लेटो का कार्य केवल इतना ही रहा कि उसने इस विधि को और अधिक स्पष्ट रूप दिया, तथा सम्भवतः विश्लेषण की संश्लेषण द्वारा पूर्ति की आवश्यकता को भी दिखाया, ताकि विश्लेषण द्वारा प्राप्त किये गये सभी मध्यवर्ती चरण अन्योन्याश्रित हो जाय।[1] यदि तर्क पूर्ण है तो परिणामों की शृंखला प्रतिवर्ती (Reversible) होनी चाहिये। यूक्लिड द्वारा प्रदत्त प्रत्येक विश्लेषण का उसका सम्वादी संश्लेषण तुरन्त अनुवर्तन करता है। गैलिलिओ ने सत्रहवीं शताब्दी में प्रचलित एरिस्टाटेलियन विधियों के एक विकल्प के रूप में इसे पुनः प्रवर्तित किया।[2]

प्लेटो की दूसरी प्रणाली विभाजन (Division) विधि है, जिसे हास्य-कवि भी अकादमी की विशेषता मानते थे। जिस प्रकार से विश्लेषण का प्रयोजन व्याख्या अथवा तर्क है। उसी प्रकार विभाजन, वर्गीकरण अथवा परिभाषा का साधन है। यह प्रणाली निम्नलिखित है। जिस वस्तु की परिभाषा अथवा वर्गीकरण करना होता :, उसे पहले उसकी जाति (Genus) से सम्बद्ध किया जाता है, तदुपरान्त द्विधा वर्गीकरणों की एक शृंखला द्वारा जाति को जातियों तथा उप-जातियों [Species] में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक विभाजन

---

१. यह टेनेरी (Tannery) का मत था।

२. विघटन-पद्धति (metodo risolutive) विश्लेषणात्मक विधि ही है। गैलिलियो एक दृढ़ प्लेटोवादी था।

के समय हम प्रश्न करते हैं कि परिभाषित होने वाली वस्तु इन जातियों में से किसके अन्तर्गत आती है। तथा उस जाति का एक बार पुनः विभाजन किया जाता है, और बांईं ओर पड़ने वाली जाति का विभाजन नहीं किया जाता, क्योंकि इसका कोई प्रयोजन नहीं होता। दाहिने हाथ की ओर आने वाली सभी जातियों को संयुक्त कर देने से परिभाषा ज्ञात हो जाती है। 'सोफ़िस्ट' तथा 'स्टेट्समैन' सम्वादों में प्लेटो ने इस विधि के जो उदाहरण दिये हैं, उन्हें इसी का प्रायः लौकिक तथा विनोदात्मक अनुप्रयोग मानना चाहिये। परन्तु इसी कारण से ये उदाहरण किसी गम्भीर उदाहरण की अपेक्षा अधिक उपयोगी हैं, क्योंकि गम्भीर उदाहरणों में प्रत्येक चरण के औचित्य को विस्तार से समझना आवश्यक होगा। जब हम 'फाइलैयस' (Philebus) पर विचार करेंगे, तो इस विषय की चर्चा होगी।

अकादमी में शिक्षण तथा अध्ययन के लिए अपनायी जाने वाली योजना के बारे में हमें प्रत्यक्ष प्रमाण बहुत कम मिलते हैं, जो स्वाभाविक ही हैं। परन्तु जो कुछ भी प्रमाण हमें उपलब्ध है, वे विश्वसनीय तथा प्रतिबोधक हैं। प्रथम बात तो यह है कि यह निर्विवाद है कि प्लेटो नियमित व्याख्यान देता था, तथा उसके श्रोता उसे लिखते जाते थे। एरिस्टोजिनस ने कहा कि एरिस्टॉटल हमेशा यह बताता था कि उसके 'शुभ' पर व्याख्यान को सुनने वाले अधिकांश श्रोता कैसे प्रभावित होते थे। वे वहाँ पर उस आशा से आते थे कि उन्हें उन वस्तुओं के बारे में सुनने को मिलेगा जो सामान्यतया श्रेष्ठ मानी जाती है, परन्तु जब उन्हें अंकगणित तथा ज्योतिष तथा ससीम एवं एकम् के अतिरिक्त और कुछ सुनने को नहीं मिलता, तो उन्हें यह सब बड़ा विचित्र प्रतीत होता था सिम्पि-लसियल द्वारा हमें ज्ञात होता हैं कि एरिस्टॉटल स्प्यूसिपस (Sp eusippos) तथा जेनोक्रेटीज (Xenokrates) सभी ने इसी विषय पर कक्षा में लिखे गये अपने अपने लेखों को प्रकाशित किया। हम यह अनुमान कर सकते हैं कि प्लेटो अपने व्याख्यानों को लिखता नहीं था, तथा एरिस्टॉटल उसके 'अलिखित मताग्रहों' (unwritten dogmas) की ओर जो उल्लेख करता है, उससे भी यह सम्पुष्ट होता है, जैसा कि हम जानते हैं। गम्भीर प्रयोजनों के लिए प्लेटो पुस्तकों को आवश्यक नहीं मानता था। 'सप्तम पत्रक' में उसे यह शिकायत है कि उसके जीवन-काल में ही उसके कुछ श्रोताओं ने उसके 'शुभ' के सिद्धान्त के विवरण प्रकाशित किये, तथा इसका वह प्रतिरोध भी करता है। वह स्थल उल्लेखनीय है। वह कहता है :—

इस विषय पर न तो मैंने अभी कुछ लिखा है और न भविष्य में ही लिखूंगा। अध्ययन की अन्य विद्याओं को जिस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है, उस ढँग से इसकी अभिव्यक्ति सम्भव नहीं, परन्तु इस विषय पर दीर्घकालीन अन्तर विषयक संव्यवहार तथा उसके अनुसार सामान्य जीवन व्यतीत करने के परिणाम स्वरूप अकस्मात् निकलती हुई चिनगारी की ज्योति के समान प्रकाश उत्पन्न हो जाता है, और जब वह प्रकाश आत्मा में पहुँच जाता है, तो अपना भोज्य स्वयं प्राप्त कर लेता है, यह मैं अवश्य जानता हूँ कि अन्य लोगों की अपेक्षा मैं उन्हें अधिक अच्छे ढंग मे व्यक्त कर सकता हूँ। इसके अतिरिक्त मैं यह भी जानता हूँ कि यदि उन्हें अनुचित ढंग से शब्द-बद्ध कर दिया गया, तो इस कारण सबसे अधिक कष्ट मुझे ही होगा। यदि मैं समझता हूँ कि उन्हें सन्तोषजनक ढंग से लिखा तथा जनता के समक्ष कहा जा सकता है, तो मानव मात्र की महान् सेवा के निमित्त लिखने तथा प्रकृति को सभी लोगों के समक्ष अभिव्यक्त करने जैसे सुन्दर कार्य से बढ़कर मेरे लिए जीवन में और क्या होता? परन्तु बहुत कम ही लोग अप्रर्याप्त संकेतों के माध्यम से इस वस्तुओं का स्वतः अनुसन्धान कर पाते हैं, और उनके अतिरिक्त अन्य लोगों के द्वारा इसे प्राप्त करने के प्रयास को भी मैं अच्छा नहीं समझता। अन्य लोगों में या तो ऐसी तिरस्कार की भावना उत्पन्न हो जाएगी जो कदापि सुखद नहीं, अथवा उनमें ऐसी मनोहर परन्तु निरर्थक सम्भावना घर कर जावेगी, मानों उन्होंने कोई बहुत महान् बात सीख ली हो (३४१ c–e)।

इसे रहस्यात्मक-वृत्ति कहा गया है, परन्तु बात ऐसी नहीं है। यह सभी प्रकार की उच्च शिक्षा के सच्चे सिद्धान्त का कथन मात्र है। दर्शन उपयोगी हो, इसके लिए आवश्यक है कि यह व्यक्ति के अन्तरतम की वस्तु हो। यदि यह किसी अन्य व्यक्ति के चिन्तन की प्रतिध्वनि मात्र है, तो वह 'दर्शन' नहीं रह जाता। उपर्युक्त कथन प्लेटो के व्याख्याकार को एक हितकर चेतावनी भी देता है। कुछ मात्रा में उसे प्लेटो के गम्भीरतम चिन्तन के थोड़े अवशेष प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु उसकी आत्मा को पुनः प्रतिष्ठित करना कठिन है।

अतएव अब हमें इस दृष्टि से विचार करना है कि प्लेटो अकादमी में अलिखित व्याख्यान देता था, तथा उसके अधिक सचेत श्रोतागण, जहाँ तक सम्भव था, उन्हें लिख लेते थे। परन्तु यह नियमित प्रवचन आवश्यक होते हुए

भी अभीष्ट का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश नहीं था । निःसन्देह यह किसी ग्रन्थ से श्रेष्ठ था, परन्तु यह वास्तविक लक्ष्य के लिए उपक्रम-मात्र था । इसका उद्देश्य था आत्मा को उद्‌बुद्ध करना, तथा उसे प्रकाश की ओर उन्मुख करना है । परन्तु आत्मा को स्वयं ही प्रकाश का दर्शन करना होगा । अकादमी केवल व्याख्यान-कक्ष नहीं थी, यह वैज्ञानिक अनुसन्धान का संस्थान थी । सिम्प्लिलियस, जिसे उस संस्था के ग्रन्थालय का उपयोग करने की सुविधा थी, कहता है कि प्लेटो ने, जिसकी यह धारणा थी कि आकाशीय पिण्डों की गति नियमित होनी चाहिए अकादमी के वैज्ञानिकों के समक्ष इसे एक समस्या के रूप में प्रतिपादित किया, गया तथा यह आशा की गयी कि वे यह ज्ञात करें कि किस प्राक्कल्पना के आधार पर उनकी दृश्यमान अनियमितता की व्याख्या की जा सकती है, ताकि 'व्यवहार जगत् की रक्षा हो सके' ।[१] इस सन्दर्भ में 'समस्या' शब्द पर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है । यह शब्द तथा 'उपन्यास' (Protasis) जिसे उपरोक्त स्थल पर प्रतिपादन (Propound) क्रिया के रूप में प्रयुक्त किया गया है, दोनों ही भोज के समय पहेलियाँ पूछने की ग्रीक प्रथा से निकले हैं, तथा इन शब्दों का सम्भोजन सम्बन्धी सान्निध्य इस बात का साक्षी है कि वैज्ञानिक अनुसन्धान सामूहिक जीवन का विषय है । इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अन्वेषण कैसे कुछ समस्याओं अथवा कठिनाइयों के समाधानों की जिज्ञासा का रूप ग्रहण कर लेता था । इस प्रकार की पहेलियों का एक संग्रह हमें एरिस्टॉटल के लेख-सञ्चयन (Corpus) में मिलता है, जो स्पष्ट है कि उसकी संस्था के कार्य से निष्पन्न है । ऊपर उद्धृत सिम्प्लिलियस के वृत्तान्त से यह स्पष्ट होता है कि इस प्रणाली का जन्म अकादमी में हुआ, यद्यपि यह मौलिक अनुसन्धान के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा-पद्धति का प्रारम्भ मात्र है ।

यहाँ पर भी द्रष्टव्य है कि प्लेटो ने अपने छात्रों के अनुसन्धानों को गणित तथा ज्योतिष जैसे विषयों तक ही सीमित नहीं रखा, जिनमें उसकी अपनी विशेष रूचि थी । इसमें सन्देह नहीं कि उसके सभी छात्रों को गणित का प्रारम्भिक प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक था, परन्तु इस बात का पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध है कि वहाँ पर जीव-विज्ञान सम्बन्धी विषयों का भी बड़े उत्साह से अध्ययन होता था । सुखान्तिकी कवियों के व्यंग्यों का लक्ष्य मुख्यतया

---

१. सिम्प्लि । de Caelo, pp. ४८८ २१; ४९२. ३१ (Heiberg).

अकादमी के इसी पक्ष की ओर होता था। एपिक्रेटीज (Epikrates) प्लेटो, ल्यूसिपस तथा मेनडीमस का इसलिए परिहास करता था क्योंकि वे विभाजन प्रणाली से कुम्हड़ों के वंश का पता लगाते थे (खण्ड, ५)। प्लेटो के भतीजे तथा उत्तराधिकारी स्कूसियस ने पशुओं तथा सब्जियों के वर्गीकरण पर अनेक पुस्तकें लिखीं, तथा उसके जो कुछ खण्ड अवशिष्ट हैं, उनमें शंख के कीड़े तथा सेवार (Fungi) जैसे विषयों का भी अध्ययन है। 'क्रिटियस' (Critias, ११०, d sq) में प्लेटो अत्तिका (Attika) के भौमिकी इतिहास तथा इसके आर्थिक परिणामों का जो विवरण देता है, उससे हम आश्चर्यचकित हो जाते हैं। यह इस प्रकार के विषय पर अत्यन्त आधुनिक सम्वादों के ही स्तर का है। एरिस्टॉटल का जीव-विज्ञान पर जो कार्य था, वह उसके जीवन के प्रारम्भिक काल का था, तथा यह स्वाभाविक है कि उसे इन तथ्यों से सम्बद्ध किया जाय। वस्तुतः हम यह सरलता से कह सकते हैं कि अकादमी वैज्ञानिक उपकरणों तथा संग्रहों से सुसज्जित थी। एरिस्टोफ़नीज 'क्लाउड्स' में यह मानकर चलता है कि किसी वैज्ञानिक संस्था में मानचित्र तथा खगोलीय नमूने अवश्य रहते हैं। और यदि पाँचवीं शताब्दी में यह स्थिति थी, तो चतुर्थ में भी इसे निश्चित रूप से माना जा सकता है।

अध्ययन के कार्यक्रम

'रिपब्लिक' नामक सम्वाद में अभिभावकों की उच्च शिक्षा की जो रूपरेखा दी गयी है, उसे हम अकादमी में पालन किये जाने वाले पाठ्यक्रम का नमूना मान सकते हैं। यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पाठ्यक्रम का गणित सम्बन्धी अंश बीस वर्ष से तीस वर्ष की आयु में, अर्थात् दस वर्ष की अवधि में, पूरा होता है। और ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक नियमित कार्यक्रम था। परन्तु 'रिपब्लिक' में विज्ञानों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है, उसे प्लेटो तद्विषयक परिषद् विचार के रूप में ग्रहण करना भ्रामक होगा। यह अकादमी की स्थापना के पूर्व लिखा गया था, स्थापना के शीघ्र उपरान्त, तथा प्लेटो की शिक्षाओं के अपने विशिष्ट मत अभी तक पल्लवित नहीं हुए थे। प्लेटो उसके बारे में भली-भाँति सजग है। उसका आग्रह था कि सभी विज्ञानों की प्राकल्पनाओं का सर्वांगीण परीक्षण किया जाय, परन्तु उसे अभी तक क्रियान्वित नहीं किया जा सका। 'लम्बे मार्ग' से उसका यही अभिप्राय है, जिसकी यात्रा अभी पूर्ण करनी है। (४३५ ड, ५०४ ब)। अतः हम पायेंगे कि 'रिप-

ब्लिक' में वर्णित यथार्थ विज्ञानों के दर्शन का बाद में अनेक महत्वपूर्ण दृष्टियों से रूपान्तरण किया गया।

अकादमी के अध्ययन का कार्यक्रम इस सिद्धान्त पर आधारित है कि शिक्षा का यह कार्य है कि कि वह आत्मा का ध्यान सम्भवन (Becoming) से हटा कर सत् (Being) पर लगाये, जैसा कि हमने देखा है, वह भेद पाइथागोरस ने किया था, अतः यह स्वाभाविक है कि पाठ्यक्रम में वे चार पाइथागोरिरन विज्ञान हों, जो मध्यकालीन चतुष्टक (quadrivium) में भी विद्यमान रहे। अन्तर केवल इतना हुआ कि समतल तथा घन रेखागणित में भेद हो गया. जिससे चार के स्थान पर पांच पाठ्य हो गये। यदि इनको क्रम से लिया जाय, तो हमें प्लेटो का वह दृष्टिकोण ज्ञात हो जायगा जिसके अनुसार इनको प्रारम्भ किया गया था।

१. अंकगणित (Arithmatic)—इस स्थिति में अंकगणित का अध्ययन, व्यावहारिक अथवा व्यापारिक प्रयोजनों के लिए नहीं, वरन् इस दृष्टि से करना चाहिये कि संख्याओं की प्रकृति को केवल विचार द्वारा बुद्धिगम्य बनाया जा सके। यह इन्द्रिय-संवेदन की अनेकार्थकता तथा सापेक्षता से उत्पन्न होती है। इन्द्रियों को जो वस्तु एक दीखती है, वही किसी अन्य दृष्टिकोण मे अनेक भी दिखती हैं। दो वस्तुएं कभी एक दीखती हैं, तो कभी एक वस्तु दो दीखती है, अतः विचार का कार्य यह है कि इन्द्रियां इन्हें जिस अस्पष्ट रूप में उपस्थित करती हैं, उससे पृथक् तथा विलग अंकगणित का यह कार्य है कि वह विशुद्ध सख्याओं पर विचार करें न कि दृष्ट अथवा मूर्त संख्याओं पर। दृष्ट अथवा स्पृश्य इकाई का विभाजन सम्भव है, तथा अनेक एवं एक भी इसी प्रकार विभाजनशील हैं, परन्तु एकता (Unity) स्वयं अविभाज्य है। दृश्य तथा स्पृश्य इकाइयां अनिवार्यतः एक-दूसरे के समान नहीं हैं, परन्तु अंकगणितज्ञ की सभी ईकाइयाँ पूर्णतया समान हैं। इस प्रकार की ईकाइयों को इन्द्रियों द्वारा नहीं, बुद्धि के द्वारा ही ग्रहण किया जा सकता है, तथा इसी कारण अंकगणित के अध्ययनका शैक्षणिक मूल्य हैं (५२४ ब–५२६ स)

२. समतल ज्यामिति (Plane Geometry) चूंकि व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए रेखागणित का बहुत थोड़ा ज्ञान आवश्यक है, अतः व्यावहारिक उपयोगों मे भिन्न लक्ष्यों के लिए भी इसका अध्ययन आवश्यक है। यद्यपि ज्यामितिविद् 'सीधा करना', अनुप्रयोग, तथा 'उत्पादन' जैसी क्रियाओं में युक्त होने की बात करते हैं, परन्तु यह कथन - पद्धति मात्र है, तथा ज्यामिति का

विषय भी सत् है, न कि सम्भवन, इसका उद्देश्य कुछ ऐसे अवकाशीय (Spatial) सम्बन्ध हैं, जिनके बारे में हम चाहे जा भी करें, वे केवल शुद्ध सत्मात्र हैं, तथा हमारी निर्मितियों के कारण उनकी सत्ता नहीं है। अतः इस विषय का भी मूल्य आत्मा के एक उपकरण को परिशुद्ध करने हेतु ही है।

३. घन ज्यामिति (Solid Geometry) साक्रेटीज अब रेखागणित से खगोल-विज्ञान की ओर आने वाला है, परन्तु उसे कुछ पुनस्मरण होता है, तथा कहता है कि इन दोनों के बीच एक और विज्ञान है, जिसका विषय है 'तृतीय वृद्धि' अर्थात् घन (cube), तथा जिसकी सामान्यतः तीन विमितियाँ (dimensions) होती हैं, गहराई के साथ-साथ लम्बाई, तथा चौड़ाई। ग्लाउकन यह आक्षेप करता है, "परन्तु अभी तक इसके आविष्कार के बारे में हम लोगों को कोई जानकारी नहीं है।" साक्रेटीज इसका उत्तर देते हुए कहता है कि इसका प्रथम कारण यह है कि कोई भी राज्य इस प्रकार के अध्ययन को सम्मान नहीं देता, तथा द्वितीय कारण यह है कि इन विषयों को निर्देशन के लिए एक संचालक की आवश्यकता होती है। यदि इस प्रकार संचालक के प्रयासों को राज्य द्वारा समर्थन मिले तो ये विषय शीघ्र ही पूर्णतः विकसित हो जायेंगे। वर्तमान स्थिति में भी अपने अतिशय लावण्य के कारण उनमे कुछ प्रगति हो जाती है (५२८ ड)।

जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है, यह महत्त्वपूर्ण विवरण इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि यद्यपि पाइथागोरियन्स ने पंच समघनो के सिद्धान्त का प्रारम्भ कर दिया था, परन्तु इसे पूरा किया, थीटिटस (Theaitetos) ने। तथापि घन के द्विगुणन की समस्या का समाधान बहुत बाद में हुआ। 'विन्यास - मापन' (Stereometry) शब्द का प्रयोग यहाँ नहीं हुआ। इसका सर्व प्रथम प्रयोग हमें एपिनोमिस (the Epinomis ९९० द०) में मिलता है।

अविशिष्ट विषयों का प्रतिपाद्य गति है, तथा यह संकेत मिलता है कि इनेकी संख्या निम्नलिखित दो विषयों के अतिरिक्त भी हो सकती है।

खगोल विज्ञान (Astronomy) : खगोल-विज्ञान अथवा ज्योतिष का अध्ययन केवल कृषि, नौका-नयन, अथवा रण-विद्या अथवा किसी उच्च धरातल की ओर हमारी दृष्टि केन्द्रित करने के लिए नहीं होना चाहिए। आकाशीय पिण्डों की दृश्यमान् गतियों तथा उनकी सभी गहन क्लिष्टताओं का वास्तविक ज्योतिष से वही सम्बन्ध है जैसे ज्यामितिकार द्वारा दिखाये गये रेखाचित्रों का

उसके विज्ञान से सम्बन्ध है, अर्थात्, इन आभासित गतियों को केवल दृष्टान्त मानना चाहिए। हमें इनको 'समस्याओं' के रूप में ग्रहण करना चाहिए, कि समाधान के रूप में नहीं। हमारे अध्ययन का विषय "यथार्थ गतियां हैं, जिनके साथ वास्तविक वेग (Velocity) तथा मन्दता (slowness) यथार्थ संख्याओं तथा यथार्थ आकारों में एक दूसरे के अनुपात में गतिमान होते हैं, तथा अपनी अन्तर्वस्तुओं को अपने साथ रखते हैं" (५२९ द)।

इस वाक्य के वारे में भ्रान्ति वहुत जल्दी होती है, अत: इसका स्पष्टीकरण आवश्यक है। सर्व प्रथम, आकाशीय पिण्डों की प्रत्यक्ष गतियों को ही हम सामान्यतया गतियां मानते हैं, जो बहुत जटिल हैं, तथा प्रारम्भ में यह पर्याप्त अनियमित प्रतीत होती हैं। किसी समय ग्रह नक्षत्रों (stars) के मध्य में पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हैं, तो कभी पश्चिम से पूर्व की ओर, एवं कभी-कभी वे सर्वथा निश्चल हो जाते हैं। हमारी 'समस्या' यही है, जिसका समाधान करना है। 'वास्तविक वेग' को दृष्ट वेग से पूर्णतया भिन्न कहा गया है, यहाँ पर 'वास्तविक मन्दता' का उल्लेख आवश्यक नहो समझना चाहिए, क्योंकि यह यूनानी लोगों की 'ध्रुवीय अभिव्यक्ति' की प्रवृत्ति का केवल एक उदाहरण है, और इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। यदि हम चाहें तो अपेक्षाकृत क्षीण वेग को मन्दता कह सकते हैं। इस वेग के बारे मे कहा गया है कि यह अपनी 'अन्तर्वस्तुओं' (contents) को अपने साथ वहन करता है। ऐसा इसलिये हुआ क्योंकि यूनानी लोगों की यह आदत थी कि वे कक्षीय परिक्रमण का कारण स्वय कक्षा (orbit) को ही मानते थे, न कि आकाशीय पिण्ड को, जिसके वारे म यह मान्यता थी कि उसका अपनी कक्षा में एक निर्धारित स्थान है। वे लोग यह इसलिये मानते थे कि क्योंकि वे सभी कक्षीय परिक्रमण को चन्द्रमा के परिक्रमण के समान ही स्वीकार करते हैं। चन्द्रमा का परिक्रमण ही एक ऐसा विषय है, जिसका दूरबीन की सहायता के बिना भी पर्याप्त अध्ययन किया जा जा सकता है। चन्द्रमा का प्राय: एक ही अंश पृथ्वी के सामने पड़ता है तथा किसी भिन्न संकेत के अभाव में यह मानना अनुचित नहीं कि अन्य ग्रहों की भी ऐसी ही स्थिति है। हम जानते हैं कि चन्द्रमा को अपनी धुरी पर आवर्तित होने में उतना ही समय लगता है, जितना पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमा करने में। ग्रीक लोगों ने इसी तथ्य को दूसरे ढंग से कहा कि चन्द्रमा अपनी कक्षा की सापेक्षता में कदापि परिक्रमा नहीं करता। एरिस्टॉटल का मत है कि कोई भी आकाशीय पिण्ड घूमता नहीं, तथा वे इस मत की पुष्टि के लिए यह तथ्य हमारे

सामने उपस्थित करते हैं कि चन्द्रमा का वही भाग सदा हमारी ओर रहता है, हम लोगों के लिए तो इससे यही सिद्ध होता है कि चन्द्रमा अपनी धुरी पर नहीं घूमता; परन्तु यहाँ पर एरिस्टॉटल का लक्ष्य है कक्षा (अथवा, उसकी स्थिति में' गोला], जिससे चन्द्रमा सम्बद्ध है। इन सब वातों से स्पष्ट होता था कि क्यों आकाशीय पिण्डों को 'वेग युक्त'[1] वस्तुएं मानना स्वाभाविक था। परिक्रमणों में लगने वाले वर्ष तथा दिनों की संख्यायें ही 'यथार्थ संख्याएं' हैं, तथा जिन वृत्तों, सर्पिल मार्गों, अथवा अन्य आकारों को ये खोज पाते हैं, ये यथार्थ रूप हैं। अतएव यहाँ पर अभिप्राय केवल यह है कि एक ऐसे विज्ञान की आवश्यकता है जिसके द्वारा आकाशीय पिण्डों की यथार्थ गतियों को स्पष्ट समझ सकें, न कि उनकी आभासी गतियों को। जिस प्रकार ज्यामिति-विद् के रेखाचित्रों में रेखागणित के सत्य अन्तर्निहित नहीं रहते, उसी प्रकार आकाशीय पिण्डों की आभासी गतियों से गतिमान घन पिण्डों के नियम व्यक्त नहीं होते।

यहाँ पर यह देखकर कौतूहल होता है कि 'ग्रीनव्हिच समय' (Greenwich time) जैसे उपयोगी कार्यक्रम के लिए भी इसकी आवश्यकता पड़ती है। हमारी घड़ियों में समय का निर्धारण दृश्यमान सूर्य के आधार पर नहीं, वरन् एक बुद्धिगम्य सूर्य के आधार पर होता है, जिसे माध्य सूर्य (Mean Sun) कहा जाता है, जिसका दृश्यमान सूर्य से वर्ष में केवल चार बार, और वह भी केवल एक क्षण के लिए, संपतन (Coincidence) होता है। यह उदाहरण अत्यन्त क्लिष्ट नहीं है, यह इस तथ्य से प्रकट होता है कि सूर्य के वार्षिक पथ की आभासित अनिश्चितता एक ऐसी समस्या थी जिस पर अकादमी में अन्वेषण होता था।[2] यहाँ पर यह भी कहना आवश्यक है कि जो लोग प्लेटो 'की खगोल-विद्या की ऐसी व्याख्या करते हैं, जिसमें काल्पनिक 'आदर्श' लोकों का उल्लेख है, उनकी व्याख्या के लिए यह घातक है। यदि ऐसे लोक होते, तो प्लेटो सूर्य की अनिश्चित गति के वारे में इतना क्यों परेशान होता? यदि वैसी स्थिति रही होती तो यह बड़ी सरलता से कहा जा सकता था कि बुद्धिगम्य सूर्य का वेग समरूप है, तथा दृश्यमान सूर्य के जो दोष हैं उनकी उपेक्षा कर दी जाती।

---

१. वह 'वेग' का जो विलक्षण विवरण उपस्थित करता है उससे एडम (Adam) द्वारा इस वृत्तान्त की की गयी व्याख्या का पर्याप्त खण्डन हो जाता है।

२. Phys, p. २९२. २२ (Diels) में सिम्प्लिशियस।

५. **सम्वादी विश्लेषण (Harmonics) :–** सम्वादी विश्लेपण का भी अकादमी में अध्ययन होता था, तथा इसे पाइथागोरियन लोग खगोल-विज्ञान का प्रतिरूप (counter part) मानते थे। जिस प्रकार खगोल-विज्ञान दृष्टि-इन्द्रिय द्वारा ग्रहण की गयी गतियों का अध्ययन करता है, उसी प्रकार यह विषय कर्णेन्द्रिय द्वारा ग्रहण की जाने वाली गतियों का अध्ययन करता है। यहाँ पर वे ही सिद्धान्त प्रयुक्त होंगे। जो लोग सम्वादी स्वरान्तरालों को कान के द्वारा निश्चित करने का प्रयास करते हैं, उनके बारे में तो कहना ही नहीं है। स्वय पाइथागोरियन्स भी, जो उन अन्तरालों को संख्यात्मक अनुपातों से व्यक्त करते हैं, श्रुत ध्वनि से पूर्णतया मुक्त नहीं हो पाते।[1] यह कहना पर्याप्त नहीं है कि अमुक स्वरान्तराल अमुक अनुपात द्वारा व्यक्त होता है। हमें इस पर विचार करना होगा कि कौन-कौनसी संख्याएं परस्पर अनुरूपिका (consonant) हैं, और कौन नहीं, तथा इन दोनों स्थितियों के कारण क्या हैं ?

खगोल-विज्ञान की ही भांति यहाँ भी हम भावी काल के विज्ञान का पूर्वाभास पाते हैं। जिन ध्वनियों को हम सुनते हैं वे वायु (हम इसे तरंग कहें तो अधिक अच्छा है) के विस्पन्दनों (beats) के अनुक्रमण से उत्पन्न होती है। संगीत, सिद्धान्त-शास्त्री का यह कार्य है कि संगीतीय स्वरान्तरालों के भेदों को इनके अनुसार व्यक्त करें, न कि केवल तारों की लम्बाई के आधार पर। जहाँ तक पाइथागोरियन मत का प्रश्न है, इन अनुरूपकों की प्रयोगों द्वारा उपलब्ध अनुपातों के द्वारा जैसी अभिव्यक्ति होती है, वैसी ही अभिव्यक्ति अन्य अनुपातों द्वारा हो सकती है। वस्तुतः पाइथागोरियन स्वरान्तराल एक समस्या उपस्थित करते हैं, न कि समाधान। कुछ स्वरान्तराल आनुरूपिक (सन्नादी) हैं, और कुछ नहीं है, इसका कारण स्वयं संख्या की प्रकृति में ही कोई वस्तु हो सकती है।

ये सब विषय एक अन्य कठिन विषय सीखने के उपक्रम हैं, और वह विषय है – द्वन्द्वात्मक तर्क पद्धति (Dialectic)। साक्रेटीज़ का द्वन्द्वात्मक पद्धति से क्या अभिप्राय था, यह हमें ज्ञात है। यह प्रश्नोत्तर की कला है। किसी वस्तु के तार्किक विवरण प्रस्तुत करने, तथा किसी अन्य व्यक्ति के तर्कसंगत विवरण को ग्रहण करने की यह एक कला है। जेनोफेन तक को यह ज्ञात

---

१. एरिस्टोजेनस की प्रथम कोटि में गणना होती है, परन्तु आर्किटस की द्वितीय कोटि में।

है कि साक्रेटीज़ अपने सहयोगियों में भी द्वन्द्वात्मक प्रवृत्ति उत्पन्न कर देता था, परन्तु उसके अनुसार साक्रेटीज ने इस शब्द की जो व्युत्पत्ति की है, वह त्रुटिपूर्ण है।[१] परन्तु यहाँ पर इसका तात्पर्य तर्क-कौशल से कुछ भिन्न है, अथवा कम से कम यहाँ पर इसका कुछ विशेष अभिप्राय है। 'यूथिडेमस' (२९० स) में कहा गया है कि अंकगणित, ज्यामिति, तथा खगोल-विज्ञान के विद्वानों को चाहिये कि वे अपने अन्वेषणों को परीक्षण के लिए द्वन्द्वन्याय- विद् (नैयायिक) को सौंप दें। यहाँ पर (५३३ ब) हमें ज्ञात होता है कि 'फ़ीडो' में साक्रेटीज ने प्राक्कल्पना-प्रणाली का जैसा वर्णन किया है, उसमें यही त्रुटि है कि स्वयं प्राक्कल्पना ही अपने परिणामों की संगति के आधार पर सिद्ध होती है; किसी उच्च सिद्धान्त के प्रकाश में इसका परीक्षण नहीं होता। अतः यह कहा गया है कि ज्यामिति-विदों तथा अन्य विद्वानों को सत्ता की आंशिक उपलब्धि होती है, परन्तु वे इसे केवल 'स्वप्न में' ही देखते हैं। जब तक वे प्राक्कल्पनाओं का उपयोग करते हैं, तथा इन प्राक्कल्पनाओं को उन्मुक्त नहीं होने देते, क्योंकि वे इनकी व्याख्या प्रस्तुत नहीं कर सकते, तब तक हम यह नहीं मान सकते कि उन्हें प्रबुद्ध दृष्टि से यथार्थ सत्ता का बोध होता हैं। जिस वस्तु के बारे में हमें ज्ञान नहीं, वही यदि हमारा प्रस्थान-बिन्दु हो, तथा हमारा गन्तव्य एवं सभी मध्यवर्ती कदम उस अज्ञात वस्तु के केवल कारणानुबन्ध (concatenation) हों, तो यह मौलिक प्रश्नों के विषय में मौन रहने की सहमति है, तथा ऐसी दशा में यह यथार्थ विज्ञान कभी नहीं हो सकता।

अतएव विशिष्ट विज्ञानों का दोष यह है कि वे ऐसी प्राक्कल्पनाओं पर आश्रित होते हैं, जिनकी वे व्याख्या नहीं कर सकते, अतः उनके लिए स्थूल रेखाचित्रों का उपयोग अनिवार्य हो जाता है। यह अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि द्वन्द्वात्मक पद्धति का प्रारम्भ 'प्राक्कल्पनाओं के निर्मूलन' से होता है। इसके कारण कुछ व्याख्याकारों को बहुत कठिनाई होती है। उदाहरण के लिए

---

१. Mem. iv. ५, १२. जेनोफेन साक्रेटीज द्वारा 'द्वन्द्वन्याय' शब्द की निष्पत्ति व्यावहारिक प्रयोजन के लिए 'द्वन्द्व' से कराता है। यह ठीक उसी प्रकार निष्पत्ति है जैसी Prot. ३१२ स में 'सॉफ़िस्ट' शब्द की निष्पत्ति 'चतुर' से की गयी है, अथवा 'रिपब्लिक' (५११ ब) में निहित आधार-शिला रखना' से प्राक्कल्पना, (Hypothesis) की निष्पत्ति की गई है। 'क्रेटिलस' (The Cratylus) में ऐसे बहुत से उदाहारण मिलते हैं, अतः सम्भव है कि साक्रेटीज़ ने ऐसा कहा हो।

उन्हें यह विश्वास नहीं होता कि प्लेटो तीन प्रकार के कोणों की प्राक्कल्पना को निर्मूल करना चाहता था। इस सन्दर्भ में वह इन कोणों को रेखागणित के लिए स्पष्टतया आधार भूत मानता है (५१० स)। जिस शब्द को हमने 'निर्मूलन' (destroy) के अर्थ में रूपान्तरित किया है, उसको अन्य रूप में ग्रहण करना सम्भव भी नहीं, क्योंकि हम देख चुके हैं (अव० १२५) कि इस सन्दर्भ में यह परिभाषित शब्द है। इसके अतिरिक्त, 'रिपब्लिक' में विज्ञान के बारे में जो दृष्टिकोण अपनाया गया है, उसके लिए यह आवश्यक है कि विशिष्ट विज्ञानों की प्राक्कल्पनाओं का निर्मूलन कर दिया जाय। कोणों के तीन भेदों सम्बन्धी प्राक्कल्पना का एक अवकाशीय (spatial) स्वरूप है, और इसी कारण ज्यामिति - विद् स्थूल रेखाचित्रों का प्रयोग करने के लिए वाध्य होता है। लक्ष्य तो यह है कि अंकगणित, रेखागणित इत्यादि सभी को एक विज्ञान के रूप में समाविष्ट हो जाना चाहिये, और यह तब तक सम्भव नहीं, जब तक उनकी विशेष प्राक्कल्पनाएँ विद्यमान हैं। इनका निराकरण हो जानेके पश्चात् ही हम किसी मूल तत्त्व (first principle) की ओर अग्रसर हो सकते हैं। यह तत्त्व अब अभ्युपगम (postulate) नहीं रह जाता, और इसी को 'शुभ का रूप' (the form of the good) कहते हैं। इसके उपरान्त ही बिना किसी प्रकार के स्थूल रेखाचित्रों का उपयोग किये हम निम्न धरातल पर भी आ सकते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण विज्ञान को हम एक उद्देश्य मूलक बीजगणित की भाँती मान सकते हैं।

यूक्लिडीज तथा प्लेटो

इस दृष्टिकोण को उस दशा में हम अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं, जब यह विचार करें कि प्लेटो जिस समय अकादमी में वैज्ञानिक अध्ययन के लिए योजना तैयार कर रहा था उस समय मैगारा निवासी यूक्लिडीज़ (Eukleides) की शिक्षाओं द्वारा प्रभावित होना उसके लिए कितना स्वाभाविक था। साक्रेटीज़ के पार्थिव जीवन के अन्तिम सम्भाषण के आख्यायक के रूप में फ़ाइडन (phaidon) को जो गौरव दिया गया है, वह भी इसी ओर संकेत करता है, क्योंकि उसके द्वारा स्थापित एलिस (Elis) नामक संस्था का मेगारा की संस्था से घनिष्ठ सम्बन्ध था। प्लेटो भी साक्रेटीज़ के पाइथागोरियन सहयोगियों से प्रभावित था, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि व्यक्तिगत रूप से उसकी अपने समय के प्रमुख पाइथागोरियन्स से घनिष्ठता काफी देर में हुई। जब उसने इटली तथा सिसली की प्रथम यात्रा की थी, तो इस कार्य से

लिए उसके पास पर्याप्त अवकाश नहीं रहा होगा। इसलिए यह आवश्यक है कि हम यूक्लिडीज के बारे में यथासम्भव अधिक जानकारी प्राप्त करें। दुर्भाग्य से उसके बारे में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है, परन्तु जो थोड़े से कथन हमें मिलते हैं, वे श्रेष्ठतम प्रमाणों पर आधारित हैं, अतः अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

जैसा कि हम देख चुके हैं (अव० १२७), सर्वप्रथम यूक्लिडीज़ इलियाटिक था, तथा एरिस्टॉक्लीज़ (Aristokles)[1] से हमें ज्ञात होता है कि मेगारिक सम्प्रदाय की एक परवर्ती पीढ़ी के सिद्धान्तों पर उनकी इलियाई उत्पत्ति के संस्कार तब भी वर्तमान थे। यद्यपि बहुत श्रम करने पर ही हम इन सभी सिद्धान्तों के लिए स्वयं यूक्लिडीज़ को श्रेय दे सकते हैं, परन्तु जो सिद्धान्त स्पष्ट रूप से इलियाई प्रकृति के हैं, उन्हें यदि यूक्लिडीज़ द्वारा प्रतिपदित माना जाय, तो शायद अधिक अयथार्थ नहीं होगा। उदाहरणार्थ, यह कहा गया है कि मेगारा सम्प्रदाय वाले अपना कर्तव्य समझते थे कि सम्वेदनों तथा आभासों का तिरस्कार[2] किया जाय, तथा एकमात्र तर्क पर ही विश्वास किया जाय। इस विषय में इलियाटिक के बारे में तो कोई सन्देह ही नहीं। हमें यह भी बताया गया है कि सत्ता (Being) एक (one) है, तथा सदेतर (other) का अस्तित्व नहीं, एवं सम्भवन, विनाश, अथवा गति नाम की कोई वस्तु नहीं। वह भी एक स्वस्थ इलियाटिक सिद्धान्त है। तथा यूक्लिडीज़ को हम इसका श्रेय निःसंकोच भाव से दे सकते हैं। अतः यह मानना सम्भव नहीं कि प्लेटो ने 'फ़ीडो' में जिस सिद्धान्त को साक्रेटीज़ पर आरोपित किया है उसे यूक्लिडीज़ ने स्वीकार किया हो। इस सिद्धान्त को वह प्रतिपादित करे, ऐसा तो प्रश्न ही नहीं उठता। 'फ़ीडो' में आकारों का नानात्व प्रतिपादित किया गया है, तथा ये आकार सम्भवन (becoming) जगत् में प्रविष्ठ होते हैं। अतः यूक्लिडीज़ वहाँ पर उपस्थित होते हुए भी वार्तालाप में भाग नहीं लेता। इसके विपरित, ऐसा प्रतीत होता है कि वह साक्रेटीज़ के द्वारा शुभ सम्बन्धी विषय पर दी गयी शिक्षाओं में अधिक रूचि लेता है। डोरिक बोली में लिखा गया एक रोचक प्रलेख हमें आज भी उपलब्ध है, जिसमें साक्रेटीज़ के कहे शुभत्व सम्बन्धी

---

१. एरिस्टॉक्लीज एफ्रेठिसियस निवासी एलेक्जेण्डर का शिक्षक था। इस सन्धर्भ में आये हुए कथन Fuseb. Pr. Ev. xiv. १७ में सुरक्षित है।

२. देखिये पृष्ठ ९१,३.

कुछ सिद्धान्तों का स्पष्ट उल्लेख है ।[1] यह प्राय: सर्वमान्य है कि यह पांचवीं शताब्दी के अन्तिम चरण की रचना है, तथा इसके वितण्डात्मक (eristic) स्वरूप को यदि डोरिक वोली के सन्दर्भ में देखा जाय, तो इस बात की प्रवल सम्भावना है कि इसकी जन्मभूमि मेगारा थी । चाहे जो भी रहा हो, हम यह जानते हैं कि यूक्लिडीज़ ने 'शुभ' को 'एकम्' से अपृथक् माना, जिसे ईश्वर अथवा प्रज्ञान जैसे नामों से भी जाना जाता है । उसके वास्तविक अभिप्राय के बारे में हम केवल अनुमान कर सकते हैं, परन्तु तदात्मीकरण के बारे में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता, तथा साक्रेटीज़ की शिक्षाओं से तदात्मीकरण का अत्यन्त स्पष्ट सम्बन्ध प्रतीत होता है । चूंकि एकम् के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की सत्ता नहीं, अत: उसने यह अनुमान किया कि अशुभ (evil) की कोई सत्ता नहीं है । इन्द्रियों द्वारा ग्रहण की जाने वाली वस्तुओं को जिस विधि से असत् बताया जाता है, वह यह है कि सभी वस्तुओं के बारे में समान यथार्थता तथा सामर्थ्य से 'दो कथन' किये जा सकते हैं । इसी को मेगारीय सम्प्रदाय वाले द्वन्द्व -न्याय पद्धति (Dialectic) कहते थे, तथा उनके विपक्षी वितण्डा (Eristic) । इस विषय पर एरिस्टॉटल के कथन को यदि हम विश्वसनीय मानें, तो इस समय तक इस प्रणाली का इतना ह्रास हो चुका था कि यह मात्र शब्दाडाम्बर रह गयी थी । परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि यूक्लिडीज़ के लिए इस सिद्धान्त का महत्त्व नहीं था, क्योंकि प्लेटो ने इस समय तक भी 'अस्ति' तथा 'नास्ति' का सम्यक् स्पष्टीकरण नहीं किया था, तथा यह मानने के लिए हमारे पास पर्याप्त आधार मिलेंगे कि यूक्लिडीज़ की शिक्षा में अभिरूचि के कारण ही प्लेटो ने ऐसा किया । अत: यह बहुत सम्भव है कि 'रिपब्लिक' में उपलब्ध द्वन्द्वन्याय का विवरण इसके प्रभाव में लिखा गया हो । और यदि ऐसा प्रभाव रहा, तो हम यह अत्यन्त सरलता में समझ सकते हैं कि यूक्लिडीज़ द्वारा सभी आकारों (forms) को बुद्धिगम्य 'एकम्', जो कथाञ्चिद् 'शुभम्' भी है, में समानयन को स्वीकार किये विना ही यह उसकी स्थिति के प्रति न्याय करने का प्रयास है । मैंने पहले कहा है (अव० १२९) कि 'शुभम्' के सिद्धान्त को मैं साक्रेटीज़ का मानता हूँ, परन्तु 'रिपब्लिक' में इसके सम्बन्ध में कुछ ऐसी बातें

---

१. द्वन्द्व-सिद्धान्त (जिसे पहले Dialexies कहा जाता था), यह डील्स की Vors ३ में मुद्रित देखिये टेलर Varia Socratica.
ii, pp. ३३४, sqq.
i. pp. ९१, sqq,

कही गयी हैं जो स्वयं प्लेटो की बातें लगती हैं, क्योंकि ये शुभम् के रूप तथा सत् के बीच तदात्मीकरण तथा दूसरी ओर शुभम् के प्रज्ञान के साथ तदात्मीकरण का विरोध करती हैं। ये सिद्धान्त यूक्लिडीज़ के हैं। रिपब्लिक' के अनुसार शुभम् न तो सत् है, न ज्ञान, परन्तु इन दोनों का कारण है। जिस प्रकार यह ज्ञानातीत है, उसी प्रकार यह सत् से भी अतीत तथा परे है। प्लेटो ने कुछ इसी प्रकार से सोचा होगा, जिससे यूक्लिडीज़ के एकतत्त्ववाद से बचा जा सकता है, तथा साथ ही साथ उसके दर्शन में जो कुछ मूल्यवान है उसे सञ्चित भी किया जा सकता है।

शुभम् को इस रूप में स्वीकार करने से स्वभावत: जिस मत की निष्पत्ति होती है वह है 'निर्गमन' (emanation), तथा परवर्ती दिनों में जब इस सिद्धान्त कों पुनर्जीवित किया गया, तब बस्तुत: इससे उसी मत को सम्बद्ध किया गया। बहुत हद तक हम वह कह सकते हैं कि नव-प्लेटोवाद (Neoplatonism) उसी विचार का विकसित रूप है, जो 'रिपब्लिक' के इस अंश को लिखते समय प्लेटो के मस्तिक में विद्यमान था। प्लेटो ने इस दिशा में स्वयं कितनी प्रगति की थी, यह जानने के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं है। उसने इस प्रकार के मत के लिए कभी सात्क्रेटीज़ को प्रवक्ता नहीं बनाया होगा, तथा जैसा कि संकेत किया जा चुका है, वह जो कुछ कहता है उसके लिए सम्भवत: उसने कुछ हद तक ऐतिहासिक सत्याभासों की खींचातानी भी की है। इस विषय में हमें कभी भी अधिक जानकारी नहीं मिलेगी, क्योंकि वह शुभम् के रूप के बारे में पुन: इस प्रकार कभी कुछ नहीं कहता, तथा एरिस्टॉटल तो इस वृतान्त की ओर कभी संकेत भो नहीं करता। जैसा कि हम देखेंगे, जिस समाधान से प्लेटो अन्ततोगत्वा प्रसन्न हुआ, वह अन्य दिशाओं से उपलब्ध हुआ। अब हमें उन सोपानों पर विचार करना है जिनके सहारे प्लेटो ने अपने को मेगारिक सिद्धान्त से मुक्त किया।

१३

समीक्षा

यूक्लिडीज के प्रभाव से प्लेटो की मुक्ति क्रमिक प्रतीत होती है। उसने अकादमी में लगभग वीस वर्षों तक निरन्तर कार्य किया, तथा ऐसा लगता है कि उसने इस अवधि के अन्तिम चरण के पर्व किन्ही सम्वादों का प्रकाशन नहीं किया। सम्भवत: वह अत्यधिक व्यस्त रहा। परन्तु एक समय ऐसा आया, जब उसने दूसरे दार्शनिकों के समक्ष अपनी अभिवृति की व्याख्या करना आवश्यक समझा। यह तभी सम्भव था जब उस संस्था के बाहर लोगों को उपलब्ध होने के लिए ग्रन्थ रचना की जाय। 'रिपब्लिक' तथा 'फीड्रस' लिखे जाने के कितने समय बाद 'थीटिटस' की रचना हुई, इसका हम ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगा सकते, परन्तु इनकी रचना के बीच सम्भवत: अनेक वर्षों का व्यवधान रहा। जब प्लेटो ने पुन: संवादों की रचना प्रारम्भ की, तब इसके प्रारम्भिक जीवन में लिखे सम्वादों की अपेक्षा एक भिन्न लक्षण मिला। सर्वप्रथम, उनके रूप में ही उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। कुछ अत्यन्त प्रारम्भिक काल के सम्वादों में अपरोक्ष कथन शैली में सरल नाटकीय वर्णन मिलते है, परन्तु शीघ्र ही प्लेटों को यह शेली उस समय अपर्याप्त प्रतीत हुई, जब साक्रेटीज के जीवन तथा साधारण कार्य-कलापों को चित्रित करना उनका उद्देश्य हो गया। जब तक इनकी व्याख्या अभिनय द्वारा न हो,तब तक पाठक को नाटक के दृश्यों के पात्रों तथा इसके निर्देशक दोनों की कल्पना स्वयं करनी पड़ती थी। इसके विपरीत वर्णित सम्वाद में विवरण तथा टिप्पणी होने से चित्र सजीव हो उठता है, अत: प्लेटो के अत्यन्त कलात्मक सम्वाद वर्णन-सहित है। परन्तु जब कलात्मक अभिरूचि की अपेक्षा वैज्ञानिक अभिरूचि अधिक बलवती होती है, तब यह स्वरूप कष्टकर हो जाता है इसका सबसे निकृष्ट रूप हमें 'पार्मेनीडीज' में मिलता हैं, तथा इसका सूत्र है-

"एण्टिफ़न ने कहा कि पाइथोगोरस ने कहा कि पार्मेनाइडीज ने कहा।" 'थीटिटस' में इस स्वरूप के प्रश्न का एक स्पष्ट उल्लेख है। 'फ़ीडो' तथा 'पार्मेनीडीज़' की ही भाँति यह सम्वाद भी एक नाटकीय प्रस्तावना से प्रारम्भ होता है, परन्तु उन सम्वादों की भांति यह वर्णित सम्वाद का रूप नहीं लेता, वरन् एसा स्वरूप ग्रहण करता है जो स्वयं नाटकीय है। कहा गया है (१४३ स) कि ऐसा इसलिए हुआ जिससे हम 'तथा हमने कहा', 'उसने स्वीकार किया', वह सहमत हुआ' जैसे वाक्यांशों की कष्टकर पुनरावृत्तियों का त्याग कर सकें। यह सत्य है कि 'पार्मेनीडीज़' सम्भवतः थीटिटस' के कुछ बाद का सम्वाद है। परन्तु ये दोनों सम्वाद एक ही युग की रचनाएं हैं। सम्भव है कि प्लेटो एक ही समय में दोनों सम्वादों की रचना का कार्य करता रहा हो। यदि ऐसी स्थिति रही, तो हम बड़ी सरलता से यह समझ सकते हैं कि क्यों वर्णित स्वरूप की ओर से प्लेटो के मन में अरुचि उत्पन्न हो गई। चाहे जो भी हो, प्लेटो ने उस शैली में पुनः कोई सम्वाद नहीं लिखा, तथा उसके नवीनतम संवाद शुद्ध नाटकीय हैं, जैसे कि उसके प्रारम्भिक संवाद भी नाटकीय रहे।

इन सम्वादों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें प्लेटो का मेगारा के लोगों के साथ पुर्वाग्रह है। 'थीटिटस' नामक सम्वाद यूक्लिडीज़ के नाम, अथवा स्मृति में, समर्पित है, क्योंकि, सम्भवतः, वह उस समय जीवित था। प्लेटो यथासम्भव जोवित पात्रों को समाविष्ट नहीं करता। वह यूक्लिडीज़ के सिद्धान्त की आलोचना करने ही वाला था, तथा 'थीटिटस' का लक्ष्य ही यह आलोचना करना था, परन्तु हमारा अनुमान है कि प्लेटो के मन में इस समय भी यूक्लिडीज़, के प्रति सम्मान की भावना थी। इस संवाद में ऐसा कोई कथन नहीं है जिससे यूक्लिडीज के सिद्धान्त का प्रत्यक्ष खण्डन होता हो। हम देखेंगे कि यह साक्रेटीज़ की मण्डली के अन्तर्गत परिचर्चा की सम्भावना के आगे नहीं बढ़ता। जैसा कि सकेत किया जा चुका है (अव० १२९), मतभेद सम्भवतः साक्रेटीज़ की मृत्यु के पूर्व भी विद्यमान था, परन्तु यह मतभेद संस्था की सीमा के अन्तर्गत था। इसी कारण साक्रेटीज़ को प्रमुख वक्ता बनाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। तथापि प्रतिपादित दृष्टिकोण पूर्णतया साक्रेटीज़ का नहीं है। प्लेटो अब एक-पक्षीय प्रज्ञावाद के व्याघात से जितना सतर्क है, उतना ही एक-पक्षीय संवेदनवाद से भी। यद्यपि इस सम्वाद के तर्क में ऐसे प्रसंग हैं जहाँ हम आशा करते हैं कि आकार के सिद्धान्त की यह चर्चा करेंगे, परन्तु वह इस सिद्धान्त को यहाँ सर्वथा विसर्जित करता है, इस समय उसके मस्तिष्क में इसका कुछ भिन्न रूप निर्मित हो रहा था, अतः साक्रेटीज़ को इसका प्रवक्ता

नहीं वना सकता थ।

अब हम सीधे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर आते हैं और वह प्रश्न यह है कि प्लेटो की परिपक्वावस्था के सम्वादों में साक्रेटीज़ का क्या स्थान है। यह माना जाता है कि थीटिटस (१४३ स) में जिस परिचर्चा (discussion) का वर्णन है उसे यूक्लिडीज़ ने उसी समय लिपिबद्ध कर लिया था और स्वयं साक्रेटीज़ ने उसका पुनः परीक्षण एवं सन्शोधन किया था। यह भी माना जाता है कि साक्रेटीज़ की मृत्यु के अनेक वर्षों उपरान्त मेगारा में इस वृत्तान्त का उच्च स्वर से पाठ किया गया था। प्रारम्भिक सम्वादों की अनौपचारिक परिचर्चा इस सिद्धान्त का ऐसा सुविचारित कथन बन गई, जिसे पढ़ा जा सके, तथा जिसकी समालोचना की जा सके। परन्तु इसमें एक ऐसी समस्या का वर्णन है जिसे वस्तुतः साक्रेटीज़ ने उठाया था, और उसका समाधान उसने प्रस्तुत नहीं किया, अतः उसको प्रमुख वक्ता होने में कोई कठिनाई नहीं हुई, यद्यपि उसके बारे में कहा जाता है कि एक विलक्षण युक्ति के सहारे कुछ सिद्धान्तों का उसे 'स्वप्न' में ज्ञान हो जाता था। 'पार्मेनीडीज़' को भी एक सुविचारित कथन माना जाता है, क्योंकि यह विश्वास किया जाता है कि इसे कंठस्थ कर बहुत समय बाद तक लोग इसका पाठ करते रहे थे। यह ऐसी बात है जो बात के मुद्रित ग्रन्थों के युग की अपेक्षा उन दिनों अधिक विश्वसनीय प्रतीत हुई होगी। 'फ़ीडो' तथा 'रिपब्लिक' में वर्णित आकारों के सिद्धान्त की इस सम्वाद में प्रत्यक्ष आलोचना की गयी है, तथा इसमें चूंकि पार्मेनीडीज़ को मुख्य वक्ता के रूप में लाया गया है, अतः अनुमान किया जाता है कि इलियाटिक आलोचना से बाध्य होकर ही प्लेटो ने इस सिद्धान्त का अधिक सन्तोष जनक निरुपण किया। वह अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करने के लिए विवश था। क्योंकि इस आलोचित सिद्धान्त को उसने स्वयं कभी स्वीकार किया हो या नहीं. किन्तु यह निश्चित है कि उसने अपनी साक्रेटीज़ प्रधान रचनाओं के माध्यम से इस सिद्धान्त का प्रचार करने में बहुत योगदान दिया था। यहाँ पर साक्रेटीज को मुख्यवक्ता नहीं बनाया जा सकता था, परन्तु यूक्लिडीज़ को भी यहाँ पर लाना उपयुक्त नहीं था, क्योंकि उसी का प्रत्युत्तर देना था। अतः प्लेटो ने पार्मेनीडीज़ तथा जीनों की लगभग एक सौ वर्ष पहले की नयी एथेन्स की यात्रा का लाभ उठाया, तथा यूक्लिडीज जिस सम्प्रदाय का अनुयायी था, उसी के प्रवर्तक के मुख से उसने आलोचना प्रस्तुत की। परन्तु पार्मेनीडीज के मुख से यह कहलाना कि—'असत्' की सत्ता है, जो कि सोफ़िस्टों का प्रतिपाद्य है, उसके प्रति अत्याचार होता, अतः इस सम्वाद में तथा इसके उत्तर

भागीय सम्वाद 'स्टेट्समैन' में प्रमुख भूमिका एक इलियाटिक अपरिचित व्यक्ति की है, जोम हान् पार्मेनाइडीज का एक अत्यन्त कृतघ्न शिष्य है। यह संदिग्ध पात्र स्वयं अपने दृष्टिकोण का प्रतिपादन करता है, तथा इसे सामने लाने का प्लेटो का अभिप्राय यह दिखाना है कि यूक्लिडीज़ के शिष्यों की अपेक्षा वह पार्मेनीडीज़ का सच्चा उत्तराधिकारी है। 'फाइलेबस' (Philebus) नामक सम्वाद में किसी अन्य स्थल की अपेक्षा प्लेटो के अपने दर्शन का अधिक निकट से परिचय मिलता है, परन्तु अभी भी यहाँ पर प्रमुख वक्ता साक्रेटीज ही है। यह ऐसी समस्या है जिसका हमें बाद में सामना करना पड़ेगा। 'टिमियस' तथा 'क्रिटियस' नामक सम्वादों में 'साक्रेटीज' श्रोता-मात्र है, तथा 'लॉज' में वह मन्च के सामने भी नहीं आता। 'फ़ीडो' में कहा गया है कि साक्रेटीज़ ने जगत् को यान्त्रिक व्याख्या करने के सभी प्रयासों को ठुकरा दिया, तथा 'टिमियस' में इसी प्रकार का एक प्रयास मिलता है। जहाँ तक 'क्रिटियस' तथा 'लॉज' जैसे मानव-इतिहास तथा संस्थाओं से सम्बन्धित कृतियों का प्रश्न है, 'टिमियस' में बताया गया है कि क्यों साक्रेटीज़ इनमें योगदान नहीं कर सकता। वह किसी आदर्श राजा का चित्रण कर सकता है, परन्तु मूर्तियों को सजीव बनाना उसके वश की बात नहीं। उदाहरण के लिए, उसके मुख से यह स्वीकारोक्ति कराई गई है कि वह अपने राजा की अन्य राज्यों से अस्तित्व के संघर्ष में व्यस्त दशा का चित्रण नहीं कर सकता। इस कार्य के लिए तो ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो स्वभावतः तथा प्रशिक्षण द्वारा भी व्यावहारिक राजनीति तथा दर्शन में प्रवीण हों। इस मूल्यवान वृत्तान्त का इस बात के प्रमाण के रूप में अत्यधिक महत्त्व है कि कौन-सी विषय-वस्तु साक्रेटीज़ पर आरोपित करने के लिए उपयुक्त है, और कौन सी नहीं, इस बात के लिए प्लेटो भी सतर्क था। उसके गुरू की राजनीति-सम्बन्धी शिक्षाओं की अप्रकट आलोचना भी यहाँ द्रष्टव्य है। प्लेटो यह भली-भाँति समझता था कि इसका रचनात्मक पक्ष अत्यन्त अविचल है, तथा इसका आलोचनात्मक पक्ष अत्यन्त अभावात्मक अंशतः यही कारण है कि साक्रेटीज़ के बहुत से अनुयायी राजनयिक होने की अपेक्षा प्रतिक्रियावादी हो गये।

थीटिटस THE THEATETUS

'थीटिटस' सम्वाद का प्रयोजन यह प्रदर्शित करने के लिए मार्ग प्रशस्त करना है कि ज्ञान का तदात्मीकरण न संवेदन के साथ सम्भव है, न विचार के साथ। थीटिटस (Theaitetos) नामक व्यक्ति, जिसके नाम पर यह सम्वाद

लिखा गया है, अकादमी का प्रारम्भ से ही सदस्य रहा, तथा वह उसका एक अत्यन्त प्रतिष्ठित सदस्य था। थीटिटस की मृत्यु सम्भवतः कोरिन्थ (Corinth) में एक लड़ाई के उपरान्त चोटों तथा पेचिस के कारण हुई। कोरिन्थ की यह लड़ाई सम्भवतः ई० पू० ३६९ वाली है। यह निश्चित है कि इस सम्वाद के लिखे जाने के पूर्व उसकी मृत्यु हो चुकी थी, क्योंकि प्रस्तावना में उसके चरित्र का सुन्दर वर्णन एक ऐसे प्रतिभावान शिष्य की श्रद्धान्जलि ही हो सकता है, जो हाल ही में दिवङ्गत हो। उसके प्रख्यात गणितज्ञ होने की वात अत्यन्त कौशलपूर्वक एक कहानी के माध्यम से कहीं गई है कि अपनी किशोरावस्था में ही उसने संख्याओं के एक ऐसे सामान्य सूत्र का अन्वेषण किया था जिसका वर्गमूल अपरिमेय है। यह सम्भव प्रतीत होता है कि जिस समय इस सम्वाद की रचना हुई थी उस समय उसकी मृत्यु हुए कम ही समय बीता था। अतः इस आधार पर तथा अन्य कारणों से भी उसकी मृत्यु की अत्यधिक सम्भावित तिथि ई० पू० ३६८ अथवा कुछ वाद है, जब प्लेटो की आयु लगभग साठ वर्ष की रही होगी। अन्य वक्ताओं में 'कनिष्ठ साक्रेटीज, जो थीटिटस का मित्र तथा उसी के समान अकादमी का प्रारम्भ से सदस्य था, तथा काइरेने निवासी गणितज्ञ थिओडोरस (Theodoros) के नाम आते हैं। वह प्रोटागोरस का अनुयायी तथा साक्रेटीज का मित्र था। अतः जिन दो किशोरों का वह शिक्षक था, उनके पूर्व की पीढ़ी का व्यक्ति था, तथा निश्चित रूपेण इस सम्वाद के लिखे जाने के वहुत वर्षों पूर्व ही दिवङ्गत हो गया था। इस सम्वाद के वार्तालाप का समय साक्रेटीज़ के मुकदमें के ठीक पूर्व माना जाता है (२१० द), अर्थात रचना के तीस वर्षो से भी पूर्व यह वार्तालाप हुआ होगा।

'ज्ञान क्या है?' इस प्रश्न का प्रथम गम्भीर उत्तर देते हुए थीटिटस कहता है कि वह संवेदन (Sensation) है। यह परिभाषा प्रोटागोरस के उस कथन से संगत है जिसे उसने ज्ञान के बारे में कुछ भिन्न शब्दों में कहा। प्रोटेगोरस ने कहा था कि मानव सभी वस्तुओं का मानदण्ड है, वे जो उसके सापेक्ष्य हैं उनका अस्तित्व है, तथा जो उसके सापेक्ष्य नहीं है उनका अस्तित्व नहीं है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो वस्तु मुझे जिस रूप में दीखती है वह मेरे लिए वैसी ही है, तथा जैसी दूसरे को प्रतीत होती हैं वह उसके लिए वैसी ही है। अतः यह कहने की अपेक्षा कि कोई वस्तु जैसी मुझे प्रतीत होती हैं, हम यह कह सकते हैं कि 'जैसा मैं इसके प्रति संवेदित होता हूँ'। उदाहरण के लिए, 'हवा मुझे ठण्डी लगती है' यह कथन वैसा ही है जैसा यह कहना कि 'मुझे

संवेदन होता है कि हवा शीतल है। संक्षेप में, प्रतीति (appearance) तथा संवेदन शीत एवं उष्ण जैसे प्रसंगों में पृथक् नहीं है। संवेदन सर्वदा अस्तित्व युक्त वस्तु का ही होता है, तथा इसमें भ्रम नहीं हो सकता, क्योंकि जिसका अस्तित्व है उसी का संवेदन हमें हो सकता है (१५२ अ–स)।

परन्तु यह प्रोटागोरम का तामस-कथन था, जिसे उसने असभ्य समुदाय को सम्बोधित कर कहा था। संस्कृत लोगों से उसने सत्य बात कही, और यह सत्य निम्नलिखित है। यह कथन सत्य नहीं है कि जिसकी प्रतीति होती है, उसका अस्तित्व है। वस्तुत. सत् कुछ भी नहीं है सभी वस्तुएं सम्भवन (परिणाम) है, जैसा कि हेराक्लीटस तथा अन्य लोगों ने बताया। गति विकास का कारण है, तथा गतिहीनता ह्रास एवं विनाश का। गति शुभ है, तथा अगति अनिष्ठ 'कोई वस्तु, 'एसी वस्तु' 'एक' या अस्ति जैसे शब्दों का हम ठीक प्रयोग नहीं कर सकते, क्योंकि यदि हम कहें कि 'कोई वस्तु विशाल हैं', तो यह एक अन्य दृष्टिकोण से लघु आकार की प्रतीत होगी, तथा अन्य शब्दों को भी हम इसी प्रकार समझ सकते हैं (१५२ द)।

इस सिद्धान्त के प्रकाश में आइये हम दृष्टि के सम्बन्ध में विचार करें। जब हम 'श्वेत रंग' शब्दों का प्रयोग करते हैं तो हमें यह नहीं समझना चाहिये कि इन शब्दों से हमारा तात्पर्य किसी ऐसी वस्तु से है जो या तो आँखों के बाहर हो, या उनके भीतर। हमें इसे किसी भी स्थान पर मानने की आवश्यकता नहीं। हमें तो यह कहना चाहिये कि यह आँख के बाहर किसी सम्यक् संचलन पर आँख के समाघात का परिणाम है। यह न तो कोई ऐसी वस्तु है जो टकराती है, न इससे कोई टकरा सकता है। यह दोनों के बीच की कोई ऐसी वस्तु है जिसका प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक विशेष स्वरूप है (१५४ अ)। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति को यह ज्ञात नहीं होता कि जो प्रतीति उसे हो रही है वही किसी दूसरे व्यक्ति को भी हो रही है, तथा प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि स्वयं उसे किसी समय किसी प्रकार की जो प्रतीति हो रही है, वह दूसरे समय में भिन्न हो जाती है। अन्य वस्तुओं की भी यही स्थिति है। उदाहरण के लिए, किसी वस्तु को मापन तथा तुलना के बाद हम विशाल कहते है। तथा किसी वस्तु को स्पर्श के बाद हम उष्ण कहते हैं, परन्तु क्रमशः विशालतर तथा उष्णतर वस्तुओं की उपस्थिति में हम उन्हीं वस्तुओं को लघु तथा शीतल कहने लगते हैं। छह कौडियां चार की तुलना में अधिक तथा डेढ़ी हैं, परन्तु बारह कोड़ियों की तुलना में वे कम तथा आधी हैं, परन्तु स्वयं उन कौड़ियों में कोई

परिवर्तन नहीं हुआ। वे बढ़ सकती हैं, अथवा घट सकती हैं, परन्तु उनमें न तो कुछ जोड़ा गया है, न उनमें से कुछ घटाया गया है (१५३ द – १५४ द)।

दूसरी ओर यदि हम अपने ही विचार पर दृष्टिपात करें, तो निम्नलिखित तीन तर्कवाक्यों से सहमत होंगे : (१) कोई भी वस्तु जब तक अपने परिमाण के बराबर है तब तक आकार अथवा संख्या में न बढ़ सकती है, न कम हो सकती है, (२) किसी वस्तु में कुछ जोड़ा या घटाया न जाय तो उस वस्तु में विकास या ह्रास सम्भव नहीं, (३) यदि किसी वस्तु का वर्तमान स्वरूप प्रारम्भ से ही नहीं था तो यह कार्य सम्भवन के बिना नहीं हो सकता। परन्तु ये सब तर्कवाक्य निम्नलिखित प्रसंग के भी विपरीत होंगे – "मैं साक्रेटीज़ तुम से (थीटिटस) लम्बा हूँ, एक वर्ष बाद में छोटा हो जाऊँगा (क्योंकि थीटिटस अभी किशोरावस्था के कारण बढ़ रहा है)", यद्यपि हमारे शरीर से कोई चीज घटायी नहींज ायेगी न तो मैं सम्भवन के ही प्रवाह में हूँ, यद्यपि में उस स्थिति को प्राप्त कर लूंगा. जो पहले नहीं थी (१५४ द – १५५ स)।

आइये अब हम जिन बुद्धिमान लोगों की चर्चा कर चुके हैं उनके रहस्यों पर गहन विचार करें, परन्तु यह ध्यान रहे कि हमारी बातें कोई असंस्कृत व्यक्ति न सुन ले। ये असंस्कृत लोग 'हथौड़ा-चिमटी' वाले होते हैं, जो यह समझते हैं कि मुट्ठी में पकड़ाने वाली वस्तु का ही अस्तित्व है, तथा ये लोग क्रिया प्रक्रम एवं अदृश्य वस्तुओं के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। गुह्य सत्य यह है। गति के अतिरिक्त कोई अन्य अस्तित्व नहीं है, परन्तु गति के दो रूप हैं, और दोनों का विस्तार असीमित है। एक में क्रिया-शक्ति है, तथा दूसरे में क्रियान्वित होने की शक्ति। इन दोनों गतियों के परस्पर-संव्यवहार से असंख्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं, तथा प्रत्येक पदार्थ जुड़वा होता है, जिसका कुछ अंश संवेदन होता है, तथा कुछ संवेद्य तथा दोनों अंश सर्वदा परस्पर साथ रहते हैं। असंख्य संवेदनों में से बहुतों के नामकरण हो गये हैं। उष्णता, शीतलता, दृष्टि, श्रवण, घ्राण, सुख-दुख, इच्छा तथा भय इत्यादि। इनकी संवादी मन्द गतियां एक स्थल पर उत्पन्न होती हैं, तथा उनसे सम्बद्ध वस्तु के सापेक्ष होती हैं, अतः ये उत्पादक गतियां हैं। जो गतियाँ उत्पन्न होती हैं, वे चपल होती हैं, क्योंकि वे एक स्थल से दूसरे स्थान पर गतिमान होती हैं (१५५ द –१५६ द)।

इस प्रकार जिसे. हम 'देखना' कहते हैं उसका निम्नलिखित ढंग से

विश्लेषण हो सकता है, एक और आँख होनी चाहिये, तथा दूसरी ओर आँख से सम्मेय (commensurable) कोई वस्तु। ये मन्द गतियां है जो एक स्थल पर उत्पन्न होती है। यदि वे एक दूसरे के समक्ष आती हैं, तो आँख से वस्तु की ओर गति होती है। इसी को दृष्टि (Sight) कहते हैं। वस्तु से आँख की ओर भी एक गति होती है, जिसे साक्षी (witness) कहते हैं। जो एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर परिवर्तित होती हैं, वे 'चपल गतियां' हैं। यह सफ़ेदी कोई वस्तु नहीं है, यह गति के कारण सतत् सम्भवन है। हम यह भी नहीं कह सकते कि जो क्रिया करता है अथवा जो क्रियमाण होता है वही कोइ वस्तु है जिसे विचार में निर्धारित तथा निरुपित किया जा सके, क्योंकि किसी वस्तु का तब तक कोई अस्तित्व नहीं जब तक उसका किसी दूसरे से सम्पर्क न हो, तथा कोई वस्तु किसी एक संयोजन में कुछ दीखती है, तथा वही किसी दूसरे संयोजन में भिन्न दीखती है (१५६ द –१५७ अ)।

अतः वास्तव में हमें 'यह', 'वह' अथवा 'कोई' जैसे शब्दों को स्वीकार ही नहीं करना चाहिये, हमें तो सभी वस्तुओं को सम्भवन की प्रक्रिया, विनाश, एवं परिवर्तन के रूप में ग्रहण करना चाहिये। यह बात विशेष संवेद्य गुणों तथा 'मनुष्य' प्रस्तर तथा प्रत्येक वैयक्तिक वस्तु जैसे विशेष संवेद्य गुणों के संघातों के लिए भी लागू होती है (१५७ स)।

अब हमें स्वप्न देखने वाले, विक्षिप्त, तथा रोगी व्यक्तियों के संवेदनों पर विचार करना है। हम यह नहीं सिद्ध कर सकते कि जिसे हम स्वप्नावस्था कहते हैं वह जागृतावस्था नहीं है, अथवा जिसे जागृत अवस्था कहते हैं वह स्वप्न नहीं है, क्योंकि दोनों अवस्थाओं में आत्मा जिस वस्तु को तत्क्षण ग्रहण करती है उसको यथार्थतः ग्रहण करती है। यही बात विक्षिप्तावस्था तथा रुग्णावस्था में भी होती है, अन्तर केवल इतना है कि ते अवस्थाएं सुषुप्ति से अधिक लम्बी होती हैं। उत्तर सरल है। जागृत अवस्था का अथवा स्वस्थ सात्क्रेटीज़ समग्ररुपेण रुग्ण अथवा सुषुप्त सात्क्रेटीज़ से भिन्न हैं। अतः कोई भी प्राकृतिक कर्त्ता (Agent) विभिन्न स्थितियों में अन्यता क्रियाशील होगा, तथा परिणामी (resultant) का अस्तित्व न तो स्वयं के कारण, न तो केवल कर्त्ता के सापेक्ष्य, न केवल सात्क्रेटीज की अपेक्षया है, वरन् दोनों की सापेक्षता से है। जब किसी व्यक्ति की संवेदना प्राप्त होता है तो वह किसी वस्तु की संवेदना होती है और जब कोई वस्तु संवेदित होती है, तब वह किसी व्यक्ति द्वारा संवेदित होती है। वह व्यक्ति जो कुछ है या बनता है, वह सब उस वस्तु

के सापेक्ष है, तथा वह वस्तु भी उस व्यक्ति के ही सापेक्ष्य है, अथवा बनती है। अतः क्षण (उदाहरणार्थ, सहवर्ती, सह सम्बन्धी संवेदन तथा संवेदनशील) की सत्ता अथवा अस्तित्व उन दोनों कर्त्ताओं से संयुक्त है जिनका वह स्वयं परिणामी है, तथा, व्यक्ति की दृष्टि से संवेदन की क्षणिक स्थिति सत्य है, क्योंकि व्यक्ति उस क्षण जो कुछ भी है, यह उसी का संवेदन है (१५७ ई – १६० द)।

स्पष्ट है कि संवेदन का यह सिद्धान्त सुविचारित तथा संसक्त है। हमें यह नहीं बताया गया है कि यह किसका सिद्धान्त है, परन्तु यह सर्वथा स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रोटागोरस के ग्रन्थ में यह नहीं उपलब्ध होगा (अव० ९२)। इसमें कुछ ऐसी बातें हैं जिनसे हमें हेराक्लोटस के अनुयायी क्रिटिलस का स्मरण होता है, जिसने अपने गुरु की आलोचना इसलिए की थी कि उसने कहा था कि हम नदी के उसी जल में दो बार स्नान नहीं कर सकते। हम उस जल में एक बार भी स्नान नहीं कर सकते। तथापि जिस मत की व्याख्या हम लोगों ने अभी की है यदि वह उसका मत है, तो हमें उसके बारे में जो कुछ जानकारी मिलती है उससे बहुत अधिक मिलनी चाहिये थी। दूसरी ओर, यह परिवर्धित कल्पना भी नहीं हो सकती। इसमें अत्यन्त प्रबल वैशिष्ट्य तथा वैयक्तिकता है, जो कल्पना में नहीं होती। परन्तु संवेदन सम्बन्धी जिस मत का सर्वत्र साक्रेटीज़ को प्रतिपादक बताया गया है, यह सर्वथा उसी क्रम में है, अतः इसे उसके मुख से कहलाने में कोई कठिनाई नहीं। परन्तु किसी ऐसे व्यक्ति ने इसका स्पष्ट निरूपण अवश्य किया होगा जिसे ऐसा विश्वास होगा कि यह मत ज्ञान का समुचित विवरण प्रस्तुत करता है। मोटे तौर पर इसे इसी रूप में स्वयं प्लेटो का ही मानना सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। एरिस्टॉटल कहता है कि प्लेटो अपनी युवावस्था में क्रेटिलस के सिद्धान्त से परिचित था, तथा उसे अपना लिया था,[1] तथा इस विचारक के नाम का एक पहले का संवाद मिलता है, जिसमें हेराक्लीटस के सिद्धान्त पर विचार किया गया है। एरिस्टॉटल आगे भी यह बताता है कि प्लेटो ने इस सिद्धान्त को अन्त तक माना, तथा इसमें संवेदन की विश्लेषण सम्बन्धी ऐसी कोई बात नहीं है जिससे उसने निर्वर्तित होने की आवश्यकता समझी हो। वस्तुतः सम्यक् संवेदनवाद ही प्लेटोवाद की अनिवार्य आधारशिला है। अतः मैं समझता हूँ कि सिद्धान्त तो क्रेटिलस का है, परन्तु इसका परिवर्धन प्लेटो ने किया। इससे

---

१. यह सर्वथा सम्भव है कि यह 'क्रेटिलस' तथा 'थीटिटस' के आधार पर एरिस्टॉटल का अनुमान-मात्र हो, परन्तु है यह एक उचित अनुमान।

यह स्पष्ट होता है कि क्यों वह बड़े उत्साह से इसका प्रतिपादन करता है, तथा क्यों इसके विरुद्ध अत्यन्त तुच्छ स्तर की आपत्तियों पर व्यथित होता है।

ये आरोप निःसन्देह पर्याप्त छिद्रोन्वेषी हैं, तथा इन आरोपों को लगाने का अर्थ है प्रोटागोरस के प्रति अन्याय करना। अतः स्वयं साक्रेटीज़ इसका विरोध करता है। चूंकि प्रोटागोरस की मृत्यु हो चुकी है, अतः साक्रेटीज़ उसकी ओर से उन आरोपों का उत्तर देने के लिए भी उद्यत होता है। उनका एक ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि उनमें से कुछ परवर्ती मेगारिक सम्प्रदाय के वितण्डावाद (eritsic) में पुनः प्रकट होते हैं, तथा इसी से यह अनुमान होता है कि ये यूक्लिडीज़ की मण्डली में उत्पन्न हुए होंगे। उन पर यहाँ विचार-विमर्श करने का अर्थ होगा पाठक को मुख्य तर्क की ओर से विमुख करना। जैसा कि साक्रेटीज़ कहता है (१६५ द), इन 'लोभी लक्ष्यवेधियों (mercenary sharpshooteers) में से कोई कब संवेदन पर आक्रमण कर दे इसका कोई ठिकाना नहीं। ये लोग अपनी बुद्धिमानी के जाल में व्यक्ति को फँसा लेते हैं, और बिना छुड़ाई (ransom) लिए मुक्त नहीं करते।[1] अतः वह प्रोटागोरस के मत का एक ऐसे ढंग से वर्णन करने को पुनः तैयार होता है, जिससे उसकी इस व्यर्थ ढंग से आलोचना न की जा सके।

साक्रेटीज़ ने प्रोटागोरस के सिद्धान्त का निम्नलिखित ढंग से पुनराख्यान किया है। यह चाहे जितना भी सत्य हो कि प्रत्येक व्यक्ति के संवेदन उसके हैं, तथा मात्र उसी के हैं, तथा कोई अस्तित्व (यदि हमें 'अस्तित्व' शब्द का प्रयोग करना आवश्यक हो तो) वैसा ही है, जैसा वह किसी व्यक्ति को, तथा केवल उसी व्यक्ति को, प्रतीत होता है, परन्तु प्रोटागोरस का कभी भी यह अभिप्राय नहीं रहा कि बुद्धिमान तथा मूर्ख के बीच के भेद को अस्वीकार किया जाय। उसके अनुसार वह व्यक्ति बुद्धिमान होगा जो हेय विश्वासों को शुभ विश्वासों में बदल दे। किसी एक व्यक्ति को प्रतीत होने वाले विश्वास में तथा दूसरे व्यक्ति को प्रतीत होने वाले विश्वास में जो भेद है वह सत्य एवं मिथ्या के बीच भेद जैसा भेद नहीं है (क्योंकि व्यक्ति जो प्रतीति होती है उसका अस्तित्व है, अतएव वह अवश्यमेव सत्य है)। यह भेद वैसा ही है जैसा भले तथा बुरे, एवं स्वस्थ तथा रुग्ण व्यक्ति के बीच का भेद है। बुद्धिमान व्यक्ति वह

---

१. यहाँ पर मेगारिक्स का उल्लेख अपरिहार्य है। स्पष्ट है कि साक्रेटीज़ के अनुयायियों में मतभेद बढ़ता जा रहा है।

है जो अपने शब्दों द्वारा किसी शुभ की प्रतीति करा सके और इस प्रकार व्यक्ति एवं राज्य दोनों के लिए समान रूप से शुभकारी हो सके।

आइये हम इसका परीक्षण करें। यदि हम कार्य सार्थकता अथवा लाभदायक होने के प्रश्नों पर विचार करें, तो हम इसके प्रभाव को भली-भाँति समझ सकेंगे। इस प्रकार के प्रश्नों के सन्दर्भ में यह स्वीकार किया जाता है कि कोई विशेष व्यक्ति किसी दूसरे की अपेक्षा अधिक अच्छा सलाहकार है। इसे वे लोग भी स्वीकार करते हैं जो यह मानते हैं कि युक्त एवं अयुक्त के बीच का भेद केवल रूढ़ि है, अर्थात् उनकी स्वभावत: कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। ये अपने अस्तित्व एवं अवधि के लिए समुदाय-विशेष की धारणा पर आश्रित हैं। वस्तुत: इस बात को सभी लोग शब्दाडम्बर के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझेंगे कि कोई वस्तु राज्य के लिए लाभकर इसलिए है क्योंकि राज्य उसे लाभकारी मानता है। साफल्य जिस सम्पूर्ण 'रूप' की ओर संकेत करता है उस पर यदि हम विचार करें तो स्थिति और भी स्पष्ट हो जायेगी। इसका सामान्य लक्षण यह है कि यह भविष्य से सम्बद्ध है। हम कह सकते हैं कि हमारे पास व्यक्ति के वर्तमान संवेदन के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है जिससे किसी सत्ता (is) के बारे में निर्णय कर सकें। परन्तु हम यह नहीं मान सकते कि यह भावी सत्ता का भी मापदण्ड है। इस सम्बन्ध में सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा पेशेवर अथवा विशेषज्ञ का विश्वास सर्वथा अधिक मूल्यवान माना जायेगा। भविष्य के सम्बन्ध में सभी लोग मापदण्ड नहीं हो सकते। यहाँ पर तो अन्य लोगों की अपेक्षा जो अधिक बुद्धिमान होगा वही मापदण्ड होगा। स्वयं प्रोटागोरस इसे स्वीकार करता है, क्योंकि वह मानता है कि बुद्धिमान व्यक्ति वही है जो इन विषयों में अयुक्त विश्वासों के स्थान पर श्रेष्ठतर विश्वासों की स्थापना कर सके। अत: हम देखते हैं कि यदि प्रोटागोरस के सिद्धान्त का सहानुभूतिपूर्वक कथन किया जाय, तो हम अविलम्ब संवेदनवाद से ऊपर उठ जाते हैं। उसका कभी भी यह कहना नही था कि हमें जिसकी प्रतीति होती है उसी का हमारे लिए अस्तित्व है, तथा दूसरे को जिसकी प्रतीति होती है, उसके लिए उसी का अस्तित्व है, प्रोटागोरस के सिद्धान्त के लिए इस तर्क को अत्यन्त घातक माना गया है (१७९ ब), यद्यपि एक अन्य तर्क के द्वारा भी यह असिद्ध होता है। प्रोटागोरस को यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि दूसरों के विश्वास उनके लिए वैध हैं, तथा अधिकांश लोग प्रोटागोरस के मत

को सत्य नहीं मानते। अतः यह उनके लिए सत्य नहीं है।[1]

'जॉर्जियस' तथा 'फ़ीडो' में उपलब्ध दार्शनिक जीवन के एक विशेष विषयान्तर के कारण इस तर्क-पद्धति में व्यवधान पड़ जाता है। इस प्रकार के वृत्तान्त का संक्षिप्त वर्णन असम्भव है, अतः इसे यथावत् पढ़ना चाहिए। तथापि हम यह पूछने के लिए बाध्य हैं कि यह प्रसंग यहाँ क्यों प्रक्षिप्त किया गया। यह एक ऐसे वार्तालाप के मध्य में आता है जिसका प्रयोजन यह दिखाना है कि समुदाय के लिए क्या लाभकर है, इस बात का सर्वश्रेष्ठ निर्णायक बुद्धिमान व्यक्ति है, तथापि दार्शनिक की हर प्रकार की व्यावहारिक चिन्ताओं से उदासीनता का यह अत्यन्त प्रशंसात्मक विवरण देता है। जगत् एक अनिवार्य अनिष्ठ है, तथा दार्शनिक यह प्रयास करता है कि वह शीघ्र यहाँ से किसी उत्तम स्थान की ओर भाग जाय। इसका एक मात्र उपाय यह है कि हम यथा-सम्भव ईश्वर के सदृश्य हो जायें, तथा इस सादृश्य की उपलब्धि पावनता तथा प्रज्ञान, एवं विशेष रूप से रेखागणित तथा खगोल-विज्ञान के अभ्यास से सम्भव है। इसी सिद्धान्त को प्लेटो ने साक्रेटीज़ का बताया है, परन्तु यह 'थीटिटस' लिखते समय स्वयं प्लेटो की जीवन के प्रति धारणा का सम्यक् प्रतिनिधित्व नहीं करता। जैसा कि हम देखेंगे, वह शीघ्र ही एक सुनिश्चित व्यावहारिक राजनीति में प्रवेश करने वाला था, तथा अकादमी अन्य विषयों के समान ही राजनयिकों तथा विधायकों का भी प्रशिक्षण केन्द्र थी। जैसा कि हम देख चुके हैं 'टिमियस' में साक्रेटीज़ यह स्वीकार करता है कि व्यावहारिक राजनीति उसके लिए अपरिचित वस्तु है। हम कह सकते हैं कि साक्रेटीज़ के चित्र को जीवन के प्रति यथार्थवादी बनाने के लिए इस वृत्तान्त को एक ऐसे समय पर प्रक्षिप्त किया गया है जब प्लेटो एक ऐसे मार्ग का अनुगामी होने की तैयारी कर रहा था, जिससे इसका गुरु स्वभावतः विमुख हो जाता। मैं समझता हूँ कि यह सत्य है, परन्तु पूर्ण सत्य नहीं है। मेरा विश्वास है कि यद्यपि प्लेटो यह समझता था कि दार्शनिक का यह कर्तव्य है कि गुफा में प्रविष्ट कर जाय,[2] परन्तु उसने यह अनुभव किया कि यहाँ पर वर्णित जीवन ही वस्तुतः सर्वोत्कृष्ट है। कर्मठ व्यक्ति के लिए यह असामान्य नहीं है वह ध्यानपूर्ण जीवन की

---

१. इस तर्क को 'नकशा बदलने वाला' (turning the table) बताया गया है। इसे डेमोक्रिटस ने भी प्रोटागोरस के विरुद्ध प्रयुक्त किया था (Sext. Emp. vii. ३८ a)

२. Rep. ५२० स : गुफा में निवर्तन।

श्रेष्ठता का गम्भीरता से अनुभव करे, और यदि वह व्यक्ति महान् कलाकार भी है तो उसके लिए यह अस्वाभाविक नहीं है कि जिस आदर्श को वह प्राप्त न कर सका, उसका प्रशस्ति-गान करे, यद्यपि वह अपने अन्तरतम में इसे उद्धारक सत्य मानता हो। मैं समझता हूँ कि 'थीटिटस' के विषयान्तर में हम प्लेटो को सैद्धान्तिक जीवन से अनिच्छापूर्वक सन्यास लेते हुए पाते हैं। जो भी हो, वह स्वयं बताता है कि यह विषयान्तर सम्वाद के मुख्य प्रतिपाद्य से असम्बद्ध है, तथा इसके प्रक्षेपण में उसका कोई अभिप्राय अवश्य रहा होगा।

सर्वव्यापी गति का सिद्धान्त ज्ञान के विश्लेषण का जो दावा करता है उसकी अब हमें जाँच करनी है। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि मेलिसस तथा पार्मेनीडीज ने ठीक इसके विपरीत एक मत व्यक्त किया है। उनका कहना है कि सभी कुछ एकम् तथा अपने आप में अविचल है, क्योंकि गति के लिए कोई अवकाश (स्थान) नहीं है। अतः हम दो प्रतिपक्षी शिविरों के मध्य होने वाले संघर्ष में फंस जाते हैं। आइये हम पहले 'गतिशीलों' (streamers) पर परीक्षा करें। हम देखेंगे कि उनके मत का अनुसरण करने पर ज्ञान की सम्भावना नहीं है (१७९ द – १८१ ब)।

जब हम कहते हैं कि 'प्रत्येक वस्तु गतिमान है' तो 'गतिमान' से हमारा क्या तात्पर्य है? गति के दो रूप है: (१) एक स्थान से दूसरे स्थान को, गमन (२) एक स्थिति से दूसरी स्थिति की गति। अन्य शब्दों में, गति या तो संचलन है, या परिवर्तन, तथा, यदि गति सर्वव्यापी है, तो इसे दोनों होना चाहिये। प्रत्येक वस्तु न केवल अपना स्थान बदलती है, वरन् उसकी स्थिति में परिवर्तन होता है अतः जो वस्तु गतिशील होती है उस पर कोई गुण आरोपित नहीं कर सकते; क्योंकि जिन्हें हम गुण (qualities) कहते हैं वे क्रियाशील तथा क्रियान्वित वस्तुओं के मध्य होने वाले सनातन क्रम हैं। अतएव जिस क्षण हम गुण का नामकरण करने जाते हैं, तत्क्षण वह समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार, जैसे हम संवेद्य गुणों के बारे में कुछ नहीं कह सकते, हम संवेदनों के बारे में भी कुछ नहीं कह सकते; क्योंकि प्रत्येक संवेदन एक क्रम है अतः उसे हम दृष्टि, श्रवण इत्यादि नहीं कह सकते, जिस प्रकार हम उसे अदृष्टि, अश्रवण इत्यादि नहीं कहते। और, यदि हम संवेदन के बारे में कथन नहीं कर सकते, तो संवेदन के साथ तदात्मीकृत ज्ञान के बारे में भी कुछ नहीं कह सकते। इस प्रकार थीटिटस का उत्तर कोई समाधान नहीं था, तथा सर्वव्यापी गति से इसे सिद्ध करने के प्रयास के परिणाम स्वरूप यह सिद्ध हुआ कि सभी उत्तर समान रूप

से सत्य हैं। वस्तुतः एक उत्तर को दूसरे से पृथक् करने के हम अधिकारी नहीं हैं, क्योंकि 'इस प्रकार' तथा 'इस प्रकार से नहीं' जैसे शब्दों से अचलता सूचित होती है, न कि गति (१८१ ब - १८३ ब)।

साक्रेटीज़ फिलहाल पूर्ण के पक्षपतियों[१] - मेलिसस तथा पार्मेनाडीज़ की परीक्षा करना स्वीकार नहीं करता, अतः हम अब थीटिटस के मूल उत्तर पर विचार करेंगे।

सामान्य बोलचाल में हम कहते हैं कि 'आँख से देख रहे हैं', 'कानों से' सुनते हैं, इत्यादि। परन्तु वस्तुतः हमें यह नहीं कहना चाहिये कि आँखें वे हैं जिनसे हम देखते हैं, वरन् यह कहना चाहिये कि आँखें वे उपकरण हैं जिनके द्वारा अथवा जिनके माध्यम से हम देखते हैं। हम अपने को उन लकड़ी के घोड़ों के समान नहीं मान सकते जिनमें से प्रत्येक कुछ संवेदनों के साथ अन्दर बैठा है। हमें यह मानना होगा कि हमारे भीतर कोई एक ऐसा घटक तत्त्व है जिसमें ये सभी संवेदन अभिसरित (converge) होते हैं, तथा जब हम वस्तुओं के प्रति संवेदित होते हैं तो ये उसके उपकरण के रूप में कार्य करते हैं। इस तत्त्व को हम आत्मा या किसी भी अन्य नाम से पुकार सकते हैं। इस सामान्य तत्त्व तथा इसके द्वारा प्रयुक्त उपकरणों के बीच भेद को निम्नलिखित ढंग से स्पष्ट किया जा सकता है। जिन उपकरणों के माध्यम से हम उष्ण, कठोर, हल्की, मधुर वस्तुओं के प्रति संवेदनशील होते हैं वे शरीर के विभिन्न भाग हैं। प्रत्येक उपकरण की अपनी विशिष्ट शक्ति है, तथा एक उपकरण जो कार्य कर सकता है वह दूसरा नहीं कर सकता। दृष्टि के माध्यम से हमें शब्द का संवेदन नहीं हो सकता, और न श्रवण के माध्यम से रंग का संवेदन ही सम्भव है। अतः यदि हमारे मन में किसी वस्तु के बारे में ऐसा विचार है जो शब्द तथा रंग दोनों में सामान्य है, तो यह दृष्टि एवं श्रवण से भिन्न कोई उपकरण होना चाहिये। यह निर्विवाद है कि वस्तुओं के बारे में हमारे मन में बहुत से विचार हैं जो विभिन्न संवेदनों के विषयों के साथ सामान्य हैं। आइये हम देखें कि ये क्या हैं (१८४ ब - १८५ अ)।

हमारे मन में निम्नलिखित प्रकार के विचार उठते हैं: 'रंग तथा शब्द हैं,' 'प्रत्येक वस्तु दूसरे से भिन्न, तथा स्वयं के समान है,' 'दोनों भिन्न हैं', 'प्रत्येक एक है,' 'वे परस्पर समान या असमान हैं,' इत्यादि। वह कौन-सी शक्ति है, तथा वह किस उपकरण के माध्यम से कार्य करती है जिसके आधार पर हम

१. Cf. Early Greek Phil.2 p. 140. n.1.

इस सामान्यतत्त्व को पाते हैं, तथा जिसे हम सत् तथा असत्, सादृश्य तथा वैसादृश्य समानता तथा असमानता, एकता तथा अनेकता, असम तथा सम, उचित तथा अनुचित, शुभ तथा अशुभ नाम देते हैं ? जैसी कि माधुर्य, काठिन्य इत्यादि गुण-धर्मों (properties) की स्थिति थी, इन सामान्य गुण धर्मों के पास कोई विशिष्ट उपकरण नहीं है जिससे इस तत्त्व का अवबोध हो सके। ऐसा लगता है कि उन स्थितियों में आत्मा स्वयं ही अपना उपकरण है, तथा स्वयं कार्य करती है।

अतएव वस्तुओं के संवेद्य गुणों का सरल संवेदन शरीर के अनुराग के द्वारा उत्पन्न होता है, इस प्रकार का संवेदन जन्म के समय ही प्रारम्भ हो जाता है, तथा मनुष्य एवं पशुओं में समान रूप से पाया जाता है, इसके विपरित; वस्तुओं के सामान्य गुणों के बोध के लिए तुलना तथा मनन (reflexion) की आवश्यकता होती है, भले ही यह बोध चाहे सत्ता जैसे अत्यन्त सामान्य गुण-धर्म का हो। अथवा समानता और भेद इत्यादि का हो, अथवा उचित एवं अनुचित, शुभ एवं अशुभ जैसे गुणों का हो। भूत एवं वर्तमान को जब हम भविष्य से सम्बद्ध करते हैं तो इसमें समय, प्रयास, तथा प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ती है, और इस सम्बन्ध-स्थापन के अन्वेषण में अत्यधिक तुलना की आवश्यकता होती है (१८५ अ – १८६ स)।

अब इस स्थल पर हम यह आशा करते हैं कि साक्रेटीज़ - 'फ़ीडो' तथा 'रिपब्लिक' में उसका जो रूप हमें मिलता है वह साक्रेटीज़ - अमूर्त तथा बुद्धिगम्य रूपों के सिद्धान्त से हमें परिचित करायेगा, परन्तु उनके बारे में न तो यहाँ न संवाद में ही कहीं अन्यत्र वह चर्चा करता है। इसके स्थान पर हम यहाँ एक अन्य मत का प्रारम्भ पाते हैं जिसे बाद में पदार्थ (Categories) कहा गया। उन सामान्य विधेयों (predicates) को पदार्थ कहते हैं जिनका आत्मा संवेदन के उपकरणों के बिना ही अवबोध करती है, तथा जिनकी सहायता से आत्मा बहुविध संवेदन की व्यवस्था करती है। यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि आत्मा द्वारा गृहीत केवल ये ही सामान्य विधेय सत्ता की कोटियों के साथ ही साथ मूल्य की कोटियों को भी समाविष्ट करते हैं। प्रारम्भिक संवादों की अपेक्षा यहाँ अब व्यवहार अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान ले रहा है।

यदि इस प्रकार के विधेय सभी ज्ञानेन्द्रियों के संवेदनों के लिए समान (Common) हैं, तथा इनका शुद्ध मानसिक क्रिया द्वारा अवबोध होता है, तो इससे यह निष्पन्न होता है कि ज्ञान का संवेदन से तदात्मीकरण नहीं हो

सकता । सत्ता का अवबोध ज्ञान के लिए अनिवार्य है । सत्ता एवं सत् का अव-बोध शरीर के भावों में नहीं - वरन् आत्मा द्वारा उनके मनन से सम्भव है । अतएव हमें उन शीर्षकों में ज्ञान मिलने की आशा करनी चाहिये जहाँ पर आत्मा की सत्ता से सम्बन्धित प्रमुख क्रियाओं का वर्णन हो । वह शब्द है 'निर्णय' (judgement) । क्या इसका ज्ञान के साथ तादात्म्य किया जाय ?
(१८६ स - १८७ अ) ।

निर्णय की परिभाषा बाद में दी गयी है, परन्तु इसे यहाँ बताना सुवि-धाजनक होगा । विचार एक ऐसा सम्भाषण है जिसे आत्मा अपने आप से करती है । जब आत्मा किसी एक निश्चय पर पहुँचती है, चाहे वह निष्कर्ष मन्द गति से प्राप्त हुआ हो या तीव्र-गति के द्वारा, तथा, अन्ततोगत्वा, जब आत्मा अपने आप में सममाव से पूर्ण एवं विग्रहरहित हो जाती हैं, तब इसे हम उसका 'निर्णय' कहते है । यहाँ पर शब्दावली में हम एक उल्लेखनीय परिवर्तन पाते हैं । 'रिपब्लिक' में 'निर्णय' (doxa) शब्द, जिसका आज अर्थ होता है – विचार का परिपक्व परिणाम, विचार से कुछ निम्न स्तर की वस्तु के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, तथा इसके अन्तर्गत कल्पना एवं विश्वास भी आते है । प्लेटो अपने ढंग से विधेयता (predication) की समस्या का खण्डन करने को तत्पर है किन्तु उसे 'निर्णय' के लिए एक शब्द की आवश्यकता है । अतः यह स्वा-भाविक है कि वह इसे ग्रहण करले । यहाँ पर इस शब्द का तात्पर्य हमें उसी अर्थ में लेना चाहिये, जिस अर्थ में इसकी परिभाषा की गयी है । यहाँ पर प्रार-म्भिक संवादो में उपलब्ध अर्थ को लेना उचित नहीं होगा । यह परिभाषा विशेषतया प्लेटो के प्रयोगों के अनुरूप तथा सात्रेटीज के प्रयोग से भिन्न है । यह परवर्ती संवादों में, तथा एरिस्टॉटल के कुछ अकादमी सम्बन्धी वृत्तान्तों में पुनः प्रकट होती है । अतः अब प्रश्न यह है कि क्या ज्ञान आत्मा की इस क्रिया के अन्तर्गत उपलब्ध है । क्या साधारण निर्णय में सत्य की निश्चयात्मकता (guarantee) विद्यमान है ?

अतएव 'थीटिटस' के द्वितीय भाग में यह दिखाया गया है कि सत्य तथा मिथ्या निर्णय के बीच का भेद एक असंदिग्ध तथ्य हैं, तथा इसकी व्याख्या करने के लिए आत्मा की स्वतन्त्र क्रिया का कोई प्रधिनिधित्व नहीं कर सकता । यह दिखाया गया है कि जिस प्रकार अकेले संवेदन से ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता, उसी प्रकार अकेले विचार से भी ज्ञान की उपलब्धि सम्भव नहीं । यह भी स्पष्ट है कि विचार तथा संवेदन के सहयोग से किस प्रकार ज्ञान की

उपलब्धि हो सकती है।

सर्वप्रथम, हम केवल यह कह सकते कि हैं यथार्थ (true) निर्णय ज्ञान है। यथार्थ निर्णय अथवा यथार्थ विचार को किसी वस्तु की वास्तविकता के बारे में निर्णय देना है। मिथ्या निर्णय या मिथ्या विचार किसी वस्तु की अवास्तविकता के बारे में निर्णय देता है। परन्तु इससे तत्काल एक समस्या उत्पन्न होती है। क्या शुद्ध विचार सत्य से भिन्न हो सकता है? मिथ्या निर्णय कैसे सम्भव है? जहाँ तक आत्मा की स्वतन्त्र क्रिया का सम्बन्ध है, मिथ्या निर्णय उसी प्रकार असम्भव प्रतीत होता है जैसे मिथ्या-संवेदन के बारे में देखा है। इसके तीन सम्भव विवरणों की जाँच की गयी, तथा सभी समान रूप से असंतोषजनक सिद्ध हुए। उनसे या तो यह आपादित होता है कि किसी एक ही वस्तु का एक ही समय में ज्ञान सम्भव तथा असम्भव दोनों है, अथवा बिना निश्चय किये भी हम निर्णय पर पहुँच सकते हैं, अथवा किसी एक विचार को दूसरा समझने का निर्णय करना सम्भव है। अतः मन की क्रिया से ज्ञान का तदात्मीकरण करने पर वही आपत्तियाँ उपस्थित होती हैं, जो ज्ञान तथा संवेदन का तदात्मीकरण करने से उत्पन्न हुई। सभी निर्णय समान रूप से सत्य होंगे, तथा ज्ञान एवं अज्ञान, प्रज्ञा तथा अविद्या के बीच का भेद समाप्त हो जायेगा। वस्तुतः हम जिन अस्त्रों से संवेदन पर आघात करते हैं, ठीक उन्हीं अस्त्रों को विचार के विरुद्ध भी प्रयुक्त किया जा सकता है (१८७ ब - १९० इ)।

विशुद्ध निर्णय को उपयुक्त अथवा संवादी मानसिक प्रति वस्तु की ओर संवेदन संस्कार का निर्देशन मानना अधिक आशा प्रद प्रतीत हो सकता है, हम स्मृति को आत्मा के अन्दर चपड़े की प्लेट जैसा मान सकते हैं, जिस पर प्रतिमाओं की छाप पड़ती है। यह सम्भव नहीं कि इस प्लेट पर पड़ने वाली दो छापों में भ्रान्ति हो, अथवा एक संवेदन की छाप को किसी अन्य युगपत् संवेदन से मिश्रित कर दिया जाय। परन्तु यह सम्भव है किसी संवेदन के निर्देशन को किसी पूर्व-संवेदन द्वारा उत्पन्न स्मृति-प्रतिमा से गड़बड़ा दिया जाय। परन्तु यह तभी होगा जब उस प्रतिमा की छाप ठीक से न पड़ सकी हो, अथवा वह क्षीण हो गयी हो। यह अवश्यमेव मिथ्या निर्णय होगा। परन्तु यह अभी भी संतोषजनक नहीं है क्योंकि इसके कारण यथार्थ निर्णय, एवं इसके साथ ही ज्ञान भी, सामने उपस्थित संवेदनों के सम्बन्ध में दिये गये निर्णयों तक ही सीमित रहेगा। उदाहरण के लिए, इसमें यह स्पष्ट नहीं हो पायेगा कि कैसे कुछ लोग ५+७ = १२ तथा अन्य लोग ५+७ = ११ समझते हैं, जहाँ पर इन संख्याओं

की वस्तुओं का संवेदन उपलब्ध नही है। उसकी व्याख्या करने के लिए हमें ज्ञान-प्राप्ति और ज्ञान-धारण में अन्तर करना पड़ेगा। ज्ञान विना धारण के भी स्थित रह सकता है, जैसे शरीर पर विना धारण किये हुए भी हमारे पास कोट हो सकता है। हम मन की एक कबूतर-खाने (dovecot) से तुलना कर सकते हैं, जिसमें हम बहुत-से पकड़े हुए पक्षियों को बन्द रखते हैं। ये चिड़ियां हमारे पास हैं अवश्य, परन्तु जब तक हम इन्हें पुनः न पकड़े, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि हम इन्हें 'धारण' किये हैं। सम्भव हैं कि हम अवाञ्छित चिड़िया पकड़ लें। इसी प्रकार हम मिथ्या ज्ञान भी प्राप्त कर सकते हैं, और यह मिथ्या निर्णय होगा।

परन्तु जब तक हम यह न माने कि हमारे मानस–चिड़िया घर में अवाञ्छित चिड़ियां भी फुदक रही हैं, तब तक उपरोक्त कथन भी संतोषजनक नहीं होगा। परन्तु यह मान लेने से भी समस्या नहीं सुलझती, क्योंकि जब हम पक्षी को पकड़ लेते हैं, तब पक्षी हमारे हाथ में होता है, तथा यह क्या और कैसा है हम जानते हैं। अतः हम मिथ्या निर्णय की व्याख्या करने में उतना ही पीछे अब भी हैं जितना पहले थे (१९१ ब – २०० द)।

अन्त में, इसमें सन्देह नहीं कि विना ज्ञान के भी यथार्थ निर्णय सम्भव है। न्यायालय के वकील अनुनय (persuation) से कार्य लेते हैं, न कि अनुदेश (instruction) से, तथापि वे न्यायाधीश को यथार्थ निर्णय लेने में मार्ग-निर्देश करते हैं। इससे थीटिटस को ज्ञान की एक ऐसी परिभाषा सूझती है, जिसे उसने सुन रखा था, वह परिभाषा यह है कि ज्ञान वह यथार्थ निर्णय है जिसके साथ उसका बौद्धिक विवरण भी संयुक्त है। साक्रेटीज ज्ञान की इस परभाषा को एक विस्तृत मत से अभिन्न बताता है जिसे उसने 'स्वप्न में' सुन रखा था। कुछ लोगों की यह धारणा है कि सत् अज्ञेय है। हमारे संवेदनों की उत्पत्ति सरल तत्त्वों से हुई है, और चूंकि ये सरल हैं, अतः अज्ञेय हैं, उनका केवल नामकरण सम्भव है परन्तु इनकी न तो परिभाषा सम्भव है, न उन पर किसी लक्षण का ही अभिधान किया जा सकता है। यहाँ तक कि 'सत्' अथवा 'इदम्' का भी अभिधान सम्भव नहीं। इस प्रकार के गुण-धर्म सभी प्रकार की वस्तुओं के लिए सामान्य हैं, अतएव उन्हें सरल सत् का गुण-धर्म नहीं माना जा सकता। परन्तु इनका संवेदन से अवबोध सम्भव है, तथा हम उनका नामकरण कर सकते हैं। जिस प्रकार अक्षर संयुक्त होकर पद बनते हैं. उसी प्रकार ये तत्त्व भी संयुक्त हो सकते हैं। यदि हम उनके नामों को संयुक्त करें, तो हमें

एक कथन या प्रतिज्ञप्ति प्राप्त होती है, तथा इससे उनकी संयुक्ति ज्ञेय हो जाती है (२०१ अ – २०३ ब)।

साक्रेटीज़ के स्वप्न के प्रसंग से प्रोटागोरस के 'रहस्य' का स्मरण होता है, तथा हम समझते हैं कि ये दोनों ऐतिहासिक सत्याभास के परे जाने के साधन हैं। संवाद के प्राथमिक भाग में वर्णित संवेदनवादी मत के प्रतिपादक के बारे में जैसी कठिनाई उत्पन्न हुई, उसी प्रकार की कठिनाई इस मत के प्रवर्तक के बारे में भी है। सर्वप्रथम, यह द्रष्टव्य है कि यह आधुनिक अर्थों में पूर्णतया प्रत्ययवादी (idealist) मत है। सरल सत स्वयं अज्ञेय है, तथा हमारा सभी ज्ञान मनम् का कार्य है। इस दृष्टि से यह पहले वर्णित संवेदन-वादी मत का ठीक-ठीक प्रतिरूप है। जिस प्रकार वहाँ पर संवेदन ही सब कुछ था, वैसे ही यहां पर विचार सब कुछ है। अब इसमें कोई सन्देह नहीं कि ज्ञान की वह परिभाषा साक्रेटीज़ के विद्यापीठ की है, जिसके अनुसार कहा गया है कि ज्ञान वह यथार्थ निर्णय है जिसके साथ उसका अथवा अधिष्ठान का बौद्धिक विवरण संयुक्त है। 'सिम्पोज़ियम' (२०२ अ) में इस परिभाषा को डायोटिमा (Diotima) ने स्वीकार किया है, तथा इसे 'मीनो' (९७ इ sq) में भी बताया गया है। यह कहना कठिन है कि यहाँ पर इसका जो विस्तृत रूप मिलता है वह कहाँ से आया। 'मेटाफ़िज़िक्स' के एक वृत्तान्त में एरिस्टॉटल इसकी ओर संकेत-सा करता है, जहाँ पर वह एण्टिस्थेनीज़ तथा 'ऐसे असंस्कृत लोगों' के मत के बारे में टिप्पणी करता है कि 'किमिदम्' (what is it) की परिभाषा करना कठिन है, क्योंकि परिभाषा में एक 'लम्बी' परिगणना करनी होगी, और इस कारण सारे सिद्धान्त का श्रेय एण्टिस्थेनीज़ को दिया जाता है। परन्तु एरिस्टॉटल केवल इतना ही कहता है कि विवेच्य मत के कारण एण्टिस्थेनीज़ के दृष्टिकोण में सत्याभास आता है, तथा हम इसके बारे में चाहे जो सोचें, यह ऐसा सिद्धान्त नहीं प्रतीत होता जिसे 'असंस्कृत लोगों'[1] ने प्रतिपादित किया हो। एण्टिस्थेनीज़ ने अभिधान की सम्भावना का निषेध किया, जबकि इस मत के अनुसार ज्ञान अभिधान के अतिरिक्त और कुछ नहीं। साक्रेटीज़ एण्टिस्थेनीज़ का 'स्वप्न' देखे, इसका भी कोई औचित्य

---

१. Met. B.३. १०४३ p. ५ sqq. एण्टिस्थेनीज का उल्लेख ब, २४ के पूर्व नहीं हुआ है, तथा जिस असावधान ढंग से उसकी ओर संकेत किया गया है उससे प्रतीत होता है कि जब एरिस्टॉटल ने वह अध्याय लिखना शुरू किया तब उसकी ओर कोई ध्यान नहीं था।

नहीं दीखता । बहुत समय पूर्व लेविस कैम्पबेल (Lewis Campbell) ने जो सुझाव दिया था कि यह मत 'किसी पाइथागोरियन' का है, वह अधिक मान्य लगता है ।[1] अक्षरों तथा पदों की शब्दावली पाइथागोरियन्स का विशेष लक्षण है, तथा हम यह भली-भाँति पायेंगे कि जिन पाइथागोरियन्स ने साक्रेटीज के उस सिद्धान्त को नहीं स्वीकार किया, जिसके अनुसार संवेद्य वस्तुएँ रूपों में अंश ग्रहण करती है, वे ही इस प्रकार के मत की ओर आकर्षित हुए । जो भी हो, यदि हम यह स्पष्ट रूप से न समझ पायें कि यहाँ पर चर्चित मत उस संवेदनवाद का ठीक प्रतिपक्षी है, जिसे प्रोटागोरस ने 'रहस्यात्मक ढंग' से व्यक्त किया था, तथा इसे भी उसी तरह पूर्णतया असंतोषजनक मानकर अस्वीकार कर दिया गया था, तो इस परिसंवाद का महत्त्व नष्ट हो जायेगा ।

जब हम इस मत का परीक्षण करना प्रारम्भ करते हैं, तो पाते हैं कि इससे बड़ी-बड़ी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं । मूल तत्त्वों तथा उनके मिश्रणों, जो ज्ञान के विषय हैं, के बीचसम्बन्ध को हम कैसे समझें ? या तो हम यह मानें कि पद केवल अक्षरों का योग जिस दशा में यह नहीं कहा जा सकता कि पद अक्षरों की अपेक्षा अधिक ज्ञेय हैं, अथवा यह एक अविभाज्य एकता है, और इस दशा में भी यह ज्ञेय नहीं है, क्योंकि इसका अर्थ उससे अंगों का पृथक् अवबोध होगा ।

पुनश्च, हमे यह जानना चाहिये कि इस सम्बन्ध के 'विवरण' का वस्तुतः क्या अभिप्राय है । स्पष्ट है कि हम इसका तात्पर्य केवल उच्चरित भाषा में किसी निर्णय की अभिव्यक्ति नहीं समझते, न तो इसे हम किसी वस्तु का निर्माण करने वाले तत्वों का साधारण परिगणन ही समझते हैं । वस्तुतः इसका तात्पर्य यह है कि यह किसी वस्तु के अवच्छेदक (differentia) का कथन है, जिस अवच्छेदक के द्वारा वह वस्तु अन्य वस्तुओं से पृथक् की जाती है । परन्तु इसका तात्पर्य यदि हम यह लगायें कि यह 'अवच्छेदक' का निर्णयमात्र है । तो इससे कोई प्रगति नहीं होती । परन्तु यदि हम यह समझें कि हमें, अवच्छेदक का ज्ञान होता है, तो हमारी परिभाषा चक्रक (circular) होगी । 'अवच्छेदक के ज्ञान सहित यथार्थ निर्णय' ज्ञान की परिभाषा नहीं है ।

अतएव 'थीटिटस' का निकर्ष यह है कि ज्ञान न तो संवेदन है, न मन

---

१. 'थीटि टस' की भूमिका, पृ० ३९. सिराक्यूज निवासी एक्फैन्टस (Ekphantos) के सिद्धान्त के बारे में हमें जो बताया गया है उससे इस मत की पर्याप्त संगति बैठेगी ।

की क्रिया। संवेदन गति का मात्र परिणामी है, तथा अपने से बाहर की कोई सत्ता प्रदान नहीं कर सकता। मात्र विचार से केवल नामों का संयोजन होता है। हम सिवा स्थूल प्रतिमाओं के अन्य किसी माध्यम से यह नहीं दिखा सकते कि संवेदन तथा विचार के किसी संयोजन से ज्ञान उत्पन्न हो सकता है। दूसरी ओर, प्रसंगतः ज्ञान के स्वरूप के सम्बन्ध में हमने कई अन्वेषण कर लिये। सर्वप्रथम हमें यह ज्ञात हुआ कि ज्ञान में कुछ 'सामान्य' अथवा जातीय विधेय होते हैं, तथा द्वितीय, कि किसी वस्तु के ज्ञान के लिए 'अवच्छेदक' की आवश्यकता है। इसके सामान्य गुण-धर्मों के अववोध मात्र से इसकी सत्ता का अवबोध कदापि नहीं होता। अब हम जिस संवाद पर विचार करेंगे, वह भी वस्तुतः इसी समस्या से सम्बन्धित है, परन्तु उसका दृष्टिकोण भिन्न है।

पार्मेनीडीज़ (THE PARMENIDES)

'फीडो' तथा 'रिपब्लिक' में आकारों का जो सिद्धान्तप्र तिपादित हुआ है उसकी 'फार्मेनाइडीज' में समालोचना की गयी है। पार्मेनीडीज़ को मुख्य वक्ता बनाने से यह निष्कर्ष निकलता है कि संवाद के प्रथम भाग में उपलब्ध भाग-ग्रहण सिद्धान्त (Participation theory) पर जो आक्षेप लगाये गये हैं, उनका स्रोत इलियाटिक है। 'थीटिटस' से हमें ज्ञात होता है कि इस समय प्लेटो यूक्लिडीज़ के साथ व्यस्त था। इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध में हमें एक महत्त्वपूर्ण वाह्य साक्ष्य मिलता है। अंश-ग्रहण के विरुद्ध सर्व प्रमुख तर्क को 'तृतीय मनुष्य' (Third Man) का तर्क कहते हैं, जिस पर हम अभी विचार करेंगे। हमें असंदिग्ध प्रमाण मिलता है कि पालिजीनस (Polyxeenas) नामक सोफ़िस्ट ने इस तर्क का अपने किसी ग्रन्थ में उपक्रम किया था।[१] ब्राइसन (Bryson) नामक सोफिस्ट का शिष्य था, जो यूक्लिडीज़ के साथ ही सात्रेटीज़ का सहयोगी था, तथा उसके साथ मेगारा में 'वितण्डावाद' की स्थापना

१. एरिस्टॉटल की 'मैटाफ़िज़िक्स ९९० व, १७ पर एलेज़ेक्ण्डर का कथन, वह एरेसस निवासी फ़ेनियस [Phania's] से पॉलिज़ेनस को उद्धृत करता है, जो एरिस्टॉटल का शिष्य तथा थियोफ्रेस्टस का मित्र था। Rhein. Mus. xxxiv. pp. ६४ Sqq. में वामकर [Baumker] का कथन देखिये, फ़ेनियस द्वारा प्रयुक्त 'घोषणा' शब्द का अनिवार्यतः यह अर्थ नहीं कि पॉलिजीनस ने इस तर्क का आविष्कार किया था। तुलना कीजिये, 'मन्च पर लाना'।

की । अकादमी के साथ भी उसका कुछ घनिष्ट सम्बन्ध था ।[1] प्लेटो से द्वेष रखने वाले कहते हैं कि उसने ब्राइसन के भाषणों[2] का विकृत रूप प्रस्तुत किया । तथा यदि हम यह मान लें कि ब्राइसन की इस तर्क का मूल प्रवर्तक था, तो यह बहुत सरलता से स्पष्ट हो जायेगा ।

परन्तु, यदि इन तर्कों का स्रोत इलियाटिक हैं, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि ये तर्क बुद्धिगम्य सत्ता के विरुद्ध नहीं, वरन् संवेद्य सत्ता के विरुद्ध रखे गये हैं । 'एकम्' का खण्डन करने के लिए पार्मेनीडीज़ को प्रवक्ता बनाना असंगत होता, तथा मेगारिक सिद्धान्त के बारे में हमें कुछ जानकारी है उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसने संवेदन-जगत् की सत्ता का निषेध किया । अतः 'पार्मेनीडीज़' के तर्क वस्तुतः आकार सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं, वरन् साक्रेटीज़ के उस मत के विरुद्ध प्रवर्तित है जिसके अनुसार संवेद्य वस्तुओं की उत्पत्ति अथवा विनाश आकारों में भाग लेने या न लेने के कारण होता है । 'तृतीय मनुष्य' का तर्क स्पष्टतः उभयतः तीक्ष्ण (double edged) है । इसका प्रयोग 'आत्मकृति' (autoanthrohos) को असम्भव सिद्ध करने के लिए किया जा सकता है, परन्तु साथ ही साथ इसे किसी विशेष व्यक्ति के मिथ्यात्व को प्रदर्शित करने के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है । प्लेटो को अनुभव-जगत् में इतना विश्वास था कि वह यूक्लिडीज़ के अप्रपञ्चवाद (acosmism) को स्वीकार नहीं करता, परन्तु 'भाग- ग्रहण' के द्वारा संवेद्य तथा बुद्धिगम्य के बीच के सम्बन्ध के विवरण के विरुद्ध दिये गये तर्कों को प्रबलता से वह प्रभावित अवश्य था । परन्तु 'पार्मेनीडीज में इस सम्बन्ध में उसके विचार का विवरण नहीं मिलता ।

संवाद के प्रतिपाद्य विषय का उपक्रम निम्नलिखित ढंग से किया गया है । ईलियाटिक वाद के विपक्षियों के विरुद्ध ज़ीनों का एक तर्क यह था कि 'यदि वस्तुए अनेक हैं, तो उन्हें समान एवं असमान दोनों होना चाहिये । इसका वस्तुतः क्या अभिप्राय है, इससे यहाँ पर हमारा सम्बन्ध नहीं है । हमें इस समय इस समस्या के उस समाधान पर विचार करना है जिसे साक्रेटीज ने

१. सुखान्तिक कवि एफिप्पस (Ephippos) खण्ड १४, Kock से ऐसा प्रतीत होता है, यह स्पष्ट नहीं कि ब्राइसन अकादमी का सदस्य था अथवा नहीं, परन्तु सम्भव है वह रहा हो । परन्तु इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता, महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि वह साक्रेटीज़ का सहयोगी था ।

२. थियोपाम्स, ap. Athen, ५०९ c.

प्रस्तुत किया था। इस समय का साक्रेटीज़ 'थीटिटस' का संवाद का वृद्ध नहीं, वरन् 'अत्यन्त युवा' है (१२९ स)। वह ज़ीनो से पूछता है कि क्या वह उन आकारों में विश्वास नहीं करता जो, संवेदनात्मक वस्तुओं से 'पृथक्' हैं, परन्तु जिनमें ये वस्तुएं भाग लेती है। यदि यह सत्य है तो कोई कारण नहीं कि संवेद्य वस्तुएं उसी समय सादृश्य के रूप तथा वैसादृश्य के रूप में भी भाग न लें। उदाहरण के लिए, कोई मनुष्य एक तथा अनेक दोनों है, उसके बहुत-से अंग हैं, परन्तु अन्य मनुष्यों की भाँति वह भी एक मनुष्य है। क्यों नहीं कोई संवेद्य वस्तु भी एक ही समय में किसी वस्तु के सदृश तथा किसी अन्य के असदृश हो, ताकि वह दोनों आकारों में भाग ले सके? पत्थरों तथा लकड़ियों जैसी वस्तुएं एक एवं अनेक दोनों हैं, यह दिखाने से हम यह नहीं सिद्ध कर सकते कि एकम् अनेकम् है, अथवा अनेकम् एकम् है। आश्चर्य तो तब होगा जब कोई व्यक्ति सादृश्य तथा असादृश्य, एकम् तथा अनेकम्' गति तथा स्थिति (जो थिटिटस के सर्वनिष्ट अभिधान हैं) जैसे पृथक् रूपों का निरुपण करने के उपरान्त यह दिखाये कि उन्हें परस्पर मिश्रित किया जा सकता है, तथा पुन: एक दूसरे से पृथक् किया जा सकता है। इससे भी अधिक आश्चर्य तब होगा जब कोई यह दिखाये कि सवेदनात्मक वस्तुओं में जो व्याघात पाये गये हैं, वे ही व्याघात विचार द्वारा गृहीत आकारों में भी पाये जाते हैं (१२९ अ–१३० अ)।

यहाँ पर साक्रेटीज़ ने जिस मत उल्लेख किया है वह वस्तुत: फ़ीडो' का है, जिसमें कहा गया है सिम्मयस साक्रेटीज़ से महान् तथा फाइडन से छोटा हो सकता है, यद्यपि महानता तथा लघुता परस्पर अपवर्जित है (१०२ ब)। परन्तु द्रष्टव्य है कि 'फ़ीडो' में भी उद्देश्य तथा इसके विधेय के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए 'भाग-ग्रहण' शब्द की योग्यता पर सन्देह प्रकट किया गया है (१०० द)। यदि 'फ़ीडो' की आधारभूमि ऐतिहासिक है, तो इससे अनुमान लगता है कि 'पार्मेनीडीज़' का साक्रेटीज़ इन शंकाओं की अनुभूति के पूर्व का आत्मस्थ तथा परिनिरपेक्ष साक्रेटीज़ है। प्लेटो ने यहां पर अपने आरम्भिक व्यक्तित्व को व्यक्त किया होगा, इस बात पर वे ही लोग विश्वास करेंगे जो यह मानते हैं कि 'फ़ीडों' में साक्रेटीज़ का उपयोग उसने स्वयं अपने व्यक्तित्व को ढ़कने के लिए किया था। दूसरा मत यह है कि साक्रेटीज से यहां पर प्लेटो का तात्पर्य किसी ऐसे नवागन्तुक अकादमी के सदस्य से है जिसकी स्वयं अपने ही असंस्कृत मत में आस्था थी, परन्तु इस मत पर किसी को विश्वास नहीं हो सकता। हम अनिच्छया यह स्वीकार कर सकते हैं कि प्लेटो ने साक्रेटीज का

प्रयोग अपने छदमवेश के लिए किया है, परन्तु अपने अपरिपक्व शिष्यों को अपने सम्मानित गुरु के वेश में उपस्थित करना निश्चित रूप से निन्दनीय होगा। इस ढंग की व्याख्या के लिए ऐसे अभिग्रहों की आवश्यकता ही अत्यन्त दुर्भाग्य पूर्ण है।

पार्मेनीडीज़ ने 'आकारों' के मत के बारे में सुन रखा था (१३० ब), तथा जैसा कि साक्रेटीज़ के भाग-ग्रहण के मत से व्यक्त होता है, वह उसकी दार्शनिक अभिक्षमता (aptitude) से प्रसन्न था। वह साक्रेटीज़ से प्रारम्भ में प्रश्न करता है कि अब तक जिन गणितीय आकारों का उल्लेख हुआ है उनके अतिरिक्त 'न्यायसंगत', मुन्दर, तथा शुभ के आकारों में उसे विश्वास है या नहीं। 'फ़ीडो' के विवरण से जैसा अपेक्षित हैं, साक्रेटीज़ तत्काल इसे स्वीकार करता है। दूसरा प्रश्न होता है कि क्या वह मनुष्य, अग्नि, तथा जल के आकारों भी विश्वास करता है। साक्रेटीज़ यहाँ पर स्वीकार करना है कि यहाँ पर उसे कुछ कठिनाई का अनुभव हो रहा है। हम देख चुके है कि इसका क्या अर्थ है (अव० ७३)। पंक, केश, तथा थल जैसी वस्तुओं के बारे में कभी-कभी उसे शंका होती थी कि सम्भवत: इनके भी आकार होने चाहिये, परन्तु अन्ततोगत्वा उसने यह विचार छोड़ दिया। पार्मेनी डीज़ कहता है कि यह इस कारण से हुआ क्योंकि साक्रेटीज़ अभी भी अपरिपक्व था, तथा दर्शन ने उसे भी पूर्णतया अभिभूत नहीं किया था परन्तु किसी दिन वह पूर्ण दार्शनिक हो जायेगा। तब वह इन वस्तुओं में से किसी की अवज्ञा नहीं करेगा। इस समय वह लोक-मत के प्रभाव में अधिक है।

पार्मेनीडीज़ के मुख का यह कथन अवश्य ही व्यंग्यात्मक है। उसका तात्पर्य यह होगा कि यदि केश, पंक तथा धूल जैसी वस्तुएं किसी प्रकार से सत् हैं, तो उन्हें भी गणित के विषयों की ही भाँति 'आकारों' में भाग-ग्रहण का अधिकार होना चाहिये। परन्तु प्लेटो के दृष्टिकोण से इस वृत्तान्त का शायद कुछ अन्य ही लक्ष्य है। आकारों के सिद्धान्त का अभी तक जो विवरण दिया गया है वह तभी ग्राह्य होता है जब उसका क्षेत्र सीमित हो। गणित के लिए, जहाँ पर इसका प्रारम्भ हुआ, यह उपयुक्त है, क्योंकि इस क्षेत्र में अंशव्यापी (Particulars) भी विचार के विषय हैं, संवेदन के नहीं। नैतिकता तथा सौन्दर्य-शास्त्र के क्षेत्र में भी यह प्राय: उसी भाँति संतोषजनक है, क्योंकि क्रियाओं का नैतिक पक्ष वस्तुत: संवेदन का विषय नहीं, तथा सौन्दर्य आकार की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति

है। दूसरी ओर, इस सिद्धान्त की एक बहुत बड़ी त्रुटि यह है कि भौतिकशास्त्र एवं जीव-विज्ञान में भी बड़ी कठिनाई से प्रयुक्त होता है, परन्तु साधारण तथा अस्वच्छ वस्तुओं पर इसका प्रयोग कदापि नहीं हो पाता। 'थीटिटस' में प्लेटो ने स्वयं आत्मा द्वारा ग्राह्य 'सामान्य' विधेयों तथा विभिन्न संवेदनों के विषयों के भेद पर जिस ढंग से बल दिया है, उसे यदि हम स्मरण रखें, तो हम यह विचार करने के लिए उन्मुख होंगे कि वह सामान्य विधेयों के सिद्धान्त पर कुछ अंकुश लगाने का मार्ग प्रशस्त कर रहा है, तथा साथ ही साथ यह भी सुझा रहा है कि इस अंकुश के कारण यह सिद्धान्त इतना रूपान्तरित हो जायेगा कि इस सम्पूर्ण अनुभव जगत् की तुच्छतम अभिव्यक्तियों को भी हम समझ सकते हैं। यदि मह इस सिद्धान्त को केवल बौद्धिक कोटियों (categories) तक सीमित रखें, तथा इन कोटियों की क्रियाओं को सम्पूर्ण संवेद्य जगत् में विस्तीर्ण करें, तो इसमें कोई असंगति नहीं। 'टिमियस' में अग्नि तथा अन्य तत्त्वों के भी आकारों का उल्लेख किया गया है – इस तथ्य को कोई महत्त्व देने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि वहाँ पर वक्ता एक पाइथागोरियन है, तथा हमें यह मानने के लिए पर्याप्त आधार मिल चुका है कि परवर्ती पाइथागोरियन्स ने प्राय: तत्त्वों की संरचना के लिए ही रूपों का प्रयोग किया।

इस प्रश्न को अधुना यहीं छोड़कर वह पार्मेनीडीज़ के उस विशेष सम्प्रत्यय में उत्पन्न समस्याओं पर विचार करता है जिसके अनुसार अनेक संवेद्य वस्तुएँ एक ही आकार में भाग लेती हैं, अथवा एक ही आकार बहुत-सी संवेद्य वस्तुओं में विद्यमान है।

सर्वप्रथम, ये सभी वस्तुएं या तो सम्पूर्ण आकार को समाविष्ट करती हैं, अथवा उनमें से प्रत्येक वस्तुएं इसको केवल अंशत: समाविष्ट करती हैं। प्रथम दशा में सम्पूर्ण रूप प्रत्येक विशेष वस्तु में विद्यमान रहेगा, जिसका अर्थ होगा कि यह एक से अधिक स्थान पर उपस्थित होगा, तथा अपने से पृथक् एवं विभक्त हो जायेगा। सात्रेटीज़ कहता है कि यह दिवस् के समान है, जो अनेक स्थानों पर विद्यमान रहता है, फिर भी एक है। परन्तु पार्मेनीडीज़ इस तुलना को नहीं स्वीकार करता। यदि बहुत-से लोग एक ही नौका - वसन से ढँके हैं, तो प्रत्येक व्यक्ति इसके केवल कुछ अंश से आच्छादित हैं। दूसरे शब्दों में, आकार का केवल एक अंश ही प्रत्येक सम्बद्ध वस्तु में वर्तमान है। परन्तु उस स्थिति में आकारों से किसी वस्तु की व्याख्या नहीं हो सकेगी। परिमाण के रूप का कोई अंश, यदि कोई ऐसी वस्तु सम्भव हो तो, पूर्ण की अपेक्षा कम होगा, तथा इसमें भाग लेने से कोई वस्तु बड़ी नहीं हो सकती।

इस प्रकार के अन्य बहुत से असंगत परिणाम निकलेंगे।'[1]

पुनः जिन तथ्यों के आधार पर सार्क्रेटीज़ यह कहता है कि असंख्य संवेद्य वस्तुएं एक ही आकार में अंश ग्रहण करती हैं, उन्हीं तत्त्वों के कारण उसे असंख्य आकारों के अस्तित्त्व को मानने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। यदि किसी उभयनिष्ठ विधेय में विशेष वस्तुओं के भाग-ग्रहण की व्याख्या के लिए हमें आकार की आवश्यकता पड़ती है तो किसी उभयनिष्ट विधेय में स्वयं आकार तथा अंश-व्यापी वस्तुओं द्वारा भाग-ग्रहण को स्पष्ट करने के लिए भी हमें एक आकार की आवश्यकता है। इस प्रकार इसमें अनवस्था दोष आता है (१३२ अ)।

इसके पश्चात् सार्क्रेटीज़ यह सुझाव देता है कि सम्भवतः आकार ही वास्तविक विचार है, तथा उनका अस्तित्त्व केवल आत्मा में हैं, जिसका पार्मेनीडीज़ उत्तर देता हैं कि विचार तो किसी सत् वस्तु के ही हो सकते हैं। वह (पार्मेनीडीज़) पुनः कहता है कि यदि आकार विचार हैं तो उनमें भाग लेने वाली वस्तुओं को भी विचार होना चाहिये। इससे यह भी निष्पन्न होता है कि या तो सभी वस्तुएँ सोचती हैं, अथवा अविचारित विचारों का भी अस्तित्व है।[2]

सार्क्रेटींज़ ने जो दूसरा विकल्प प्रस्तुत किया, वह है कि आकार प्रतिमान (patterns) हो सकते हैं, तथा उनमें संवेद्य वस्तुओ के भाग लेने का यथार्थ विवरण यह हो सकता है कि ये वस्तुएँ उन साँचों (नमूनों) के सदृश हैं,[3] परन्तु पार्मेनीडीज़ कहता हैं कि यदि वस्तुएं आकारों के सदृश हैं, तो आकार भी वस्तुओं जैसे होंगे, तथा इन दोनों के सादृश्य को स्पष्ट करने के

---

१. इन पर विस्तृत चर्चा के लिए मुझे प्रोफेसर टेलर के Mind (N.S.,) Vol. xii, No. ४५ के लेख का उल्लेख करना आवश्यक है।

२. अन्तिम कथन कुछ अस्पष्ट हैं, परन्तु इससे मुख्य तर्क में कोई अन्तर नहीं पड़ता। दृष्टव्य है कि सम्प्रत्ययवाद का कितना स्पष्ट प्रतिपादन हुआ, है, तथा किस तत्परता से इसका खण्डन किया गया है।

३. एरिस्टॉटल के अनुसार यह पाइथागोरियन दृष्टिकोण हं (Met. A.६)। अतएव 'टिमयस' में, जहाँ पर वक्ता एक पाइथागोरियन है, इसके प्राधान्य से हम कुछ भी अनुमान नहीं लगा सकते। यह अनुमान करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता कि प्लेटो ने परवर्ती जीवन में इस मत का अनुसरण किया था।

लिए एक अन्य प्रतिमान की आवश्यकता होगी, जो दोनों से मिलता-जुलता हो। यहाँ पर भी हम अनवस्था प्रसंग के जाल में पड़ जाते हैं।

परन्तु इनसे भी अधिक जटिल समस्याएं आती हैं। यदि आकारों का स्वरूप वैसा ही है जैसा हमने वर्णन किया, और यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि ये आकार अज्ञेय हैं, तो उसका खण्डन करना कठिन होगा। हमने कहा कि वे 'अपने आप में एकाकी' रहते हैं, तथा हमारे जगत् के अन्तर्गत नहीं हैं, तथा चूंकि उनका स्वभाव सापेक्ष है, अतएव वे केवल परस्पर सापेक्ष हो सकते हैं। दूसरी ओर, उनके सादृश्य का हमारे जगत् में सापेक्ष्य केवल पारस्परिक हो सकता है, न कि आकारों के साथ। कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति का स्वामी अथवा दास होता है, न कि 'स्वामित्व' अथवा 'दासता' का। परन्तु स्वयं 'स्वामित्व' दासता का सापेक्ष्य है, न कि किसी विशेष दास का। उसी प्रकार से 'शुद्ध ज्ञान' 'शुद्ध सत्य' का सापेक्ष्य है, परन्तु हमारा ज्ञान हमारे जगत् में वर्तमान सत्य के सापेक्ष्य है। परन्तु ऐसी स्थिति में आकार पूर्णतः अज्ञेय होंगे। इस स्थिति से बचने के लिए यदि हम यह कहें कि 'शुद्ध ज्ञान' ईश्वर में स्थित है, अतः ईश्वर आकारों को जानता है, तो परिणाम और भी भयंकर होगा। इससे यह अन्वित होगा कि ईश्वर को न हमारा ज्ञान हो सकता है, न हमें ज्ञात किसी वस्तु का, क्योंकि उसका ज्ञान हमारे जगत् के सत्य के सापेक्ष्य नहीं है। वह हमारा स्वामी (Master) भी नहीं हो सकता, क्योंकि स्वयं स्वामित्व को हमारी अपेक्षा है (१३४ द - इ)।

यह अनुभाग 'तृतीय मनुष्य' के तर्क पर आधारित है, जिसे अंश-ग्रहण के मत पर सन्देह करने के लिए प्रयुक्त किया जा चुका है (अव० १९५)। यहाँ पर इसे उस रूप में उपस्थित करना अधिक अच्छा होगा जिस रूप में एरिसस निवासी फ़नियस ने उसे पॉलिजेनस से उद्धृ किया।[1] 'यदि कोई मनुष्य इसलिए मनुष्य है क्योंकि वह आकार अथवा आत्माकृति (auto anthropos) में भाग लेता है, अथवा अंश-भोगी है,[2] तो कोई ऐसा मनुष्य भी होगा जिसका अस्तित्व आकार का सापेक्ष्य है। यह मनुष्य 'आत्माकृति' नही हो सकती,

---

१. देखिये, पृ० २०६, टि.।

२. यह ध्यान देना आवश्यक है कि अंश-ग्रहण (participation) के लिए पॉलिजेनस दो शब्दों (metoche, metousia) का प्रयोग करता है, जिनका प्लेटो ने कभी प्रयोग नहीं किया। इससे यह सिद्ध हो सकता है कि यह तर्क विशेष रूप से इस मत के बारे में प्लेटो के कथन के विरुद्ध नहीं था

क्योंकि यह आकार है। न तो कोई विशेष मनुष्य ही हो सकता, क्योंकि यह मनुष्य तो स्वयं मनुष्य इसलिए है क्योंकि यह आकार में भाग लेता है। अतः एक ऐसा तृतीय मनुष्य भी होना आवश्यक है, जिसका अस्तित्व रूप के सापेक्ष्य हो।[1] इसका अर्थ मैं यह समझता हूँ कि चूंकि किसी संवेद्य मनुष्य के लिए आकार से किसी प्रकार से सम्बन्धित होना सम्भव नहीं, तथा चूंकि आकार अपने आप से भी सम्बद्ध नहीं हो सकते, अतः भाग-ग्रहण के सिद्धान्त से कुछ भी स्पष्ट नहीं होता, 'मनुष्य' के आकार में जो मनुष्य भाग ले सकता है वह बुद्धि गम्य-जगत् का तृतीय मनुष्य होगा, न कि संवेदन-जगत् का, तथा इस प्रकार की किसी बात का अभि-ग्रहण सर्वथा निरर्थक है। जैसा कि पहले बताया गया है, हम यह देखेंगे कि यह तर्क संवेद्य वस्तुओं की सत्ता के विरुद्ध दिया गया है, न कि बुद्धिगम्य वस्तुओं के विरुद्ध। यह सर्वप्रथम तथा सर्वोपरि भाग-ग्रहण मत के विरुद्ध एक तर्क है, तथा यह तर्क आकारों के सिद्धान्त के विरुद्ध वहीं तक है जहाँ तक वह सिद्धान्त एक परम अद्वैत तत्त्व के स्थान पर मनुष्य के अनेक विशेष रूपों जैसे मतों को आपादित करता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि क्यों एरिस्टाटल इस तर्क को आकारों के सिद्धान्त के विरुद्ध प्रयुक्त करता है, तथा इसका खण्डन भी आवश्यक समझता है[2]। इस मत का उद्देश्य एक ऐसे दृष्टिकोण का समर्थन करना था, जिससे एरिस्टॉटल को बहुत कम सहानुभूति थी।

प्रायः ऐसा प्रतीत होता है कि हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचना होगा कि आकार अज्ञेय हैं, और इस प्रकार सारे दार्शनिक तर्क-वितर्कों का अन्त हो जायेगा। इससे द्वन्द्वन्याय विनष्ट हो जायगा. ऐसा संकेत अवश्य मिलता है कि समाधान की प्राप्ति सम्भव है (१३५ अ)। परन्तु अधुना उसकी ओर प्रयास नहीं किया जा रहा है। इसके स्थान पर पार्मेनीडीज, जिससे यह आशा नहीं की जाती कि वह अनुभव-जगत् के औचित्य का प्रदर्शन करने का कार्य करेगा, उसके सम्बन्ध में विचार-विमर्श को सर्वथा अस्वीकार कर यह प्रस्तावित करता है कि स्वयं आकारों के जगत् में जो कठिनाईयां उत्पन्न होती हैं उन पर विचार किया जाय, तर्क का आधार अभी भी मेगारिक है, क्योंकि हम जानते

---

१. मैंने बाम्कर (Rhein. Mus. xxxiv. p. ७५) के स्थान-परिवर्तन को मान लिया है।

२. Soph. El. १७८ b, ३६sqq.

हैं कि यूक्लिडीज़ ने आकारों के नानत्व का निषेध कर उन सबको 'एकम्' में में विलीन कर दिया।

संवाद के प्रारम्भ में (१२९ इ० sq) साक्रेटीज ने स्वयं घोषित किया था कि उसे यह नहीं समझ में आता कि आकारों का स्वयं परस्पर संयोजन कैसे होता है। कोई आकार एक तथा अनेक, सदृश तथा असदृश, स्थिर तथा गतिशील कैसे हो जाता है, यह समझना तो और भी कठिन है। वह यहाँ पुनः कहता है (१३५ द) कि यह देखना पर्याप्त सरल है कि कैसे संवेद्य वस्तुओं के भिन्न-भिन्न विधेय हो सकते हैं। वास्तविक कठिनाई तब उत्पन्न होती है इसे जव हम आकारों पर प्रयुक्त करते हैं। पार्मेनीडीज़ कहता है कि इस प्रकार की समस्या पर प्राकल्पना विधि से ही विचार होगा। इस विधि के भावात्मक तथा अभावात्मक दोनों ही अनुप्रयोग होते हैं, 'हमें इसका अस्तित्व है', तथा इसका अस्तित्व नहीं है' दोनों प्राकल्पनाओं के सभी परिणामों को ढूंढ़ना होगा, उदाहरणार्थ, जीनो द्वारा परीक्षित प्राकल्पना 'यदि वस्तुएँ अनेक हैं......'को ग्रहण करने के उपरान्त हमें 'यदि वस्तुएं अनेक नहीं हैं.......' के परिणामों पर भी विचार करना होगा। दोनों दशाओं में हमें यह जानना होगा कि उनके परिणाम क्या हैं। हमें न केवल स्वयं प्राक्कल्पना के विषय के परिणाम, वरन् अन्य परिणाम भी जानने होंगे, प्रत्येक स्थिति में हमें प्राकल्पना के विषय तथा अन्य परिणामों पर विचार करते समय परस्पर तथा एक दूसरे के सम्बन्ध का ध्यान रखना होगा। सभी आकारों पर विचार करते समय यही विधि अपनानी होगी, यथा, सादृश्य तथा असादृश्य, स्थिति तथा गति, उत्पत्ति तथा विनाश, अस्तित्व तथा अनस्तित्व, इत्यादि (अन्यथा, दूसरे शब्दों में, 'थीटिटस' के सामान्य विधेय)।

परीक्षण के लिए प्राक्कल्पना के रूप में पार्मेनीडीज़ स्वयं अपने ही एकम् के सिद्धान्त को ले, यह स्वाभाविक है। जैसा कि हम देखेंगे, प्लेटो इसके लिए कुछ ही भिन्न कारण बताता है, परन्तु यह मानने के लिए कोई आधार नहीं है कि पार्मेनीडीज़ अथवा साक्रेटीज़ के मन में वे कारण वर्तमान थे, पार्मेनीडीज़ को अपने तर्क के परिणामों को स्वीकार करते हुए नहीं दिखाया गया है—वह स्वयं अपने दर्शन का उन्मूलन किये बिना इसे स्वीकार नहीं कर सकता, तथा वह स्पष्टतः घोषित करता है कि उसके द्वारा की गयी प्रथम प्राक्कल्पना का परिणाम असम्भव है (१४२ अ)। साक्रेटीज यहाँ पर मौन हो ऐसा हम नहीं मान सकते। सम्पूर्ण प्रसंग को एक मानसिक व्यायाम, एक 'श्रम-

साध्य' क्रीड़ा कें रूप में लिया गया है जिसका प्रमुख महत्त्व पद्धति क सम्बन्ध में प्रशिक्षण देने के कारण है। परन्तु प्लेटो इसको कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण मानता है, तथा संवाद में ही वह ऐसा संकेत करता है। हमें स्मरण रखना होगा कि यहां पर केवल आकारों के बारे में ही विचार-विमर्श हो रहा है, तथा स्पष्ट रूप से चेतावनी दी गयी है कि वहां पर 'अन्य' का तात्पर्य संवेद्य वस्तुएं नहीं हैं (१३५ इ)। वे केवल अन्य आकार हैं। साक्रेटीज़ ने कहा था (१२९ द sqq.) कि यदि कोई व्यक्ति यह दिखा सके कि रूपों का एक दूसरे से संयोजन हो सकता है, तो उसे अत्यन्त आश्चर्य होगा। उदाहरणार्थ, 'फ़ीडो' में पृथक्ता का वह रूप स्पष्ट ढंग से बता दिया गया था। 'संवेद्य वस्तुएं' आकारों में भाग ले सकती है, परन्तु आकार एक दूसरे से पृथक् हैं। वह आगे कहता हैकि उसे इस बात पर और भी अधिक आश्चर्य होगा, जब कोई व्यक्ति यह दिखाये कि आकारों में भी उसी प्रकार की भ्रान्ति तथा अनिश्चितता है जैसी कि उनमें भाग लेने वाली संवेद्य वस्तुओं में, और ठीक इसी बात को पार्मेनीडीज़ दिखाता है। यदि हम एकम् तया सत्ता के आकारों को अमूर्त व्यवस्था में लें, तो वे तत्काल एक दूसरे तथा सभी आकारों में, यहाँ तक कि अपने प्रतिपक्षी आकारों में भी भाग लेना तथा सम्मिलित होना प्रारम्भ कर देते हैं। उनकी स्थिति जल के समान है, जो एक हाथ को शीतल तथा दूसरे हाथ को उष्ण प्रतीत होता है। किसी भी अन्य सतत् प्रवाहमान संवेद्य वस्तु से इनकी तुलना की जा सकती है। वस्तुतः पार्मेनीडीज़ यह सिद्ध करता है कि यदि हम बुद्धिगम्य जगत् का अपने आप में विचार करें, तो यह संवेद्य जगत् की ही भाँति असंतोषजनक है। एकम् को उदाहरण बना कर वह वस्तुत मेगारिक सिद्धान्त का खण्डन करता है। वह तो मेगारिकों के ही अस्त्रों से उनका खण्डन करता है। यह स्थिति तब और भी उपहासास्पद बनजाती है जब श्रद्धेय पार्मेनीडीज़ ही इसका प्रचण्ड खण्डन करता है, तथा यह भी सम्भव है कि ज़ीनो नेउस के स्वयं के कार्यों के बारे में दिये गये उसके जिस विवरण को भूमिका में प्रस्तुत किया है, उसे हम एक संकेत समझें, जिसके प्रकाश में इस संवाद के द्वितीय भाग को पाठकों द्वारा पढ़े जाने की प्लेटो इच्छा व्यक्त करता है। ज़ीनो कहता है :—

"मेरा ग्रंथ उस निमित्त नहीं लिखा गया है जिस लक्ष्य का आप उल्लेख करते हैं (यथा, पार्मेनीडीज़ के सिद्धान्त को दूसरे ढंग से प्रमाणित करना)........' इसमें उन लोगों के विरुद्ध तर्क दिया गया है जो नानात्व में विश्वास करते हैं, तथा यह दिखाने का प्रयास किया गया

है कि यदि पार्मेनीडीज़ के सिद्धान्त को ठीक से समझा जाय, तो स्पष्ट होगा कि नानात्ववादियों की प्राक्कल्पना के परिणाम इसकी अपेक्षा अधिक असंगत हैं, तथा इसमें उनकी अपेक्षा अधिक गुण मिलते हैं (१२८ स–द)।

इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि प्लेटो अपने गुरु साक्रेटीज़ की प्राक्कल्पना को सिद्ध करना नहीं चाहता, परन्तु वह अवश्य दिखाना चाहता है कि यदि उसकी प्राक्कल्पना को समुचित ढंग से समझा जाय तो इसकी अपेक्षा मेगारिक्स की प्राक्कल्पना के परिणामों में अधिक असंगति मिलेगी।

हमें इस दृष्टिकोण से उन प्रसंगों के बारे में निर्णय करना चाहिये जो आधुनिक पाठकों को शुष्क तथा प्रतिघातक वार्तालाप-से प्रतीत होते हैं। इन प्रसंगों में समय-समय पर कुतर्क भी प्रकट होता है। यह ज़ीनों द्वारा प्रारम्भ की गयी द्वन्द्वन्याय–पद्धति तथा मेगारा में उसके उत्तराधिकारियों द्वारा प्रयत्न सिद्ध अनुकरण का प्रदर्शन है। प्लेटो की नाटकीय क्षमता अभी समाप्त नहीं हुई तथा हमारे ऊपर इसका चाहे जो भी प्रभाव पड़े, इसमें सन्देह नहीं कि जिस कुशलता के साथ वह इस अपरिचित उपकरण का प्रयोग करता है उसे उसके समकालीन लोग अवश्य पसन्द करते होंगे, यहाँ पर यह कहना भी आवश्यक है कि जहाँ तक ये तर्क वितण्डात्मक हैं, तथा प्लेटो को अवश्य यह ज्ञात होगा कि इनमें से एक या दो तर्क वितण्डात्मक हैं, यह सम्भवतः सर्वथा जानबूझ कर किया गया है। हम देखेंगे कि उसने यूक्लिडीज़ के शिष्यों को वितण्डावादी मानना प्रारम्भ कर दिया था। जैसा कि हमने 'थीटिटस' में देखा, ऐसा मानने का कारण यह था कि जो तर्क केवल विचारगम्य वस्तुओं तक ही सीमित रहते हैं वे इस प्रकार के निर्णय हैं जिनमें केवल नामों का संयोजन रहता है। वस्तुतः अन्य सम्वादों की अपेक्षा इस सम्वाद में प्लेटो की रचनाओं के नाटकीय स्वरुप को स्मरण रखना तथा समकालीन परिस्थिति को समझना अधिक आवश्यक है। मुझे यह सर्वथा सम्भावित प्रतीत होता है कि प्लेटो की मण्डली ने 'पार्मेनीडीज़' के द्वितीय भाग को अत्यन्त मनोरंजक समझा, जो लोग 'यूथिडेमस' पढ़कर हँसते थे, उन्हें यहाँ पर कुछ सूक्ष्म आनन्द की अनुभूति होगी। परन्तु मुझे आशंका है कि ब्राइसन तथा उसके साथी प्रसन्न नहीं होंगे। कुछ वर्षों बाद हेलिकन का डायोनियस द्वितीय से यूडाक्सस, साक्रेटीज़ तथा ब्राइसन के शिष्य के रूप में परिचय कराते समय वह कहता है,[1] तथा इस सबसे अधिक

१. Ep. xiii, ३६० c.

दुर्लभ यह है कि वह व्यवहार में कष्टदायक नहीं है, तथा वह मुझे द्वेषी नही मानता, वरन् सरल तथा सुगम। यह कहते समय मैं भयभीत तथा कम्पित हो रहा हूँ, क्योंकि मैं एक मनुष्य के बारे में यह कथन कर रहा हूँ, तथा मनुष्य कोई दुष्ट पशु नहीं, वरन् परिवर्तनीय जीव है, 'प्लेटो तथा मेगारिक्स के बीच जो तनाव बढ़ रहा था, उसके चिन्ह हमें अन्य स्थल पर भी मिलेंगे। आइये अब हम प्राक्कल्पनाओं पर विचार करें।[1]

वस्तुत: आठ प्राक्कल्पनाओं का परीक्षण करना है, परन्तु प्रथम तथा द्वितीय के बीच एक उप प्राक्कल्पना-जैसी है, अतः कुल नौ प्राक्कल्पनाएं होती हैं।

प्रथम प्राक्कल्पना – यदि सत्ता एक है, तो इसके लिए क्या परिणाम होंगे? (१३७ स).

यदि सत्ता एक है, तो यह अनेक (Many) नहीं हो सकती, अतएव इसके न तो अंश हो सकते हैं, न यह एक पूर्ण हो सकती है (क्योंकि पूर्ण अंश का सापेक्ष्य है)। यदि इसके अंश नहीं हैं, तो इसका आदि, मध्य तथा अन्त भी नहीं होगा, अतः इनकी कोई सीमा नहीं, तथा यह अनन्त हैं। पुनः इसकी कोई आकृति नहीं होगी, क्योंकि आकृति के लिए अंशों की आवश्यकता है। पुनश्च, इसका कोई स्थान नहीं होगा, क्योंकि जो वस्तु स्थान घेरती है, वह या तो स्वयं में, अथवा किसी अन्य वस्तु में अन्तर्विष्ट होती है। यह किसी अन्य वस्तु में अन्तर्विष्ट नहीं हो सकती, क्योंकि उस दशा में यह अपने को अन्तर्विष्ट करने वाली वस्तु से विभिन्न बिन्दुओं पर संसर्ग में आयेगी, और इसका अर्थ होगा कि इसके अंश हैं। यह स्वयं अपने में भी अन्तर्विष्ट नहीं हो सकती, क्योंकि उस दशा में यह धारक तथा अन्तर्विष्ट (धृत) दोनों होगी, अर्थात यह दो होगी, एक नहीं।

यह गतिशील (Motion) अथवा स्थिर (Rest) नहीं हो सकती। यदि इसमें परिवर्तन होता है, जो कि गति का एक ही रूप है, तो यह एक नहीं रह सकती। इसमें दैशिक (spatial) गति नहीं हो सकती, जो कि गति का दूसरा रूप है। इसमें घूर्णन (rotation) की गति नहीं हो सकती, क्योंकि

---

१. 'पार्मेनीडीज' के पाठकों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए मैंने इसका कुछ विस्तृत विश्लेषण करना आवश्यक समझा। जो कुछ वर्णन किया गया है, उससे स्पष्ट होगा कि जो पाठक चाहे, इनको बिना पढ़े ही आगे बढ़ सकते हैं।

इसके लिए घूर्णन का केन्द्र अथवा धुरी आवश्यक है, अतः उसमें आकृति एवं अंश होंगे। इसमें रूपान्तरण (Translation) की भी गति नहीं हो सकती, क्योंकि इसमें देश (स्थान) का अभाव है। पुनः, इसे एक ही समय में उसी देश में रहना तथा नहीं रहना दोनों आवश्यक हैं, और इसका अर्थ है कि इसमें अंश हैं। यह स्थिर भी नहीं रह सकती, क्योंकि यह किसी देश में नहीं है। यह न तो स्वयं में है, न किसी अन्य वस्तु के अन्तर्गत, अतः यह जहाँ है वहाँ नहीं रह सकती।

यह स्वयं अथवा अन्य किसी वस्तु के समान (Same) अथवा असमान भी नहीं हो सकती। यह अपने से भिन्न नहीं हो सकती, क्योंकि भिन्न होने से एक नहीं रह जायेगी। यह किसी अन्य वस्तु जैसी भी नहीं हो सकती, क्योंकि उस दशा में यह उस वस्तु के समान होगी, जो एक नहीं है। यह अन्य वस्तु से भिन्न भी नहीं हो सकती, क्योंकि अन्य वस्तु ही भिन्न हो सकती है। यह स्वयं के समान भी नहीं हो सकती, क्योंकि यदि यह एक हो, तो कोई वस्तु अनेक हो कर कैसे वैसी हो सकती है ?

यह स्वयं अथवा अन्य किसी वस्तु के सदृश (Like) अथवा असदृश (unlike) भी नहीं हो सकती। समान गुणधर्म वाली वस्तु ही सदृश हो सकती है, तथा एकम् का एकमात्र गुण धर्म एक रहना है।

यह स्वयं अथवा अन्य किसी वस्तु के सम (equal) अथवा असम भी नहीं हो सकती। यदि यह सम होगी, तो इसके परिमाण वही होंगे, परन्तु यह उन्हीं में भाग-ग्रहण नहीं करती। यदि यह असम होगी (बड़ी या छोटी) तो इसके पास परिमाण के रूप में अनेक अंश होंगे, अतः यह एक नहीं होगी।

यह स्वयं अथवा किसी अन्य वस्तु से कम आयु, अधिक आयु, या समान आयु की नहीं हो सकती, क्योंकि इनमें समता अथवा असमता निहित है। अतः यह काल के अन्तर्गत नहीं हो सकती, क्योंकि जो कुछ भी काल के अन्तर्गत है, वह किसी क्षण-विशेष के पश्चात् या प्राचीन हो जाता है, अतएव उसी समय वह वस्तु इसकी अपेक्षा युवा होती जाती है। तथा चूंकि सम्भवन उस वस्तु से न अधिक समय तक रहता है न कम, अतः यह उसी वस्तु की आयु के बराबर होता है।

पुनः, चूंकि यह काल में भाग नहीं लेती, अतः यह सत्ता में भाग नहीं ले सकती, क्योंकि यह न तो संभावित हुई है, न हुई थी, और न सम्भावित होगी, न इसकी सत्ता ही होगी, यह सम्भव नहीं है, न तो इसकी सत्ता ही है।

और, यदि इसकी सत्ता नहीं होती, तो यह एक नहीं हो सकती, तथा इसका नामकरण, कथन, निर्णय, ज्ञान अथवा इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष भी सम्भव नहीं।

चूंकि यह परिणाम असम्भव प्रतीत होता है, अतः आइये हम इस प्राक्कल्पना को दूसरे ढंग से देखें। आइये हम एकम् को न केवल एक जैसा, वरन् सत्ता मानकर उस पर विचार करें।

द्वितीय प्राक्कल्पना – यदि एकम् का अस्तित्व है, तो इसके लिए क्या परिणाम है? (१४२ ब, १–१५५ , ३)।

यदि एकम् का अस्तित्व है, तो यह सत्ता में भाग-ग्रहण करता है (क्योंकि अस्तित्व तथा एकम् दोनों एक ही वस्तु के संसूचक नहीं है)। अतः सत्ता के स्तर पर एकम् को पूर्ण होना चाहिये, जिसके एक तथा सत्ता अंश है। परन्तु चूंकि इनमें से प्रत्येक अंश पुनः एक और सत्ता में भाग लेता है, अतः प्रत्येक को पूनः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, तथा जो सदा दो बन सकता है, वह एक नहीं है, वरन् असीमित संघात है।

पुनः, यदि हम एकम् को निरपेक्ष रूप में लें, तो यह एक सत्ता से भिन्न है, परन्तु एकम् अन्य नहीं है, तथा सत्ता भी अन्य (other) नहीं है, अतः अन्य इन दोनों (एकम् एवं सत्ता) से भिन्न है। इन तीन में से किसी भी जोड़े को दो या उभय कहा जा सकता है, तथा दो का प्रत्येक पक्ष अनिवार्यतः एक है। यदि इन जोड़ों में से किसी में हम एकम् को जोड़ें, तो हम तीन वस्तुएं पाते हैं, तथा तीन असम, संख्या हैं, जबकि दो सम हैं, तथा दो दुबारा होता है, तथा तीन तिबारा, जिससे हमें दो बार दो एवं तीन बार तीन, तथा दो बार तीन, एवं तीन बार दो मिलता है। इस प्रकार हमें सम तथा असम संघात मिलता है, जिसका प्रत्येक अंश सत्ता में भाग लेता है, जिससे सत्ता का अंशों में असंख्य विभाजन होता है। परन्तु इसका प्रत्येक अंश एकम् है, अतः एकम् का भी उतने ही अंशों में विभाजन होता है जितना सत्ता का, अतः एकम् न केवल सत्ता के ही रूप में, वरन् एक के रूप में भी असीम संघात है।

सत्ता के रूप में एकम् पूर्ण है, तथा अंशों की सार्थकता तभी है जब वे पूर्ण के अंश हों, तथा अंश पूर्ण में अन्तर्विष्ट है। जो अन्तर्विष्ट करता है वह सीमा है। परन्तु यदि यह सीमित हैं तो इसमें सीमान्त (extremes) होंगे। यदि यह पूर्ण है, तो इसमें आदि, मध्य, एवं अन्त होंगे। परन्तु चूंकि मध्य इन दोनों सीमान्तों से समान दूरी पर होगा, अतएव इसमें आकृति होगी। यह

आकृति या तो ऋजुरेखीय (rectilinear) होगी, या वृत जैसी, या मिश्रित और इस प्रकार यह ससीम होगी।

पुनः. चूंकि पूर्ण को बनाने वाले सभी अंश पूर्ण में ही अन्तर्विष्ट हैं, यह अपने आप में स्थित होगा; और, चूंकि पूर्ण अपने अंशों में अन्तर्विष्ट नहीं है, अतः इसे किसी अन्य वस्तु में अन्तर्विष्ट मानना होगा। अतएव यह स्थिर तथा गतिमान दोनों होगा।

पुनः, यह स्वयं के तथा अन्य सभी वस्तुओं के समरूप (same) होगा, तथा स्वयं से एवं अन्य सभी वस्तुओं से भिन्न भी होगा, यह स्वयं से भिन्न इसलिए है क्योंकि यह स्वयं में तथा अन्य सभी वस्तुओं में है, यह अन्य सभी वस्तुओं से भिन्न इसलिए है क्योंकि ये एक नहीं हैं। परन्तु यह समरूप भी है, क्योंकि भिन्नता किसी वस्तु का गुणःधर्म नहीं हो सकती। अतएव एकम् तथा एकम् से अतिरिक्त वस्तु भिन्नता के कारण पृथक् नहीं हो सकते, न तो वे अपने आप में भिन्न हो सकते। उनके बीच अंश एवं अंशी का सम्बन्ध भी नहीं हो सकता, क्योंकि जो एकम् नहीं है वह संख्या में भाग नहीं लेता। अतएव वे समरूप हैं।

परिणामस्वरूप, इसे स्वयं तथा अन्य सभी वस्तुओं के सदृश तथा असदृश होना चाहिये, क्योंकि एकम् अन्य सभी वस्तुओं से उसी प्रकार पृथक् है जैसे अन्य सभी वस्तुएं एकम् से, अतएव जहाँ तक वे भिन्न हैं वहाँ तक वे समान हैं। दूसरी ओर, जहाँ तक वे समान हैं वहाँ तक उन्हें असदृश होना चाहिये, क्योंकि विपक्षी पूर्वगामियों के परिणाम भी विपक्षी ही होने चाहिये।

पुनः, इसका स्वयं से तथा स्वयं से भिन्न वस्तु से संसर्ग होगा, क्योंकि यह किसी अन्य वस्तु में अन्तर्विष्ट है। परन्तु चूंकि संसर्ग में हमेशा दो वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, और संसर्ग में आने वाली वस्तुओं की अपेक्षा संसर्ग के बिन्दु हमेशा एक कम होंगे, अतः इसका न तो स्वयं से, न किसी अन्य वस्तु से, संसर्ग हो सकता है।

पुनः यह स्वयं तथा अन्य सभी वस्तुओं से सम (equal) तथा असम होगा। यदि यह लघुतर होगी, तो लघु या तो पूर्णतया या इसके अंश में विद्यमान होगा। यदि यह पूर्णरूपेण इसमें रहेगा, तो या तो यह इसमें पूर्णतया व्याप्त होगा, और इस दशा में यह उसके सम होगा, अथवा यह उससे बढ़ जायेगा, और उस स्थिति में यह बृहतर होगा। यदि यह उसके अंश में रहेगा,

तो भी ऐसा ही व्याघात उत्पन्न होगा। यदि हम यथोचित परिवर्तन करें, तो यही बात महत् (Great) के लिए भी लागू होती है। इसके अतिरिक्त महत् तथा लघु परस्पर सापेक्ष हैं, न कि एकम्। अतः स्वयं तथा स्वयं के अतिरिक्त वस्तु सम हैं। परन्तु एकम् अपने आप में स्थित हैं, अतः यह स्वयं अन्तर्विष्ट तथा धारक दोनों है, अतः स्वयं से लघुतर तथा महत्तर है। और, चूंकि एकम् तथा एकम् से भिन्न वस्तु के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, और चूंकि सभी वस्तुओं की स्थिति किसी स्थान (देश) पर है, अतः एकम् उसकी अपेक्षा महत्तर है जो एकम् से भिन्न है। परन्तु इसी तर्क के आधार पर, एकम् उसके अन्तर्गत है जो एकम् से भिन्न है, अतः उसकी अपेक्षा एकम् लघुतर है। यही तर्कना पूर्ण एवं अंशों के सम्बन्ध में भी लागू होगी।

पुनः, यह काल में भाग लेगा, क्योंकि इसका अस्तित्व है, तथा अस्तित्व का अर्थ है वर्तमान काल के साथ सत्ता में भाग लेना। परन्तु चूंकि काल (वर्तमान जिसका एक अंश मात्र है) सर्वदा प्रगतिशील है अतः एकम् इस प्रगति में भाग लेने पर सदा पुरातन हो रहा है, एवं उसी समय अपने की अपेक्षा नवीन होता जा रहा है। परन्तु यह विना वर्तमान के द्वारा निकाले भूत से भविष्य की ओर प्रगतिशील नहीं हो सकता, अतः जब यह वर्तमान पर पहुंचता है तब प्रगति अवरुद्ध हो जाती है, जिससे पुरातन होने या नवीन होने की क्रिया वर्तमान में आकार पूर्ण हो जाती है। परन्तु वर्तमान की अवधि एकम् के लिए तब तक है जब तक एकम् का अस्तित्व है, क्योंकि यह जब भी रहता है तब इदानीम (now) ही रहता है। अतः वर्तमान की अवधि तब तक रहती है जब तक एकम् का काल रहता है, तथा इसकी पुरातनता तथा नूतनता का एकम् की पुरातनता एवं नूतनता के साथ ही सम्पात होता है। पुनः चूंकि इसको स्थिति तथा सम्भवन एकम् की स्थिति तथा सम्भवन से अधिक समय तक नहीं होती, अतः इसकी भी आयु उतनी है जितनी एकम् की।

उसी प्रकार यह स्वयं से भिन्न वस्तु से प्राचीन है। जो एकम् से भिन्न है, उसे एकम् की अपेक्षा अधिक होना चाहिये, तथा संघात होने के कारण संख्या में भाग लेना चाहिये, तथा एकम् अन्य सभी संख्याओं के पूर्व ही अस्तित्व में आ जाता है। परन्तु यह स्वयं से भिन्न वस्तु से नवीन भी है, क्योंकि इसमें आदि, मध्य और अन्त है, तथा आदि का अस्तित्व पहले होता है, तथा अन्त का वाद में, तथा एकम् की सत्ता तभी है जब अन्त का अस्तित्व हो जाय। अतः एकम् का अस्तित्व इसके अंशों के अस्तित्व के वाद ही होता है। दूसरी

ओर, प्रत्येक अंश अपने आप में एक है, अतएव एकम् का अस्तित्व आदि के साथ तथा प्रत्येक परवर्ती अंश के साथ होता है, अतः इसकी भी आयु वही होनी चाहिये जो इससे (एकम् से) भिन्न वस्तु की है।

एकम् की अपने से भिन्न वस्तु से पुरातनता तथा नूतनता के सम्भूत (having become) तथा अस्तित्व (being) के बारे में इतनी चर्चा पर्याप्त है। परन्तु इसकी पुरातनता तथा नूतनता के सम्भवन (becoming) के बारे में हमें अभी विचार करना है। दूसरी ओर, यह एकम् से भिन्न वस्तु की अपेक्षा पुरातन अथवा नूतन नहीं होती; क्योंकि यदि दोनों आयु का अन्तर मिल जाय, तो कम तथा असम कालों के जोड़ने से उनके (ज्यामितीय) अनुपात में परिवर्तन हो जाता है।

अतः एकम् भूत, वर्तमान तथा भविष्य में भाग लेता है, इसका अस्तित्व था, है, तथा रहेगा। यह सम्भूत है, इसका सम्भवन हो रहा है, तथा भविष्य में इसकी संभूति होगी। यह ज्ञान, निर्णय तथा संवेदन का विषय हो सकता है, इसका नामकरण तथा कथन हो सकता है।

उपसिद्धान्त (COROLLARY)

हमने देखा कि एकम् की दो स्थितियाँ हैं। (१) यह एक तथा अनेक एवं न एकम् न अनेक है, तथा (२) यह काल में भाग लेता है। अब हमें विचार यह करना है कि द्वितीय निष्कर्ष कैसे प्रथम निष्कर्ष को प्रभावित करता है (१५५ ई, ४ sqq)।

यदि एकम् एक एवं अनेक है, तथा काल में भी भाग लेता है। तो इससे यह निष्पन्न होता है कि यह एक ही समय में सत्ता में भाग लेता है अर्थात् जब यह एक है, तथा यह किसी दूसरे समय में भाग नहीं लेता, अर्थात् जब यह एक नहीं है। सत्ता में भाग लेने के प्रारम्भ का अर्थ है अस्तित्व में आना, इसमें भाग न लेने का अर्थ है विनाश, अतः एकम् को अस्तित्व में आना तथा नष्ट होना आवश्यक है। अतएव इसका योग तथा पुनः विघटन होगा, इसका आत्मीकरण तथा पुनः अनात्मीकरण होगा, इसक विकास तथा पुनः ह्रास होगा, तथा समकृत (Equalised) होगा।

पुनः, इसे गति से स्थिरता की ओर, तथा पुनः स्थिरता से गति की ओर आना होगा। परन्तु यह कैसे सम्भव है? जब यह गतिमान है तो कैसे रुक जायेगा, तथा जब रुका रहेगा तो कैसे गतिशील होगा। स्थिरता से गति

की ओर अथवा गति से स्थिरता की ओर संक्रमण न तो गति हो सकती है, न स्थिरता। कोई ऐसा काल भी नहीं है जब कोई वस्तु न तो गति में हो, न स्थिरता में। अतः संक्रमण को सर्वथा काल के बाहर होना चाहिये। संक्रमण उस अपरिचित वस्तु में होगा जिसे तात्क्षणिक (instantaneous) कहेंगे, जिसकी स्थिति होती है, परन्तु काल में अवधि नहीं होती, तात्क्षणिक के कारण ही एक स्थिति में परिवर्तन सम्भव होता है, तथा परिवर्तन के क्षण में ही परिवर्तनशील वस्तु में विपक्षी गुणों में से कोई भी नहीं रहता (१५५ इ – १५७ ब)।

तृतीय प्राक्कल्पना – यदि एकम् का अस्तित्व है, तो अन्य वस्तुओं पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा ? (१५७ ब, ६–१५९ ब, १)।

अन्य वस्तुएँ एकम् से अन्य हैं, परन्तु वे इसमें पूर्ण और अंश दोनों रूपों में भाग लेंगी। क्योंकि, चूंकि वे अन्य हैं, अतः वे संघात हैं, तथा इस संघात में अंश होंगे, अन्यथा यह एक हो जायेगा, पुनः इसे अंशी होना चाहिये, तथा अंशी एक होता है। क्योंकि यदि पूर्ण एक न होकर अनेक हो तो प्रत्येक अंश किसी अनेक के अंश होंगे, जिसका यह स्वयं एक अंश था। तब प्रत्येक स्वयं का तथा प्रत्येक अन्य का एक अंश होगा, जो कि असंगत है। अतः वे एक अंशी हैं, अर्थात् उन सभी के सहयोग से निर्मित एक पूर्ण, पुनः प्रत्येक अंश भी स्वलक्षण हैं, क्योंकि यह अन्य से पृथक् है। अतः अंश एवं अंशी दोनों ही रूपों में अन्य वस्तुएँ एकम् में भाग लेती हैं।

अतः वे ससीम एवं असीम दोनों होंगी। चूंकि वे एक से अधिक हैं, अतः उनकी संख्या असीम होगी क्योंकि यदि हम एकम् से पृथक् वस्तु का विचार-जगत् में अल्पतम-सम्भव अंश काटें, तो यह एकम् से अधिक होगा, अतः असीम संघात होगा। दूसरी ओर, इस समय जब कोई भी अंश एकम में भाग लेता है, तो अन्य अंश तथा पूर्ण दोनों के साथ ही यह सीमित होता है, तथा इसी प्रकार अंशी भी अंशों से सीमित होता है। अतः यह सीमित है।

इसी प्रकार से वे एक दूसरे से तथा परस्पर सदृश तथा असदृश दोनों होंगे। पूर्णतः असीम एवं पूर्णतः असीम दोनों होने के कारण वे सदृश हैं, परन्तु एक ही समय में ससीम एवं असीम दोनों होने के कारण वे असमान हैं। इसी प्रकार यह भी सरलता से दिखाया जा सकता है कि वे स्थिरता तथा गतिशीलता में भी अभिन्न हैं, इत्यादि।

चतुर्थ प्राक्कल्पना – यदि यह एकम् है, तो अन्य वस्तुओं के लिए क्या परिणाम है ? (१५९ ब, २ – १६० ब, ४)।

एकम् में अन्य वस्तुएं न तो अंश के रूप में, न अंशी के रूप में, भाग ले सकती हैं। क्योंकि, चूंकि ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो एक ही समय में एक से भिन्न तथा अन्य वस्तुओं से भी भिन्न हो (क्योंकि एकम् तथा अन्य वस्तुओं में ही सब कुछ की इति हो जाती है), अतः एकम तथा अन्य एक ही वस्तु में अन्तर्विष्ट नहीं हो सकते, अतः चूंकि शुद्ध एकम के अंश नहीं होते, इसके कोई अंश अन्य में नहीं हो सकते।

पुनः चूंकि अन्य वस्तुएं न तो अंश के रूप में, न अंशी के रूप में, एकम् में भाग नहीं लेती, वे अंशी नहीं हैं। उनमें संघात अथवा संख्या भी नहीं हो सकती, क्योंकि संख्या में अनेक इकाइयां होती हैं। अतः एकम् के सम्बन्ध में उनके सादृश्य एवं असादृश्य जैसे दो विरोधी गुण-धर्म नहीं हो सकते, न ही अभिन्नता, भिन्नता, स्थिरता, गति इत्यादी जैसे गुण-धर्म ही उनमें हो सकते हैं, क्योंकि इसका अर्थ एकम् में भाग लेना होगा।

हमारी भावात्मक प्राक्कल्पनाओं का परिणाम यह है कि एकम् स्वयं में तथा अन्य वस्तुओं के सापेक्ष्य में भी सर्वस्व तथा नास्तित्व दोनों है, तथा अन्य वस्तुओं के लिए भी यही बात लागू होती है। अब हम अभावात्मक प्राक्कल्पनाओं पर विचार करेंगे।

पंचम प्राक्कल्पना— यदि एकम् की सत्ता नहीं है, तो स्वयं इसके लिए क्या परिणाम होंगे ? (१६० ब,५-१६३) ब,६।

यदि हम यह कहें कि एकम् की सत्ता नहीं है, तो हमारा कुछ अभिप्राय होगा, अतः यह ज्ञेय होगा, तथा इसका ज्ञान होगा। चूंकि यह अन्य सभी वस्तुओं से भिन्न है, अतः इसमें वैकृत्य (altereity) होगा। तथा इसे 'इदं' 'तत्' तथा 'यद् किंचिद्' इत्यादि में भाग लेना पड़ेगा, अन्यथा न तो इसका कथन हो सकता है, और न एकम् से भिन्न वस्तु का ही कथन हो सकता है। यदि यह नहीं है, तो भी बहुत-सी वस्तुओं में इसको भाग लेने में कोई व्यवधान नहीं है है। इसके विपरीत, यदि यह 'वह' एकम् है, तथा यदि इसका नामकरण हो सकता है, तो इसे अवश्य भाग लेना चाहिये।

पुनः जहाँ तक यह भिन्न है, इसे स्वयं के सदृश तथा अन्य के सदृश होना चाहिये।

पुनः इसे अन्य से असम होना चाहिये, क्योंकि, यदि यह सम होता तो यह उनके सदृश होगा।

दूसरी ओर, चूंकि बृहद् तथा लघु असम में होते हैं, जहाँ असमता होगी वहीं बृहद् तथा लघु भी होंगे। तथा पुनः, चूंकि बृहद् तथा लघु के बीच मध्य-

दशा के रूप में, सम (equal) भी आवश्यक रूप से विद्यमान रहता है, अत, एकम् में तीनों का परिग्रह होगा।

पुनः. यह सत् (Being) में भाग लेगा। क्योंकि, यदि यह सत्य है कि एकम् का अस्तित्व नहीं है, तो एकम् असत् है। इसके असत् होने के लिए यह आवश्यक है कि असत् की सत्ता हो, जैसे कि सत् के अस्तित्व के लिए असत् का अनस्तित्व आवश्यक है।

परन्तु, यदि यह सत् एवं असत् दोनों ही है, तो यहाँ पर संक्रमण (transition) होगा, अर्थात् एक से दूसरे की ओर संचलन, तथा इस संचलन में व्याकृति होगी।

दूसरी ओर, जहाँ तक एकम् का अस्तित्व नहीं हैं, ओर इस कारण यह किसी देश में स्थित नहीं है, अतः यह न तो एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर जा सकता है, न उसी स्थान पर एक केन्द्र के चारों ओर संचलित हो सकता है। यह अन्य वस्तुओं से पृथक् एकम् के रूप में जब तक बना रहेगा, तब तक इसमें परिवर्तन भी नहीं हो सकता। अतः यह अचल तथा अव्याकृत है।

पुनः, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ तक यह संचलित तथा व्याकृत होता है, वहाँ तक इसकी उत्पत्ति तथा विनाश होता है, जहाँ तक यह अचल तथा अव्याकृत रहता है, यह न तो उत्पन्न होता है, न विनष्ठ होता है।

षष्ट प्राक्कल्पना – यदि एकम् का अस्तित्व नहीं है, तो इसके लिए क्या परिणाम होगे : (१६३ ब, ७-१६४ ब,४)।

एकम् में यदि सत् का पूर्ण अभाव है, तो यह सत् (Being) में न तो भाग ले सकता है, न भाग लेना बन्द कर सकता है। अतः यह न तो उत्पन्न हो सकता है, न नष्ट, यह न तो गतिशील हो सकता है, न स्थिर; इसका अस्तित्व से कोई सम्बन्ध नहीं होगा, क्योंकि इसका अर्थ होगा, सत् में भाग लेना। अतः इसकी स्वयं या किसी अन्य वस्तु से न बृहत्ता है, न लघुत्व, न सादृश्य है, न असादृश्य। यह न तो किसी देश में है, न काल में। इसका नहीं, निर्णय अथवा संवेदन भी नहीं हो सकता; इसका कथन अथवा नामकरण नहीं सकता।

सप्तम प्राक्कल्पना– यदि एकम् नहीं है, तो दूसरी वस्तुओं के लिए क्या परिणाम होंगे ? (१६४ ब, ५-१६५ इ, १)।

चूँकि वे अन्य हैं अतः कोई ऐसी वस्तु अवश्य होगी। जिसकी अपेक्षा वे अन्य होंगे। वे एकम् से अन्य नहीं हो सकते, क्योंकि एकम् नहीं है। अतः वे स्वयं से अन्य होंगे।

पुनः, वे अकेले अन्य नहीं होंगे, वरन् संघातों तथा संहतियों (mass) के रूप में, जिसका प्रत्येक अंश उसी प्रकार की अनन्त संख्याओं में विभाजित हो सके, ताकि हमें सबसे छोटे अंश कभी भी न मिल सके, तथा जो पहले लघु आकार का प्रतीत होता था वह उस प्रत्येक संघात की तुलना में वृहद् दीखता है, जिसका यह योग है।

पुनः, हम कभी भी आदि, मध्य, या अन्त तक नहीं पहुंचते, वरन् किसी ऐसे स्थान पर पहुँचते हैं जो आदि के पूर्व है, अथवा अन्त के उपरान्त है, अथवा मध्य के बीच है।

निष्कर्ष यह है कि यदि एकम् नहीं है तो अन्य वस्तुएँ ससीम एवं असीम एक तथा अनेक दिखेंगी।

अष्टम प्राक्कल्पना— यदि एकम् का अस्तित्व नहीं है, तो अन्य वस्तुओं के लिए क्या परिणाम होंगे? (१६५ ई, २-१६६ स, १)।

वे न तो एक होंगे न अनेक, क्योंकि अनेक में एक अनुस्यूत है। वे एक अथवा अनेक के रूप में आभासित भी नहीं होते, क्योंकि जो असत् है उससे उनका कोई संचार नहीं हो सकता, न तो कोई असत् वस्तु किसी अन्य के समक्ष उपस्थित ही हो सकती, क्योंकि जो असत् है, उसके अंश नहीं होते।

अतएव उनमें हमें न केवल सत्ता की उपस्थिति का निषेध करना होगा, वरन् सादृश्य तथा असादृश्य, समानता तथा भिन्नता, सम्बन्ध तथा प्रथकत्व जैसे सभी विधेयों के आभास का भी निषेध करना होगा, जिन्हें हम पहले वस्तुतः अथवा अवस्तुतः उन पर आरोपित करते थे।

अतः सम्पूर्ण प्रसंग का सारांश यह है कि चाहे हम यह मानें कि एकम् है, अथवा यह मानें कि एकम् नहीं है, यह स्वयं तथा अपने से अन्य, अपने आप में, तथा एक दूसरे के संबंध में,- सभी हैं तथा नहीं है, सभी आभासित होते हैं, तथा नहीं भी आभासित होते हैं।

इस प्रकार इस प्रसंग का समापन होता है। कोई भी व्यक्ति इस अनिष्टकारी परिणाम के बारे में एक शब्द नही कहता। परन्तु यदि स्वयं संवाद में दिये गये संकेतों की ओर ध्यान दें, तो हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं। सर्वप्रथम, मेगारिक सिद्धान्त का खण्डन किया गया है। यदि हम किसी ऐसे एकम् को अभ्युपगमित करें जो मात्र एक हो (जैसा कि मेगारिक्स ने किया था), तो हम इसके बारे में कुछ भी नही कह सकते। अथवा, यदि (जैसा कि मेगारिक्स ने भी किया था) हम एकम् का सत् (Being) से तदात्मी-

करण करें, तो हमें बहुत–से अनुपयुक्त विधेयों का इस पर अभिधान करना पड़ेगा। एकम् तथा अन्य सभी वस्तुओं के सम्बन्ध में दो परस्पर भिन्न कथन किये जा सकते हैं।

दूसरी ओर, संवाद के प्रारम्भिक भाग में साक्रेटीज़ के सिद्धान्त का भी खण्डन किया गया है, और यह मेगारिक्स के तर्कों की सहायता से किया गया है। यह इस दृष्टिकोण पर आधारित था कि यद्यपि संवेद्य वस्तुएं विपक्षी रूपों में भाग ग्रहण कर सकती हैं, ये रूप स्वयं परस्पर निरपेक्ष एवं पृथक् हैं। चूंकि यह अमान्य है, अतः हमें कोई ऐसी प्रणाली ज्ञात करनी होगी जिससे वस्तुएँ भाग लेती हैं।

संवाद के द्वितीय भाग में यह अन्तिम रूप से स्पष्ट कर दिया गया है कि रूपों को एक दूसरे से पृथक् मानना सम्भव नहीं। 'अन्यों' को भी ग्रहण करना उतना ही कठिन है जितना 'एकम्' को। यदि हम उन्हें अमूर्त मानें, तो उनके बारे में कुछ भी नहीं कह सकते। परन्तु, यदि उन्हें सत् मानें, तो उन पर परस्पर-विरोधी विधेयों को आरोपित करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। वस्तुतः बुद्धिगम्य तथा अमूर्त आकारों का हमारे सामने से वैसे ही लोप हो जाता है, जैसे संवेदनगम्य वस्तुओं का हो गया था। यह स्पष्ट रूप से दिखाया गया है कि अब हमें यह समझने का प्रयास करना होगा कि किस अर्थ में आकार एक दूसरे में भाग-ग्रहण कर सकते हैं, क्योंकि 'पार्मेनीडीज़' की सारी समस्याएँ इसी अभिग्रह के कारण उत्पन्न होती हैं कि वे भाग-ग्रहण नहीं कर सकते।

१४

तर्कशास्त्र (LOGIC)

सोफिस्ट

'सोफ़िस्ट' नामक संवाद वाह्य रूप से 'थीटिटस' से सम्वद्ध है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि शैली से यह प्रमाणित होता है कि इस संवाद के तथा 'थीटिटस' एवं 'पार्मेनीडीज़' के लिखे जाने के बीच पर्याप्त समय का व्यवधान था। साक्रेटीज़ का प्रथम वार स्पष्ट प्रभाव यहाँ मिलता है, विशेष रूप से विच्छेद के परिहार में यह प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट है, काल के इस अन्तराल को यदि हम दृष्टि में रखें, तो इस संवाद तथा जिसका यह अपने को उत्तरभाग मानता है उसके वीच के किसी वास्तविक सम्वन्ध को ढुंढने का औचित्य होगा।

साक्रेटीज़, थिओडोरस तथा थोटोटिस कनिष्ठ साक्रेटीज़ के साथ, जो थीटिटस का मित्र था, तथा वाद में अकादमी का सदस्य हो गया, दूसरे दिन एकत्रित होकर उसी वार्ता को पुनः जारी करने वाले थे, जिसका उल्लेख 'थीटिटस' में हुआ है, परन्तु मेगारा में इस सम्वाद की कही गयी वात को चुप-चाप विस्मृत कर दिया जाता है, ग्रन्थ के शीर्षक से ही यह सिद्ध होता है कि प्लेटो तथा मेगारिक्स के मध्य के सम्वन्ध कुछ सामान्य हो रहे थे। साक्रेटीज़ ने सामान्य तथा साक्रेटीज़ के अनुयायियों को, तथा विशेष रूप से 'वितण्डा-वादियों' को, सोफ़िस्ट की उपाधि दी थी। वह मुख्यतया मेगारिक्स को वितण्डा-वादी मानता था। प्लेटो इस कथन-पद्धति को साक्रेटीज़ से ग्रहण करता है, तथा वह भी दार्शनिक तथा सोफ़िस्ट के वीच स्पष्ट भेद करता है। यह भेद प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर दिया गया है। ईलिया के एक अज्ञात व्यक्ति का परिचय कराते समय उसे पार्मेनीडीज़ तथा ज़ीनो का वैयक्तिक शिष्य बताया जाता है, और साक्रेटीज़ तत्काल यह चेतावनी देता हैं कि उसमें जिरह की

अद्भूत प्रतिभा होगी। थिओडोरस उसे यह कहकर आश्वस्त करता है कि वह इतना भला व्यक्ति है कि वितण्डावादी नहीं हो सकता, वह तो वस्तुतः एक दार्शनिक है। साक्रेटीज़ प्रत्युत्तर देते हुए कहता है कि दार्शनिकों को सोफ़िस्टों तथा राजनयिकों से पृथक् करना कठिन है, तथा प्रश्न करता है कि क्या इलियाटिक्स ऐसा भेद करते थे, अपरिचित व्यक्ति स्वीकारात्मक उत्तर देता है।

यहाँ पर प्लेटो इस अपरिचित के मुख के माध्यम से पहले की अपेक्षा अधिक प्रत्यक्ष रूप से कथन करता है, और इसी कारण इस विदेशी का नाम अज्ञात है। यद्यपि इस विदेशी को प्लेटो के प्रमुख सिद्धान्त 'असत् का अस्तित्व नहीं है' — से असहमत होने को बाध्य होना पड़ता है, परन्तु यहाँ पर पुनः एक बार ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने को प्लेटो का वास्तविक उत्तराधिकारी मानता है। यह असत् क्या है, जिसकी सत्ता है? हम पायेंगे कि इसका 'आनन्द से तादात्मीकरण किया गया है, तथा मेगारिक्स के जो थोड़े-से तथ्य हमें ज्ञात हैं उनमें से एक कथन यह भी है कि 'जो एकम् तथा अन्यद् है, उसकी सत्ता नहीं है।[1] सोफ़िस्ट नाम का मेगारिक्स के लिए प्रयोग अर्थापत्ति द्वारा हुआ, और यह शब्द मेगारिक्स के साथ चिपक-सा गया। वस्तुतः चौथी शताब्दी की अपेक्षा इस शब्द का मेगारिक्स के लिए अधिक बहुलता से प्रयोग किया गया। हम 'सौफ़िस्ट' ब्राइसन तथा 'सोफिस्ट' पालिज़ेनस का नाम पहले ही सुन चुके हैं (अव० १९२)। एरिस्टॉटल के ग्रन्थों में मेगारिक्स के तर्कों के लिए ही पारिभाषिक शब्द 'सोफ़िज्म' का प्रयोग किया गया है, तथा अपने 'हेत्वाभास' के पाठ में वह मुख्यतया इन्हीं पर विचार करता है।[2] यदि यह सत्य है तो मैं समझता हूँ कि यह अनुमान लगाना अनुचित न होगा कि उस विदेशी ने अपने गुरु पार्मेनाइडीज़ के मुख्य सिद्धान्त से असहमति प्रकट करने में जो संकोच दिखाया है (२४१ द) वह इस समय साक्रेटीज़ के प्रति स्वय प्लेटो की धारणा का संकेत है।

अन्य कई संवादों की भाँति 'सोफ़िस्ट' में भी दो पूर्णतया विसंवादी भागों का आकस्मिक संयोजन प्रतीत होता है। जैसा कि कहा गया है, इसमें भी एक बीज-भाग तथा एक उसका आवरण है। बाह्य भाग में विभाजन प्रणाली से सोफ़िस्ट की परिभाषा पाने का प्रयास किया गया है, आन्तरिक

---

१. Aristotles (ap. Eus. P. E. XIV. 17. 1. R P. अव० २८९.

२. सोफ़िस्टों के विरुद्ध तर्क।

भाग में कोटियों की, विशेष रूप से 'असत्' की, आलोचना पायी जाती है। दोनों वार्ताओं में जो स्फुट सम्बन्ध मिलता है, वह यह है कि सोफ़िस्ट की परिभाषा में असत्' की सत्ता समाविष्ट है, परन्तु यहीं प्रसंग की समाप्ति नहीं होती। हम यह भी पाते हैं कि जो लोग सत् की केवल अमूर्त एकता पर बल देते हैं, वे पार्मेनीडीज़ में पाये जाने वाले परस्पर-विरोधी तर्कों जैसे स्तर से आगे इसलिए नहीं बढ़ पाते, क्योंकि ऐसा करने के बाद उनमें वह सामर्थ्य समाप्त हो जाती है, जिससे वे विचारणीय विषय का इसके 'रूपों' अथवा वर्गों (kinds) के अनुसार विभाजन कर सकें (१५३ स–द)। विभाजन-प्रणाली का लक्ष्य यही है, परन्तु इसके औचित्य को सिद्ध करने के लिए यह आवश्यक है कि जो लोग आकारों के बहुत्व का निषेध करते हैं उनका खण्डन किया जाय। अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए आवश्यक होगा कि हम असत् के अस्तित्व को तर्क से सिद्ध करें। अन्य प्रसंगों की भाँति यहाँ भी संवाद की वास्तविक एकता की बात पाठकों के ऊपर छोड़ दी गयी है।

जिन प्रभागों के द्वारा सोफ़िस्ट की क्रमिक परिभाषाएं दी गयी हैं, उनका विस्तृत परीक्षण कठिन होगा। वस्तुतः उनको बहुत गम्भीरता से नहीं लिया जा सकता, परन्तु वे पूर्णतया निरर्थक भी नहीं है। वस्तुतः उनमें कुछ ऐसे शालीन व्यंग्य मिलते हैं। जिनके अभिप्राय के बारे में हम पहले कही गयी बातों के आधार पर सरलता से अनुमान लगा सकते हैं। अपनायी गयी प्रणाली के उदाहरण–स्वरूप प्रारम्भ में मत्स्यवेधी (मछुआ, Angler) की परिभाषा दी गयी है। यह ऊपर से अकृत्रिम प्रतीत होता है, परन्तु शीघ्र ही यह स्पष्ट हो जाता है कि सोफ़िस्ट भी मछुआ ही है वह मनुष्यों का शिकारी है। इससे हमें सोफ़िस्ट की परिभाषा मिलती है कि वह 'सम्पत्ति तथा विशिष्ट युवकों का सवैतनिक आखेटक है'। विनिमय की कला को दृष्टिगत रखते हुए एक अन्य परिभाषा भी दी जाती है। वह 'दूसरों द्वारा उत्पादित आध्यात्मिक सामग्रियों का थोक निर्यातकर्त्ता है। यहाँ पर चतुराई से यह भी कहा गया है कि कभी-कभी वह अपनी सामग्री को अपने स्थानीय बाजार में बचता है, तथा कभी-कभी वह स्वयं इनका उत्पादन भी करता है। पुनः हम उसे एक योद्धा के रूप में भी देख सकते हैं, जिसके लिए प्रश्न तथा उत्तर अस्त्र-शस्त्रों का काम करते हैं, अथवा, पुनः, उसे शोधन तथा रेचन में पटु माना जा सकता है। आत्मा के ज्ञान में जो बाधक विश्वास हैं तथा विशेष रूप से यह अज्ञान कि व्यक्ति अपने को उस विषय का ज्ञाता मानता है जिसे वह नहीं जानता इनका सोफ़िस्ट रेचन करता है। सम्भवतः हम सोफ़िस्ट को पात्रता से अधिक

सम्मान प्रदान कर रहे हों, परन्तु यह कला तो सोफ़िस्ट की कला से भी कहीं अधिक ऊँची है। हम किसी समानता से सम्भवतः भ्रमित हो गये हो।

स्पष्ट है कि ये अन्तिम परिभाषाएं पाँचवीं शताब्दी के महान् सोफ़िस्टों पर लागू नहीं होती। प्रोटागोरस तथा जार्जियस सदा छोटे-छोटे प्रश्नोत्तरों से युक्त वार्तालापों के प्रति विरक्त प्रतीत होते हैं। वस्तुतः साक्रेटीज़ उन्हें यह प्रणाली अपनाने को बाध्य करता है। पुनः, न जानते हुए भी अपने को ज्ञाता समझने की अविद्या के रेचन की बात तो पूर्णतया साक्रेटीज़ की है। अतः हमें बाध्य होकर यह निष्कर्ष निकालना पड़ता है कि यहाँ पर जिन व्यक्तियों की ओर लक्ष्य किया गया है, वे साक्रेटीज के अनुयायी हैं, तथा वार्तालाप के अन्त में जो सन्देह प्रकट किया गया है वह एक वक्रोक्ति है कि वे साक्रेटीज़ की प्रणाली की नकल करते थे, परन्तु सदा शुद्ध साक्रेटीज़ की वृत्ति से नहीं। एक बार पुनः इनके बारे में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता।

दूसरे अनुभाग में संवाद की वास्तविक समस्या उपस्थित होती है। हम देखेंगे कि सोफ़िस्ट की यह कला है कि भ्रामक प्रतिमाएं उत्पन्न करें, ताकि मिथ्या-निर्णय सम्भव हों। दूसरी ओर, प्रतिविम्ब से बिम्ब के भेद, तथा मिथ्या-निर्णय एवं यथार्थ-निर्णय में विरोध से यह आपादित होता है कि 'असत्' का भी किसी अर्थ में अस्तित्व है, तथा पार्मेनीडीज़ ने हमें ऐसी प्राक्कल्पना करने से मना किया। तर्क निम्नलिखित प्रकार से है :

हमने सोफ़िस्ट के अनेक विवरण दिये, परन्तु इससे यह सिद्ध होता है कि हमारी प्रणाली में ही कोई त्रुटि है। उसकी कला को एक ही नाम से व्यक्त किया जाता है, अतः कोई ऐसा तत्त्व अवश्य होगा, जो इन सभी विवरणों में सामान्य होगा, तथा जिसकी ओर ये सभी विवरण उन्मुख हैं। जो विवरण इस तत्त्व की ओर सर्वाधिक स्पष्टता से इंगित करता हुआ प्रतीत होता है, वह यह है कि यह व्याघात (contradiction) की कला है। सोफ़िस्ट लोग दृश्य तथा अदृश्य, दिव्य तथा पार्थिव – सभी वस्तुओं के बारे में विवाद कर लेते हैं। अतः सोफ़िस्ट प्रआभास-कला (Art of appearance) में प्रवीण होता है। वह एक ऐसे रंगसाज की भाँति है जो रेखाओं तथा रंगों के सहारे सादे धरातल पर घनत्व का आभास उत्पन्न कर देता है, अतः हम उसकी कला को 'प्रतिमा-सृष्टि की कला (Art of Imagary) कह सकते हैं। इस कला को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, एक वह जो यथार्थ प्रतिरूप की सृष्टि करती है, तथा दूसरी जो वास्तविक अनुपातों में जानबूझकर परिवर्तन

करके वाह्य सादृश्य उत्पन्न करती है। विदेशी व्यक्ति यह मानने को तैयार हो गया था कि सोफ़िस्ट का कार्य पश्चादोक्त से सम्बद्ध है, परन्तु तत्काल एक अत्यन्त जटिल प्रश्न उपस्थित हो जाता है (२३२ अ – २३६ द)।

प्रवञ्चक प्रतिमा की सम्भावना कैसे हो सकती है? तथा जिस मिथ्यात्व के बिना प्रवचना सम्भव नहीं, उस मिथ्यात्व के बारे में कथन या विचार कैसे सम्भव है? दोनों दशाओं में हमें यह अभ्युपगम (postulate) करना होगा कि 'असत्' का अस्तित्व है, तथा इसे पार्मेनीडीज़ स्वीकार नहीं करेगा। यदि हम यह कहें कि 'अस्तित्व' नहीं है, तो हमें इन शब्दों को किसी वस्तु के विधेय के रूप में प्रयुक्त करना होगा। हम इन शब्दों को अस्तित्वमान वस्तु के लिए नहीं प्रयुक्त कर सकते, और यदि यह सम्भव नहीं, तो इन्हें किसी भी वस्तु के लिए प्रयुक्त नहीं कर सकते। परन्तु, यदि हम किसी वस्तु के बारे में कथन नहीं कर रहे हैं, तो हम शून्य के वारे में कथन कर रहे हैं, तथा वस्तुतः कथन कर ही नहीं रहे हैं। जिसका 'अस्तित्व' नहीं है, उसके लिए किसी विधेय का प्रयोग भी नहीं हो सकता। हम यह नहीं कह सकते कि यह एक है, या अनेक है, क्योंकि संख्या का अस्तित्व है, तथा अस्तित्वहीन पर हम किसी अस्तित्व का आरोप नहीं कर सकते। परन्तु यदि अस्तित्वहीन वस्तु न तो उद्देश्य है, न विधेय, तो यह अकथनीय तथा अनिवार्य है। वस्तुतः हम इसके बारे में यह भी नहीं कह सकते कि यह अनिर्वचनीय तथा अविचार्य है, अथवा यह कोई 'वस्तु' है (२३९ अ)।

यदि इसे सोफ़िस्ट पर लागू किया जाय, तो हम पायेंगे कि (१) बिना व्याघात के हम उसे प्रतिमा का निर्माता नहीं कह सकते, क्योंकि यद्यपि प्रतिमा वस्तुतः प्रतिमा है, परन्तु वस्तुतः प्रतिमा होने के लिए वस्तुतः असत् होना, अथवा सत्ता रहित होना चाहिये। (२) बिना व्याघात के हम उसे असत् आभास का उत्पादक भी नहीं कह सकते, क्योंकि इसके लिए आवश्यक है कि हम या तो यह निर्णय दें कि 'सत्' का अस्तित्व नहीं है, अथवा यह कि जिसका अस्तित्व नहीं है,' वह है, तथा हम यह देख चुके हैं कि ऐसे निर्णय असंभव हैं। अतः हमारे सामने इसके अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं कि हम पार्मेनीडीज़ की अभ्युक्ति (dictum) पर विचार करें, तथा यह जानकारी करें कि क्या हम कुछ अर्थों में यह नहीं कह सकते कि 'जिसका अस्तित्व नहीं है' वह है, तथा 'जिसका अस्तित्व है' वह नहीं है (२४१ द)।

यदि कोई आधुनिक पाठक इस वार्तालाप को प्रथम बार पढ़े, तो उसके

लिए यह सोचना स्वाभाविक है कि प्लेटो या तो स्वच्छन्द विरोधाभास का प्रतिपादन कर रहा है, अथवा, उसका मस्तिष्क 'असत्' (Non-being) के सम्बन्ध में किसी विलक्षण 'तात्त्विक' संप्रत्ययन के प्रेत से ग्रस्त हो गया है। इसका सर्वप्रथम कारण तो यह है कि वह अपने काल की भाषा का प्रयोग कर रहा है, और इस भाषा का न तो उसने स्वयं आविष्कार किया, न इसके लिए वह उत्तरदायी है। यदि उसने हम लोगों के लिए लिखा होता, तो निस्सन्देह उसने समस्या का निरूपण दूसरे ढंग से किया होता। स्थिति यह थी कि मेगारिक्स ने 'असत् की सत्ता नहीं है' (इस सिद्धान्त के जन्मदाता के अनुसार इसका लक्ष्य पूर्णतः विश्व-विज्ञान सम्बन्धी था) सिद्धान्त को पार्मेनीडीज से ग्रहण किया था, तथा उन्होंने इसको द्वन्द्वन्याय में प्रयुक्त किया, और इसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें सार्थक निषेध की सम्भावना को भी अस्वीकार करना पड़ा। द्वितीय कारण यह है कि इस समस्या को उतने सरल ढंग से उपस्थित किया गया है कि आधुनिक पाठक भ्रमित् हो जाता है। यह ग्रीक-दर्शन की एक प्रमुख विशेषता है, तथा जिन कारणों से यह अध्ययन के योग्य है उनमें से एक कारण यह भी है। समस्याओं का ऐसा नग्न चित्रण नहीं किया गया है ताकि उनका समाधान ही न हो सके। यदि प्लेटो ने सार्थक निषेधात्मक निर्णयों की सम्भावना पर वार्तालाप की घोषणा कर दी, तो आधुनिक पाठकों को कोई कठिनाई नहीं होगी, तथा इस संवाद का प्रतिपाद्य भी वस्तुतः यही है।[1] परन्तु इसको सरलतम रूप में तथा रूढ़ शब्दावली से रहित अवस्था में अध्ययन करना अधिक अच्छा है।

विदेशी आगे कहता है कि वस्तुतः 'असत्' में हमें इस प्रकार की कठिनाइयों का अनुभव इसलिए होता है क्योंकि हम 'सत्' का अर्थ नहीं जानते। पुराने दार्शनिकों ने कुछ मूलभूत शब्दों के अभिप्राय को स्पष्ट करने की चिन्ता नहीं की, जिनका अर्थ ज्ञात प्रतीत होता है, परन्तु वस्तुतः है उससे अत्यन्त भिन्न। इसी कारण उनके कथन परियों की कथाओं जैसे लगते हैं। कुछ दार्शनिक कहते हैं कि अस्तित्वपूर्ण तत्त्वों की संख्या दो या तीन या कुछ इसी प्रकार की है। अन्य लोग यह मानते हैं कि सत्ता एक है, कुछ अन्य दार्शनिक इन मतों का समन्वय करने का प्रयास करते हैं। परन्तु किसी ने यह नहीं पूछा कि जब

---

१. बोसान्के के ग्रन्थ Logic, Bk. I, Chap. VII, में ठीक इसी समस्या पर विचार किया गया है, तथा इससे सोफ़िस्ट पर प्रकाश पड़ेगा।

हम यह कहते हैं कि कोई वस्तु है, तब इसका तात्पर्य क्या है। यह पाइथागोरियन्स तथा इलियाटिक्स की आलोचना द्वारा दिखाया गया है, जिन्होंने क्रमशः कहा कि वस्तुए दो हैं, तथा सत्ता एक है।

यदि सभी वस्तुएं दो हैं (यथा, उष्ण एवं शीतल), तो सत् इन दोनों से किस प्रकार से सम्बन्धित है? या तो वह इन दोनों के अतिरिक्त कोई तृतीय वस्तु है, अथवा उसका इन दोनों में से किसी एक के साथ तादात्म्य है और इस दशा में अन्य वस्तु का अस्तित्व नहीं होगा। अथवा, यदि हम यह कहें कि 'सत्' दोनों के लिए समान रूप से सत्य है, तो वे दोनों दो नहीं, वरन् एक ही हों। (२४३ द – २४४ अ)।

यदि सभी वस्तुएं एक हैं, तो 'सत्' एवं 'एकम्' एक ही है, तथा ये एक ही वस्तु के दो नाम हैं। परन्तु एक ही वस्तु के लिए दो नाम रखना असंगत तो है ही, इसके अतिरिक्त नाम की सम्भावना ही कहाँ है? यदि नाम वस्तु से अन्य है, तो वे एक नहीं, दो वस्तुएं हैं, जिसका अर्थ यह होगा कि यदि सभी वस्तुएं एक हैं तो केवल एक नाम से काम चल जायेगा, और यह नाम किसी भी वस्तु का नहीं होगा, अथवा स्वयं वस्तु एक नाम होगी, तथा इसका नाम किसी नाम का नाम होगा (२३८ ब – द)।

परन्तु वे यह भी कहते हैं कि जिस एकम् की सत्ता है, वह पूर्ण है। परन्तु पूर्ण या अंशी में अंश होने के कारण वह एकम् से भिन्न है, तथा एकम् स्वयं में अविभाज्य है। अतः यदि अस्तित्वमान अंशी है, तो यह अनेक भी है, दूसरी ओर, यदि यह अंशी नहीं है, तो यह अस्तित्वमान का पूर्ण रूप नहीं है, तथा न तो उसका सम्भवन होता है, न सत्ता हो सकती है, क्योंकि संभवन अथवा सत्ता पूर्ण रूप में होती है (२४४ द–२४५ द)

यह वस्तुतः 'पार्मेनीडीज़' के कुछ तर्कों का सारांश है, तथा इसका उद्देश्य भी वैसा ही है, अस्तित्व के अर्थ को समझना उतना ही कठिन है, जितना अनस्तित्व को। जब हम 'अस्तित्व की संख्या' से हटकर उसकी 'प्रकृति' (Nature) पर विचार करते हैं, तो कठिनाई और बढ़ जाती है।

इस विषय पर दार्शनिकों के बीच नियमित रूप से देवासुर संग्राम चलता रहता है। कुछ लोग सत्ता अथवा अस्तित्व का शरीर से तादात्म्य स्थापित करते हैं, जो प्रभाव तथा संसर्ग का विषय है। कुछ अन्य लोग यह मानते हैं कि यथार्थ सत्ता केवल कुछ बुद्धिगम्य तथा अमूर्त आकारों अथवा आकृतियों की ही है, तथा सभी मूर्त वस्तुएं सम्भवन का प्रवाह मात्र हैं।

यहाँ हमें थोड़ा सा रुक कर यह पूछना चाहिये कि विदेशी किसकी ओर संकेत कर रहा है, क्योंकि यह ग्रीक-दर्शन के इतिहास का एक अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण प्रश्न है। सर्वप्रथम, यह द्रष्टव्य है कि इस वार्तालाप में जिन दार्शनिकों का उल्लेख, किया गया है वह दिवंगत पीढ़ी की ओर इंगित करता है। 'पार्थिव' (Earth-born) शब्द से डेमोक्रिटस के सम्प्रदाय की ओर लक्ष्य मान लेना बहुत संगत नहीं, चूंकि डेमोक्रिटस ने शून्य की सत्ता का प्रतिपादन किया, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि उसने प्रभाव तथा संसर्ग को अस्तित्व का प्रतिमान माना होगा। हम देख चुके हैं कि पार्मेनीडीज़ के सिद्धान्त ने भौतिकवाद (Materialism) का मार्ग प्रशस्त किया, तथा मैलिसस ने, जो पंचम शताब्दी के उत्तरार्ध का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व था, निस्सन्देह जड़वादी एक-तत्त्वाद का प्रतिपादन किया (अव० ६८)। जहाँ तक 'आकारों' के प्रतिपादन-कर्त्ता का प्रश्न है, तथा जिसके बारे में प्लेटो विदेशी के मुख से अत्यन्त दूरस्थ होकर कथन कराता है, और यदि आकारों के सिद्धान्त के बारे में हमारा सामान्य दृष्टिकोण त्रुटिपूर्ण नहीं है, तो यह कहा जा सकता कि परवर्ती पाइथा-गोरियन्स को 'आकारों' का प्रतिपादनकर्त्ता मानने में कोई कठिनाई नहीं है।[1] जो भी हो, 'आकारों' के प्रतिपादन कर्त्ता मेगारिक्स नहीं हो सकते, जैसा कि लोग प्रायः अनुमान करते हैं, क्योंकि उन लोगों ने आकारों के नानात्व का सर्वथा निषेध कर एकम् तथा शुभम् के बीच तादात्म्य स्थापित किया (अव० १२९)। यहाँ पर यह द्रष्टव्य है कि विदेशी उन लोगों के बारे में कहता है कि वह उन लोगों को समझता है, उनके साथ उसके घनिष्ट परिचय से यह अनुमान लगता है कि वे लोग इटली में रहते होंगे। उनके सिद्धान्त की भाषा 'फ़ीडो' के प्रथम भाग से मिलती है, अतएव उस संवाद (फ़ीडो) में 'हम' शब्द से जिनका उल्लेख किया गया, है उससे इनको अभिन्न माना जा सकता है।

मूर्तवादियों को समझना कठिन कार्य है; परन्तु इस समय यदि हम उन्हें वास्तविकता से कुछ अधिक बुद्धिमान मान लें, तो हम उनसे स्वीकार करा सकते हैं कि सत्ता का अस्तित्व से वस्तुतः उनका तात्पर्य 'बल' (force) से है।

उन्हें यह स्वीकार करना होगा कि मरणशील पशु नामक कोई वस्तु है, अतः उसके लिए सजीव शरीर की आवश्यकता होगी, अतः आत्मा नाम की कोई

१. जैसा कि हम देख चुके हैं (p. ७४ no. १) प्रॉक्लस ने इस तदात्मीकरण को निःसंकोच किया है, तथा सम्भवतः यह अकादमी की परम्परा है।

वस्तु है। उन्हें यह भी स्वीकार करना होगा कि आत्मा शुभ अथवा अशुभ, तथा बुद्धिमान अथवा मूर्ख हो सकती है, अतः यह भी मानना पड़ेगा कि शुभत्व तथा प्रज्ञान का भी अस्तित्व है, और इनकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति से आत्मा का कोई एक अथवा अन्य रूप होता है। बहुत सम्भव है कि वे यह कहें कि आत्मा शरीर हैं, परन्तु वे सम्भवतः यह नहीं कहेंगे कि शुभत्व एवं प्रज्ञान भी शरीर है (यद्यपि आशंका है कि सच्चे पार्थिव लोग ऐसा भी कह सकते हैं)। परन्तु वे एक बार भी यदि किसी देहधारी वस्तु की सत्ता स्वीकार करलें तो उन्हें सत् (being) की एक ऐसी परिभाषा स्वीकार करनी होगी जो इन पर भी लागू होगी। सम्भवतः वे सत्ता की यह परिभाषा स्वीकार करलें कि किसी भी वस्तु में जिसमें क्रिया की तथा क्रिया से प्रभावित होने की थोड़ी भी शक्ति है, उसका अस्तित्व है, अर्थात् सत् वस्तुतः 'बल' है, (२४६ इ–२४७ इ)

दृष्टव्य है कि यह परिभाषा स्वयं विदेशी को भी संतोषजनक प्रतीत नहीं होती। वस्तुतः वह स्पष्ट रूप से कहता है कि बाद में सम्भवतः हम दूसरा दृष्टिकोण अपना सकते हैं।

अब हम उन श्रेष्ठ लोगों पर विचार करें, जिन्होंने 'आकारों' का प्रतिपादन किया है। हम आशा कर सकते हैं कि वे अधिक विनयशील होंगे, तथा यह स्वीकार करने के लिए अधिक उद्यत होंगे कि जो क्रियाशील है, तथा जो क्रिया से प्रभावित हो सकता है उसी का अस्तित्व है, परन्तु वस्तुतः हम पायेंगे कि वे हमारे सुधरे हुए देहवादियों की अपेक्षा इस तर्क से कम सहमत होंगे। वे धरातल से ऊपर रहते हैं, तथा हमारे प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं देते, यद्यपि अपने घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण विदेशी यह जानता हैं कि उनमें हमारे प्रति तिरस्कार की भावना हैं। वे सत् अथवा अस्तित्व में किसी प्रकार की गति का निषेध करते हैं, अतः इस सम्बन्ध में वे क्रियाशील होने अथवा क्रिया से प्रभावित होने के बारे में कुछ भी नहीं कहेंगे।

'आकारों' को स्वीकार करने वाले सत्ता को सम्भवन से पृथक् मानते हैं, तथा कहते हैं कि हमारी आत्माएं कूटस्थ सत्ता में विचार के द्वारा भाग ग्रहण करती हैं, तथा हमारे शरीर अस्थिर सम्भवन (Becoming) में संवेदन के माध्यम से भाग लेते हैं। परन्तु इस भाग-ग्रहण से निस्सन्देह यह सिद्ध होता है कि सत्ता में क्रियाशील होने तथा किसी अन्य से क्रियान्वित होने की शक्ति है, क्योंकि जो विचार सत्ता का ज्ञान प्राप्त करता है वह ज्ञान प्राप्त करते समय या तो क्रियाशील होगा, या क्रियान्वित होगा, या दोनों होगा तथा इसी प्रकार जिस सत्ता को विचार जानता है वह सत्ता भी या तो क्रियाशील होगी,

या क्रियान्वित होगी, अथवा दोनों होगी।

उनके द्वारा दिये गये उत्तर का हम अनुमान करते हुए कह सकते हैं कि सत्ता स्थिर तथा अचल है, अतः वह न तो क्रियाशील हो सकती है, न क्रियान्वित। परन्तु उन्हें यह स्वीकार करना होगा कि हमें सत्ता का ज्ञान है, तथा ज्ञान के लिए आत्मा की आवश्यकता होती है, तथा आत्मा के द्वारा जीवन तथा गति का आपादन होता है। यदि इन्हें सत्ता न प्रदान कर सम्भवन से सम्बद्ध किया जाय, तो ज्ञान सर्वथा असम्भव है। परन्तु यह भी सत्य है कि यदि सत्ता सदा अस्थिर तथा गतिमान रहे. तो भी अज्ञेय रहेगी, क्योंकि ज्ञान के लिए स्थिरता की आवश्यकता है, तथा स्थिरता से अगति की सिद्धि होती है (२४८ अ–२४९ द)।

'आकारों' को मानने वालों ने हमें इस प्रश्न का कोई उत्तर प्रदान नहीं किया, परन्तु उनके साथ हमारे वार्तालाप से यह संकेत अवश्य मिला कि यदि सत्ता गतिशील एवं गतिहीन दोनों न हो, तो ज्ञान असम्भव है। परन्तु चूँकि गति तथा स्थिरता परस्पर विरोधी हैं, अतः उनकी एकता नहीं हो सकती। दूसरी ओर उन दोनों का अस्तित्व है; अतः सत्ता को उन दोनों से भिन्न एक तृतीय वस्तु होनी चाहिये। इससे यह सिद्ध होता है कि सत्ता अपने आप में न तो गतिशील है न स्थिर। इससे हम क्या अर्थ निकालें? इस परिस्थिति में हम पाते हैं कि अस्तित्व के बारे में कुछ कहना उतना ही कठिन हैं, जितना अनस्तित्व के बारे में। और इससे हमें एक आशा की किरण मिलती है। यदि हम केवल 'अस्तित्व' का अर्थ समझ सकें, तो दूसरी समस्या का तत्काल समाधान हो जायगा।

प्रारम्भ में हम कह सकते हैं कि जब हम किसी वस्तु के सम्बन्ध में कुछ कहते हैं, तब हम न केवल इसका नामकरण करते हैं। वरन् अनेक नामों को इस पर आरोपित करते हैं। उदाहरण के लिए, जब हम किसी व्यक्ति के बारे में कथन करते हैं, तब हम उस पर रंग, रूप, आकार, गुण इत्यादि नामों का आरोपण करते हैं, कुछ नवयुवक तर्क-विध्वंसक तथा वृद्ध नव-प्रशिक्षित (एण्टिस्थेनीज़?) ऐसे अवश्य हैं जो कहते हैं कि हमें ऐसा करने का अधिकार नहीं है। मनुष्य मनुष्य है, तथा शुभ शुभ है. परन्तु यदि हम कहें कि 'मनुष्य' शुभ है, तो हम एकम् तथा अनेकम् में सम्भ्रान्ति कर रहे हैं। इस प्रकार के सिद्धान्तों का समुचित खण्डन इसी तथ्य से हो जाता है कि बिना व्याघात के इनका प्रतिपादन सम्भव नहीं। जो लोग हमें यह कहने से रोकते है कि 'अ'-'ब' इसलिए

है, क्योंकि 'व' द्वारा प्रभावित सत्ता में 'अ' भाग लेता है[१] (२५२ व), उन्हीं लोगों को 'है', 'इसके अतिरिक्त','अन्यों से, स्वयं इत्यादि शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है, तथा इस प्रकार उनकी अन्तरात्मा में एक ऐसी आवाज गूँजती रहती है। जो उनके सिद्धान्त का खण्डन करती है।

हम कहेंगे कि (१) सभी वस्तुएं एक दूसरे में भाग लेने में असमर्थ हैं या (२) सभी वस्तुएं एक दूसरे में भाग लेने में समर्थ हैं, अथवा (३) कुछ वस्तुएं एक दूसरे में भाग लेने में समर्थ हैं, तथा अन्य समर्थ नहीं हैं। प्रथम स्थिति में गति तथा अगति सत्ता में भाग नहीं ले सकती, अतः उनका अस्तित्व नहीं है। इससे अभी तक जितने सिद्धान्तों पर विचार किया गया उनका खण्डन हो जाता है। दूसरी अवस्था में, गति विश्राम कर सकती है, तथा अगति में गति सम्भव है। अब केवल तीसरी स्थिति बच जाती है, अर्थात् कुछ वस्तुएं एक दूसरे में भाग ले सकती हैं, तथा अन्य नहीं ले सकती (२५२ इ)।

हम पायेंगे कि जिस समस्या पर हम विचार कर रहे हैं उसके समाधान की ओर इन सरल विचारों से संकेत मिलता है,

संक्षेप में समाधान यह है कि अस्तित्व तथा अनस्तित्व (is not) का निर्णयों तथा विधानों (Predications) के अतिरिक्त कोई अर्थ नहीं। एक दृष्टि से यह सिद्धान्त कोई नया नहीं है। 'फ़ीडो' में प्लेटों ने साक्रेटीज़ के द्वारा निर्णयों में सत्य का अन्वेषण करने की प्रणाली का निरूपण कराया है, तथा वहाँ पर भी वर्तमान शब्दावली से यह स्पष्ट होता है कि उद्देश्य विधेय में भाग लेता है, वहाँ की कथनशैली भी ऐसी है जिसके अनुसार उद्देश्य विधेय द्वारा 'प्रभावित' होता है।[२] यहाँ पर नवीनता केवल इतनी ही है कि 'फ़ीडों' में विशेष संवेदनात्मक वस्तुएं आकारों में भाग लेती हैं, परन्तु यहाँ पर हम 'आकारों' अथवा 'प्रकारों' के एक दूसरे में भाग लेने की प्रक्रिया पर विचार कर रहे हैं, इस प्रकार के विचार–विमर्श की आवश्यकता 'पार्मेनीडीज़' (अव० १९४, १९९) में दिखायी गयी है। यहाँ पर यह भी दृष्टव्य है कि जिन आकारों अथवा प्रकारों पर अब हम विचार कर रहे हैं, वे 'थीटिटस' (अव० १८६) के सर्वनिष्ठ विधेय ही हैं। यदि हम चाहे तो कह सकते हैं कि ये पाइथे-गोरियन अथवा साक्रेटीज़ 'आकारों' से भिन्न प्लेटोनिक आकार हैं।

१. 'प्रभावित हुई सत्ता में भाग लेना,' 'यह मुहावरा किसी उद्देश्य को उसके विधेय से सम्बन्ध को व्यक्त करने के लिए 'प्रभावित होना' शब्द के प्रयोग से बना है। तुलना कीजिये, Parm १३९ e.

२. Phaed., १०४ a.

हम देख चुके हैं कि कुछ 'रूप' या 'प्रकार' एक दूसरे में भाग लेंगे, तथा अन्य नहीं, जिस प्रकार कुछ अक्षर एक दूसरे के साथ संयुक्त होते हैं, तथा अन्य नहीं, विशेषतया स्वर सभी संयोजनों में व्याप्त रहते हैं, और बिना स्वर के कोई भी संयोजन सम्भव नहीं होता। उसी प्रकार अष्टम स्वर के कुछ स्वर सुसंगत होते हैं, तथा अन्य नहीं। इन दो विषयों में हमें दिशा-निर्देशन के लिए व्याकरण तथा संगीत की कलाएँ मिलती हैं। उसी प्रकार हमें एक ऐसी कला की आवश्यकता है जिससे यह ज्ञात हो सके कि किन आकारों का एक दूसरे से समन्वय हो सकेगा, और किनका नहीं। विशेष रूप से यह जानना आवश्यक है कि क्या ऐसे भी आकार हैं (जैसे स्वर हैं) जो सभी संयोजनों तथा वियोजनों (यथा, अस्तित्व तथा अनस्तित्व) में व्याप्त हैं। यह कला द्वन्द्वन्याय की कला है, तथा जो व्यक्ति इस कला का विशेषज्ञ है वह समन्वित होने वाले आकारों तथा न होने वाले आकारों में भेद कर सकेगा।

विशेषतया वह यह भेद करने में समर्थ होगा कि (१) अनेक अकेली तथा पृथक् वस्तुओं में कोई एक आकार व्याप्त रहता है, (२) अनेक आकार जो एक दूसरे से पृथक् हैं, परन्तु बाहर से किसी एक आकार द्वारा व्याप्त है, (३) एक एकाकी आकार जो इस प्रकार के अनेक अंशियों में व्याप्त है, तथा उन्हें एक सूत्र में बाँधे है, जबकि अनेक अन्य आकार उससे सर्वथा भिन्न तथा पृथक् हैं (२५३ द)। इस गद्यांश में हमें प्लेटो के तर्कशास्त्र का आधार मिलता है। इसकी निम्नलिखित बातें द्रष्टव्य हैं :

(अ) वह स्पष्ट रूप से (१) जाति तथा (२) उप जाति में भेद करता है, यद्यपि वह इन दोनों के लिए निरपेक्ष भाव से 'आकार' तथा 'प्रकार' दो शब्दों का प्रयोग करता है।

(ब) अनुभाग (३) के अन्तर्गत वर्णित एकाकी आकार 'श्रेष्ठतम प्रकार' के हैं, यथा सत्, अगति, तथा गति ये सभी भाग-ग्रहण की विधियां हैं, अथवा जैसा कि एरिस्टॉटल कहता है, 'विधान के रूप' हैं। इनका निर्णय के बाहर कोई अर्थ नहीं है।

(स) 'फ़ीडो' में प्रश्न का स्वरूप था कि कौन-कौन सी विशेष वस्तुएं किसी आकार को विधेय के रूप में स्वीकार करती हैं, यहाँ पर प्रश्न है कि 'श्रेष्ठतम प्रकारों' अथवा आकारों की एक दूसरे से संगति है, अथवा असंगति। क्या इनमें से कोई एक दूसरे का विधेय हो सकता है, और यदि यह सम्भव है, तो किसका इस प्रकार विधान किया जा सकता है, और किसका नहीं ?

(द) यद्यपि सत् सभी पदार्थों या कोटियों में सर्वाधिक व्यापक है, तथापि चूंकि यह एक पदार्थ-मात्र है, अतः किसी निर्णय के अन्तर्गत हुए बिना यह निरर्थक है। स्वयं में 'अस्ति' शब्द का कोई अर्थ नहीं; उद्देश्य का विधेय से संयोजन संधि (bond) के कारण ही होता है। हम इसे इस ढंग से कह सकते हैं कि प्लेटो संयोजक (copula) की संदिग्धता का सबसे पहला आविष्कर्त्ता था यद्यपि हम बाद में देखेंगे कि क्यों उसने इस वृत्तान्त को इस ढंग से उपस्थित नहीं किया।

भ्रान्ति से बचने के लिए आइये हम इन 'श्रेष्ठतम प्रकारों' में से कुछ को चुनकर (१) उनके स्वभाव तथा (२) उनमें से किसका किस स्तर तक किससे समन्वय होता है, इस पर विचार करें। सम्भव है इस प्रकार हमें कोई ऐसा मार्ग मिल जाय, जिसके आधार पर हम यह कह सकें कि 'असत्' नाम की भी कोई वस्तु यथार्थतः है। प्रारम्भ में हम कह सकते हैं कि गति तथा अगति एक दूसरे को बहिष्कृत करती हैं, परन्तु दोनों का अस्तित्व है, अतः दोनों सत् से संयुक्त हैं। इससे हमें तीन प्रकार मिलते हैं, परन्तु तीनों में से प्रत्येक अन्य दोनों से भिन्न तथा स्वयं के समान हैं। इससे हमें चतुर्थ तथा पंचम प्रकार 'तदेव' तथा 'अन्यद्' मिलते हैं, क्योंकि इन्हें इस प्रथम तीन में से किसी के साथ तदात्मीकृत नहीं कर सकते।[1]

क्योंकि (१) यदि हम गति या स्थिरता (Rest) में से किसी का इन दोनों के किसी उभयनिष्ठ विधेय से तादात्म्य स्थापित करते हैं तो यह दूसरे के लिए भी विधेय हो सकता है, और तब गति स्थिरता होगी, तथा स्थिरता गति, परन्तु 'तदेव' तथा 'अन्यद्' गति एवं स्थिरता के सामान्य विधेय है, अतएव न तो गति का, न स्थिरता का तदेव अथवा अन्यद् से तदात्मीकरण होगा। पुनः (२) यदि हम सत् तथा तदेव का तदात्मीकरण करें, तो चूंकि गति तथा स्थिरता दोनों का अस्तित्व है; अतः वे वहीं होगी। अन्त में, (३) हम सत तथा अन्यद् का तदात्मीकरण नहीं कर सकते, क्योंकि अन्यद् तत्त्वतः सापेक्ष है, तथा सत् निरपेक्ष। अतः अन्यद् पंचम प्रकार है (२५५ अ-द)।

तदेव तथा सत् की भाँति अन्यद् भी अन्य सभी में व्याप्त है, क्योंकि उनमें से प्रत्येक स्वयं के समान तथा अन्य से भिन्न है। इसको दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रत्येक का स्वयं में अस्तित्व है, तथा अन्य किसी में अस्तित्व नहीं है।

---

१. तुलना कीजिये, 'थीटिटस', १८५ अ, क्रमशः (पहले, पृ. २००)।

इस प्रकार गति चूंकि स्थिरता से भिन्न है, अतः स्थिरता नहीं है, परन्तु यह गति है। गति चूंकि तदेव से भिन्न है, अतः तदेव नहीं है; परन्तु यह स्वयं में वही है। (बाह्य व्याघात पर हमें उतना ध्यान नहीं देना चाहिये। यदि हमने यह नहीं दिखाया होता कि गति तथा स्थिरता एक दूसरे का वहिष्कार करते हैं, तो हमें सम्भवतः यह भी कहना पड़ता कि गति स्थिर है)। पुनः, गति चूंकि अन्यद् से भिन्न है, अतः कुछ अर्थों में अन्यद् है तथा कुछ अर्थों में अन्यद् नहीं हैं। अन्ततः, गति चूंकि सत् से भिन्न है, अतः सत् नहीं है, परन्तु यह सत् है, क्योंकि वे सब सत् में भाग लेती हैं, अतः गति वस्तुतः सत् एवं असत् दोनों है, तथा अन्य सभी प्रकारों पर भी यही बात लागू होगी, क्योंकि उनमें से प्रत्येक सत् से भिन्न है, तथा प्रत्येक का अस्तित्व है (२५५ इ – २५६ इ)। अतः हम कह सकते हैं कि प्रत्येक प्रकार में अपने अन्यत्व के कारण पर्याप्त सत् तथा असीम असत् है। तथा चूंकि सत् स्वयं अन्य सब से भिन्न है, अतः हम कह सकते हैं कि सत् उतनी ही संख्या में अस्तित्वहीन है जितनी संख्या में अन्य वस्तुएं हैं, तथा ये वस्तुएं असंख्य है। यदि इसकी ये स्थितियां नहीं है, तो यह स्वय स्थित है, मेंपरन्तु यह असंख्य कालों में स्थिरता नहीं है।

परन्तु जिस असत् का हमने आविष्कार किया है वह सत् का विरोधी नहीं है (जैसा कि पार्मेनीडीज़ ने असत् के बारे में कहा था)। किसी शब्द के पूर्व 'अ' (not) उपसर्ग लगाकर नकारात्मक शब्द बनाने का अभिप्राय केवल इतना ही होता है कि उस शब्द से भिन्न कुछ अर्थ ध्वनित हो। भिन्नता का भी ज्ञान की ही भाँति अनेक उपविभागों में विभाजन किया गया है। अतः जिस प्रकार विज्ञान तथा कला के अनेक विभागों के अपने-अपने नाम हैं, उसी प्रकार भिन्नता के अंगों के भी अपने नाम होंगे। भिन्नता में सौन्दर्य के विरोधी भाग को असुन्दर कहेंगे, जो सौन्दर्य के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु से भिन्न नहीं है। असुन्दर का भी उतना ही अस्तित्व है जितना सौन्दर्य का, उसी प्रकार से वृहद् अनुचित इत्यादि का भी। सत् के इसी विशेष अंश के संयोजन में वस्तुतः असत् का अस्तित्व है, यह 'अमुक ढंग का नहीं है', और इसका अस्तित्व उतना ही है जितना इसका अनस्तित्व, अतः अब हमारे लिए इस प्रश्न से अधिक उलझना आवश्यक नहीं है कि सत् के विरोधी के रूप में असत् पर विचार एवं उसका कथन सम्भव है अथवा नहीं। हमने अभी इसको जो अर्थ प्रदान किया है उस अर्थ में यह निश्चित रूप से है, तथा यह सर्वव्यापी है। सत को असत् से पृथक् करना तथा यह तर्क करना कि कोई वस्तु या तो सत् होगी या असत्, मूखर्तापूर्ण है।

दोनों रूपों का परस्पर अपृथक् सम्वन्ध है, तथा इसी कारण तर्क-संगत कथन सम्भव होता है (२५९ इ)।

अब तक यह सिद्ध हुआ कि (१) जिन वस्तुओं का भावात्मक (विद्यात्मक) निर्धारण होता है उनका अभावात्मक निर्धारण भी होता है, तथा (२) अभावात्मक शब्दों से सत् की अभिव्यक्ति होती है। यह भी दिखाया गया है कि (३) अभावात्मक शब्द से अभिव्यक्त सत्ता उसके संवादी भावात्मक शब्द के विपरीत नहीं है, वरन् इसका व्याघाती है। दूसरी ओर, यह दिखाया गया है कि (४) चूंकि अभावात्मक शब्द को हमेशा इसके संवादी भावात्मक शब्द के परिप्रेक्ष्य में समझना चाहिये, अतः इसके द्वारा अभिव्यक्त सत् सर्वदा सत् का एक विशेष अंश होता है। उदाहरणार्थ, 'अमहत्' में सुन्दर अथवा 'उचित' अन्तर्विष्ट नहीं है, इसमें केवल लघु ही अन्तर्विष्ट है।

ऊपर किये गये विवेचन के अन्तर्गत यह कहा गया था कि हमें असत् की प्राप्ति हो गयी है, जो सोफ़िस्ट के विवरण की औचित्य-सिद्धि के लिए आवश्यक था। इसका और अधिक विश्लेक्षण नहीं किया गया है, परन्तु तथ्य अत्यन्त सरल है। हमने उसे प्रतिमा-निर्माता कहा, और उसने उत्तर दिया कि प्रतिमा जैसी कोई वस्तु ही नहीं है, क्योंकि प्रतिमा वस्तुतः सत् नहीं है। अब हम देखते हैं कि इस आपत्ति में कोई बल नहीं है, क्योंकि अन्य कलाओं की भाँति ही प्रतिमा-निर्माण की कला में अंशतः सत की तथा अंशतः असत् की आवश्यकता होती है। यह सत्य है कि प्रतिमा सत् नहीं है, तथा सत् प्रतिमा नहीं है, परन्तु इससे कोई समस्या नहीं उत्पन्न होती। हम प्रतिमा-निर्माण की विशेष कला के सम्बन्ध में विचार कर रहे हैं, तथा यहाँ पर 'असत्' शब्द का एक निश्चित तथा विध्यात्मक प्रयोजन है। असत् यहाँ सत्ताहीन नहीं है, वरन् प्रतिमा है धइसकी उतनी ही सत्ता है जितनी कि उस मूल वस्तु की जिसकी प्रतिमा म हव्व तथा है।

यह स्वीकार करते हुए भी सोफ़िस्ट कह सकता है कि मिथ्या के सम्बन्ध में कथन अथवा विचार असम्भव है। यद्यपि हमने दिखाया है कि असत् का अस्तित्व है, अथवा दूसरे शब्दों में, यह सत् के साथ सयुक्त होता है, हमने यह नहीं दिखाया कि यह वाणी से भी संयुक्त होता है। परन्तु, जब तक यह ऐसा नहीं करता, मिथ्यात्व असम्भव है, अतएव प्रवचना (deceid) भी असम्भव है। अतः हमें (१) वाणी (२) निर्णय, तथा (३) आभास, का सावधानी से परीक्षण करना होगा, ताकि यह ज्ञात हो सके कि असत् और इसके परिणामस्वरूप मिथ्यात्व इन प्रविट हो सकते हैं अथवा नहीं।

जैसा कि हमने अक्षरों पर विचार करते समय किया था, प्रारम्भ में हमें यह विचार करना होगा कि सभी शब्द एक दूसरे के साथ संयुक्त होते हैं, अथवा उनमें से कुछ संयुक्त होंगे और कुछ नहीं। सत्ता को अभिव्यक्त करने वाले शब्द दो प्रकार के होते हैं, संज्ञा (Nouns), तथा क्रियाएँ (Verbs)। क्रियाओं से कार्य अथवा अक्रिया या सत् अथवा असत् की सत्ता अभिव्यक्त होती है (यथा, किसी भावात्मक अथवा अभावात्मक शब्द द्वारा अभिव्यक्त सत्), संज्ञा से कर्त्ता, अथवा जो अमुक प्रकार का है अथवा नहीं है, की अभिव्यक्ति होती है। मात्र संज्ञा अथवा मात्र क्रिया से कोई वाक्य नहीं बनता, सरलतम वाक्य में भी कम से कम एक संज्ञा तथा एक क्रिया का होना आवश्यक है, उदाहरणार्थ 'मनुष्य सीखता है'। पुनः प्रत्येक वाक्य किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के सम्बन्ध में होना चाहिये तथा इसमें कुछ गुण भी होना चाहिये, यथा, यह किसी ऐसी वस्तु को अभिव्यक्त करेगा जो भूत, वर्तमान अथवा भविष्य में है, अथवा होगी।[1] आइये अब हम एक सरल प्रयोग करें। यदि हम कहते हैं कि 'थीटिटस बैठा है' तो यह कथन थीटिटस के सम्बन्ध में है, तथा इसमें कुछ ऐसे तथ्य को व्यक्त करने का गुण है जो वस्तुतः इस क्षण में वर्तमान है। परन्तु यदि हम यह कहें कि जिस थीटिटस से हम वर्तमान क्षण में बात कर रहे हैं वह उड़ रहा है, तो यह भी थीटिटस के सम्बन्ध में ही कथन होगा, परन्तु यह उसके बारे में कुछ ऐसा कथन है जो वास्तविक क्रिया को व्यक्त करते हुए भी वर्तमान क्षण के थीटिटस की यथार्थ क्रिया से भिन्न है। अतः जिसका अस्तित्व नहीं है उसके बारे में सत् की भाँति हम कथन कर सकते हैं, और मिथ्यात्व से हमारा यही तात्पर्य है (२६१ द – २६३ द)। वस्तुतः सत्य तथा मिथ्यात्व भावात्मक अथवा अभावात्मक शब्दों में नहीं मिलते, वे केवल प्रतिज्ञाप्ति में मिलते हैं, जो शब्दों का संयोजन है।

द्रष्टव्य है कि संसूचक अभावात्मक निर्णय की अभावात्मक विधेय की स्वीकारोक्ति के रूप में व्याख्या की जाती है, परन्तु इसका उस विधेय के साथ तदात्मीकरण सर्वथा अनुचित होगा जिसे एरिस्टॉटल 'अनिश्चित' (indefinite) विधेय कहता है, अर्थात् ऐसा विधेय जो अस्तित्वमान तथा अस्तित्वहीन सभी वस्तुओं के लिए समान रूप से प्रयुक्त हो सके। उदाहरणार्थ, वर्तमान प्रसंग में,

---

१. सन्दर्भ में यह अनुमान लगता है कि यहाँ पर 'गुण' का अर्थ वस्तुतः 'काल' है। आगे आने वाले उदाहरण में 'जिससे हम वर्तमान क्षण में बात कर रहे हैं, पर बल देने से यह और भी सम्भावित प्रतीत होता है।

'बैठा है' का तात्पर्य यह है कि स्थिरता के अन्य सभी प्रकार इसके बाहर हैं, अतः 'बैठा है' विधेय से सभी अभावात्मक निर्णय आपादित होंगे, यथा 'लेटा नहीं है', 'खड़ा नहीं है' तथा स्थिरता के अन्य जितने भी रूप हो सकते हैं, इसके अतिरिक्त 'बैठा है' से गति के सभी रूप वहिष्कृत होते हैं, क्योंकि ये स्थिरता के साथ संयुक्त नहीं हो सकते, अतः इससे 'चल नहीं रहा है', 'दौड़ नहीं रहा है', 'उड़ नहीं रहा है,' जैसे अभावात्मक निर्णय आपादित होने हैं। अभावात्मक निर्णय का महत्त्व वस्तुतः प्रकारों तथा रूपों की उस पद्धति पर आधारित है जिसकी ओर यह निर्देश करता है तथा जिसे हम 'विश्वजनी संलाप' कह सकते हैं। प्लेटो की यह मान्यता थी कि प्रत्येक प्रकार में इन रूपों की एक अत्यन्त निश्चित संख्या है, तथा द्वन्द्वन्यायविद् का यह कार्य है कि वह इन संख्याओं का पता लगावे। इसीलिए उसका यह आग्रह था कि असत् को भी कलाओं की भाँति ही उपविभागों में विभाजित करना चाहिये, तथा असत् के प्रत्येक भाग सत् के संवादी भागों के सम्बन्ध से ही समझे जा सकते हैं। अभावात्मक विधेय 'उड़ नही रहा है' में 'सुन्दर' है, अथवा 'उचित है' जैसे विधेय अन्तर्विष्ट नहीं हैं।

वर्तमान प्रसंग में 'उड़ रहा है' विधेय से क्रिया का एक यर्थाथ रूप व्यक्त होता है, तथा यह गति के प्रकार का यथार्थ रूप है, तथा यह 'थीटिटस का' है जो एक यर्थाथ कर्त्ता है। 'थीटिटस उड़ रहा है' यह कथन सत्य इसलिए नहीं है क्योंकि वर्तमान क्षण में थीटिटस बैठा है, तथा यह विधेय 'उड़ रहा है' विधेय को बहिष्कृत करता है। यह 'उड़ता था' अथवा 'उड़ेगा' विधेयों को बहिष्कृत नहीं करता, अतः हमें इस कथन के गुण पर ध्यान देना होगा।[1]

परन्तु, यदि मिथ्या वस्तु के बारे में कथन सम्भव है, तो मिथ्या वस्तु के बारे में विचार भी सम्भव है, क्योंकि चिन्तन और वाणी में केवल यही अन्तर है कि चिन्तन आत्मा का स्वयं अपने से बिना वाणी के वार्तालाप है, जब कि वाणी 'ओष्ठों' के माध्यम से आत्मा का स्वर–प्रवाह है। हम जानते हैं कि भावात्मक तथा अभावात्मक विधान वाणी में पायें जाते हैं, और जब यही बातें चुपचाप आत्मा के अन्तर्गत होती हैं तब हम उन्हें निर्णय (judgement) कहते

---

१. अधिकांश भाष्यकार 'गुण' शब्द से कथन की सत्यता अथवा मिथ्यात्व का अर्थ ग्रहण करते हैं, परन्तु इससे तर्क बचकाना हो जायेगा! यह पूछने का कोई अर्थ नहीं कि हम कैसे यह जानते हैं कि 'थीटिटस इस समय बैठा है'। यह तो हम देख ही रहे हैं।

हैं। पुनः, जब प्रतिज्ञापन तथा निषेध, स्वयं आत्मा की क्रिया के बिना, संवेदन के माध्यम से आत्मा में होते हैं तो उसे हम आभास कहते हैं। इससे निष्कर्ष निकलता है कि, जैसे चिन्तन मानसिक वाणी है, तथा निर्णय 'विचारणा की पूर्ति है,' तथा आभास संवेदन तथा निर्णय का मिश्रण है, उसी प्रकार सत्य तथा मिथ्यात्व जैसे वाणी में सम्भव हैं वैसे ही निर्णय तथा आभास में भी ये सम्भव हैं।

मिथ्या निर्णय तथा मिथ्या आभास की सम्भावना दिखाने के उपरान्त विदेशी व्यक्ति सोफ़िस्ट की अन्तिम परिभाषा देने के लिए आगे बढ़ता है। यद्यपि उसकी कुछ रोचक बातों का हम यहाँ उल्लेख कर सकते हैं, परन्तु उन सबका यहाँ कोई विशेष महत्त्व नहीं है। उनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय बात यह है कि उत्पादक-कला के दैवी तथा मानवीय भागों में विभाजन का उस सिद्धान्त को प्रभावोत्पादक भाषा में व्यक्त करने के लिए उपयोग किया गया है जिसके अनुसार जिन्हें हम प्राकृतिक वस्तुएं कहते हैं वे प्रकृति या संयोग के कार्य न होकर ईश्वर के कार्य हैं। हम अभी देखेंगे कि उस समय प्लेटो के मस्तिष्क में यह विचार गूँज रहा था, तथा वह ईश्वरवाद के बौद्धिक औचित्य का प्रतिपादन करने का प्रयास कर रहा था।

१५

राजनीति (POLITICS)

स्टेट्समैन (THE STATESMAN)

'स्टेट्समैन' नामक संवाद 'सोफ़िस्ट' के उत्तरार्ध के रूप में है। पात्र वही हैं तथा महत्त्वपूर्ण भूमिका भी इलियाटिक विदेशी की है। ऐसा मानने का कोई आधार नहीं है कि दोनों संवादों के बीच पर्याप्त कालान्तर रहा होगा।

परिचर्चा का प्रारम्भ विभाजन प्रणाली से राजमर्मज्ञ (statesman) की परिभाषा प्राप्त करने के प्रयास से होता है. तथा 'सोफ़िस्ट' की अपेक्षा इसके प्रमुख प्रतिपाद्य विषय से प्रस्तावना के सम्बन्ध को ढूंढना अधिक सरल है। प्रथम परिभाषा में राजा को 'मनुष्यों का चरवाहा' (Shepherd of men) कहा गया है, जैसा कि होमर के ग्रन्थ में कहा जा चुका था। यह पाइथागोरियन दृटिकोण था, ऐसा मानने का पर्याप्त आधार है। राजा उनके लिए पृथ्वी पर ईश्वर की 'प्रतिमूर्ति' था, क्योंकि ईश्वर जगत् का पालक था।[1] यह वस्तुतः राजा के पद का धर्मतन्त्रीय आदर्श था। परन्तु इलियाटिक विदेशी यह ध्यान दिलाता है कि यह ईश्वर तथा मनुष्य की भ्रान्ति पर आधारित है, और तभी चरितार्थ हो सकता है जब ईश्वर सशरीर हमारा शासक हो। विदेशी द्वारा कहे गये मिथक का यही मन्तव्य है। ईश्वर ने जगत् के क्रम का एक वार निर्देशन किया था, परन्तु हम उस युग में नहीं रह रहे हैं। ऐसी ऋतुएं आती हैं जब जगत् रूपी नौका (यह एक पाइथेगोरियन सम्प्रत्यय है)[2] का कर्णधार

१. देखिये, 'स्टेट्समैन' पर कैम्पवेल की भूमिका, पृ० xxv. sq.
२. Early Greek Philosophy, २,३४२.

नौका को अपने आप बहता हुआ छोड़कर विश्राम-कक्ष (conning Tower) में विश्राम करता है। उस समय जगत् ईश्वर द्वारा निर्देशित क्रम के ठीक विपरीत दिशा में आवर्तित होने लगता है, तथा सभी प्राकृतिक प्रक्रियाएं उल्टी हो जाती हैं (इस विचार का उद्गम सम्भवतः एम्पीडोक्लीज़ द्वारा हुआ था। हम इन्हीं कालचक्रों में से एक में रह रहे हैं, अतः हमारे लिए किसी दिव्य शासक का प्रश्न नहीं उठता। यहाँ पर एक यह भी विलक्षण संकेत मिलता है कि मनुष्य को झुण्ड या समूह के रूप में ईश्वर के हाथों पलने का आदर्श शायद श्रेष्ठतम नहीं है। यदि उस युग के मनुष्यों को भविष्य की कोई चिन्ता नहीं थी, तथा बिना श्रम के उपलब्ध सुविधाओं को ईश्वर का अनुग्रह मानते थे, तथा प्रज्ञान अर्जित करने में अपना समय-यापन करते, एवं दर्शन के हित में अपनी शक्ति का उपयोग पशुओं की भाषा समझने में करते थे, तो वे अवश्य हमसे अधिक सुखी थे। परन्तु जैसा कि परम्परया आज हमें ज्ञात है, यदि उन लोगों ने तथा पशुओं ने आपस में आख्यान सुनाने में अपना समय विताया, तो उनके बारे में निर्णय लेने में भी कोई कठिनाई नहीं होगी (२९२ स)। यह गद्यांश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह स्पष्ट है कि पाइथागोरियन्स का धर्मतन्त्रीय आदर्श प्लेटो को अधिक आकृष्ट नहीं कर सका। उसकी यह धारणा थी कि हम समस्याओं का समाधान उन्हें (समस्याओं को) जगत् के बाहर रखकर नहीं कर सकते।

आइये अब हम दैवी शासक की ओर से मानवीय शासक की ओर उन्मुख हों। वह इस झुंड का पोषक न होकर केवल परिचर होगा (२७५ इ)। उसको अपनी प्रजा के हित का सम्यक् ज्ञान होगा, तथा वह प्रज्ञा की सहमति के विना भी इसे प्राप्त करेगा, जैसे चिकित्सक शरीर की चिकित्सा के लिए वही करता है जो उचित होता है, भले ही रोगी उसे चाहे या न चाहे। उसे नियमों की कोई आवश्यकता नहीं होगी। कोई भी नियम असंख्य प्रकार की विशेष परिस्थितियों के लिए पूर्णतया उपयुक्त नहीं हो सकता, यह केवल कुछ मोटे तथा तात्कालिक ढंग के सिद्धान्तों का निर्देश कर सकता है। यदि शासक प्रत्येक स्थिति में यक्तिगत रूप से ध्यान दें, तथा वह सर्वदा उपस्थित रहे तो सदा कानून के साथ उसका उलझे रहना असंगत होगा। यदि उसे कुछ समय के लिए कहीं जाना है, तो वह अवश्य अपनी अनुपस्थिति में प्रजा के पथ-प्रदर्शन के लिए नियम बनावेगा, जैसे चिकित्सक अपने रोगी के लिए लिखित निर्देश छोड़ जाता है। परन्तु जब चिकित्सक वापस लौट आता है तो इन निर्देशों के पालन पर बल देना हास्यात्मक होगा। वह अपनी इच्छानुसार

चिकित्सा करने के लिए स्वतन्त्र होगा। उसी प्रकार, यदि दार्शनिक-राजा को पृथ्वी पर सदा प्रकट होना है (जैसा कि भूत-काल में हुआ होगा) तो नियमों की कोई आवश्यकता नहीं होगी। वर्तमान स्थिति में उसके लौटने की कोई सम्भावना नहीं दीखती, अतः हमें उसकी अनुपस्थिति में ही कार्य करना होगा। हमें कुछ ऐसे नियमों का निर्माण करना होगा जिन्हें यथासम्भव वह भी अनुमादित कर देगा, तथा हमें यह ध्यान देना होगा कि उनका अक्षरशः पालन हो। यदि लोगों को ऐसा अनुभव होता है कि चिकित्सा तथा नौकानयन की कला के विशेषज्ञ उनके साथ अनुचित व्यवहार कर रहे हैं, तो वे आग्रह करेंगे कि इन कलाओं की नियम-संहिता का निर्माण हो, तथा इनका पालन न करने वालों को दण्डित किया जाय। राज्य में नियम का यही वास्तविक स्थान है। यह केवल एक अन्तरिम व्यवस्था है, परन्तु जैसी कि स्थिति है, यह अनिवार्य है। प्लेटो 'रिपब्लिक' के दार्शनिक-शासक पर इस प्रकार से विचार करता है। उसके विधान अभी भी आदर्श हैं, परन्तु इस प्रकार के आदर्श की क्रियान्वित होने की सम्भावना नहीं है। परन्तु इस प्रकार के आदर्श की अत्यधिक उपयोगिता है। प्रथम तो यह है कि इससे हमें ऐसा प्रतिमान मिलता है जिसके आधार पर हम वर्तमान या सम्भावित प्रथाओं के बारे में निर्णय कर सकते हैं, तथा द्वितीय यह कि इसके कारण हम इन प्रथाओं को अत्यधिक महत्त्व देने तथा इनके अन्य विकल्पों के बारे में विचार न करने की भूल नही कर पायेंगे, वर्तमान नियमों तथा प्रथाओं को सही रूप में देखने का ढंग यह है कि इन्हें हम कार्यसाधन के रूप में ग्रहण करें। वे सभी किसी अधिक ऊँचे नियम तथा अन्ततः दार्शनिक-राजा के नियम की तुलना में खण्डन के विषय हैं। अतः यदि हम चाहें तो कह सकते हैं कि राजमर्मज्ञ (The Statesman) का उद्देश्य है-राजनीति में यर्थार्थवाद एवं आदर्शवाद की सीमाओं का निर्धारण करना। धर्मतांत्रिक (Theocratic) आदर्श की भाँति हमें अपने आदर्श को अत्यधिक ऊँचा नहीं रखना चाहिये, परन्तु हम इसे उतना ऊंचा रख सकते हैं जहाँ तक हम मानव-प्रकृति का भी उससे सम्बन्ध बना सकें। मैदान के पशुओं की मनुष्य से तुलना करना अनुचित है।

प्लेटो इस दृष्टिकोण से संविधानों के वर्गीकरण के बारे में बताता जा रहा है, तथा जैसी आशा की जा सकती है, यह 'रिपब्लिक' के संविधान से सर्वथा भिन्न है। कुल मिलाकर छह संविधानों का वर्णन है, तथा दार्शनिक-राजा के विधान को प्रतियोगिता में भाग न लेने वाला (Hors. Concours) बताकर इससे अलग रखा गया है। विभाजन का आधार दो प्रकार का है।

शासकों की संख्या एक, एकाधिक अथवा अनेक हो सकती है, तथा वे नियम-पूर्वक अथवा नियमविरुद्ध ढंग से शासन कर सकते हैं। वैधानिक संविधानों में राजत्व का स्थान प्रथम, कुलीनतन्त्र का द्वितीय, तथा लोकतन्त्र का तृतीय है, क्योंकि शासकों की संख्या जितनी ही अधिक होगी, राजनीतिक ज्ञान की सम्भावना उतनी ही कम होगी। परन्तु अवैधानिक संविधानों में यह क्रम उलटा हो जाता है। संवैधानिक तथा अवैधानिक लोकतन्त्र के लिए नाम एक ही है, परन्तु सिद्धान्तः उनमें पर्याप्त भेद हैं। सभी सम्भव संविधानों में लोक-तन्त्र अल्पतम हित तथा अल्पतम अहित कर सकता है। अतएव संवैधानिक लोकतन्त्र यद्यपि कुलीनतन्त्र से निम्न कोटि का है, तथा संवैधानिक राजतन्त्र (monarchy) की अपेक्षा और भी निम्न हैं, परन्तु नियमहीन लोकतन्त्र नियमहीन अल्पतन्त्र (oligarchy) की अपेक्षा श्रेष्ठ है, तथा नियमविहीन निरंकुशतन्त्र (tyranny) की अपेक्षा बहुत अधिक श्रेष्ठ है। प्लेटो की ऐसी धारणा है, परन्तु साक्रेटीज़ इस प्रकार के सिद्धान्त को स्वीकार करेगा, यह कल्पना करना कठिन है। पेरिक्लियन लोकतंत्र के साथ भी यहाँ कोई अन्याय नहीं किया गया है। वस्तुतः यह नियमहीन लोकतन्त्र है, परन्तु 'जार्जियस' तथा 'रिपब्लिक' में इसकी जैसी कटु आलोचना हुई थी वैसी यहाँ पर नहीं हुई है। यदि यह अधिक हितकर नहीं, तो इससे अपेक्षाकृत कम अनिष्ट भी होता है। वैधानिक लोकतन्त्र मोटे तौर पर प्लेटो के समय के एथेन्स का लोकतन्त्र है, और इसे सच्चे कुलीनतन्त्र (Aristocracy) के ठीक बाद स्थान मिलता है। प्लेटो के राजनैतिक वातावरण तथा अनुभव के बारे में हमें जो कुछ ज्ञात होता है (अव० १५८) उससे यह सब सर्वथा संगत है, तथा वह अपने राजनैतिक विचार के बारे में सप्तम पत्रक (Epistle. vii) में जो कुछ कहता है उससे भी पूर्णतः संगत है। पांचवी शताब्दी के अन्त में जो घटनाएं हुई उनके उपरान्त सभी लोकतन्त्रों का साक्रेटीज़ द्वारा जो तिरस्कार किया गया था उसे स्वीकार करना असम्भव था।

परन्तु बात यहीं पर समाप्त नहीं होती। प्लेटो संविधानों के किसी भी दृढ़ वर्गीकरण को सैद्धान्तिक रूप नहीं देता। सच्चे शासक का एक प्रमुख कार्य यह है कि वह राज्य के विभिन्न तत्वों को संयुक्त करे, जैसे बुनकर अपने कपड़े के ताने-बाने को संयुक्त करता है, तथा अनेक मिश्रित संविधानों की भी सम्भावना है, जैसे छह प्रकार के संविधानों का उल्लेख किया जा चुका है। 'लाज' नामक संवाद में प्लेटो का अन्तिम निष्कर्ष है कि वर्तमान परिस्थिति में तथा दार्शनिक शासक के अभाव में वैधानिक राजत्व तथा वैधानिक लोकतन्त्र

के संयोग से सर्वश्रेष्ठ संविधान बन सकता है।[1] इस प्रकार वह राजनैतिक समस्याओं के बारे में अत्यन्त व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाता है, तथा अपने प्रत्ययवाद की रंचमात्र भी क्षति किये विना वह ऐसा कर लेता है। यहाँ पर साक्रेटीज़ से आगे बढ़ जाता है। जैसा कि हमने देखा है (अव० १४५), साक्रेटीज़ की राजनैतिक शिक्षाएँ उसके देश के लिए विशुद्ध वरदान नहीं हो पायी।

प्लेटो तथा डायोनीसियस

अकादमी में प्लेटो ने जो राजनैतिक शिक्षाएं दी. उनका उसके शिष्यों के माध्यम से विलक्षण प्रभाव फैला, क्योंकि यवन सभ्यता की आधार-शिला मुख्यतया उन्हीं लोगों ने रखी थी। यवन राष्ट्र की निर्माणावस्था में स्वयं प्लेटो ने राजनीति में भाग लिया, परन्तु वह कुछ दृष्टियों से असफल रहा, तथा उसने बहुत आशंका के साथ राजनीति में प्रवेश किया, परन्तु सोचा कि प्रयास वाञ्छनीय है। संभव था कि उसे सफलता मिलभी जाती, तथा उसके कुछ मित्र, जो ऐसी स्थिति में थे कि निर्णय ले सकें, विश्वास करते थे कि उसे सफलता मिलेगी, अतः उसने इस आमंत्रण कों अस्वीकार करना उचित नहीं समझा इसे अस्वीकार करना दर्शन के साथ द्रोह होता (पत्रक. vii ३२८ ८)। यदि वह सफल हुआ होता ; तो यूरोपीय इतिहास का स्वरूप कुछ भिन्न रहा होता तथा हम देखेंगे कि अपनी असफलतओं के कारणों पर नियन्त्रण पाना उसकी शक्ति के बाहर था।

अड़तीस वर्षों तक राज्य करने के उपरान्त सिराक्युज़ निवासी डायोनीसियस प्रथम का तिरसठ वर्ष की आयु में ई० पू० ३६७ में देहान्त हुआ। अनेक दृष्टियों से वह महान् पुरुष था, परन्तु अपने जीवन के प्रमुख लक्ष्य में ही वह असफल रहा। किंतु उसका उद्देश्य था कार्थेजियन्स (Carthaginions) को

---

१. 'लाज' में परशिया के राजतंत्र तथा एथेन्स के लोकतंत्र के मध्य के तंत्र को श्रेष्ठतम संविधान कहा गया है (७५६ इ)। लगता है कि प्लेटो ब्रिटिश प्रशंसक रहा होता। यह द्रष्टव्य है कि उसका आदर्श थूसिरिक्लीज़ के भाषण के आदर्श से बहुत भिन्न नहीं है, तथा यह है जो पिरिलैम्पीज़ के सौतेले पुत्र से अपेक्षित है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि पेरिक्लीजहीन पेरिक्लयन लोकतंत्र का यह बुनाई की कला का उदाहरण 'स्टेट्समैन' तथा 'लाज' दोनों सम्वादों में मिलता है (७३४ इ sqq)।

सिसली से बाहर निकालना। अपनी मृत्यु के एक वर्ष पूर्व वह हेन्नो (Hanno) से पराजित हुआ था तथा युद्ध-पूर्व यथास्थिति के आधार पर शान्ति स्थापित हुई। उसका उत्तराधिकारी डायोनीसियस द्वितीय लगभग तीस वर्ष का था, परन्तु वह शासन-सूत्र संभालने के सर्वथा अयोग्य था। उसका पिता सर्वदा अपने अधिकारों को किसी अन्य के साथ उपयोग करने का विरोधी था, तथा उसने अपने योग्यतम मन्त्री इतिहासकार फिलिस्टस (Philistos) को पो (Po) के मुहाने के पास एड्रिया (Adria) नामक स्थान पर निर्वासित कर दिया था इसी कारण से उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र को भी सभी सामाजिक कार्यों से दूर रखा, तथा बढ़ई के कार्य तथा खरीदी जैसे काम में मन-बहलाव करने के लिए प्रोत्साहित किया। कहा जाता है कि उस युवक में जन्मजात प्रतिभा की कमी नहीं थी. तथा उसके पिता के साले डिऑन (Dion) को, जो प्लेटो का भक्त था, प्रतीत हुआ कि अभी भी इसको उचित मार्ग पर लगाया जा सकता है। एथेन्स की अकादमी उस समय तक राजाओं तथा राजकुमारों को प्रशिक्षित करने की एक प्रसिद्ध संस्था बन चुकी थी, परन्तु उसमें उसे भेजने के लिए बहुत विलम्ब हो चुका था। अतः डिऑन ने योजना बनाई कि प्लेटो को ही सिराक्यूज बुलाया जाय। प्लेटो की आयु उस समय साठ वर्ष की हो रही थी। इस योजना में कोई भी अवास्तविकता नहीं थी, तथा सिराक्यूज के समक्ष जो समस्याएं आने वाली थी, उनको दृष्टि में रखते हुए यह आवश्यक था कि उसका शासक प्रबुद्ध हो। उस समय की ज्वलन्त समस्या पुनः यह थी कि यवनवाद (Hellenism) को कैसे एक ओर पारसी दबाव तथा दूसरी ओर कार्थेज के प्रभाव से मुक्त रखा जाय, तथा दूरदर्शी राजमर्मज्ञों ने यह स्पष्ट रुप से समझ लिया कि इससे बचने का एक मात्र उपाय यह है कि उन पर आक्रमण किया जाय। जैसा कि स्वाभाविक है. हमें फ़ारस के सम्बन्ध में अधिक बातें सुनने को मिलती है। ई० पू० ३८७ में राजा की शांति-संधि के अनुसार एशिया के सभी ग्रीक नगर फ़ारसी शासन के अन्तर्गत आ गये थे, तथा इस संधि की शर्तें अपमानजनक एवं असह्य थीं। समस्या के इस पक्ष का बाद में एलेक्जेण्डर ने सफलता से समाधान किया, तथा उसके अकादमी से ही प्रेरणा प्राप्त की थी[1], परन्तु सिसली में भी स्थिति

---

१. एफिसस निवासी डेलियस को, जो प्लेटो का सहयागी था, एशिया में रहने वाले हेलेनोज ने एलेक्जेण्डर के पास भेजा तथा उसने उसको भड़का कर बर्बरों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए तैयार किया। ११२६

गम्भीर थी। कार्थेजिनियन प्रश्न फ़ारसी समस्या का ही एक दूसरा पक्ष था, तथा यह कम से कम एक उल्लेखनीय परम्परा है जिसके अनुसार सेलामिस तथा हिमेरा की लड़ाइयां एक ही दिन लड़ी गई।[1]

परन्तु प्लेटो ने जल्दी-बाजी करने से मना किया। डायोनीसियस को पर्याप्त तैयारी करनी थी, तथा सुधार एवं स्वातंत्र्य की योजनाओं को प्रारम्भ करने का भार लेने के पूर्व उसे उच्च अध्ययन के पाठ्यक्रम का भली-भांति अध्ययन करना अनिवार्य था।[2] दुर्भाग्यवश, इस कार्य के योग्य उसकी आयु नहीं रह गयी थी। प्लेटो की मान्यता के अनुसार उसे बीस वर्ष की आयु में इन अध्ययनों को प्रारम्भ कर देना चाहिये था। अतः उसके लिए अब यह स्वाभाविक था कि युवा अवस्था प्रारम्भिक उत्साह के समाप्त हो जाने के बाद ये अध्ययन कष्ट कर लगें। यह उन लोगों के लिए उपयुक्त अवसर था जो ज्येष्ठर डायोनीसियस के प्रतिपक्षी थे, तथा जो उसके सिद्धान्तों से अभी भी चिपके हुए थे। फिलिस्टस (अथवा जिसे प्लेटो फिलिस्टिडीज नाम से पुकारता था) निर्वासित अवस्था से पुनः वापस बुलाया गया, तथा उसने डिऑन तथा प्लेटो के प्रभाव को समाप्त करना अपना लक्ष्य बनाया। डिऑन तथा प्लेटो

---

१. यह दृष्टव्य है कि हेलेनीज तथा सेमाइट्स के बीच संघर्ष साइप्रस में चला आ रहा था, जो विभिन्न जातियों का एक अन्य महान् मिलन-स्थल था। साक्रेटीज ने वहां पर उसी प्रकार की भूमिका निभाई, जिसे प्लेटो ने अपने ढंग से सिसली में अदा की।

२. ग्रोटे का मत है कि यहां प्लेटो ने गलती की, परन्तु यह अत्यन्त संदिग्ध प्रतीत होता है। यदि वह डायोनीसियस को अकादमी जैसा ही नियमित प्रशिक्षण नहीं देना चाहता. तो उसके सिराक्यूज आने का प्रयोजन ही क्या था ¡ सम्भवतः उन दिनों के लोग विज्ञान में आवश्यकता से अधिक विश्वास करते थे. परन्तु उनका विश्वास पूर्णतया निष्ठायुक्त था। प्रोफेसर बरी (Bury) का मत और भी उल्लेखनीय है। उनका मत है (vol. ii p. २४७) कि प्लेटो ने 'रिपब्लिक' में जिस रोचक ढंग से सामान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है उन्हीं को डायोनीसियस के हृदय में प्रतिष्ठित कर सन्तुष्ट हो जाना चाहिये था, जिससे वह सिराक्यूज में आदर्श राज्य की क्षीण प्रतिकृति निर्मित करने का अवश्य प्रयत्न किया होता। यहां पर यह कह देना आवश्यक है कि उस स्थिति में कार्थेजिनियन्स सिराक्यूज़ को अनुबद्ध कर दिये होते। प्लेटो कल्पनावादी नहीं था। तथा इस धारणा का सर्वथा कोई आधार नहीं है कि उसने 'रिपब्लिक' की व्यवस्थाओं को सिराक्यूज़ में लागू करने का प्रस्ताव किया था।

के प्रभाव को समाप्त करना अपना लक्ष्य बनाया। डिम्रॉन की शासन करने की प्रवृत्ति तथा उग्र स्वभाव के कारण भी उसे कुछ सफलता मिली, तथा डायोनिसियस के मन में यह विश्वास जमाना कठिन नहीं था कि उसका सम्बन्धी वहुत अधिक अधिकार हड़प रहा है। प्लेटो के आने के चार महीने के भीतर ही डिम्रॉन को निष्कासित कर दिया गया कि सुधार की सारी योजना भंग हो गई। दूसरी ओर, डायोनीसियस प्लेटो को नहीं छोड़ना चाहता था। वस्तुतः प्लेटो को डिम्रॉन से घनिष्ठता के कारण उसे कुछ द्वेष हो गया था, तथा अब चूंकि वह मार्ग में बाधक नहीं था. अतः उसे आशा थी कि वह स्वयं प्लेटो के घनिष्ट संपर्क में आयेगा। परन्तु प्लेटो से यह आशा नहीं की जाती था कि वह अपने मित्र का साथ छोड़ देगा, और वह समय-समय में डिम्रॉन की उपयोगिता पर बल देता रहा। युद्ध छिड़ जाने के कारण स्थिति बिगड़ नहीं पाई। डायोनीसियस को अपना अध्ययन बंद करना पड़ा, तथा प्लेटो एथेन्स लौटने के लिए स्वतंत्र था। उन लोगों में आपस में समझौता यह हुआ कि युद्ध समाप्त होने पर डिम्रॉन को पहले वाले पद पर प्रतिष्ठित किया जायेगा, तथा उस समय प्लेटो पुनः लौट आयेगा। घर लौटते समय प्लेटो ने टेरास नें आर्किटस (Archytas) से भेंट की।

डायोनोसियस ने डिम्रॉन से अपने मतभेद समाप्त करने का जो वचन दिया था उसके प्रति वह वहुत निष्ठावान प्रतीत नहीं होता, परन्तु प्लेटो को किसी भी मूल्य पर वापस लाने के लिए वह कृत-संकल्प था। उसकी अनुपस्थिति में भी उसने अपना गणित का अध्ययन जारी रखा. तथा, तथा न्यायालय में इस विषय का प्रचार किया। प्रारंभ में डिम्रॉन के पुनः पदासीन होने के पूर्व प्लेटो ने वहां जाना अस्वीकार किया, परन्तु स्वयं डिम्रॉन तथा उस समय के सर्वाधिक सफल राजमर्मज्ञ आर्किटस ने उससे तत्काल वहां जाने के लिये आग्रह किया। डिम्रॉन सामयिक परिस्थिति के बारे में कुशल निर्णायक जैसा प्रतीत होता है, तथा उसने प्लेटो को विश्वास दिलाया कि डायोनीसियस अब वस्तुतः दर्शन के प्रति उत्कण्ठित है, तथा अब कहीं कोई अवाञ्छित घटना नहीं होगी। अत्यन्त उदासीनता के साथ प्लेटो ने (ई० पू० ३६१ में) इस विषम परिस्थिति से पार जाने का निश्चय किया (पत्रक ७, ३४५ इ), परन्तु उसे शीघ्र ही यह ज्ञात हो गया कि डिम्रॉन के लिए कुछ भी करने का डायोनी-सियस कोई इरादा नहीं था, अतः सम्बन्ध – विच्छेद अनिवार्य हो गया। प्लेटो ने घर जाना चाहा, परन्तु डायोनोसियस उसे जाने नहीं देता था। ऐसी

परिस्थितियों में किसी भी जहाज़ के कप्तान को पूरे एक वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। अन्त में एक सैनिक विद्रोह के अवसर पर भीषण संघर्ष छिड़ा। डायोनीसिहस ने हेराक्लाइडीज़ नामक अपने एक अधिकारी को इसके लिए उत्तरदायी ठहराया, तथा बहुत कठिनाई के उपरान्त प्लेटो उस अधिकारी को मुक्त करा पाया।[1] डायोनीनियस को जिस ढंग से इस दयालुता के कार्य के लिए बाध्य किया गया उसे वह क्षमा न कर सका, तथा उसने प्लेटो की कटु निन्दा की. क्योंकि उसने सुधार के कार्य में तथा कार्थेजिनियम शासन के अन्तर्गत आने वाले यवन नगरों को मुक्त कराने के कार्य में बाधा पहुँचाई। इस कार्य में सहायक होने के स्थान पर उसने उसे रेखागणित सिखाने का कार्य किया. प्लेटो को दरबार से निष्कासित कर व्यवहारतः कैद रखा गया, तथा अंत में आर्किटस की मध्यस्थता के कारण उसे एथेन्स लौटने की अनुमति मिली (ई० पू० ३६०)। तथापि सम्बन्ध – विच्छेद ने अंतिम रूप नहीं लिया था। कठिन समस्याएँ आने पर डायोनीसियस उन्हें लिखकर एथेन्स भेजता था, तथा प्लेटो उनके उत्तर देता था। उसने एक ग्रंथ भी लिखा, जिसमें उसका दावा था कि उसने प्लेटो के दर्शन को उद्घाटित किया है। इस पर प्लेटो को कुछ कष्ट भी हुआ। यह स्पष्ट है कि आर्किटस तथा डिआॅन को उसमें कुछ स्वाभाविक प्रतिभा के होने का जो विश्वास था वह निराधार नहीं था। परन्तु उचित आयु में उन प्रतिभाओं का नियोजन नहीं हो पाया था। इसमें संदेह नहीं कि वह अहंकारी तथा दुर्विनीत था, परन्तु प्लेटो के प्रति उसमें हार्दिक श्रद्धा थी. तथा जब हम यह कल्पना करते हैं कि यदि उसके पिता ने उसको बचपन में ही प्लेटो के प्रशिक्षण से लाभ उठाने का अवसर दिया होता तो उसकी कुछ और ही स्थिति हुई होती तब हमें दुखः होता है।[2]

ऐसी स्थिति में सिराक्यूज की घटनाओं के लिए प्लेटो व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं रह जाता। परन्तु डिआॅन के सम्बन्ध में अभी भी विचार करना शेष है। वह ऐसा व्यक्ति नहीं था जो अनन्त काल तक प्रतीक्षा करता।

१. पत्रकों से हमें पता चलता है कि ये वेतनभोगी सैनिक प्लेटो को पसन्द नहीं करते थे। ये बर्बर केल्टिक योद्धा यह भली भाँति जानते थे कि यदि प्लेटो की बुद्धि से कार्य हुआ तो उनका महत्त्व समाप्त हो जायेगा।

२. सम्भवतः यही कारण है कि डिआॅन ने डायोनीसियस के प्रथम पुत्रों में से उत्तराधिकार एरिस्टोमेकी को प्राप्त हो इसके लिए प्रयास किया। ये पुत्र बहुत छोटे थे।

उसने सम्पूर्ण हेलास (यवन) प्रदेश में अपने सहायकों का एकत्रित करना प्रारम्भ किया। उसने शस्त्रों के वल पर अपने अधिकार प्राप्त करने का संकल्प किया। प्लेटो इस अभियान में कोई भाग नहीं लेगा। परन्तु अकादमी के युवक सदस्य अपने सहपाठी की लक्ष्य-प्राप्ति में सहयोग देने के लिए उत्सुक थे। उनमें प्लेटो का भतीजा स्प्युसिपस तथा साइप्रस निवासी यूडेमस,[1] भी था, जो एरिस्टॉटल का मित्र था तथा जिसके नाम पर एरिस्टॉटल ने अमृतत्व सम्बन्धी संवाद की रचना की। ई० पू० ३५७ की गर्मियों तक सभी तयारियाँ की जा चुकी थीं, परन्तु उसी समय से कठिनाइयाँ प्रारम्भ हो गयीं। उपर्युक्त घटना के पश्चात् हेरेक्लाइडीज़ प्रवास में चला गया था, तथा उसने डिऑन के निर्देशन में कार्य करना अस्वीकार कर दिया, तथा स्वयं पीछे रह गया। केवल आठ सौ व्यक्तियों के साथ डिऑन ने समुद्र के मार्ग से सिसली की यात्रा प्रारम्भ कर दी। फिलिस्टस उसके लिए एड्रियाटिक में प्रतीक्षा कर रहा था, परन्तु डिऑन ने सामान्यतः समुद्र के किनारे से जाने वाले मार्ग से न जाकर सीधे समुद्र के बीच का मार्ग अपनाया, तथा फिलिस्टस की ओर नहीं गया। सिसली मे प्रवेश करने पर उसे चारो ओर से सहायता तथा शक्ति उपलब्ध हुई। डायोनोसियस इस समय इटली में था, क्योंकि उसने इस दिशा से आक्रमण की कल्पना नहीं की थी। इस प्रकार डिऑन सिराक्यूज का अधिपति हो गया। डिऑन थोड़ा और स्वीकार्य रहा होता तो सभी कुछ सकुशल बीतता। हेरेक्लाइडीज़ भी सामने आ गया, तथा शासन में उसे भी भाग देना आवश्यक हो गया। परन्तु इससे शक्ति सतत् क्षीण होती गई, तथा एक समय डिऑन का अल्पकालिक पतन भी हो गया। डायोनोसियस, डिऑन तथा हेरेक्लाइडीज़ के त्रिकोणिक संघर्ष का कष्टकर वर्णन करना यहाँ आवश्यक नहीं है, उसके परिणामों का संकेत कर देना ही पर्याप्त होगा। डिऑन के इशारे पर हेरेक्लाइडीज़ की हत्या कर दी गई, तथा स्वयं डिऑन को कैलिप्पस के छुरे का शिकार होना पड़ा। कैलिप्पस एथेन्स का निवासी तथा अकादमी का सदस्य था, एवं डिऑन का अत्यन्त विश्वस्त सलाहकार था। कैलिप्पस ने केवल एक वर्ष तक शासन किया, तथा इसके बाद डिऑन के पक्षवालों द्वारा वह एक बार पुनः निष्कासित किया।

कैलिप्पस के विश्वासघात के कारण एथेन्स तथा अकादमी को जो

---

१. यूडेमस सिराक्यूज़ के पास एक संग्राम में मर गया।

आवात पहुँचा, उससे प्लेटो वहुत दुःखी हुआ, परन्तु डिऑन के व्यक्तित्व में उसकी आस्था अडिग रही। उसके चरित्र की जिन कमियों का उल्लेख ऊपर किया गया है।[1] उनसे वह अच्छी तरह परिचित था, तथापि वह उसे अत्यन्त निष्ठावान तथा अपने राजनैतिक जीवस के प्रति निष्काम मानता रहा। इस मूल्यांकन की दृष्टि से यह द्रष्टव्य है कि चूँकि डिऑन का शाही महल से घनिष्ट सम्बन्ध था, अतः उसके लिए अपेक्षाकृत सरल होता कि वह डायोनीसियस के शासन के प्रारम्भिक काल में ही उसे पद्च्युत कर देता, तथा स्वयं सत्ता हड़प लेता। परन्तु यह न कर उसने आर्किटस के सहयोग से यथाशक्ति प्रयास किया कि युवक राजकुमार आगे आने वाले भार को वहन करने के योग्य बन सके। परन्तु यदि वह अपनी आत्म-विस्मृति के लिए मिले परिणामों के कारण क्रुद्ध हो गया, तो इस पर आश्चर्य नहीं हो सकता। उसकी संपत्ति जब्त कर ली गई थी तथा उसकी पत्नी को दूसरे व्यक्ति से विवाह करने के लिए वाध्य किया गया।

कैलिप्पस के अपदस्थ होने से प्लेटो को अन्तिम वार सिसली के हित के लिए कुछ कार्य प्रारम्भ करने का अवसर मिला। डिऑन के साथियों ने उससे आग्रह किया कि वह संविधान को अन्तिम रूप देने के लिए सलाह दे। इस अवसर पर उसने दो खुले पत्र लिखे, जिनके कारण इन घटनाओं के वारे में हमें ज्ञान होता है। प्रथम पत्र (पत्रक ७) में उसने अपने जीवन में राजनैतिक प्रवृत्ति के औचित्य को सम्मानित ढंग से प्रस्तुत किया है। यह पत्र इस वात का भी साक्षी है कि जिन लोगों का उसने विश्वास किया था उनसे उसे कितनी निराशा हुई, तथा उसकी अपने सिद्धान्तों में कितनी अडिग आस्था थी। यदि डिऑन के पक्ष वाले वस्तुतः डिऑन की योजनाओं को क्रियान्वित करना चाहते हैं तो वह सलाह देने को तैयार है। परन्तु उसे उन लोगों की निष्ठा के प्रति पूर्ण विश्वास नहीं है। परन्तु अपने दूसरे पत्र (पत्रक ८) में वह सिराक्यूज़ की सरकार के लिए एक योजना प्रस्तुत करता है जिसमें यदि डायो-

---

१. डिऑन की सफलता पर बधाई देते हुए प्लेटो पत्र लिखता है (पत्रक ४) कि कुछ लोग उसे वहुत असंतोषी मानते हैं, तथा उसे इस दोष के लिए चेतावनी देता है (३२१ ब)। उसे वहुत आशा है कि डिऑन के शासन से अकादमी का यश बढ़ेगा। उसे यह स्मरण दिलाता है कि तुम जानते हो कि किनसे लोग यह अपेक्षा करते हैं कि जिस प्रकार वयस्क लोग बच्चों से आगे रहते हैं उससे भी अधिक ये अन्य लोगों से आगे बढ़ जाय।

नीसियस को स्वीकार हो तो उससे आग्रह किया जाय कि वह अपने भाई हिप्पेरिनस (Hipparinos) तथा डिऑन के पुत्र हिप्पेरिनस के साथ मिलकर शासन-सूत्र संभाले। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह प्रस्ताव एक ऐसे राज-मर्मज्ञ का था जो कठोर दलवादियों को स्वीकार्य नहीं था, अतः उस समय सिराक्यूज़ का साम्राज्य खण्डित हो गया। प्लेटो ने देखा कि इस समय कार्थेज़िनियन्स ओस्कन्स (Oscans) के हाथों में इस साम्राज्य के पड़ जाने की आशंका थी।[1]

हमने देखा कि प्लेटो सफलता प्राप्ति के कितना निकट आ गया था। कम से कम वह डायोनीसियस के लिए उतना तो कर ही देता जितना पाइथागोरसवादी लाइसिस (Lysis) ने एपेमिनण्डस के लिए किया था, उस समय कहा गया था कि थीबीज का तत्कालीन वैभव पूर्णतः दार्शनिकों के कारण था।[2] तथा अधिक उपयुक्त सामग्रियों के सहारे उसने अधिक कार्य किया होता। यदि प्लेटो को डायोनीसियस के स्थान मेसीडान (Mecedon) के एलेक्ज़ेण्डर जैसे व्यक्ति को प्रशिक्षित करने का अवसर मिला होता तो कुछ ही वर्षों के भीतर कार्थेज़ पर ग्रीक राजा राज्य करता होता। जैसी की स्थिति थी, इस कार्य का भार रोमन्स के कन्धों पर छोड़ दिया गया, तथा ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्वाभाविक रूप से सिराक्यूज़ के शासकों के हाथ आ गया।[3] और इसी कारण पूर्वी तथा पश्चिमी यूरोप का विभाजन हुआ, तथा प्रतीत होता है कि आगामी भविष्य में यह महान् राजनैतिक समस्या होगी।

---

१. पत्रक ८, ३५३ इ।

२. एल्किडेमस ने कहा : "थीबीज़ के प्रमुख नागरिक ज्यों ही दार्शनिक बने त्योंही वह देश वैभवपूर्ण बन गया।"

३. टिमोलियन ने डायोनीसियस द्वितीय को सिराक्यूज़ से जब अन्तिम रूप से निष्कासित कर दिया। उसके ठीक अस्सी वर्षों बाद प्रथम प्यूनिक युद्ध छिड़ा। प्लेटो डायोनीसियस के अल्पकालिक पुनः स्थापन (ई. पू. ३४५) अथवा अन्तिम निष्कासन (ई० पू० ३४४) की घटनाओं को देखने के लिए जीवित नहीं था। इसके उपरान्त डायोनीसियस कार्निथ में एक नये कलाकार की भाँति जीवन बिताता रहा, जहाँ एरिस्टोज़ेनस उनसे मिला तथा उसने प्लेटो से उसके मतभेद का कारण पूछा। डायोनीसियस ने उत्तर दिया कि निरंकुश शासक को कोई सत्य बात नहीं बताता, तथा उसके तथाकथित मित्रों की स्पष्ट वक्तृता के अभाव के कारण उसे प्लेटो की शुभ कामना से हाथ धोना पड़ा। प्लूटार्क, (Timoleon, १५)

यह नहीं सोचना चाहिये कि डायोनीसियस को संवैधानिक शासक वनाने का प्लेटो ने जो प्रयास किया, वह समय पर फलित नहीं हुआ। सद्यः यह अवसर उपस्थित हुआ कि प्लेटो अपने सवसे बड़े तथा विस्तृत ग्रन्थ के निर्माण के लिए सन्नद्ध हो। यह सत्य है कि एक विश्वसनीय परम्परा के अनुसार 'लाज़' का प्रकाशन प्लेटो की मृत्यु के उपरान्त ओपूस निवासी फिलिप द्वारा किया गया तथा यह वहुत सम्भव है कि उसने अपने ग्रन्थ की अन्तिम पाण्डुलिपि स्वयं न तैयार की हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि इस ग्रन्थ का लेखन-कार्य अनेक वर्षों पूर्व प्रारम्भ हो चुका था। इस ग्रन्थ में विषयों का विस्तृत विवेचन है, तथा इसके लिखने के लिए तत्कालीन विधान-संहिताओं का समुचित अध्ययन अनिवार्य था। ई० पू० ३६० के ठीक वाद लिखे तृतीय पत्रक (३१६ अ) में वताया गया है कि सिराक्यूज़ की द्वितीय यात्रा में प्लेटो डायोनीसियस के साथ 'लाज़' (Laws) की प्रस्तावना लिखने में संलग्न था। स्वयं इसकी व्याख्या 'लाज' के उस गद्यांश (७२२ द sqq) से हो जाती है जिसमें यह वताया गया है कि विधान लिखते समय विधायकों को प्राक्कथन में अपने अभिप्राय को स्पष्ट कर देना चाहिये। इससे हमें प्लेटो की राजनीति तथा विधि-शास्त्र पढ़ाने की प्रणाली के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त होती है, तथा यह 'स्टेट्समैन' के सिद्धान्त से पूर्णतः संगत है। किसी भी विषय पर विधान-संहिता वनाने के लिए यह आवश्यक है कि पहले हम दिशा-निर्देश करने वाले सामान्य सिद्धान्तों को स्पष्टतया अंकित कर लें, एवं तदुपरान्त इनको विस्तृत अधिनियमों के रूप में उपस्थित करें। सामान्य सिद्धान्त यथासम्भव ऐसे होने चाहिये जिन्हें आदर्श शासक अनुमोदित कर सके। आदर्श शासक के लिए विधान अपरिहार्य नहीं होते, विभिन्न अधिनियमों में राज्य की उन परिस्थितियों के संम्वन्ध में निर्देश रहेंगे, जिन्हें दृष्टि में रखकर उनका विधान किया गया है।

संवाद का कथानक यह है कि क्रीट में एक उजाड़ स्थान पर एक वस्ती (Colony) स्थापित करनी है, तथा नोसस (Knowsoss) के दण्डाधिकारी को इसके लिए विधान वनाने का कार्य सौंपा गया है। वह अधिकारी एक एथेनी अपरिचित तथा एक स्पार्टावासी से इस विषय पर विचार-विमर्श करता हुआ दिखाया गया है। विस्तृत विधान-रचना के पूर्व ही ये प्रश्न किये जाते हैं कि नया नगर समुद्र के किनारे है, या अन्तरस्थलीय है, भूमि उपजाऊ है या नहीं, इत्यादि (७०४ अ, sqq)। किसी काल्पनिक नगर के लिए विधान नहीं

वनाया जा रहा है। हम एक विशेप वस्ती पर विचार कर रहे हैं, तथा इसे प्रभावित करने वाली सभी विशेष स्थितियों का हमें ध्यान रखना होगा।

प्लेटो की रचनाओं में सवसे कम प्रशंसा 'लाज' की हुई है, परन्तु इसमें उसके परिपक्वतम विचार का अधिकांश भाग समाविष्ट है, जो अन्यत्र नहीं मिलेगा। इसमें मानव-जीवन के लम्वे तथा वहुमुखी अनुभवों के परिणाम सन्निहित है। उसका संक्षेप में वर्णन भी यहाँ असम्भव है। यहाँ पर केवल इतना ही सम्भव है कि हम कुछ ऐसे तथ्यों की ओर ध्यान आकर्षित करें. जिनकी सहायता से पाठक उस ग्रन्थ के सम्वन्ध में अधिक न्यायसंगत दृष्टिकोण अपना सकें, जिसे स्वयं प्लेटो अपनी सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति मानता था।

डायोनिसियस से असंतुष्ट होने के वाद भी प्लेटो को यह विश्वास था कि निरंकुश शासक (Tyrant) यदि दार्शनिक के सहयोग से कार्य करे तो यह वन राष्ट्र के लिए सर्व-श्रेष्ठ वरदान होगा, तथा वह अपनी इस आस्था को पुनः प्रवल रूप से व्यक्त करता है (७०९इ), यदि ऐसा न हो सके, तो विधान-निर्माताओं तथा संविधान-रचयिताओं पर दर्शन के प्रभाव से भी हमें वहुत आशा हो सकती है। अतः अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उसने यह उचित समझा कि सार्वजनिक तथा वैयक्तिक ग्रीक विधान, तथा विशेषतः एथेन्स के विधान, को संहितावद्ध कर दें, तथा इस पर स्वयं अपने विधायी प्रस्तावों को पूरक के रुप में रखे। इसे समझने के लिए हमें उस समय के ग्रीक-जगत् की परिस्थिति को भी ध्यान में रखना होगा। इस देश में हम लोग व्यवस्थित विधि-निर्माण (जिसे ग्रीक लोग Nomothesia 'विधि-निर्माण' कहते थे) से अभ्यस्त नहीं हैं, यद्यपि नेपोलियन-संहिता जैसी वस्तु से हम उसकी कुछ कल्पना कर सकते हैं, परन्तु ग्रीक लोग इससे सुपरिचित थे। प्रत्येक उपनिवेश या वस्ती में एक लिखित संविधान तथा विधि-संहिता होती थी, तथा इसके निर्माण का भार सदैव किसी एक व्यक्ति अथवा किसी थोड़े सदस्यों वाले आयोग को सौंपा जाता था। 'लाज' में जिस परिस्थित को कल्पना की गई है वह प्रायः दैनन्दिन की घटना है, तथा यह तनिक भी अमर्यादित नहीं है कि एथेन्स के अपरिचित व्यक्ति को जो सम्भवतः स्वयं प्लेटो ही था ऐसी परिस्थितियों में महत्त्वपूर्ण सहायता देने में समर्थ माना गया हो। यह निश्चित है कि इस समय ग्रीक राज्यों के विधान-निर्माताओं में से अधिकांश अकादमी के सदस्य थे, तथा अपने संविधानों में संशोधन के समय अनेक राज्य अकादमी से

यह निवेदन करते थे कि उन्हें विशेषज्ञ विधायक प्रदान किया जाय ।[1] अतः 'लाज' का उद्देश्य अत्यन्त व्यावहारिक है, तथा इस ग्रन्थ की संरचना तत्कालीन वास्तविक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर की गई है ।

इसमें सन्देह नहीं कि प्लेटो जब जल-पूर्ति तथा पक्षिक द्वारा पके हुए गिरे फल उठाने का सूक्ष्म आरक्षी नियमन विस्तृत ढंग से करता है तब आधुनिक पाठक को कुछ विचित्र-सा अनुभव हो सकता है । इस सम्बन्ध में दो बातें कहनी हैं । प्रथम तो यह कि प्लेटो की यह एक दृढ़ धारणा है कि विशाल जगत् की तुलना में सभी मानवीय क्रिया-कलाप नगण्य हैं, तथा वर्तमान क्रियाएं असंख्य युगों के मानव-इतिहास की मात्र एक घटना हैं । कभी-कभी प्लेटो यह सोचता है कि मनुष्य ईश्वर का केवल एक खिलोना है, तथा मानव-जीवन का कोई विशेष गम्भीर लक्ष्य नहीं । दुर्भाग्य से, इस जीवन में गाम्भीर्य हो या न हो, हमें इसे गम्भीर मानना ही होगा (८०३ ब), परन्तु औचित्य तथा सम्मान की दृष्टि से जीवन की एक विधा की अपेक्षा किसी दूसरी को अधिक श्रेष्ठ मानना असंगत है । दार्शनिक की दृष्टि से कुछ भी अत्यन्त हेय अथवा अत्यन्त गौरवपूर्ण नहीं है ।

इससे घनिष्ट रूप से सम्बद्ध उसका यह विश्वास है कि महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को घरेलू उदाहरणों के द्वारा अधिक अच्छी तरह से समझा जा सकता है । इसे उसने साक्रेटीज से सीखा था, तथा इस विषय का विवेचन उसने 'स्टेट्समैन' में किया है । विधि-निर्माण में यह बात अधिक सत्य प्रतीत होती है । विधिवेत्ता, जो सम्भवतः अपना कर्तव्य समझते हैं, संस्थाओं (institute) के घुमक्कड़ पशुओं अथवा भ्रमर-वृन्द के स्वामित्व के सम्बन्ध में सूक्ष्म विवेचनार्थ विवाद नहीं करते । यह नहीं माना जा सकता कि रोमन विधिवेत्ता इन प्रश्नों पर केवल अपने स्वार्थ के लिए ही विचार करते हैं, वे इन पर इसलिए विचार करते थे कि इस प्रकार के सामान्य उदाहरण कानून के मूलभूत नियमों को स्पष्ट करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होते हैं ।

इसके कारण अब हम दूसरे महत्त्वपूर्ण प्रसंग पर पहुँचते हैं । हम देख चुके हैं कि प्लेटो के अनेक सहयोगी विधि-निर्माता बन गये थे, तथा यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि उसका ग्रन्थ यवन-विधि का आधार है. इससे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि रोमन विधि की बहुत-सी बातें इसी श्रोत से ली

---

१. Plut. Adv. Col. ११२६c.

गई हैं।[1] तथा, यद्यपि आज-कल इस तथ्य पर प्रायः ध्यान नहीं दिया जाता, परन्तु क्यूज़ास (Cujas) जैसे कुछ पुराने विधिवेत्ता इस तथ्य को भली-भाँति जानते थे। रोमन विधि पर ग्रीक दर्शन के प्रत्यक्ष प्रभाव को सम्भवतः अतिरञ्जित किया गया है। परन्तु इसके अप्रत्यक्ष प्रभाव के साथ कदाचित् न्याय नहीं किया गया है। यह प्रभाव निम्नलिखित ढंग से पड़ा। जब रोम के लोग रोम से बाहर रहने वालों, अर्थात विशेष रुप से इटली तथा सिसली के ग्रीक समुदायों, के घनिष्ट संपर्क में आये, तो ऐसा अनुभव हुआ कि उनके नागरिक विधानों के नियमों को रोमन्स तथा विदेशियों के सम्बन्ध के लिए अथवा विदेशियों के आपस के सम्बन्धों के लिए सरलता से प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय विधि (jus genti) का प्रारम्भ हुआ, जो प्रारम्भ में एक प्रकार से इटली का सार्वजनिक क़ानून था, इसे सफ़री राजपुरुष (praetor-peregrinus) लागू करता था, तथा यह उसके आज्ञा-पत्र (edict) में अंकित रहता था, यह आज्ञापत्र इस बात की घोषणा मात्र होता था कि राजपुरुष कुछ मामलों को किस सिद्धान्तों के आधार पर निपटायेगा। यह आज्ञापत्र एक प्रेयटर (राजपुरुष) के हाथों से दूसरे प्रेयटर के हाथ चलता आता था, तथा समय-समय पर इसमें आवश्यक संशोधन भी होता था, तथा अन्ततोगत्वा यह एक नियमित विधिसंहिता अथवा मानदेय विधि (juc Honorarium) हो गया। यह अनिवार्य है कि इसके बहुत से उपबन्ध (provisions) उन यवन राज्यों के कानूनों के आधार पर बने हों, जिनके सम्पर्क में रोमन लोग आये, तथा ये कानूनस्वयं अकादमी के विधिशास्त्र से पूर्णतः प्रभावित थे। भोजपत्र (paryar) के माध्यम से अब हमें हेलिनिस्टिक कानून के बारे में अधिक जानकारी मिलने के कारण हम यह आशा कर सकते है कि इस क्षेत्र में कुछ महत्त्वपूर्ण अन्वेषण होंगे।

शिक्षा (EDUCATION)

अगले अध्याय में हम प्लेटो के दर्शन के अत्यन्त अमूर्त पक्ष का अध्ययन करेंगे, अतः यदि लाज' में दी गई शैक्षणिक व्यवस्था का यहाँ पर हम संक्षेप में उल्लेख करें, तो अनुचित न होगा. इससे यह स्पष्ट हो जायगा कि जगत् में अत्यन्त प्रगाढ़ अभिरुचि लेने के साथ ही साथ अत्यन्त अमूर्त परिकल्पनाओं पर भी उस समय ध्यान दिया जाता था। यह एक अन्य दृष्टिकोण से भी उपयोगी

१. देखिये, Cuiacii comm. in lib. xiix. Pauli ad Eductum, ad Had Namucum et. ceq. : multa .....auctorec noctri २८६ platone mutuaticunt उदाहरण obcervatihnum lib. xxiv. C. २४ में दिये गये हैं।

होगा . प्लेटो के शैक्षणिक सिद्धान्तों को प्राय: 'रिपब्लिक' पर आधारित माना जाता है, तथा लोग यह भूल जाते हैं कि 'लाज' में इस विषय का अधिक विस्तृत तथा व्यावहारिक विवेचन किया गया है . ।

सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की है कि बच्चों को स्वस्थ होना चाहिये (७८८ द), क्योंकि सभी बातें आरम्भ पर ही आश्रित हैं। मनुष्य की देह का विकास तो बीस वर्ष की आयु तक हो सकता है, परन्तु प्राय: आधी वृद्धि पाँच वर्ष की आयु तक ही हो जाती है, संवर्धन पोषण पर आधारित है, तथा बच्चों का पोषण बहुत हद तक आकार के अनुपात में होता है। इसका अर्थ यह है कि पाँच वर्ष की आयु तक बच्चों को पर्याप्त शारीरिक श्रम की आवश्यकता है। इसे अत्यन्त सरल ढंग से कहा जा सकता है कि बच्चों का जीवन ऐसा होना चाहिये, मानों वे सदा समुद्र में हों। अनुभव द्वारा यह बात दाइयों को भी ज्ञात रहती है, क्योंकि बच्चों को सुलाने के लिए वे उन्हें हिलाती हैं, न कि शांत छोड़ देती है। वे उन्हें गोद में लेकर ऊपर-नीचे झुलाती हैं, तथा शान्त रहने की अपेक्षा लोरियां गाती हैं। कोरिबेन्टिक शुद्धियां इसी प्रकार के सिद्धान्त पर आधारित हैं (७९० द)।

दूसरी द्रष्टव्य बात यह है कि छोटे बच्चे क्रमहीन रूप से चीखते तथा पैर चलाते हैं, तथा बड़े बच्चे चिल्लाते तथा उछलते हैं। तीन वर्ष तक क बच्चे अपनी आवश्यकताओं को केवल रुदन द्वारा अभिव्यक्त कर सकते हैं, तथा चूंकि तीन वर्ष का समय मानव जीवन के अनुपात में स्वस्थ अथवा अस्वस्थ रहने के लिए लम्बी अवधि है, अत: इस तथ्य को ध्यान में रखकर शिक्षा का प्रारम्भ तथा विधान होना चाहिये। छोटे बालकों को केवल सुख तथा दु:ख की ही अनुभूतियां हो सकती हैं, तथा उन्हें सभी सुखों को प्रदान करना तथा दु:खों से दूर रखना हम उचित कार्य मान सकते हैं। परन्तु यह ठीक नहीं। हम उन्हें नीरदता की उस स्थिति का प्रशिक्षण देना चाहते हैं, जो भावात्मक सुख तथा दुख दोनों से भिन्न है। यह करने के लिए हमें इस तथ्य का लाभ उठाना चाहिये कि छोटी उम्र से ही बच्चे स्वर तथा अवकाश में आनन्द का अनुभव करते हैं। अतएव प्रारम्भ के तीन वर्षों तक हमें इन्ही दो वस्तुओं को शिक्षण का प्रमुख उपकरण बनाना चाहिये, क्योंकि, इन सहज प्रवृत्तियों (instincts) के विकास के द्वारा हम धीरे-धीरे स्वाभाविक चीखने तथा चिल्लाने को गीत में, तथा लात चलाने एवं उछलने को नृत्य में रूपान्तरित कर सकते हैं। तीन वर्ष की आयु में दण्ड देने का कार्य भी प्रारम्भ कर देना चाहिये,

परन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि इस प्रकार के दण्ड न दिये जांय जिनसे क्रोध एवं उदासीनता की उत्पत्ति हो। इस आयु में क्रीड़ा की प्रवृत्ति सहज है। जब दो-चार छोटे बच्चे साथ होंगे तो वे अपने आप रूचि के अनुसार खेल का आविष्कार कर लेंगे। उन्हें इसके लिए स्वतन्त्र छोड़ देना ही अधिक उपयुक्त होगा।

तीन से छः वर्ष तक के बच्चों को उनके गांव के धार्मिक पूजनों में ले जाना चाहिये, और यह धात्रियों के लिए एक कठिन समस्या उत्पन्न करती है। शिक्षा-विभाग के प्रमुख द्वारा बारह महिलाओं की एक ऐसी समिति गठित की जानी चाहिये जो सभी धात्रियों के कार्य को देखरेख कर सके। वे देश को जनपदों में विभाजित करेंगी, तथा प्रत्येक महिला अपने जनपद के सभी मन्दिरों तथा समारोहों का कम से कम वर्ष में एक बार निरीक्षण अवश्य करेगी, ताकि धात्रियां अपना कार्य ठीक ढंग से करें। पितामह. पितामही यदि बालकों से कुछ दूर रहें, तथा बच्चे उन्हें समय-समय पर देखने जाते रहें, तो अच्छा है। इस तरह से बच्चों को वांछित स्वतन्त्रता मिलने में कोई सन्देह नहीं होगा।

छः वर्ष की आयु में लड़के तथा लड़कियों की अलग-अलग व्यवस्था कर देनी चाहिये, क्योंकि वास्तविक शिक्षा इसी आयु में प्रारम्भ होती है। लड़कों को घुड़-सवारी, धनुर्विद्या, तथा प्रक्षेपणी का प्रयोग सिखाना चाहिये। लड़कियों को भी यथासम्भव शास्त्र-प्रयोग सिखाना चाहिये। हमें माताओं तथा धात्रियों के इस अन्धविश्वास से भी मुक्त होना आवश्यक है कि बायें हाथ की अपेक्षा दाहिना हाथ अधिक दक्ष है। इस अन्धविश्वास से हमारी क्षमता आधी हो जाती है।

इस आयु में संगीत तथा व्यायाम शिक्षा के प्रमुख साधन होंगे। इन्हीं के लिए हमने बच्चों को अत्यन्त छोटी अवस्था में अवकाश तथा स्वर के प्रयोग से झुलाकर तैयार किया। व्यायाम के दो मुख्य विभाग हैं, नृत्य तथा कुश्ती। संगीत के दो कार्य हैं, प्रथम है कवियों की वाणी से सम्पर्क, तथा द्वितीय है हाथ-पैर के नृत्य तथा अन्य अभ्यासों से संगति। हमें बच्चों को कोई भी बात बहुत विस्तार से या व्यावसायिक ढंग से नहीं सिखानी चाहिये। युद्ध तथा देवताओं की उपासना में किये जाने वाले अभ्यासों तथा गीतों के नमूने पर हमें उन बच्चों को सरल शारीरिक व्यायाम तथा गीत सिखाने चाहिये। इस आयु में क्रीड़ा तथा खिलोनों का महत्त्व अधिक होता है। मुख्य बात यह है कि प्रत्येक पीढ़ी को वही खेल खेलना चाहिये, तथा वही खिलोने

रखने चाहिये जो वृद्ध पीढ़ी खेलती तथा रखती है, क्योंकि इसी प्रकार से संविधान के उद्देश्य की रक्षा हो सकती है। सबसे बड़ा क्रान्तिकारी व्यक्ति वह है जो नये खेलों तथा नये खिलोनों का आविष्कार करता है, क्योंकि जो लड़का अपनी किशोरावस्था में भिन्न खेल खेला होगा, वह भिन्न प्रकार के व्यक्ति के रूप में विकसित होगा। जो वस्तुएं अपने आप में अनिष्टकर नहीं हैं उन्हें बदलना घातक है, अतः पुराने खेलों का रक्षण राज्य का कर्त्तव्य है। जहाँ तक संगीत का प्रश्न है, हमें इस सिद्धान्त को पथ-प्रदर्शक मानना चाहिये कि ताल तथा लय स्वभाव के अनुकरण हैं। वे किसी भी वस्तु के सर्वाधिक अपरोक्ष अनुकरण है। वे चित्रकला तथा मूर्तिकला की अपेक्षा कहीं बहुत अधिक अपरोक्ष अनुकरण हैं। परन्तु जिस वस्तु का वे अनुकरण हैं वह वाह्य आभास नहीं, वरन् आत्मा का विन्यास (dispositoin) है। अतः इनका सतत् रूप में संरक्षण होना चाहिये। नये ताल एवं लय संविधान की भावनाकी हत्या कर देंगे। परन्तु दुःखन्तिकी इसके अन्तर्गत नहीं है, वेदियों के ठीक समीप प्रतियोगी समवेत गान द्वारा धर्म-निन्दा की छूट हम नहीं दे सकते।

गीतों तथा नृत्यों के चयन का गुरूतर कार्य-भार एक विधि-समिति (Jury) को सौंपा जायेगा, जिसके सदस्यों की आयु पचास वर्ष से ऊपर होगी। यह समिति प्राचीन गीतों तथा नृत्यों को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करेगी, अथवा आवश्यकता पड़ने पर उनके ताल एवं लय में संशोधन के लिए विशेषज्ञों की भी सहायता लेगी। यदि बच्चे वाग्देवी के शालीन तथा व्यवस्थित स्वरूप से अभ्यस्त हो जायेंगे, तो जब वे इससे भिन्न मधुर संगीत को सुनेंगे तब समझेंगे कि यह केवल दासों के योग्य है। दूसरी ओर, यदि प्रारम्भिक जीवन में उन्हें मधुर वाणी का अभ्यास हो जायेगा तो वास्तविक संगीत अरुचिकर तथा कटु लगेगा। स्वरमान तथा समय-भेद के अनुरूप लड़के एवं लड़कियों के गीत भी भिन्न-भिन्न होने चाहिये। लड़कों के संगीत में गर्वपूर्ण तथा वीर चरित्र का अनुकरण होगा, तथा लड़कियों के संगीत में लज्जा एवं शुद्धता का अनुकरण होगा। व्यायाम लड़कियों को भी सिखाया जाना चाहिये। इस बात को मानने का कोई आधार नहीं है कि घुड़सवारी तथा व्यायाम केवल लड़कों के लिए उपयुक्त है लड़कियों के लिए नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि स्त्रियां पुरुषों की भाँति सबल नहीं होती, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनको वह कार्य भी न करने दिया जाय जिसके लिए वे सक्षम हैं। जिस राज्य में स्त्रियों को सैनिक-सेवा के अन्तर्गत नहीं लिया जाता वह राज्य उतने ही व्यय में जितना

शक्तिशाली हो सकता था उसका केवल आधा शक्तिशाली हो पाता है। यह अधिक अच्छा होता कि उन्हें कुछ हद तक गृहस्थी के कार्य से मुक्त कर दिया जाता। सहकारी विधि के अपनाने से गृहकार्य अधिक सरल बनाया जा सकता है। चाहे जो हो, मानव जाति के ऊपर से यह कलंक हटाना आवश्यक है कि यही एक मात्र जाति है जिसकी स्त्रियां अपने बच्चों की जीवन-रक्षा करने में असमर्थ होती हैं।

ये बातें किस रीति से सिखायी जांय इस प्रश्न पर अभी हमने विचार नहीं किया है। यह केवल प्राविधिक ढंग नहीं है। सब कुछ विषय-वस्तु पर निर्भर करता है। जिस प्रकार कोई जहाज-निर्मांता यात्रा को ध्यान में रखकर ही जहाज का निर्मांण करता है, उसी प्रकार हमारी शिक्षण-प्रणाली जीवन-मात्र को सर्वोत्तम ढंग से पूर्ण करने को लक्ष्य में रखकर ही निश्चित होनी चाहिये। ईश्वर की दृष्टि से इसका बहुत महत्त्व भले ही न हो, परन्तु यदि यह लीला है तो भी हमें इसे खेलना चाहिये। और किसे ज्ञात है कि यह लीला-मात्र है। अन्य कुछ नहीं। यदि नर-नारी ईश्वर के खिलोने मात्र हों, तो भी वे ईश्वर के सर्वोत्तम उपकरण हैं। कठिनाई यह है कि लोग परिहास तथा उद्योग, कार्य तथा खेल में मिथ्या भेद करते है। उदाहरणार्थ, वे मानते हैं कि युद्ध में उद्योग करना होता है, परन्तु शांति के लिए नहीं। यह भ्रान्तिपूर्ण है। शांति के लिए युद्ध की अपेक्षा अधिक उद्योग करना पड़ता है, तथा खेल का अधिकांश वस्तुतः उच्चतम प्रकार का कार्य है।

पाठशाला–निर्मांण का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शिक्षकों को सवैतनिक होना चाहिये और उन्हें इस कारण विदेशी होना चाहिये (यह ग्रीस की अपनी विशिष्ट प्रकृति है)। शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिये। परिवार के बड़े लोगों के भरोसे यह नहीं छोड़ा जा सकता कि वे अपनी इच्छानुसार अपने बच्चों को शिक्षित करें, अथवा न करें, क्योंकि पुरानी पीढ़ी की अपेक्षा बच्चे राज्य के अधिकार में कहीं अधिक हैं। अब तक हम प्राथमिक शिक्षा पर विचार करते रहे, तथा प्लेटो के युग में अधिकांश लोगों को इसी स्तर की शिक्षा उपलब्ध थी।

परन्तु अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि प्राथमिक प्रशिक्षण प्राप्त करने के उपरान्त किशोर क्या करें। इसके आगे कुछ कार्य है, अथवा बाजार में बिकने वाले पशुओं की भाँति वे अपना जीवन बितावें ? यह नहीं हो सकता कठिन कार्य करने का समय तो अब आया है, बाकी सब तो, यहाँ तक कि सैनिक प्रशिक्षण भी, खेल ही रहा। अब समय नष्ट करने का अवसर नहीं। वस्तुतः

हमारे जीवन की प्रत्येक रात और दिन को पूर्णतः यदि शिक्षा में ही व्यतीत किया जाय तो भी यह शायद ही समुचित शिक्षा के लिए पर्याप्त हों। अतः सूर्योदय से सूर्यास्त तक का सारा दिन व्यवस्थित कार्यक्रम के अनुसार बिताना चाहिये। इसी प्रकार रात्रि के भी कार्यक्रम बनने चाहिये। घरेलू कार्यों का विस्तृत विवरण देना विधायक के लिए अनावश्यक है, परन्तु हम यह तत्काल कह सकते हैं कि नगर के पहरेदारों का पूरी रात सोना अत्यन्त भयंकर है, तथा गृहस्वामिनी को यदि दासियां जगावें तो यह भी अनुचित है। उसे पहले उठकर यह देखना चाहिये कि सभी दासियां उठ गयी हैं। अधिक सोने वाला व्यक्ति निकम्मा है, तथा जो अधिक दिनों तक जीवित रहना तथा चिन्तन करना चाहता है वह अधिक समय तक जाग्रत रहता है। यह कितना आश्चर्यजनक है कि जब हम थोड़ी निद्रा से काम चलाने का अभ्यास कर लेते हैं तो कितनी कम नींद की हमें आवश्यकता होती है। अतः बच्चे को सूर्योदय के पूर्व ही विद्यालय चला जाना चाहिये। उसकी ध्यानपूर्वक देख-रेख की आवश्यकता है, क्योंकि इस जीव का नियन्त्रण करना सर्वाधिक दुष्कर है। इसका कारण यह है कि इस जीव में एक ऐसी सम्पत्ति है जो अन्य पशुओं में नहीं है, यथा चिन्तन का एक ऐसा सहज स्रोत, जो अभी स्थिर अथवा स्पष्ट नहीं हो पाया है। लड़के अब लिखित बातों का अध्ययन करेंगे, परन्तु यह पूर्णतः छन्दबद्ध नहीं होगा। इसी के साथ पहले वीणा के स्वर मिलाने का कार्य (बजाना आवश्यक नहीं) होगा, और इसकी गणना उतनी ही होगी जो युद्ध तथा गृहस्थी के लिए उपयोगी है। खगोल–विज्ञान का भी कुछ ज्ञान इस समय आवश्यक है, ताकि पञ्चांग समझ में आ सकें। परन्तु इन शिक्षाओं को हमें विज्ञान नहीं मानना चाहिये, उसकी शिक्षा बाद में होती है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि अच्छा नागरिक बनने के लिए किसी व्यक्ति को इन विषयों का किस स्तर तक अध्ययन करना अपेक्षित है। किसी लड़के को दस वर्ष की आयु में पढ़ना तथा लिखना प्रारम्भ कर देना चाहिये। तथा इस पर तीन वर्षों का समय देना चाहिये। संगीत का प्रारम्भ तेरह वर्ष की आयु में हो जाना चाहिये और तीन वर्ष तक इसका अभ्यास करना चाहिये। इन वर्षों में ये विषय अनिवार्य रूप से पढ़ाये जाने चाहिये, भले ही लड़का अथवा उसका पिता इस दिशा में रुचि न रखता हो। यदि लड़के ठीक ढंग से पढ़ना तथा लिखना सीख जाय तो यह उनके लिए पर्याप्त है। केवल विशेष प्रतिभा सम्पन्न लड़कों को ही उच्चस्तर के प्रकर्ष

(excellence) के लिए प्रेरित करना चाहिये। उच्च अध्ययन समय-साध्य तथा श्रम-साध्य अवश्य है, परन्तु उससे समय एवं श्रम दोनों का अधिक अच्छा उपयोग हो जाता है।

लडके उचित समय आने पर उपयुक्त ढंग की कवितायें पढ़ेंगे, परन्तु गद्य घातक प्रतीत होता है। पद्य के सम्बन्ध में भी यह प्रश्न उठता है कि इसे जन समूह के समक्ष पढ़ा जाय, तथा सारे कवियों की कविताओं को कण्ठस्थ किया जाय, अथवा हम उनके उद्धरणों के संकलन रखें, तथा अपने शिष्यों से कहें कि वे इन्हें याद करें। परन्तु, जैसा कि बताया गया है, वास्तविक समस्या उत्पन्न होती है गद्य के शैक्षणिक उपयोग के सम्बन्ध में। विधान सम्बन्धी ग्रन्थों को तो पढ़ा जा सकता है, परन्तु दार्शनिकों तथा वैज्ञानिकों की रचनाओं का इस स्तर पर ऐसा उपयोग करने में कुछ कठिनाईयां हैं। ये सब वस्तुएं शिक्षा-विभाग के प्रमुख द्वारा नियन्त्रित होंगी, परन्तु क्रियात्मक प्रश्नों पर उसे विशेषज्ञ की सलाह माननी होगी। व्यापक सिद्धान्त पर वह विशेषज्ञों के अधीन नहीं होगा, परन्तु इन सिद्धान्तों को क्रियान्वित कैसे किया जाय, इस सम्बन्ध में वह उनसे सलाह लेगा।

अब हम उच्च अध्ययन के विषयों पर विचार करेंगे। प्रारम्भ हम गणित से करते हैं, जिसके तीन मुख्य विभाग हैं। अंकगणित, रेखागणित तथा खगोलविज्ञान। केवल वे ही थोड़े-से लोग इन विषयों का अन्त तक अध्ययन करेंगे जो रात्रिकालीन समिति (Nocturnal Council) के सदस्य बनने की योग्यता रखते हों, परन्तु वर्तमान सदस्यों में व्याप्त अज्ञानता को शूकरोचित कहा जा सकता है (८१९ द)। परन्तु यह अत्यन्त दयनीय स्थिति नहीं है। अधिकांश अध्यापक गणितीय विषयों पर विकृत ढंग से विचार करते हैं. तथा पूर्ण अज्ञान घोर अनिष्ट नहीं है वरन् अधिकांश शिक्षण तथा ज्ञान का विपरीत दिशा-निर्देशन अधिक अनिष्टकर है, अधिकांश लोग यह मान बैठे हैं कि सभी लम्बाइयां, चौड़ाइयां तथा गहराइयां सम्मेय (commensurable) हैं, जब कि गणितीय शिक्षा में वस्तुतः असम्मेयता की समस्या को सर्वप्रथम स्थान मिलना चाहिये। उससे उत्पन्न प्रश्नों का अध्ययन करना चर्मपट्टिका (backgammon) की क्रीड़ा से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। खगोल-विज्ञान के शिक्षण का भी इसी प्रकार संशोधन होना चाहिये।

दस वर्ष के उपरान्त के लड़के तथा लड़कियों की शिक्षा के बारे में प्लेटो ने जो प्रस्ताव रखें है उनके अभिप्राय के बारे में भ्रम होना अत्यन्त सरल है।

हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि उसके समय में इस आयु के बच्चों की शिक्षा के लिए सुव्यवस्थित विद्यालय नहीं होते थे। संगीत के पाठ के लिए बच्चों को एक अध्यापक के पास ले जाया जाता था, तो होमर के साहित्य के लिए किसी दूसरे अध्यापक के पास। इन सबको एक भवन में तथा एक निर्देशन में रहने वाले स्थायी अध्यापकों के साथ समन्वित करने की बात किसी के मष्तिष्क में उत्पन्न नहीं हो पायी थी, अकादमी की स्थापना द्वारा प्लेटो ने विश्वविद्यालय का आविष्कार किया था। अब उसने माध्यमिक पाठशालाओं का आविष्कार किया। फल यह हुआ कि यवन-युग में हमें सर्वत्र ऐसे विद्यालय मिलते हैं, तथा रोम के लोगों ने अन्य बातों के साथ इसे भी अपनाया। रोम वालों ने विलक्षण ढंग से (Schole) (स्कूल) शब्द का 'क्रीड़ा' (ludus) के रूप में अनुवाद किया मध्यकालीन व्याकरण विद्यालय तथा उससे उत्पन्न सभी बातों का प्रारम्भ यही है। हम देखेंगे कि यदि हमें प्लेटो के प्रभाव को ठीक ढंग से समझना है तो हम 'लाज' नामक संवाद की अवहेलना नहीं कर सकते, परन्तु अब हम प्लेटो के कार्य के एक अत्यन्त भिन्न पक्ष पर विचार करेंगे।

१६

संख्याओं का दर्शन
(THE PHILOSOPHY OF NUMBERS)

प्लेटो के दर्शन के सर्वप्रमुख सिद्धान्त की व्याख्या आज सरल नहीं है। जैसा कि हमने देखा है (अव. १६२), स्वयं प्लेटो ने इसे शब्दबद्ध करना नहीं चाहा, तथा एरिस्टॉटल इस सम्बन्ध में जो कुछ कहना है वही हमारा एक मात्र आधार है। यह स्थिति इस अवस्था में और भी चिन्तनीय हो जाती है जब यह ज्ञात होता है कि एरिस्टॉटल प्लेटो का अत्यन्त कटु आलोचक है, तथा उसके समय की अकादमी में प्लेटो के दर्शन के कुछ परिणाम देखने को मिले थे, उसी प्रकाश में वह प्लेटो के दर्शन को अधिकांशतः देखता है। एक स्थान पर वह शिकायत करता है कि उसके समय के लोगों ने गणित द्वारा दर्शन को विस्थापित कर दिया है।[1] चूंकि एरिस्टॉटल स्वयं जीव-विज्ञान वेत्ता (biologist) था, अतः यह उसके प्रतिकूल था, और वह इसके लिए प्लेटो के उपदेशों को उत्तरदायी ठहराता है। हम आगे देखेंगे कि उसके कथन में कितना औचित्य था।

एरिस्टॉटल के प्रामाण्य पर विचार करते समय हमें दो प्रकार के भेद करना आवश्यक है, सर्वप्रथम, हमें कम से कम प्लेटो के नाम से मिलने वाले सिद्धांतों तथा उन सिद्धान्तों में भेद करना होगा जो अस्पष्ट रूप से कुछ अन्य लोगों के माने जाते हैं, और जिस कथन-शैली के अन्तर्गत पाइथागोरियन्स तथा अकादमी के समकालीन सदस्य भी आ जाते हैं। द्वितीय, हमें ध्यानपूर्वक उन कथनों में भेद करना होगा जो तथ्यपरक होने के कारण एरिस्टॉटल को भली-भाँति ज्ञात थे, तथा अन्य जो इन तथ्यों पर एरिस्टॉटल की अपनी व्याख्या से युक्त

---

१. Met. A., ६, ११२ a, ३२ : "परन्तु आधुनिक विचारक गणित को दर्शन से अभिन्न मान रहे हैं।"

थे, उदाहरणार्थ, जब वह कहता है कि प्लेटो संख्याओं को अयोज्य (unaddible) मानता है, तो हमें उस पर विश्वास करना ही होगा। यदि यह सत्य नहीं होता, तथा उसके समकालीक लोगों द्वारा सत्य नहीं माना जाता, तो वह इन प्रकार के कथन न करता। दूसरी ओर, जब वह यह बताता है कि इससे प्लेटो का वस्तुतः तात्पर्य क्या था, तब हमें यह स्मरण रखना होगा कि वह ऐसे व्यक्तियों में से एक था जो दूसरे लोगों के अभिप्राय को उनकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह से समझते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण यह बात है कि जब वह किसी सिद्धान्त की ऐतिहासिक उत्पत्ति के बारे में कथन करता है, तो हमें ध्यान रखना होगा कि वह ऐसे विषयों के बारे में कह रहा है जिसके बारे में जानकारी के लिए अनुमान अथवा जनश्रुति के अतिरिक्त अन्य कोई आधार नहीं हैं। इन सुस्पष्ट भेदों की भी प्रायः उपेक्षा की जाती है। एरिस्टॉटल के जन्म लेने के वर्षों पूर्व साक्रेटीज़ तथा क्रेटिलस का प्लेटो पर क्या प्रभाव पड़ा था इस सम्बन्ध की परिकल्पनाओं को तथ्यात्मक प्रामाण्य के रूप में उद्धृत किया गया है, तथा साथ ही साथ प्लेटो के नाम के एक दर्शन का प्रतिपादन किया जाता है, परन्तु एरिस्टॉटल जिस दर्शन को स्वय प्लेटो के मुख से सुना हुआ बताता है उससे यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थलों पर भिन्न है।

स्थिति चाहे जो हो, एक बात स्पष्ट लगती है। एरिस्टॉटल प्लेटो के दर्शन के केवल एक ही रूप को जानता था, यथा जिसमें आकारों तथा संख्याओं का तादात्म्य हुआ था। उसके कथन से ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता कि प्लेटोनिज्म का इसके पूर्व कोई अन्य रूप भी था जिसमें आकारों का संख्याओं में तदात्मीकरण नहीं हुआ था। वह यह भी संकेत नहीं करता कि उसे यह ज्ञात है कि प्लेटो ने वृद्धावस्था में अपने दर्शन में कोई परिवर्तन या रूपान्तरण किया हो।[1] यह तो मात्र आधुनिक परिकल्पना है। एरिस्टॉटल प्लेटो के जीवन-काल के अन्तिम बीस वर्षों तक अकादमी का सदस्य था, तथा ऐसी कोई

---

१. M. ४. १०७८ b, ९ sqq. में जिन लोगों ने प्रथम बार यह कहा कि रूपों का अस्तित्व है उनसे प्लेटो का तदात्मीकरण करना संभव नहीं लगता:, यद्यपि यह मानना पड़ेगा कि उनके बारे में भी वही बातें कही गयी हैं जो A. ६ में प्लेटो के बारे में कही गयी हैं। मेरे विचार से इसका स्पष्टीकरण यह है कि दोनों प्रसंगों में ऐरिस्टॉटल 'फ़ीडो' (देखिये, पृ० २८०) के 'ज्ञान के प्रेमी' को ध्यान में रखकर विचार कर रहा है।

बात उसकी जानकारी के बिना नहीं हो सकती थी। हमें इसमें भी सन्देह नहीं कि यदि उसे इस प्रकार के किसी परिवर्तन की जानकारी रही होती तो उनका वह अवश्य उल्लेख करता। अपने गुरु की शिक्षाओं की असंगतिओं को छिपाने की उसकी आदत नहीं थी। यदि 'संख्याओं' का सिद्धान्त केवल वृद्धावस्था का विपर्यय होता (जैसा कि आधुनिक धारणा प्रतीत होती है) तो इसका उल्लेख करने मे एरिस्टॉटल को कोई कष्ट नहीं होता। जैसी कि वस्तुस्थिति है, उसके प्रामाण्य से यह स्पष्ट होता है कि प्लेटो कम से कम साठ वर्ष की आयु से, अथवा सम्भवतः और पहले से, इस मत को मानता था।

अतः यह निश्चित है कि प्लेटो ने आकारों तथा संख्याओं में तादात्म्य माना, परन्तु जब हम यह प्रश्न करते हैं कि इससे उसका क्या तात्पर्य था, तब हम तत्काल कठिनाइयों में पड़ते हैं। 'मेटाफिज़िक्स' के अन्तिम दो भागों (K M तथा N) में, जिनमें गणित सम्बन्धी विषयों तथा आकार एवं संख्या पर स्पष्टतः विचार किया गया है, प्लेटो के नाम का केवल एक बार उल्लेख किया गया है (१०८३ अ, ३३), तथा वहाँ पर कहा गया है कि उसके मत के अनुसार संख्याओं को 'एक दूसरे के साथ जोड़ा नहीं जा सकता है'। इससे पूर्व के एक गद्यांश (१०८० अ, १२ क्रमशः) में इस सिद्धान्त के तीन रूपों का उल्लेख किया गया है, जिसके अनुसार संख्याएँ पृथक् (separate) मानी गयी हैं, तथा वस्तुओं के प्रथम कारणों को केवल सम्भावित ही बताया गया है किन्तु कोई नाम नहीं बतलाया गया है। यह भी कहा गया है कि (१०८१) इनमें से एक रूप को किसी ने भी कभी स्वीकार नहीं किया है, परन्तु यदि एरिस्टॉटल इन भागों का लेखक है तो अन्य दो पाठों की भाँति इसका खण्डन करने से उसे कोई विमुख नहीं कर सकता। स्पष्ट है कि इससे यहाँ पर हम कोई अर्थ नहीं निकाल सकते और कोई, अर्थ निकालना असुरक्षित भी है। अतः प्रारम्भ में ही यदि हम भागों (केवल उस सिद्धान्त को छोड़कर जिसे प्लेटो के नाम से संयुक्त किया गया है) को प्रामाणिक मान लें तो यह निरापद नहीं होगा।

परन्तु 'मेटाफ़िज़िक्स' के प्रथम भाग (A ६) में एक अध्याय है जो अधिक आशास्पद प्रतीत होता है। यह एकमात्र ऐसा स्थल है जहाँ एरिस्टॉटल यह कहता है कि वह प्लेटो के दर्शन का सावधानी से चित्रण करता है, तथा इस दर्शन के प्रणेता के रूप में प्लेटो के नाम का उल्लेख करता है, एवं अन्य दर्शनों से इसे पृथक् करता है। वह प्लेटोवाद की पाइथागोरसवाद से तुलना

करता है, तथा कहता है कि प्रागोक्त ने पश्चादुक्त को अनेक अर्थों में अपनाया। परन्तु इसकी दो विशेषताओं के कारण इसे इटली के दर्शन से पृथक् माना जाता है। ये दो विभेदक तथ्य निम्नलिखित हैं : (१) पाइथागोरसवादियों का कहना था कि संख्यायें वस्तु हैं, परन्तु प्लेटो की न केवल यह मान्यता थी कि संवेद्य वस्तुयें संख्याओं से भिन्न हैं, वरन् वह यह भी मानता था कि ये गणित के विषय-वस्तुओं तथा संख्याओं से पृथक् एवं इनके मध्यवर्ती हैं। (२) पाइथागोरसवादी संख्याओं के द्रव्य को असीम तथा उनके रूप को ससीम मानते थे, प्लेटो संख्या के तत्त्वों को वृहद्-एवं लघु का एकम् तथा द्विक (dyad) मानता था।

इन्हीं दो तथ्यों को एरिस्टॉटल वस्तुतः प्लेटो की विशेषता मानता था क्योंकि वह अनुकरण (imitation) के स्थान पर भागग्रहण (participation) शब्द के प्रयोग को केवल शाब्दिक अन्तर के रूप में देखता है। वस्तुओं का आकारों में किस प्रकार अनुकरण अथवा भागग्रहण हो, इस प्रश्न को पाइथागोरसवादी तथा प्लेटो दोनों ही ने समाधान किये बिना ही छोड़ दिया। इस अध्याय की यहाँ रूपरेखा है, परन्तु एक लम्बे प्रक्षिप्तवाक्य के कारण कुछ भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रक्षिप्तवाक्य का अभिप्रायं यह प्रदर्शित करना है कि पाइथागोरसवादियों तथा प्लेटो के बीच जो प्रथम मत-भेद हुआ उसका कारण क्रेटिलस के माध्यम से पड़े हेरेक्लीटस के तथा साक्रेटीज़ के प्रभाव के कारण था। यह सत्य भी हो सकता है, और नहीं भी हो सकता है, परन्तु इस विषय पर एरिस्टॉटल के कथनों का वह स्तर नहीं रह पाता जो उसके द्वारा वर्णित विशेषताओं का है, जिन्हें उसने स्वयं प्लेटो के मुख से प्रतिपादित होते हुए सुना होगा।

(१) रूप, गणितगम्य तथा संवेद्य वस्तुएं

इन विशेषताओं में से प्रथम यह है कि जब पाइथागोरसवादियों ने कहा कि संख्याएं वस्तु हैं तो प्लेटो ने संवेद्य वस्तुओं को संख्याओं से भिन्न माना, तथा गणित की वस्तुओं को इन दोनों का मध्यवर्ती माना। यहाँ पर यह ध्यान देना आवश्यक है कि एरिस्टॉटल प्लेटो की पाइथागोरियनिज़्म से विषमता दिखा रहा है, न कि साक्रेटीज़ से, जिसका उल्लेख केवल पाइथागोरियन संख्या-सिद्धान्त से उसकी भिन्नता दिखाने के लिए किया गया है। यह भी द्रष्टव्य है कि सदा की भाँति यहाँ भी एरिस्टॉटल का साक्रेटीज़ से तात्पर्य 'फ़ीडो' के साक्रेटीज से है, यह स्पष्ट रूप से बताया गया है (९८७ ब, २९)

कि संख्याओं में तथा संवेद्य वस्तुओं में किये गये भेद तथा आकारों के सिद्धान्त के उपक्रम का कारण है कथनों के माध्यम से वस्तुओं पर विचार करने की प्रथा, और उस संवाद (९९ इ क्रमशः) में साक्रेटीज़ द्वारा प्रस्तावित नयी प्रणाली की ओर यह स्पष्टतम संकेत है। हमें यह भी बताया गया है कि साक्रेटीज़ के पूर्वगामियों को द्वन्द्वन्याय का ज्ञान नहीं था, और पाइथागोरियन्स के बारे में अभी ऊपर (९८७ अ, २०) जो कहा गया है उससे इनका स्पष्टीकरण हो जाता है कि उन लोगों ने वस्तुओं के 'किमेदम्' पर विचार करना तथा उनकी परिभाषा देना प्रारम्भ किया, परन्तु उनका यह कार्य कौशलहीन तथा अतात्विक ढंग का था। साक्रेटीज़ ने सर्वव्यापी परिभाषाओं का उपयोग किया, तथा समग्र प्रकृति पर विचार करने की अपेक्षा आचार-शास्त्र के विषयों में व्यस्त रहा। उसकी पद्धति के अपनाने के कारण ही प्लेटो के लिए यह असम्भव हो गया कि वह संख्याओं के वस्तुओं से तदात्मीकरण के पाइथागोरसवादी सिद्धान्त का अनुसरण करे। उसे हेरक्लाईटस के इस सिद्धान्त में विश्वास था कि संवेद्य वस्तुएं प्रवाह (flux) की स्थिति में हैं, तथा उसने देखा कि साक्रेटीज़ की परिभाषाएं इन पर लागू नहीं होतीं, अतः उसने संवेद्य वस्तुओं से भिन्न किसी वस्तु को आकार बताया, तथा कहा कि संवेद्य वस्तुएँ इन आकारों से पृथक हैं, तथा इनका नामकरण आकारों के अनुसार होता है क्योंकि एक ही आकार के नाम से मिलने वाली अनेक वस्तुओं का वह नाम इसलिए है क्योंकि वे इस आकार में भाग–ग्रहण करती हैं। इस अनुच्छेद में यह द्रष्टव्य है कि एरिस्टॉटल यहाँ पर संवेद्य वस्तुओं से आकारों के पृथकत्व पर बल देने की अपेक्षा आकारों से संवेद्य वस्तुओं के भेद पर बल देता है, और उसका मन्तव्य यह है कि यही प्लेटो को साक्रेटीज़ से पृथक् करता है। हम यह देख चुके हैं कि क्यों साक्रेटीज ने संवेद्य वस्तुओं की आकारों से पृथक् कोई सत्ता नहीं मानी, तथा यहाँ पर एरिस्टॉटल की भाषा से इस मत की सम्पुष्टि होती है। जैसा कि साक्रेटीज़ प्रायः कहता है, यह कथन भी उतना ही सत्य है कि आकार संवेद्य वस्तुओं से भिन्न हैं, परन्तु यह महत्त्वपूर्ण है कि इस बात का उल्लेख करने का उसे जब प्रथम बार अवसर मिलता है तब वह इस प्रभेद के दूसरे पक्ष पर बल देता है।

एरिस्टॉटल जिसे आकारों की 'प्रस्तावना' कहता है उसका संवेद्य वस्तुओं के इस पृथक्करण से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस शब्द से यह आपादित नहीं होता कि प्लेटो ने आकारों का अन्वेषण किया। मैं समझता हूँ कि यह

रूपक रंगमंच पर लाने या प्रस्तुत करने के लिए प्रयुक्त शब्द से निष्पन्न हुआ है, तथा इससे यह संसूचित होता है कि साक्रेटीज़ के आचार-शास्त्रीय परि-प्रश्नों के कारण यह मानना आवश्यक हो गया कि कुछ सामान्य ऐसे भी है जो संख्याएं नहो. और ये सामान्य संवेद्य वस्तुओं से उसी भाँति पृथक् होंगे जैसे संख्याएं पृथक् थीं। उदाहरणार्थ पाइथेगोरियन्स ने न्याय (Justice) को वर्ग-संख्या कह कर परिभाषित किया था, परन्तु साक्रेटीज़ ने दिखाया कि हमें न्याय के एक विशेष रूप का अभ्युपगम करना होगा। इसका उल्लेख प्लेटो को दीक्षित करने के लिए नहीं किया गया है। साक्रेटीज़ तथा प्लेटो के बीच एक मात्र यही भेद प्रतीत होता है कि प्लेटो ने संवेद्य वस्तुओं का आकारों से पृथक-करण किया, जबकि साक्रेटीज़ ने ऐसा नहीं किया था। दसवें भाग (१०७८ ब, १७) में यह विस्तार से वर्णित है, यद्यपि वहाँ पर (१०८६ ब, ३) यह भी कहा गया है कि इस प्रभेद का प्रेरक साक्रेटीज़ ही था। साक्रेटीज़ इस स्तर से आगे नहीं बढ़ा तथा इसके लिए उसकी प्रशंसा की गयी है, जिसका तात्पर्य यह है कि उसका सिद्धान्त अधिकांशतः स्वय एरिस्टॉटल के सिद्धान्त के समान ही था। इसके ऐतिहासिक होने की सम्भावना नहीं है, परन्तु 'फ़ीडो' के द्वितीय खण्ड की, जहाँ पर रूप निश्चित रूपेण वस्तुओं के अन्त-र्गत हैं, यही व्याख्या एरिस्टॉटल के मतानुसार वैध रही होगी। मेरी समझ से साक्रेटीज़ को 'आकारों' का अन्वेषी मानने की अपेक्षा 'सामान्यों' (universal) का अन्वेषी मानना अधिक गम्भीर कालगणना-भ्रम है, 'सामान्य' शब्द का उस समय तक आविष्कार नहीं हुआ था। साक्रेटीज़ को सम्प्रत्यय के बारे में कथन करते हुए बताना तो और भी अनुचित है[1] वस्तुवाद (Realism) सम्प्रत्यय वाद (conceptualism) की अपेक्षा प्राचीन है, तथा किसी ने सम्प्रत्ययों को कभी अभिभावित किया हो, इसमें मुझे अत्यन्त सन्देह है। जैसा कि हमने देखा है (अव० १९५) 'पार्मेनीडीज़' में अंशभागिता की समस्या के समाधान हेतु प्रारम्भ में सम्प्रत्ययवाद को प्रस्तुत किया गया है, परन्तु तत्काल इसका खण्डन भी किया जाय।

अतएव यह प्रासंगिक कथन अधिक से अधिक एरिस्टॉटल द्वारा इतिहास का अपने दृष्टिकोण से परिकल्पनात्मक पुर्नविधान हो सकता है, तथा यह उसके

---

१. 'लोगस' (logos) शब्द का 'सम्प्रत्यय' अर्थ सम्भव नहीं। आज तक 'सम्प्रत्यय' का पर्यायवाचो कोई ग्रीक शब्द यदि उपलब्ध है तो वह है Noema (विचारण)।

इस निश्चित कथन पर बहुत कम प्रकाश डालता है कि प्लेटो ने संख्याओं को न केवल संवेद्य वस्तुओं से भिन्न बताया, वरन् गणितीय विषयों को उनका मध्यवर्ती बताया। वस्तुतः हमें एरिस्टॉटल के इस कथन की व्याख्या करनी है, न कि इस पर उसकी ऐतिहासिक टिप्पणियों की। वह हमें यह भी बताता है कि गणित के विषयों का संवेद्य वस्तुओं से यह भेद है कि प्रागोक्त सनातन तथा अविचल हैं, तथा आकारों से यह भेद है कि वे अनेक हैं, जबकि प्रत्येक आकार एक तथा अद्वितीय (unique) है। यदि हम इसकी व्याख्या कर सकें, तो प्लेटो के पृथक्करणवाद का वास्तविक तात्पर्य समझ सकेंगे।

संवेद्य वस्तुओं तथा गणित के विषयों में जो भेद है वह अत्यन्त सरल ढंग का है, तथा 'फ़ीडो' में इस पर विस्तार से विचार किया गया है। गणितज्ञ वस्तुतः किसी ऐसे संवेद्य रेखाचित्र की बात नहीं करता जिसे वह जमीन पर खींचता हो, संवेद्य वृत्त तो उसके वास्तविक अभिप्राय की स्थूल 'प्रतिमा' मात्र है। परन्तु 'फ़ीडो' में तो गणित के विषयों को निश्चित रूपेण 'आकार' माना गया है, और अब हमारे सामने प्रश्न यह है कि उन्हें रूपों से भिन्न बताने का तात्पर्य क्या है। हम यह नहीं मान सकते कि इसका तात्पर्य यह है कि गणितीय रूप अन्य रूपों की अपेक्षा निम्न स्तर के हैं। प्लेटो ऐसा कभी भी नहीं सोच सकता, तथा वास्तविकता तो यह है उन्हें अधिक उच्च स्तर का माना जाता है। गणितज्ञ की तर्कना का विषय संवेद्य वृत्त नहीं है परन्तु यह 'शुद्ध वृत्त' वृत्तत्व का रूप भी नहीं है। वह छोटे तथा बड़े व्यास के वृत्त तथा आपस के दो प्रतिच्छेदी वृत्तों के सम्बन्ध में भी कथन करता है। अतः गणितीय तर्कना को अनेक वृत्तों पर विचार करना होता है, जबकि शुद्ध वृत्त एक ही हो सकता है। उसी भाँति जिस त्रिकोण के बारे में हम विचार करते हैं वह या तो समबाहु होगा, या समद्विबाहुक, या विषमबाहु, परन्तु इनमें से कोई भी शुद्ध त्रिकोण नहीं है। वस्तुतः ज्यामितिकार के वृत्त तथा त्रिकोण इत्यादि ही वे नाना वस्तुएँ (many) हैं जो रूपों में भाग लेती हैं।[1] और यह बात आकृतियों की अपेक्षा संख्याओं के लिए अधिक सत्य सिद्ध होती है, क्योंकि आकृतियों का देशीय धर्म कुछ न कुछ संवेद्यात्मक अवश्य है। हम चार के लिए दो को दो

---

१. 'फ़ीडो' (९४ स) में इस सिद्धान्त का सम्भवतः एक अचेतन संकेत है, जहाँ साक्रेटीज 'स्वयं के सदृश' की बात करता है। ये सब समान संवेदय वस्तुओं अथवा आत्म-सदृश से तदात्मीकृत नहीं हैं। सम्भवतः यहाँ पर समद्विबाहु त्रिभुज के आधार पर दो कोणों से अभिप्राय है।

से जोड़ते हैं, मानों अनेक द्वित्वों का अस्तित्व है। यह स्पष्ट है कि इन द्वित्वों को हम कंकण अथवा गणक नहीं मानते जिसका द्वित्वों के प्रतीक के रूप में प्रयोग करें। परन्तु हम संख्या को भी दो नहीं मानते। द्वयम् दो का रूप अथवा द्विक् अनेक नहीं, वरन् एक ही है। अंकगणितज्ञ के द्विक् तो ज्यामितिकार के वृत्तों की अपेक्षा और भी कम संवेद्य हैं, शुद्ध बुद्धिगम्य के निकटतम पहुँचने का इनकी अपेक्षा कोई अन्य मार्ग नहीं। इस दृष्टिकोण से देखने पर प्लेटो का पृथक्करण उतना अधिक स्वेच्छात्मक नहीं है, जितना एरिस्टॉटल उसे समझता है।

इस प्रभेद से उस सिद्धान्त का वास्तविक स्पष्टीकरण उपलब्ध होता है जिसे एरिस्टॉटल प्लेटो का सिद्धान्त बताता है, यथा, संख्याएं 'असंयोज्य' है।[1] जब हम यह कहते हैं कि दो और दो मिलकर चार होते हैं तो इसका तात्पर्य यह होता है कि किसी प्रकार की दो इकाइयों को उसी प्रकार की दो इकाइयों से जोड़ने पर वह उसी प्रकार की चार इकाइयों के बराबर हो जाते हैं, हमारा यह तात्पर्य नहीं होता कि दो संख्या को दो संख्या से जोड़ने पर वह संख्या चार हो जाती है। वह निरर्थक होगा, क्योंकि दो संख्या के अन्तर्गत दो इकाइयां नहीं होतीं, न तो चार संख्या चार इकाइयों से बनती है। प्रत्येक संख्या सामान्य (universal) है, तथा सभी सामान्य एकम् तथा अनन्य है। जिन इकाईयों को हम 'द्विक्' कहते हैं वे किंचिद्प्रकारेण दो संख्या में भाग-ग्रहण करती हैं, परन्तु द्विक् का उन संख्याओं से तादात्म्य नहीं है। द्विक् संख्या केवल एक ही है। इससे पुनः यह निष्पन्न होता है कि संख्याओं का आपस का सम्बन्ध इस प्रकार का नहीं है जिसे किसी भी संयोज्यता सूत्र के द्वारा अभिव्यक्त किया जा सके। पाँच संख्या का यह अर्थ नहीं है कि वह चार संख्या धन एक इकाई है। चार तथा पाँच के बीच का सम्बन्ध केवल पूर्ववर्तिता तथा पश्चता का सम्बन्ध है। तब दो और दो जिनसे चार बनता है, वे क्या हैं? इसका उत्तर हमें तब मिलेगा जब हम यह स्मरण रखें कि गणितीय विज्ञानों के 'विशेष' भी उसी प्रकार बुद्धि के विषय हैं जिस प्रकार सामान्य बुद्धि के विषय हैं। हम विशेष; 'द्विकों' के बारे में बिना किसी संवेद्य अधिष्ठान (substratum) में निहित हुए विचार कर सकते हैं। इस प्रकार चार बनाने वाले 'दो और दो' एक ओर उन दो-दो कंकणों' से भिन्न हैं जिनसे चार कंकण बनते हैं, तथा दूसरी ओर अनन्य सामान्य-शुद्ध दो संख्या-से भी भिन्न हैं।

---

१. प्रोफेसर कुक विल्सन के classical Review, Vol. xviiIi (1904) pp. 247 sqq में लेख का मैं यहाँ पर बहुत ऋणी हूँ।

अतः यह स्पष्ट है कि संख्याएं अनन्य रूप हैं, तथा हमें यह मानने के लिए भी कुछ आधार मिले हैं कि वे सर्वश्रेष्ठ अर्थ में रूप हैं। एरिस्टॉटल निस्सन्देह इसी मत को प्लेटो का बताता है, परन्तु जब तक हम संख्या के रूपों के अन्य रूपों से सम्बन्ध के बारे में विचार-विमर्श न कर लें, तब तक इसे पूर्णतया समझ नहीं सकते। इसे समझने के लिए हमें उस विषय पर विचार करना होगा जिसे एरिस्टॉटल प्लेटो के दर्शन की दूसरी विशेषता मानता है।

(२) एकम् तथा अनिर्धार्य द्वयक

पाइथागोरियन्स ने सीमा (Limit) तथा असीम अथवा सतत् (continuous) को संख्या के मूल तत्त्वों के रूप में माना था, अतः उन्हें वस्तुओं का भी मूल तत्त्व माना था। प्लेटो ने इसके स्थान पर वृहद् - तथा - लघु के एकम् तथा द्विक को माना। एरिस्टॉटल के अनुसार दोनों में एक मात्र भेद यह है कि पाइथागोरियन्स असीम एकल (single) था, जबकि प्लेटो ने संख्याओं के उपादान पुद्गल (matter) को तथा इसी कारण वस्तुओं के उपादान पुद्गल को, द्विकधर्मी बताया। जैसाकि एरिस्टॉटल अन्यत्र उल्लेख करता है, प्लेटो ने संख्याओं तथा वस्तुओं का जो पृथक्करण किया है उससे अनुमान लगता है कि संख्याओं तथा वस्तुओं दोनों के ही अन्तर्गत उपादान होगा। इसे अनिश्चित अथवा अनिर्धार्य (indeterminate) द्वयक कहा जाता है।[1] यह निर्धार्य अथवा नियत (determinate) द्विक् से भिन्न है। दो संख्या नियत द्वयक है। उस द्वयक से संख्याओं की उत्पत्ति होती है, जिस प्रकार आधार-द्रव्य (matrix) से उत्पत्ति होती है।[2]

१. इस शब्द के प्रयोग को प्लेटो का नाम लेकर अभिहित नहीं किया गया है, परन्तु Met. १०६१a, ४ से यह विवक्षित होता है कि उसने इसका प्रयोग किया था

२. एरिस्टॉटल ने संख्याओं के उत्पन्न होने के ढंग का जो विवरण दिया है यह अत्यन्त अस्पष्ट है। जार्ज ए. जान्स्टन महोदय ने इस विषय की एक अत्यन्त रोचक व्याख्या प्रस्तुत की है, तथा मैंने उसको उद्धृत करने की उनसे अनुमति प्राप्त कर ली है। हमने देखा है (पृ. ४३, टि० १) कि आनुक्रमिक आयत संख्याओं के पार्श्वों (यथा, सम संख्याओं की श्रेणियों का योग) के मध्य का अनुपात सदा परिवर्तित होता रहता है। यह एक द्विक् है, क्योंकि अनुपात सदा दो संख्याओं के मध्य का अनुपात है, यह अनिश्चित है, क्योंकि अनुपात सदा परिवर्तनशील है। इसके विपरीत एकम् आनुक्रमिक आयत संख्याओं २, ६, १२ इत्यादि का वर्गमूल है, जो २ (२ : १), ६ (३:२), १२ (४: ३), इत्यादि के पार्श्वों के बीच को मध्य-पद (means) है।

अब कम से कम यह तो स्पष्ट हो गया कि अनियत द्वयक शब्द सातत्य के लिए एक नया पर्याय है, तथा यह अपने पुराने पर्याय 'असीम' की अपेक्षा अपनी द्विविध प्रकृति को अधिक स्पष्टता से अभिव्यक्त करता है। इसके अन्तर्गत न केवल अनन्त 'वृद्धि' (increase) सम्भव है, वरन् अनन्त ह्रास (diminution) भी।[1] इसी कारण इसे वृहद्-तथा-लघु (Great-and-small) कहा जाता है। जिस नये प्रत्यय को प्लेटो अभिव्यक्त करना चाहता था वह था 'अत्यणु' (infinitesimal, ment petit) का विचार। इस सम्प्रत्यय के प्रारम्भ करने से हमें संख्या के एक सर्वथा नवीन मत में अन्तर्ग्रस्त होना पड़ता है। परन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं, क्योंकि 'रिपब्लिक' में हमने देखा है कि द्वन्द्वन्याय विशेष विज्ञानों की प्राक्कल्पनाएं को विनष्ट करता है, तथा यह भी पाया कि अंकगणित की प्राक्कल्पना स्वाभाविक पूर्ण संख्याओं (integers) की शृंखला है, तथा प्रत्येक पूर्ण संख्या में अनेक समान तथा अविभाज्य इकाइयां हैं, तथा प्रत्येक संख्या सम अथवा असम है। हमारे वर्तमान दृष्टिकोण के अनुसार ये इकाइयां तथा इनके योग मध्यवर्ती क्षेत्र के अन्तर्गत हैं। ये संवेद्य भले न हो, परन्तु ये सही अर्थ में संख्या के सम्प्रत्यय को इतना विस्तीर्ण कर सकते हैं जिससे परिमाण (quantities) भी इसके अन्तर्गत आ जाय। जो इकाइयों के योग नहीं और न तो सम या असम ही हैं, हमने देखा है कि असम्मेयों के अध्ययन के कारण इस वितरण की आवश्यकता हुई। 'थीटिटस' में द्विघात करणीगत संख्याओं (quadratic surds) के अध्ययन के महत्त्वपूर्ण स्थान से इसका संकेत मिलता है। यदि अपरिमेयों (irrationals) को एक बार भी संख्या मान लिया गया, तो अंक गणित की पुरानी प्राक्कल्पना खण्डित हो जाती है।

मेरी समझ से इसका यह अर्थ नहीं है कि हम संख्यात्मक शृंखला को ही सतत् बना रहे हैं, क्योंकि उस दशा में संख्या को धन एवं ऋण, जो कि अनिश्चित द्विक् है, की मात्र क्षमता (potentiality) से अभिन्न मानना पड़ेगा परन्तु इससे अविभाज्य इकाई से मुक्ति अवश्य मिल जाती है, जो अपरिमेय संख्याओं से सम्बन्धित सभी समस्याओं का मूल थी। अब हम १ के स्थान पर शून्य (०) की संख्यात्मक शृंखला का प्रारम्भ मान सकते हैं, तथा अब २ तथा ५ जैसे परिमाणों को संख्या न कहने का कोई आधार नहीं। प्लेटो ने वस्तुतः इसी पदक्रम का अनुसरण किया, इस बात को सिद्ध करने का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण यह है कि एरिस्टॉटल उसके विरुद्ध सदा यह आग्रह करता है कि संख्या का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं, वरन् इकाइयों से बनी संख्याओं का ही अस्तित्व है।

इससे यह अनुमान लगता है कि प्लेटो की यह मान्यता थी कि संख्याओं की स्वतन्त्र सत्ता है।

रेखागणित की प्राक्कल्पनाओं का भी ठीक इसी प्रकार से खण्डन किया गया। संख्या सम्बन्धी नवीन मत के कारण वह दीवार वस्तुत: टूट चुकी थी जिसे ज़ीनों ने अंकगणित तथा रेखागणित के मध्य खड़ा किया था, तथा बिन्दु सम्बन्धी उस प्राचीन मत का खण्डन हो चुका था जिसके अनुसार बिन्दु को स्थिति-वान् इकाई कहा गया था। इस विषय पर प्लेटो के मौखिक उपदेश के सम्बन्ध में एरिस्टॉटल ने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जानकारी सुरक्षित रखी है। वह कहता है कि प्लेटो ने बिन्दु को केवल एक 'रेखागणितीय मताग्रह' मानने के विचार पर सर्वथा आपत्ति की, तथा बिन्दु को 'रेखा का प्रारम्भ' (the origin of a line) कहना अधिक उचित समझा।[1] इसका निहितार्थ यह है कि रेखा उस बिन्दु से उत्पन्न होती है जिसे हम अन्य स्रोतों की जानकारी के आधार पर प्रवाह (fluxion) कहते हैं।[2] यह उस सिद्धान्त के अनुरूप है जिसके अनुसार संख्यात्मक शृंखला का प्रारम्भ इकाई से न होकर शून्य से होता है। उसी प्रकार से समतल (plane) अपनी रेखा तथा धन का प्रवाह है। एरिस्टॉटल का कहना है कि इसके विपरीत प्लेटो प्राय: अदृश्य रेखाओं का अभ्युपगम करता है।[3] एरिस्टॉटल कहता है कि इस सिद्धान्त का खण्डन करना सरल है, परन्तु परवर्ती भाष्यकार इस पर कोई प्रकाश नहीं डालते। इसमें सन्देह नहीं कि यह शब्द विरोधाभासी है, परन्तु 'अत्यणु' (infinitesimals) की अपेक्षा अधिक विरोधाभासी नहीं। प्लेटो का स्पष्ट अभिप्राय यह था कि यदि हम अदृश्य इकाइयों को अभ्युपगमित करें, तथा '1' को संख्यात्मक शृंखलाओं का प्रारम्भ मानें, तो दैशिक इकाई के रूप में अदृश्य अथवा अत्यणु रेखाओं को मानने के लिए भी हम प्रतिबद्ध हैं। इन सब बातों से हम न्यूटन तथा लाइबनित्ज़ के बहुत सन्निकट पहुँच जाते हैं, तथा इसमें हम ऐतिहासिक संयोजन भी पा सकते हैं।[4]

---

१. Met. A. ९९२ a I
२. Phys. p. ७२२, २८ (डील्स) में सिम्पिलसियस।
३. Met, ibid.
४. आर्किमिडीज़ के Discourrse on Method नामक ग्रन्थ के हाल ही में उपलब्धहोने से ग्रीक लोगों में अत्यणु की प्रणाली के विकास पर आशातीत प्रकाश पड़ा है। देखिये, मिल्हाड Nouvelles etudes पृ. १३४

क्रमश: पृष्ठ ३५०

हम जब रेखागणित पर इस ढँग से विचार करते हैं, तो देखते हैं कि इसका दैशिक (spatial) धर्म असम्बद्ध होता जा रहा है। यह अकगणित का ही एक रूप बन जाता है, जो दैशिक अथवा अन्य सातत्य पर सामान्यतया विचार करती है। 'एपिनोमिस' (Epinomis) में इस मत का पूर्ण विकसित रूप पाया जाता है। इसमें (९९० द) कहा गया है कि रेखागणित (जिसे प्रसन्गवशात् एक अत्यन्त असंगत नामकरण बताया गया है) वस्तुत: प्रकृत्या एक दूसरे से अतुल्य संख्याओं के सतहों के सन्दर्भ द्वारा साम्यान्वेषण (assimilation) है। यह 'थीटिटस' (१४८ अ) में वर्णित अंश का केवल विकसित रूप है। इस प्रसंग का तात्पर्य यह है कि कुछ संख्याओं की 'लम्वाइयाँ' असम्मेय हैं, परन्तु वे जिन सतहों (surfaces) की मूल हैं उन सतहों से सम्मेय हैं। ठीक इसी प्रकार से धनमिति (Stereometry) को एक ऐसी कला कहा जाता है जिसके द्वारा कुछ ऐसी संख्याएँ, जो प्रकृत्या समतुल्य नहीं है, उनकी किसी तृतीय क्षमता पर उठाकर साम्यान्वेषित किया जा सकता है। एरिस्टॉटल रेखागणित तथा अंकगणित के मिश्रीकरण पर बहुत आपत्ति करता है। उसका आग्रह है कि प्रत्येक विज्ञान की उचित प्राक्कल्पनाओं को छोड़ना नहीं चाहिये रेखागणित के किसी साध्य को अंकगणित से सिद्ध करना अवैध है। हम यह अनुमान कर सकते हैं कि प्लेटो की इससे भिन्न धारणा थी

प्लेटो के मित्र आर्किटस का एक खण्ड भी उपलब्ध है जिससे यह वृत्तान्त अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है, तथा यह सिद्ध होता है कि उस युग में गणित सम्बन्धी चिन्तन इसी दिशा की ओर उन्मुख हो रहा था। वह कहता ह (खण्ड ४) :

मैं समझता हूँ कि जहाँ तक प्रज्ञान का प्रश्न है, अंकगणित अन्य सभी कलाओं को, विशेष रूप से रेखागणित को, अतिक्रमित करती है, क्योंकि यह जिस विषय का अध्ययन करना चाहती है उस पर अपेक्षाकृत अधिक स्पष्टता से विचार कर सकती है .. जहाँ पर रेखागणित असफल हो जाती है, वहाँ भी अंकगणित उसी प्रकार से अपने निदर्शनों को पूर्ण करती है। यदि हम अंकों

पृष्ठ ३४१ से आगे
क्रमश:, तथा विशेष रूप से पृष्ठ १५४. कैवेलरी (Cavaliori) की 'अविभाज्यों की विधि' ग्रीक तथा आधुनिक उच्च गणित के बीच संयोजक कड़ी है। न्यूटन तथा लाइबनीज़ को गणित का ज्ञान वैलिस तथा वैरो (Wallis and Barrow) से उपलब्ध हुआ। वैलिस rhusis (विमोचन) शब्द का अनुवाद प्रवाह (fluxus) करते है।

(figures) के अध्ययन जैसा कोई विषय माने तो नि:सन्देह अंकों के भी निदर्शन को पूर्ण करती है ।[1]

अतएव, अन्ततोगत्वा रेखागणितीय अंकों को संख्याओं में समनीयत किया जाता है, तथा संख्याएं एकम् एवं अनिर्धार्य द्वयक से उत्पन्न होती है, यहाँ पर नवीनता यह है कि रूपों में भी भौतिक तत्त्व का अभिग्रहण किया गया है, यद्यपि वह तत्व अमूर्त सातत्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है । इसका महत्त्व यह है कि इससे बुद्धिगम्य आकारों की संवेद्य वस्तुओं से विसंवादिता (disparity) कुछ कम होने लगती है । यह द्रष्टव्य है कि प्लेटो ने चूंकि संख्याओं का संवेद्य वस्तुओं से पृथक्करण किया इसीलिए उसके लिए यह सम्भव हो सका कि वह आभास-जगत् के औचित्य को सिद्ध कर सके । इसे हम पूर्णरूप से तभी समझ सकेंगे जब अगले अध्याय को पढ़ लेंगे । इस समय हम केवल इतना ही ध्यान में रख सकते हैं कि जिस प्रकार संवेद्य वस्तुओं को उत्पन्न करने के लिए रूप वृद्ध-तथा-लघु से संयुक्त हो जाते हैं, उसी प्रकार सख्याओं को उत्पन्न करने के लिए एकम् अनिर्धार्य द्वयक से सयुक्त हो जाता है । उस अर्थ में संख्याओं के तत्त्व वस्तुओं के तत्त्व थे । एरिस्टॉटल इसका इसी ढंग से वर्णन करता है । तथा यह परम सौभाग्य की बात है कि हमें एक ऐसा संवाद उपलब्ध है जो अवश्य ही उस समय लिखा गया होगा जब यह अकादमी का सदस्य रहा होगा इस संवाद में यद्यपि प्रमुख प्रतिपाद्य विषय कुछ दूसरा है, तथा यह रूप-संख्या के सिद्धान्त को सर्वथा परिवर्जित करता है, परन्तु इसमें प्लेटो के तत्कालीन चिन्तन के कुछ संकेत अवश्य उपलब्ध हैं । मेरा तात्पर्य 'फिलेबस (Philebus) नामक संवाद से है, जो प्लेटो की परिपक्वावस्था की रचनाओं में से एक है ।

फिलेबस (The Philebus)

एरिस्टॉटल के ग्रन्थ एथिक्स (Ethics) की कुछ चर्चाओं से ऐसे संकेत मिलते हैं जिनके आधार पर हम यह जानते हैं कि 'फिलेबस' (Philebus) की रचना का उपक्रम कैसे हुआ । यूडॉक्सस ने अकादमी में यह अपसिद्धान्त (heresy) प्रचारित किया था कि सुख ही शुभम् है । इस सिद्धान्त को सम्भवत: उसने डेमॉक्रिटस के सम्प्रदाय से अपनाया था, जैसा कि बाद में एपिक्युरस ने किया । जैसा कि स्वाभाविक था, इससे पर्याप्त विवाद उत्पन्न हुआ, तथा विशेषतया स्प्यूसियस ने यूडॉक्सस का घोर विरोध किया । उसका तो यहाँ तक

१. Diels, Vors. i. p. ३३७, ६.

कहना था कि सुख अशुभ (evil) है। इस विवाद में प्लेटो ने भी रुचि ली, तथा उसने वह कार्य किया जिसे उसने वरसों से छोड रखा था; उसने इस विषय पर एक साक्रेट्रिज़ संवाद लिखा। इस विषय पर परिचर्चा करना साक्रेटीज़ के सर्वथा योग्य था, तथा इस संवाद के अधिकांश भाग में ऐसी कोई बात नहीं कही गयी है जिसे 'जार्जियम' अथवा 'फ़ीडो' का साक्रेटीज़ कहने में असमर्थ रहा हो। दूसरी ओर, प्लेटो की नाटकीय दक्षता अब वैसी नहीं रही जैसी पहले थी, तथा इस संवाद में साक्रेटीज़ की शैली की विशेषताओं के पुट प्रारम्भिक संवादों की अपेक्षा कम हैं. यद्यपि हम जितनी आशा करते हैं उससे कहीं अधिक पुट इसमें उपलब्ध है। इसमें भी सन्देह नहीं कि इसके स्वर कभी-कभी इलिया के विदेशी के स्वर जैसे लगते हैं, और कहीं पर 'लाज' के एथेन्स निवासी विदेशी के प्रतीत होते हैं, तथा यहाँ पर हमारा यह कथन सम्भवतः असंगत न होगा कि इन स्थलों पर हम प्लेटो के व्यक्तिगत विचार का कुछ संकेत पाते हैं। इस समय हम इस संवाद के केवल उसी स्थल को संक्षेप में उपस्थित करना चाहते हैं जिसका चर्चित विषय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। सुख के सिद्धान्त का अपने आप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है, परन्तु इसका पर्याप्त विवेचन तभी हो सकता है जब हम इस विषय पर यूडॉक्सस तथा स्प्यूसिपस (Speusippos) के दृष्टिकोणों तथा एरिस्टॉटल द्वारा की गयी उनकी आलोचनाओं को भी ध्यान में रखकर विचार करें। 'फिलेबस' को पढ़ने के बाद ऐसा अनुभव होता है कि हम अकादमी के नये सदस्यों के विवाद पर विचार कर रहे हैं, जिसमें प्लेटो विनीत भाव से भाग लेता है, परन्तु जव वह इस वार्तालाप को पांचवी शताब्दी में स्थानान्तरित कर देता है, तथा साक्रेटीज़ को प्रमुख वक्ता बना देता है तब वह स्वयं इस में बहुत अधिक प्रतिबद्ध नहीं होता।

संवाद प्रारम्भ होने के पूर्व साक्रेटीज़ तथा 'फिलेबस' (एक युवक जिसके बारे में कोई जानकारी नहीं) आपस में 'शुभम्' पर वार्तालाप कर रहे थे। फिलेबस का कहना था कि सुख ही 'शुभम्' है, जबकि साक्रेटीज़ ने इसे विचार अथवा प्रज्ञान से अभिन्न माना। फिलेबस इस प्रश्न पर अधिक तर्क देने में असमर्थता प्रकट करता है, तथा उसके स्थान पर प्रोटार्कस (Protarchos, एक अन्य युवक जिसके बारे में कोई जानकारी नहीं।)[1] सुख के

१. उसे 'कैलियस का पुत्र' कह कर सम्बोधित किया गया है (१९ ब), परन्तु इसे हिप्पोनिकस के पुत्र कैलियस के दो पुत्रों में से एक के साथ अभिन्न मानने का कोई आधार नहीं है। 'एपॉलाजी' (२० ब) में उल्लेख है कि कैलियस के दोनों पुत्र ई० पू० ३९९ में यूनस (Euenos) के शिष्य थे।

सिद्धान्त के पक्ष में तर्क करने के लिए उपस्थित होता है। यह कम उल्लेखनीय बात नहीं है कि इस संवाद का नामकरण उस व्यक्ति के आधार पर हुआ है जिसने वस्तुतः संवाद में कोई भाग नहीं लिया।

दोनों पक्षों को निम्नलिखित रूप में अधिक स्पष्ट ढंग से व्यक्त किया जा सकता है। फिलेवस का मत यह है कि सुख का अत्यन्त व्यापक अर्थ लिया जाय, जिसके अन्तर्गत हर्ष, प्रसन्नता इत्यादि भी आवे तो यह बिना अपवाद के सभी जीवों का परम शुभ है।[1] साक्रेटीज़ की मान्यता है कि यदि विचार (thought) को अत्यन्त व्यापक अर्थ में लिया जाय जिसके अन्तर्गत स्मृति, सद्विश्वास, यर्थाथ तर्कना इत्यादि आते हैं तो यह सभी चिन्तन-सक्षम जीवों का परम शुभ है। दोनों पक्ष इस बात में सहमत हैं कि आनन्द आत्मा की प्रकृति या स्वभाव है।[2] यह भी संकेत किया गया है कि आत्मा की एक तीसरी प्रकृति भी सम्भव है जो सुख तथा विचार दोनों की अपेक्षा श्रेष्ठतर हो, और इस स्थिति में इन दोनों में से जो भी उसके अधिक निकट का सम्बन्धी होगा उसे वरीयता देनी होगी (११ अ - १२ अ)।

प्रारम्भ में साक्रेटीज़ हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित करता है कि सुख में अत्यन्त वैभिन्य तथा विरोध सम्भव है, अतः हम एक ही प्रकार के विधेय का उन सब पर प्रयोग नहीं कर सकते हैं। परन्तु शीघ्र ही ऐसा अनुभव होता है कि इस विषय का और अधिक गम्भीरता से विवेचन आवश्यक है। वस्तुतः जब तक हम एकम् तथा अनेकम् के प्राचीन किन्तु दुरूह प्रश्न के बारे में कोई निश्चित धारणा नहीं बना लेते, तब तक प्रगति की कोई सम्भावना नहीं। इससे हमारा तात्पर्य उन्हीं विषयों के वृहद् तथा लघु, भारी तथा हल्के जैसे विरोधी धर्मों के विधान की पहेली से नहीं है। वह तो बच्चों का खेल है, तथा इसका समाधान बहुत पहले से जनता को ज्ञात हो चुका है। इससे हमारा तात्पर्य उस प्रश्न से भी नहीं है जो इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि

---

१. ऐसा प्रतीत होता है कि इसका संकेत यूडॉक्सस के उस तर्क की ओर है जिसके अनुसार सुख ही शुभ है, क्योंकि युक्त तथा अयुक्त सभी वस्तुओं का लक्ष्य यही है (एरिस्टॉटल Eth. Nic. ११७२, b sqq.)

२. आदत (habit) तथा स्वभाव (disposition) शब्द आयुर्विज्ञान से लिये गये हैं। अधिक स्थायी स्वभाव को आदत कहते हैं (एरिस्टॉटल, Cat. ९ a, ८) अकादमी का यह एक विशिष्ट सिद्धान्त है कि आनन्द आत्मा का स्वभाव है, एरिस्टॉटल ने इसे क्रिया (activity) बताया। मेरे द्वारा सम्पादित Ethics का पृष्ठ ३ देखिये।

प्रत्येक संवेद्य वस्तु में अंश होते हैं अतः वह वस्तु एक तथा अनेक दोनों ही है। वास्तविक समस्या तो घोड़ा, बैल, सुन्दर, शुभ (अर्थात् 'फ़ीडो' तथा 'रिपब्लिक' के रूप) जैसी इकाइयों (चिदणु monads) तथा मुख्यणु hsnade) के सम्बन्ध में उपस्थित होती है। इसके सम्बन्ध में हमें यह जानना है कि (१) हम किस अर्थ में यह मानें कि इन इकाइयों में से प्रत्येक की वास्तविक सत्ता है तथा (२) हम किस अर्थ में यह मानें कि उनमें से प्रत्येक इकाई एक रहकर तथा उत्पत्ति एवं विनाश से अस्पृष्ट रहकर भी एक ही बनी रहती है,१ (३) हम किस अर्थ में यह माने कि ये इकाइयाँ संवेद्य-जगत् की असंख्य वस्तुओं में अंशतः अथवा पूर्णतः वर्तमान रह सकती हैं, ताकि (जो सर्वथा असम्भव प्रतीत होता है) वे अपनी एकता तथा नानात्व दोनों मे ही समान ही हों (१२ स – १५ स)।

यह प्रकरण 'फिलेवस' को पार्मेनीडीज़ से संयुक्त करता है। पश्चादोक्त संवाद के प्रारम्भ में ही एकम् तथा अनेकम् के प्रश्न का, जहाँ तक इसका विरोधी गुणों के विधान से सम्बन्ध है तथा जहाँ तक यह अंश तथा अंशी के सम्बन्ध का उल्लेख करता है, संवेद्य वस्तुओं के आकारों में भाग-ग्रहण के द्वारा समाधान कर दिया जाता है। तदुपरान्त यह दिखाया जाता है कि वास्तविक समस्या स्वयं आकारों में एकम् तथा अनेकम् के सम्मिलन की है। यदि हम कहते हैं कि एकम् है, तो हमारी दृष्टि से यह दो हो जाता है, और यदि हम यह कहते हैं कि संवेद्य वस्तुएं इसमें भाग-ग्रहण करती हैं, तो उस दशा में या तो अंशों में खण्डित होकर असंख्य अनेकम् हो जाता, अथवा हर एक अंशों में पूर्ण रूप वर्तमान रहता, जिससे स्थिति यह होती कि एक एकम् के साथ ही साथ हमें असंख्य एकलों (ones) को मानना पड़ता है। 'पार्मेनीडीज़' में इसका कोई प्रत्यक्ष समाधान प्रस्तुत नहीं किया गया है, परन्तु एक संकेत अवश्य दिया गया है कि समाधान सम्भव है। हम देखेंगे कि 'फिलेवस' हमें उस समाधान की ओर अग्रसर करता है।

---

१. द्वितीय प्रश्न (१५ व, २–४) के अर्थ के सम्बन्ध में वहुत विवाद है। मैं समझता हूँ कि यदि हम पहले 'एक' (mian) तथा रहकर' (einai) पर जोर देकर पढ़ें, तो देखेंगे कि यह उस समस्या की ओर उल्लेख करता है जो उस समय उत्पन्न होती है जब हम 'रहकर' को 'एक' का विधेय बनाते हैं अर्थात् जब हम न केवल उत्पत्ति वरन् विनाश के बारे में भी कथन करते है जब हम ऐसा करते हैं तब एकम् तत्काल दो बन जाता है, यही पार्मेनीडीज़ की प्रमुख जटिलता (crux) है।

हम चाहे किसी भी वस्तु के सम्बन्ध में कोई कथन अथवा प्रतिज्ञप्ति बनावें, उन सब में वस्तुतः यह समस्या व्याप्त है कि उस वस्तु के बारे में जब भी हम कुछ कहेंगे तो वह वस्तु एकम् तथा अनेकम् हो जाती है। हमारे मन में प्रतिज्ञप्तियों के लिए एक ऐसा अनुराग है जो न नष्ट होता है न जर्जर होता है। इसी कारण सभी वितण्डात्मक विवादों का जन्म होता है, और हम इससे तब तक मुक्त नहीं हो सकते, जब तक इसके सम्बन्ध में एक दृढ़ मत न बना लें। किसी एक गम्भीर मत के निरूपण का एक मात्र मार्ग वही है जिसे साक्रेटीज़ सदा से चाहता था। यद्यपि इस मार्ग ने उसे बहुधा उलझन में डाला, परन्तु इसी मार्ग के अनुसरण से कलाओं के सारे आविष्कार तथा गवेषणाएं हुई हैं। यह मार्ग निम्नलिखित है।

एक बार देवताओं ने मनुष्य के लिए एक रहस्योद्घाटन किया, जिसे हमारे पूर्वजों ने परम्परा के रूप में हमें प्रदान किया है। ये पूर्वज हम लोगों की अपेक्षा श्रेष्ठ स्वभाव के थे, तथा हमारी अपेक्षा देवताओं के अधिक निकट थे। देवताओं ने बताया कि किसी क्षण जब हम किसी वस्तु के अस्तित्व (is) के बारे में कथन करते हैं, तब ससीम और असीम इसमें जन्मजात (innate) रूप में उपस्थित रहते हैं। अतः सर्वप्रथम हमें यह करना है कि जिस वस्तु की सत्ता के बारे में कथन कर रहे हैं उसमें एकल रूप (form) ढूंढें, और तत्पश्चात् उसमें दो या तीन या अधीनस्थ रूपों की जो भी संख्या हो, उन्हें ढूंढना होगा। इसके उपरान्त हमें इन प्रत्येक नयी इकाइयों को देखना होगा, तथा यह देखना होगा कि उनमें कितने रूप हैं। यह कार्य हमें तब तक करना होगा जब तक हम मूल इकाई के बारे में न केवल यह कह सकें कि यह एकम् तथा अनेकम् हैं, वरन् यह भी कह सकें कि इसकी कितनी संख्या है। जब तक हमें असीम तथा एकम् की मध्यवर्ती संख्या का स्पष्ट ज्ञान न हो जाय, तब तक हमें प्रपंच या वैविध्य (many-fold) की असीमता का विधान नहीं करना चाहिये। और केवल तभी हम इसका परित्याग कर सकते हैं, तथा प्रपंच को असीम में प्रविष्ट मान सकते हैं। यही देवाताओं का वास्तविक रहस्योद्घाटन है, परन्तु आधुनिक युग के बुद्धिमान लोग एकम् तथा अनेकम् के निर्धारण में अत्यन्त व्यग्र तथा मन्द दोनों ही हैं, तथा हेतुओं को वे ग्रहण नहीं कर पाते। द्वन्द्वन्याय युक्त परिचर्चाओं तथा वितण्डावादी परिचर्चाओं के मध्य यही अन्तर है (१५ द - १७ अ)।

उदाहरण के लिए, वाणी एकम् तथा अनेकम् दोनों ही है, परन्तु मात्र

इतने ज्ञान के कारण ही हम वैयाकरण (ध्वनि विद्या-विशारद) नहीं हो पाते। यह वनने के लिए हमें यह भी जानना आवश्यक है कि अनिश्चित नानात्व कितने और किस प्रकार के हैं। उसी प्रकार से, जो व्यक्ति केवल इतना ही कह सकता हो कि कोई स्वर उच्च अथवा निम्न अथवा उसी स्वरमान का (जैसा कि मूल स्वर) है, तो उसे हम संगीतज्ञ नहीं कह सकते। उसे यह भी जानना चाहिये कि वहाँ कितने स्वरान्तराल हैं, और उनके क्या ढग हैं, तथा स्वरान्तरालों की तरंग संख्याएं (अर्थात् १२,९,८,६ जैसी संख्याएं, जो उन्हें अभिव्यक्त करती हैं) क्या हैं, तथा इनसे कितनी मात्राएं उत्पन्न होती हैं। पुनः, उसे यह भी ज्ञात होना चाहिये कि संख्याओं से मापन के पश्चात् शरीर की गतियां कितने तालों तथा छन्दों को उत्पन्न करती है (१९ अ - १७ इ)।

ठीक इसी प्रकार, जव हम असीम के पक्ष से अपना प्रारम्भ करते हैं तव हमें सीधे एकम् के पास न जाकर, सावधानी से मध्यवर्ती पदों को जानना चाहिये।

यदि हम प्रारम्भ में ध्वनि (sound) को लें, जो असीमित है, तो सर्वप्रथम यह पायेंगे कि इसमें कुछ स्वरों की संख्या है, तदुपरान्त कुछ द्रुत (liquids) हैं, तथा कुछ नादशून्य (mute) हैं, तथा इन सवका विचार कर के ही हम उन्हें अक्षरों के एक समूह के अन्तर्गत लाते हैं। और केवल तभी हम यह स्पष्ट रूप से देखते हैं कि व्याकरण विद्या का क्षेत्र अक्षर है, न कि केवल ध्वनि (१८ अ -१८ द)।

प्रारम्भिक पाइथागोरियन्स ने मात्रा के सम्बन्ध में जो विचार किया है उसे असीम के अपरिपक्व प्रारम्भ का एक अच्छा उदाहरण माना जा सकता है। यदि हमारी यह धारणा सही है कि उन लोगों ने केवल चतुर्थ, पंचम तथा अष्टम स्वर के अन्तरालों का ही निर्धारण किया, एवं चतुष्तंतु (tetrachord) के सभी आन्तरिक विभाजनों को असीम की ओर निर्दिष्ट किया (अव० ३०) तो प्लेटो का यहाँ पर ठीक यही अभिप्राय है। अधिक सम्भव है कि प्लेटो के मस्तिष्क में यह विचार रहा हो आर्किटस तथा प्लेटो चतुष्तंतु के विभाजन की इसी समस्या में व्यस्त रहे। हमें यह भी ध्यान रखना है कि हम असीम का सर्वथा निरसन नहीं करते, वरन् एक ऐसे विन्दु पर पहुँचते हैं जहाँ संख्या का उपक्रम सम्भव नहीं। संगीत की मात्रा के उदाहरण से इसको भी समझाया जा सकता है, जहाँ पर अंततोगत्वा हम स्वरान्तरालों पर पहुंचते हैं जो एक पूर्ण संख्या तथा दूसरी पूर्ण संख्या के अनुपात के रूप में व्यक्त नहीं किये जा सकते।

हम इस समय तक जिस दूरी तक पहुंच चुके हैं, वह एक ऐसा विन्दु है जहाँ विभाजन समाप्त हो जाना चाहिये।

'असीम' शव्द से साक्रेटीज़ का क्या अभिप्राय है, इसे स्पष्ट करने के लिए वह 'उष्णतर तथा शीतलतर' का दृष्टान्त देता है, और इसके कारण तथा उष्मा (heat) तथा नामक्रम के भेद की सहायता से हम उसके अभिप्राय को स्पष्ट करने में समर्थ होते हैं। उष्मा तथा तापक्रम का पाइथागोरियन सिद्धान्त से ऐतिहासिक सम्वन्ध है, क्योंकि जैसा कि हमने देखा है 'तापक्रम' (temprature) शव्द krasis (मिश्रण) का अनुवाद है।

यदि हम उष्मा के संवेदन अथवा धर्म पर विचार करें, तो तत्काल यह पायेंगे कि तीव्रता (intensity) अस्थिर है। जल हमारे हाथ की अपेक्षा अधिक उष्ण हो सकता है, अथवा थोड़ा अधिक उष्ण हो सकता है, अथवा हाथ के लगभग समान ही उष्ण हो सकता है। अथवा उसके समान उष्ण नहीं हो सकता है। दूसरे शव्दों में, ऊष्मा में न्यूनाधिक्य (plus and minus) सम्भव हैं। दूसरी ओर, तीव्रता की मात्राएं सर्वथा अनिश्चित हैं। हम इस कथन का कोइ स्पष्ट अर्थ नहीं लगा सकते कि ऊष्मा का एक सम्वेदन दूसरे के समान है, अथवा एक सम्वेदन दूसरे की अपेक्षा दूना है। इन विवेचनों से यह स्पष्ट होता है कि द्वयक तथा वृहद्-एवं-लघु से प्लेटो का क्या अभिप्राय था। 'फिलेवस' में प्लेटो जिसे 'असीम' कहता है उसे यहाँ पर वह स्वयं वृहद्-एवं-लघु नाम से सम्वोधित करता है। यह किसी निर्धारित विन्दु से दोनों दिशाओं में अनिश्चित एवं सतत् विभिन्नता की सम्भावना है। इसके विपरीत ससीम को इस न्यूनाधिक की कोई आवश्यकता नहीं। इसका सरलतम रूप है 'समान तथा द्विगुणित' (१/१ तथा २/१), तथा सामान्यतया वे सभी वस्तुएं 'जिनमें एक संख्या का दूसरी से, अथवा एक माप का दूसरे से अनुपात हो' ससीम हैं। गुण से पृथक् परिमाण (quantity) का यही स्वरूप है, तथा इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि इसके कारण हम समानता (equality) तथा जोड़ (addition) का पूर्ण स्पष्ट कथन कर सकते हैं। जोड़ का सरलतम रूप है 'द्विगुणन'। इकाई के प्रारम्भ के कारण ही हम ऐसा कर पाते हैं। इकाई के आधार पर ही हम तीव्रता की मात्रा का मापन कर पाते हैं। यदि हम यह कहें कि कल की अपेक्षा आज दूनी उष्णता है तो इसका उतना स्पष्ट अर्थ नहीं होगा जितना इस कथन का कि ६०° '३०°' की अपेक्षा दूना है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि तापक्रम का शून्य विन्दु भी निर्धारित हो चुका है, तथा इसके ऊपर के सभी तापक्रम

धन (plus) हैं, तथा इसके नीचे के सभी तापक्रम ऋण (minus) हैं। इस प्रकार विज्ञान के इतिहास में अभावात्मक परिमाण के सम्प्रत्ययन का प्रथम बार स्पष्ट निरूपण हुआ।

एरिस्टॉटल हमें यह भी वताता है कि वृहद्-एवं-लघु की असत् (not-being) से अभिन्न माना गया था।[1] इस सिद्धान्त को प्लेटो के नाम के साथ संयुक्त नहीं किया गया है, परन्तु सौभाग्य से हमें हर्मोडोरस[2] का एक खण्ड उपलब्ध है जिससे इस विषय में कोई भ्रान्ति नहीं रह जाती, तथा इससे समाधान का भी संकेत होता है। वह कहता है:

जिन वस्तुओं को हम वृहद् तथा अल्प के सम्बन्ध से युक्त मानते हैं उन सभी वस्तुओं में न्यूनता अथवा आधिक्य है, तथा वे और भी अधिक तथा और भी कम की दिशा में अनन्त काल तक जा सकती हैं। उसी प्रकार से, विस्तीर्णतर एवं संकीर्णतर, गुरुतर एवं लघुतर तथा इस प्रकार की अन्य सभी वस्तुओं का अनन्त तक गमन सम्भव है। परन्तु जिसे हम समान, स्थिर तथा समस्वरित मानते हैं उसमें न्यूनाधिक्य नहीं रहता, जैसा कि असमान, अस्थिर इत्यादि में रहता है। किसी असमान वस्तु की अपेक्षा हमेंशा कोई अधिक असमान वस्तु होती है, किसी गतिशील वस्तु की अपेक्षा सर्वदा कोई अधिक गतिशील वस्तु सम्भव है; तथा किसी विषमस्वरित की अपेक्षा सर्वदा कोई अधिक विषम-स्वर सम्भव है। (आगे का वाक्य खण्डित है)......अतः इस प्रकार की वस्तु अनियत, रूपहीन, तथा अपरिमित है, तथा 'सत' के निषेध के कारण यह 'असत्' कही जा सकती है।

यदि हमने 'सोफ़िस्ट' संवाद को ठीक से पढ़ा है, तो इसका अर्थ स्पष्ट है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि न्यूनाधिक्य का अनिश्चित सातत्यक (continuum) 'अवस्तु' (nothing) है, वरन् इसका तात्पर्य यह है कि यह 'कोई वस्तु नहीं है' (not anything)। इसके लिए हम संसूचक अभावात्मक शब्द 'असत्' को विधेय के रूप में प्रयोग करते हैं, न कि कोरे निषेध का, जिसका कोई अर्थ नहीं।

इस सबसे ऐसा प्रतीत होता है कि ससीम एवं असीम के अतिरिक्त हमें तृतीय 'कोटि' की कल्पना करनी पड़ेगी, यथा दोनों का मिश्रण (Mixture)।

---

१. Phys. १९२ a, ६ sqq.
२. देखिये, simpl. in Phys.p. २४७,३० sqq (Diels).

हम आयुर्विज्ञान तथा संगीत दोनों में यह पाते हैं कि 'स्वास्थ्य' तथा 'सहस्वरता' इनके उपयुक्त मिश्रण से उत्पन्न होते हैं। यही बात हमें जलवायु में मिलती है, क्योंकि शीतोष्ण (temperate) जलवायु इसी प्रकार के मिश्रण से बनती है, शरीर अथवा आत्मा के सभी शुभत्वों के लिए, शरीर के सौन्दर्य के लिए, तथा आत्मा की स्थिति के लिए यही व्याख्या दी जा सकती है, तथा निस्सन्देह सभी श्रेयस्कर वस्तुएँ इसी प्रकार के मिश्रण के कारण होती है (२५ इ क्रमशः)।

यह विचारधारा स्पष्ट रूप से पाइथागोरियन है; यह एक बार पुनः केवल स्वर मिला हुआ तार है। परन्तु दृष्टिकोण में एक मौलिक परिवर्तन है। पाइथेगोरियन्स ने ससीम का शुभ से तथा असीम को अशुभ (being) से तादात्म्य स्थापित किया था। परन्तु यहाँ पर स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि, जहाँ तक मानव-जीवन का प्रश्न है, मिश्रण में ही सभी शुभ वस्तुएं उपलब्ध हैं। इसी कारण चिन्ता तथा सुख से मिश्रित जीवन को न केवल सुखी-जीवन से वरन् चिन्तन-प्रधान जीवन से भी श्रेष्ठ माना गया है।

इस अनुच्छेद में प्लेटो ने 'सत्ता' (being) शब्द को जिस नवीन अर्थ में प्रयुक्त किया है उसका इससे घनिष्ट सम्बन्ध है। पाइथेगोरियन सिद्धान्त ने आकार का सत्ता से तथा असीम का सम्भवन से तादात्म्य स्थापित किया. परन्तु प्लेटो स्पष्टतया कहता है कि मिश्रण ही यथार्थ 'सत्ता' है। मिश्रण का प्रक्रम अवश्य 'सम्भवन'(becoming) है, परन्तु यह एक ऐसा सम्भवन है जिसका परिणाम सत् है, तथा मिश्रण स्वयं सत् है। यद्यपि यह एक ऐसा सत् है जिसका सम्भवन हुआ है। ठीक इसी प्रकार से 'टिमियस' (३५ अ) में कहा गया है कि सत तदेव (same) तथा अन्यद् (other) का सम्मिश्रण है। ये सब केवल संकेत हैं, तथा संवादों में इस प्रकार के अन्य संकेत नहीं मिलते, क्योंकि वहाँ विषयान्तर होता, परन्तु एरिस्टॉटल जिस बात को अत्यन्त रोचक ढंग से कहता है उसकी वे सम्पूर्ति करते हैं। चूंकि रूप-संख्याएं स्वयं मिश्रण हैं, अतः यह निष्पन्न होता है कि संवेद्य वस्तुएं मिश्रण होकर भी सत् हो सकती हैं। दूसरे शब्दों में, प्लेटो के परिपक्व दर्शन के अनुसार सत्, चाहे वह बुद्धिगम्य हो या संवेद्य, द्रव्य तथा आकार के सम्मिश्रण में है, इनमें से किसी एक में उपलब्ध नहीं है।

इस योजना में 'प्रत्यय' अथवा 'आकार' किस 'प्रकार' (kind) के अन्तर्गत आते हैं इस विषय पर पर्याप्त विवाद हुआ है। परम्परागत दृष्टिकोण यह था कि ससीम उनका प्रतिनिधित्व करता है। यह दृष्टिकोण प्रारम्भिक पाइ-

पायथोगोरियन मत के अनुरूप था। 'फ़ीडो' तथा 'रिपब्लिक' के आकारों (forms) को इस प्रकार की कोटि का मानना सर्वथा उपयुक्त होगा। इसके विपरीत, प्रोफेसर जैक्सन (Jackson) की यह मान्यता है कि आकार एक मिश्रित कोटि के अन्तर्गत आते हैं, तथा हमने देखा है कि प्लेटो ने आकारों को मिश्रण माना। दूसरी ओर, यह भी निस्सन्देह स्पष्ट है कि 'फिलेवस' का मिश्रण संवेद्य जगत् है, अतः आकारों को ससीम की ओर निर्दिष्ट होना चाहिये। मैं समझता हूँ कि यहाँ पर समस्या इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि प्लेटो इस संवाद में इस विषय से सम्वन्धित अपने सिद्धान्त को पूर्णतया प्रतिपादित करने से विमुख हो जाता है। यहाँ पर जो दृष्टिकोण अपनाया गया है, उसके अनुसार आकार ससीम के अन्तर्गत आते हैं, परन्तु इससे इस तथ्य में कोई परिवर्तन नहीं होता कि आकार स्वयं मिश्रण हैं। संवेद्य-जगत् में उनका कार्य है सीमित करना, परन्तु बुद्धिगम्य जगत में वे स्वयं एक सीमित सातत्यक, द्रव्य तथा आकार का एक सम्मिश्रण, तथा एकम् एवं अपरिमित द्वयक का सम्मिश्रण जैसे प्रतीत होते हैं।

सत्ता के इस नवीन मत में न केवल सत् तथा असत्, तदेव तथा अन्यद् की कोटियां निहित हैं, वरन् गति (motion) की कोटि (category) भी, जिसे 'सोफ़िस्ट' (अव० २११) नामक संवाद में इन पदार्थों के साथ पहले से ही संयुक्त कर दिया गया था, तथा यह संयोजन न केवल संवेद्य-जगत् में, वरन् बुद्धिगम्य-जगत् में भी किया गया था। इस कोटि की सहायता से हम रेखाओं, समतलों, तथा धनों की उत्पत्ति की व्याख्या-मात्र कर सकते हैं (अव० २३९), तथा यदि संवेद्य-जगत् भी एक मिश्रण है, तो मिश्रण का कोई कारण होना चाहिये। वह एक चतुर्थ 'प्रकार' होगा (२७ व), तथा गति के निहितार्थ के विचार का अन्त ही नहीं होगा। जव तक हम इसकी बुद्धिगम्य व्याख्या नहीं कर लेंगे, तव तक अनुभव जगत की व्याख्या करने में सफल नहीं हो सकेंगे।

१७

संचलन का दर्शन
(THE PHILOSOPHY OF MOVEMENT)

आत्मा (THE SOUL)

प्लेटो आत्मा सम्बन्धी अपने मत के कारण ही गति (Motion) की व्याख्या करने में समर्थ हुआ। उसके अतिरिक्त हमारे पास बीजगणितीय सूत्र की एक धूमिल रेखा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। प्राचीन पाइथोगोरियन्स ने आत्मा का अर्थ समाज में भूत प्रेत का विश्वास माना था, परन्तु बाद में उनकी यह धारणा हुई कि आत्मा शरीर का 'समस्वर' (attunement) है। इस धारणा के कारण उनका पुराना विश्वास पुनः शिथिल पड़ गया। साक्रेटीज़ ने आत्मा की सत्ता तथा शाश्वतता पर बल दिया था, परन्तु प्लेटो ने सर्वप्रथम इस विश्वास के वैज्ञानिक औचित्य को सिद्ध करने का प्रयास किया। यह द्रष्टव्य है कि जो तर्क उसे निर्णायक प्रतीत होता है उसका 'फ़ीडो' में उल्लेख नहीं है, वरन् इसे 'फ़ीड्रस' में साक्रेटीज़ के मुख से कहलाया जाता है। उस संवाद में बताया गया है (२४५ स) कि जो किसी अन्य वस्तु को संचलित करता है, तथा स्वयं किसी अन्य वस्तु द्वारा संच लित होता है, उसका संचलित होना समाप्त हो सकता है, अतः उसके द्वारा अन्य वस्तु का संचलन भी बन्द हो सकता हैं, परन्तु जो स्वयं गतिमान हैं, उसकी गति कभी समाप्त नहीं होगी। यह गति का स्रोत तथा आरम्भ है। इस प्रकार के प्रारम्भ की कभी उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि सभी उत्पन्न वस्तुओं का प्रारम्भ होना आवश्यक है, जबकि यह स्वयं एक प्रारम्भ है। इसका अन्त भी सम्भव नहीं, क्योंकि, यदि इसका नाश हुआ तो सभी वस्तुओं का गत्यावरोध हो जायेगा। इस प्रकार के प्रारम्भ को आत्मा कहते हैं, क्योंकि यह आत्म-संचलित (self-moved) है, अतः आदि और अन्त से रहित है।

यदि इस सिद्धान्त का उल्लेख केवल 'फ़ीड्रस' में हुआ है तो इसे कपोल-कल्पना भी माना जा सकता है। परन्तु इस अनुच्छेद के उत्साह के बावजूद भी इसकी भाषा में विलक्षण पारिभाषिकता तथा वैज्ञानिकता पायी जाती है। ऐसा कहा जा सकता है कि इससे केवल आत्मा अथवा जगदात्मा (world-soul) की शाश्वतता ही सिद्ध होती है, न कि जीवात्मा की। परन्तु वस्तुतः 'फ़ीड्रस' की उक्ति का प्रयोग होता रहा, तथा आदि-संचालक (first-mover) का प्रश्न मूलभूत बना रहा। 'लाज़' में इस विषय के पूर्णतः इतिवृत्तात्मक विवेचन से तद्विषयक सभी सन्देहों का निराकरण हो जाता है, जहां हमें प्लेटो के इस विषय से सम्बन्धित परिपक्व विचार का संकेत मिलता है।

प्लेटो गति के दस प्रकार के भेद से प्रारम्भ (८९३ ब) करता है, जिनमें से नवें तथा दसवें से ही यहाँ पर हमारा प्रयोजन है। नवीं प्रकार की गति वह है जो अन्य वस्तुओं को संचालित कर सकती है, परन्तु स्वयं गतिशील नहीं हो सकती। दसवीं प्रकार की गति वह है जो अन्य वस्तुओं एवं स्वयं को भी गतिमान कर सकती है। प्लेटो कहता है कि यही दसवीं गति वस्तुतः प्रथम है, क्योंकि यही अन्य नौ गतियों का प्रारम्भ है। इस प्रकार की गति हमें पृथ्वी, अग्नि, अथवा जल में नहीं मिलती। यह केवल जीवित वस्तुओं में ही, अर्थात् जिनमें आत्मा है, मिलती है। यदि हमें आत्मा की परिभाषा देने के लिए कहा जाय तो हम कह सकते हैं कि आत्मा 'वह गति है जो स्वतः अपने आपको गतिमान कर सके' (the motion which of itself can move itself)। अन्य सभी गतियां शरीर पर आधारित है, तथा आत्मा शरीर से प्राग्वर्ती है (८९६ ब)।

परन्तु, यदि आत्मा शरीर से पूर्ववर्ती है, तो इससे तत्काल यह निष्कर्ष निकलता है कि चरित्र, इच्छाएं, तर्कनाएं, विश्वास, पूर्वदृष्टियां तथा स्मृतियां जैसे आत्मा के सभी धर्म शरीर के धर्मों, यथा लम्बाई, चौड़ाई, गहराई, स्थूलता, के प्राग्वर्ती हैं, और ऐसी स्थिति में केवल आत्मा ही शुभ तथा, अशुभ उचित तथा अनुचित, नीतिपरायण तथा अनीतिपरायण इत्यादि सभी विरोधी गुणों का कारण होगी। चूंकि बुरी आदतों तथा कुतर्कों को हम अनुभव-जगत् में पाते हैं, अतः कम से कम दो आत्माओं का होना आवश्यक है, जिसमें से एक शुभ कार्य करेगी, तथा दूसरी इसके विपरीत (८९६ इ) कार्य में रत होगी।

सामान्यतया यह माना जाता है कि यह अनुच्छेद एक अशुभ जगदात्मा तथा एक शुभ जगदात्मा दोनों के ही अस्तित्व का प्रतिपादन करता है, परन्तु

यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि स्वयं प्लेटो के शब्दों से ऐसा अर्थ नहीं निकलता। वह यह नहीं कहता कि दो परस्पर-विरोधी आत्माएं हैं, जिनमें एक शुभ है तथा दूसरी अशुभ। वह तो यह कहता है कि दो से कम आत्माएं नहीं हैं। यह अनुमान करना कि अशुभ आत्मा केवल एक ही उतना ही है। असंगत होगा जितना यह अनुमान करना कि शुभ आत्मा केवल एक ही है। वस्तुत: यहाँ पर निहितार्थ यह है कि आत्माएं अनेक हैं, जिनमें से कुछ शुभ हैं, तथा कुछ अशुभ। अब हम यह देखेंगे कि एक अत्यन्त शुभ आत्मा है, जिसे ईश्वर (God) कहते हैं, परन्तु किसी अत्यन्त अशुभ आत्मा के अस्तित्व का कोई संकेत नहीं मिलता, तथा 'स्टेट्समैन' (२९० अ) में इस दृष्टिकोण को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में अस्वीकृत कर दिया गया है। प्रमुख बात तो यह है कि चूंकि अशुभ का अस्तित्व है, अत: आत्माओं का बहुत्व अनिवार्य है, क्योंकि शुभ तथा अशुभ दोनों का कारण आत्मा ही होगी। चाहे वह एक आत्मा हो अथवा अनेक यह महत्त्वपूर्ण बात है। अब हम अशुभ अथवा घनिष्ठ को शरीर लकवा भौतिक द्रव्य की सम्पत्ति नहीं मान सकते। संचालन का दर्शन शुभ तथा अशुभ दोनों को आत्मा का धर्म मानने के लिए विवश करता है।

ईश्वर (GOD)

यदि हम आकाशीय पिण्डों की गतियों की ओर ध्यान दें, तो तत्काल यह देखेंगे कि उनका कारण कोई एक शुभ आत्मा अथवा अनेक आत्माएं होंगी, और यह आत्मा निश्चित रूप से सर्वश्रेष्ठ होगी, क्योंकि ये गतियां सर्वाधिक नियमित हैं। इसका कारण है उनकी वृत्तीय (circular) प्रकृति, जो उन्हें किसी शुभ आत्मा ने प्रदान की होगी, क्योंकि यदि वस्तुओं को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय तो वे वृत्त के रूप में नहीं सीधे गतिशील होती हैं।[1] यदि ये आत्माएं अनेक हैं तो इन्हें हम देवता (gods) कहते हैं, और यदि यह एक

१. प्लेटो के अनुयायी एटिकस (Atticus. 2 nd Cent A. D.) का इस बात पर आग्रह उचित था कि यह प्लेटो तथा एरिस्टॉटल के सिद्धान्तों का मौलिक भेद है। एरिस्टॉटल ने वृत्तिक गति को आकाशीय पिण्डों का स्वभाव बताया, जबकि प्लेटो की मान्यता थी कि इसका कोई कारण होना चाहिये। हम इस कारण को गुरुत्व (Gravity) कहते हैं, तथा हम प्लेटो की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह से जानते हैं कि यह किस प्रकार से घटित होता है परन्तु इसकी प्रकृति के बारे में हमें प्लेटो से अधिक ज्ञान नहीं है। प्लेटो जानता था कि इसमें समस्या निहित है, एरिस्टॉटल ने इसमें किसी समस्या के अस्तित्व को अस्वीकृत कर दिया।

हो अथवा सर्वाधिक श्रेष्ठ है, तो इसे ईश्वर (God) कहते हैं। इस प्रकार प्लेटो उस बिन्दु तक पहुँचता है जहाँ उसे विश्वास होता है कि उसने ईश्वर के अस्तित्व के लिए वैज्ञानिक तर्क दिया, तथा अब इस कार्य के सम्पन्न होने के पश्चात् वह जगत् की व्याख्या करने में समर्थ है। इसमें सन्देह नहीं कि प्लेटो ने इसे अपने दर्शन का केन्द्र-बिन्दु माना, तथा जिस अनुपात में हम इस तथ्य को समझेंगे, उसी के अनुसार हम उसके दर्शन को समझ सकेंगे। परन्तु साथ ही साथ हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि यद्यपि उसका यह विश्वास है कि ईश्वर के अस्तित्व के प्रदर्शन के लिए यह तर्क-पद्धति समुचित है, परन्तु इस तर्क से हमें ईश्वर के बारे में इससे अधिक कुछ भी नहीं ज्ञात होता कि वह शुभ गतियों का आत्म-चलित स्रोत है। तथापि प्रारम्भिक दार्शनिकों का 'ईश्वर' शब्द से जो अभिप्राय था उससे यह सर्वथा भिन्न अर्थ है। आयोनिया वालों ने अग्नि, वायु, जल इत्यादि को देवता कहा, परन्तु उसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि उस समय इन तत्त्वों के अतिरिक्त ईश्वर-परक कोई अन्य धारणा नहीं थी। एनेक्ज़िमेण्डर तथा जेनोफ़ेनीज़ ने लोकों अथवा जगत् को देवता अथवा ईश्वर कहा, परन्तु इसे अधिक से अधिक सर्वेश्वरवाद (Panthe-ism) का एक रूप माना जा सकता है, जैसा कि पार्मेनीडीज़ भी मानता था। ईश्वर में विश्वास निस्सन्देह पाइथागोरियन धर्म का अंग था, परन्तु यह सम्भवतः पाइथागोरियन विज्ञान का अंग नहीं था। दर्शन के क्षेत्र में ईश्वर में प्रत्यय को प्रविष्ट कराने का श्रेय सर्वप्रथम प्लेटो को है। उसके मस्तिष्क में इस सिद्धान्त का जो स्वरूप बना वह यह था कि ईश्वर एक जीवन्त आत्मा है, तथा ईश्वर शुभ है। उसका विश्वास था कि उसने इतनी बातें और केवल इतनी ही, शुद्ध वैज्ञानिक तर्कना के आधार पर सिद्ध की है।

अत. हमें यह नहीं मान लेना चाहिये कि प्लेटो का 'ईश्वर' शब्द से वही तात्पर्य था जिस अर्थ में आधुनिक ईश्वरवादी इसका प्रयोग करते हैं। प्लेटो के ईश्वर को निश्चित रूपेण हम वैयक्तिक ईश्वर (personal god) कह सकते है, क्योंकि वह जोवित आत्मा में स्थित बुद्धित्व (Mind, nous) है, परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह 'परम सत्ता' है। हमने देखा है (अव० १७१) कि प्लेटो अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक शुभ के सम्बन्ध में व्याख्यान देता रहा, तथा यह स्पष्ट है कि यदि उसके गम्भीरतम विचार की कहीं पर अभिव्यक्ति हुई है तो वह इसी व्याख्यान में हुई है। उसके अनुयायी एक के बाद एक, जिनमें स्वयं एरिस्टॉटल का भी, जिस ढंग से उसके व्याख्यान

का आधिकारिक विवरण उपस्थित करने का प्रयास करते हैं, उससे सिद्ध होता है कि इसे मौलिक माना जाता था। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि हम ईश्वर का शुभम् से तादात्म्य मानें अथवा नहीं, और यदि नहीं मानते तो ईश्वर एवं शुभ के बीच के सम्बन्ध को किस प्रकार के समझा जाय। यह प्रश्न उतना सरल नहीं है जितना ऊपर से देखने से प्रतीत होता है, वस्तुतः यह अत्यन्त जटिल प्रश्न है यदि यह पूछा जाय कि आधुनिक ईश्वरवादियों के अनुसार ईश्वर का जो सम्प्रत्यय है क्या उससे शुभम् का तादात्म्य स्थापित किया जा सकता है; तो उत्तर यह होगा कि ईश्वर के सम्प्रत्यय के अन्तर्गत शुभ आता अवश्य है, परन्तु शुभ की सीमा में ईश्वर के सम्प्रत्ययन का समापन नहीं हो सकता। इसके विपरीत यदि यह पूछा जाय कि क्या शुभम् का उस ईश्वर से तादात्म्य बताया जा सकता है जिसके अस्तित्व को स्वयं प्लेटो ने उपरोक्त तर्क के आधार पर सिद्ध मान लिया, तो निस्सन्देह यह उत्तर होगा कि ऐसा नहीं है। शुभम् आत्मा नहीं, वरन् एक 'रूप' है। इस प्रकार प्लेटो सर्वेश्वरवाद का परिहार कर पाता है, क्योंकि सर्वेश्वरवाद को वह अनीश्वरवाद के ही समकक्ष मानता है।

इस सम्प्रत्यय के अन्तर्गत आने वाली समस्याओं से प्लेटो अनभिज्ञ नहीं था। 'टिमियस' (२८ स) में वह कहता है, "इस विश्व के स्रष्टा तथा पिता का पता लगाना कठिन है, तथा यदि उसका पता लग भी जाय तो, सभी लोगों के समक्ष उसके सम्बन्ध में कुछ कहना असम्भव है।" इस वाक्य की प्रामाणिकता निर्विवाद है, तथा 'द्वितीय पत्रक' (३१२ इ) में इसी समस्या के बारे में प्लेटो डायोनिसियस (जो समझता है कि उसने इस समस्या का समाधान कर लिया है) से पहेली की शैली में जो कथन करता है वह इस वाक्य से पूर्णतः स्पष्ट समझ में आ जाता है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि क्यों उसने शुभम् से सम्बन्धित अपने व्याख्यान को न कभी लिपिबद्ध किया, न कभी प्रकाशित किया, तथा प्रकाशनार्थ लिखे गये 'लाज़' नाम संवाद में क्यों उसने 'शुभम्' शब्द का कभी प्रयोग न कर सदा 'ईश्वर' शब्द का ही उल्लेख किया, यद्यपि 'लाज़' इस व्याख्यान के समकालिक ही होगा। ग्रीक चिन्तन का जहाँ कहीं भी प्राणवान स्वरूप रहा वहाँ इस प्रश्न पर विचार-विमर्श होता रहा। कुछ परवर्ती लेखकों ने शुभम् को परमेश्वर माना तथा जगत के स्रष्टा को उसके अधीन बताया। इसके अतिरिक्त भी अनेक प्रकार के समाधान के प्रयास हुए। कठिनाई वस्तुतः विवादों के स्रोत में है, जिन्हें अन्ततोगत्वा निसिया की परिषद् (the council of nicaea) के समय

आप्तवचन से निपटाया गया, परन्तु इससे मौलिक विचारकों की मन: स्थिति का उद्वेग शान्त नहीं हो पाया। परन्तु यहाँ पर हमें उस विचार से कोई प्रयोजन नहीं । हमें केवल इतना ही स्पष्ट करना है कि प्लेटो का ईश्वर 'आकार' नहीं, वरन् एक आत्मा है, तथा वह श्रेष्ठ गतियों का आत्म-प्रवर्तक संचालक है। शुभम् कोई आत्मा नहीं. वरन् यह ईश्वर से स्वतन्त्र तथा उससे परे भी है, क्योंकि शुभम् वह साँचा है जिससे वह जगत् को ढ़ालता है।

यह भी निश्चित है कि ईश्वर ही एकमात्र आत्म-प्रवर्तित संचालक नहीं है, वरन् संचालकों में सर्वश्रेष्ठ है। इसमें सन्देह नहीं कि 'टिमियस' में उल्लिखित अधीनस्थ देवता उस संवाद के पुराख्यान (mythology) के अन्तर्गत आते हैं, तथा प्लेटो निस्सन्देह एकेश्वरवादी (monotheist) था। परन्तु ग्रीक लोगों के लिए एकेश्वरवाद अथवा अनेकेश्वरवाद (polytheism) का प्रश्न उतना महत्त्वपूर्ण नहीं था, तथा प्लेटो ने अन्य अधीन देवताओं को भी स्वीकार किया होगा। मुख्य तथ्य यह है कि मानवीय आत्माएं निम्न-स्तर की होते हुए भी ठीक उसी प्रकार अस्तित्वमान हैं जैसे दिव्य आत्मा, तथा प्लेटो ने सोचा कि इस प्रकार से अशुभ के अस्तित्व का ईश्वर के परम शुभत्व से मेल करना सम्भव है। यहाँ पर भी हमारे समक्ष एक ऐसी समस्या उत्पन्न होती है जो आज भी मानव मात्र के लिए एक पहेली है। क्या जीवात्माओं को सृष्टा ईश्वर है। अथवा उनका अस्तित्व ईश्वर से पूर्णत: स्वतन्त्र है? 'टिमियस' नामक संवाद में इस प्रश्न के सम्भावित समाधान का संकेत मिलता है। यहाँ पर बताया गया है कि जीवात्माएं अविनाशी हैं। ये जीवात्माएं अविनाशी इसलिए नहीं हैं क्योंकि इनकी ऐसी प्रकृति है, वरन् इसलिए कि ईश्वर ने जिसकी सृष्टि की है उसे नष्ट करना उसके शुभत्व से असंगत है। इस प्रकार का समाधान कहाँ तक वस्तुत: प्लेटो के विचार को अभिव्यक्त करता है यह तब तक निश्चित नहीं हो सकता जब तक हम उन सिद्धान्तों के बारे में निश्चित न हो जाय जिनके आधार पर 'टिमियस' की व्याख्या की जाय।

जगत् (THE WORLD)

'टिमियस' नामक संवाद, जो कि निश्चित रूपेण 'रिपब्लिक' के बहुत बाद में लिखा गया था, एक ऐसी गोष्ठी का वर्णन करता है जो पूर्वोक्त संवाद में उल्लिखित वार्तालाप के साक्रेटीज़ द्वारा दुहराये जाने के एक दिन बाद आयोजित हुई थी, अत: मूल वार्तालाप के दो दिन पश्चात इसका आयोजन

हुआ होगा, इससे प्रतीत होता है कि ये तीन दिन अत्यन्त व्यस्त कार्यक्रम वाले रहे, और विशेष रूप से उस परिस्थिति में जब कि 'टिमियस' के तत्काल बाद 'क्रिटियस' (Critias) तथा 'हार्मोक्रेटीज़' (Hermocrates) नामक सवाद लिखे जाने वाले थे। 'क्रिटियस' को प्लेटो केवल अधूरा ही लिख सका, तथा 'हर्मोक्रेटीज़ को तो प्रारम्भ भी नहीं कर सका। हमें 'टिमियस' से प्रथम बार यह ज्ञात होता है कि जिन श्रोतागणों के समक्ष साक्रेटीज़ ने 'रिपब्लिक' को दोहराया, उनमें प्लेटो के प्रपितामाह क्रिटियस,[1] लॉयक्रियन टिमिअस (Timaios the Lokrian) हार्मोक्रेटीज़ (Hermokrates), तथा एक अज्ञातनामा चतुर्थ व्यक्ति जो अस्वस्थ होने के कारण दूसरे दिन न आ सका, उपस्थित थे। वह कौन व्यक्ति हो सकता है इसकी कल्पना करने से कोई लाभ नहीं, परन्तु यह निश्चित है कि वह कोई पाइथा-गोरियन ही था, क्योंकि टिमियस को उसका विकल्प (understudy) बताया गया है तथा वह उस व्यक्ति के स्थान पर प्रतिष्ठित होने के लिए हो जाता है, यदि उस व्यक्ति का नाम रखना ही है, तो मैं उसे फाइलेलास कहना चाहूँगा, मेरे विचार से वह वहाँ पर नाम उपस्थित इसलिए नहीं रहा क्योंकि 'टिमियस' संवाद उसके दर्शन पर आधारित अवश्य हैं, परन्तु अनेक स्थलों पर उसमें बहुत-सी ऐसी बातें उल्लिखित हैं जिन्हें हम सामान्यतया उसके विचार नहीं मान सकते। और यदि यह सत्य है तो हम उस प्रसिद्ध परिवाद के मूल को समझ सकते हैं जिसमें कहा गया कि फाइलेलास के 'तीन ग्रन्थ' (three books) प्लेटो के हाथ पड़ गये थे, तथा उसने उन ग्रन्थों से चोरी कर 'टिमियस' की रचना की थी।[2]

वस्तुस्थिति चाहे जो भी रही हो, मेरा सुझाव केवल इतना ही है कि

---

१. देखिये परिशिष्ट। यह अत्यन्त स्पष्ट रूप से बता दिया गया है कि यदि क्रिटियस वह व्यक्ति नहीं है जो त्रिशंकों में से एक था, वरन् यह उसका पितामह है, यद्यपि आधुनिक लेखकों को इन दोनों के बीच काफी विभ्रम है। वह अत्यन्त वृद्ध व्यक्ति है जिसे कल बताई हुई बातें मुश्किल से याद रहती हैं परन्तु उसे अपने बचपन के दृश्य पूर्णतया स्मरण हैं (२६ ब)। उसके बचपन के समय सोलन की कवितायें ताजी थीं, (२१ ब) मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि युवक क्रिटियस को जिन काव्यात्मक खण्डों के लिए श्रेय दिया जाता है उनमें से अधिकांश वस्तुतः उसके पितामह की है।

२ Early Greek Philosophy १४०.

विस्तृत दृश्यांकन (mise en scene) का कुछ तो महत्त्व होगा ही। यदि प्लेटो ने 'टिमियस' को 'रिपब्लिक' से सम्बद्ध करने का इतना प्रयास किया, तो उसका यह अभिप्राय अवश्य रहा होगा कि 'टिमियम' कुछ अर्थों में 'रिपब्लिक' का अनुपूरक हो। यह बात इस विस्मयकारी तथ्य से सम्बद्ध की जानी चाहिये, कि साक्रेटीज़ 'रिपब्लिक' की संक्षिप्तावृत्ति से प्रारम्भ करता है कि साक्रेटीज़ 'रिपब्लिक' के पंचम भाग का उल्लेख होता है, परन्तु छठें तथा सातव भागों की पूर्णरूप से उपेक्षा कर दी जाती है। इसे ('मूल' oversight) नहीं माना जा सकता, क्योंकि साक्रेटीज़ टिमिअस से पूछता है कि सारांश पूर्ण है अथवा नहीं, तथा उसे उत्तर मिलता है कि इसमें कोई कमी नहीं है (१९ ब)। इसका तात्पर्य यह है कि वे 'टिमियस' तथा उसके प्रक्षिप्त शेषभागों द्वारा 'रिपब्लिक' के परवर्ती भागों की स्थान-पूर्ति करना चाहते थे। तथ्य यह है कि 'रिपब्लिक' के प्रमुख भाग वस्तुत: धन-ज्यामिति के अतिरिक्त अन्य किसी भी क्षेत्र में उस सीमा से आगे नहीं बढ़ते जहाँ तक साक्रेटीज़ अपने पाइथागोरियन सहयोगियों से सीखा होगा। सम्भवत: उसने निश्चित रूप से उनसे सीखा था। अब प्लेटो की इच्छा है कि वह उस स्तर से आगे प्रगति करें इसी कारण साक्रेटीज़ अब प्रमुख वक्ता नहीं रहता। परन्तु नये दृष्टिकोणों को अत्यन्त सतर्कता तथा कुछ अस्पष्ट ढंग से व्यक्त किया गया है, जिसके कारण कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थलों के अर्थ के सम्बन्ध में पर्याप्त विवाद हुआ है। प्लेटो यह बात कहीं भूलता है कि इस संवाद को पाँचवीं शताब्दी में घटित हुआ समझा जाना है।

'टिमियस' नामक संवाद में जगत् की स्टष्टि का विवरण प्रस्तुत किया गया है। यहाँ पर तत्काल यह प्रश्न उठता है कि क्या यह स्वयं प्लेटो के सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करता है अथवा नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि जेनोक्रेटीज़ तथा अन्य प्रारम्भिक प्लेटोवादियों को मान्यता थी यह प्लेटो के सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करना हैं उनका कहना था कि कि जिस प्रकार किसी आकृति के गुणों का चित्रण करने के लिए रेखाचित्र को बनाना सर्वाधिक उपयुक्त विधि हो सकती है, उसी प्रकार प्रतिपादन (exposition) हेतु जगद् को काल के अन्तर्गत उत्पन्न माना गया। एरिस्टॉटल ने इस व्याख्या के विरुद्ध युक्ति देना आवश्यक समझा, तथा हम यह कह सकते हैं कि समग्र रूप को विचार करने पर प्लेटोवादियों (Platonists) ने 'टिमियस' को दंतकथात्मक (mythical) माना, परन्तु एरिस्टॉटल के अनुयायी (the peripatetics) इसको अक्षरश: सत्य मानते हैं। परन्तु जिस किसी ने भी प्लेटो के मूल सिद्धान्त को समझा है उसके लिए इसका अक्षरश: सत्य होना असम्भव हैं। गति

के आधार पर हम आत्मा तथा ईश्वर के अस्तित्व का अनुमान कर सकते हैं, परन्तु वे किस प्रकार से क्रियाएँ करते हैं इसका वैज्ञानिक विवरण नहीं प्रस्तुत कर सकते। अनुभव-जगत् अन्ततः केवल एक प्रतिमा, मात्र है, तथा यह सम्भवन के अन्तर्गत आता है, अतः हम इसके बारे में सम्भावित कथाओं के कथन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर सकते। जिस प्रकार धर्मशास्त्र अथवा मनोविज्ञान 'विज्ञान' नहीं हो सकते, उसी प्रकार से विश्वविज्ञान (cosmology) भी विज्ञान नहीं हो सकता। यह तो क्रीड़ा (play, paidia, लीला) का एक रूप है। विज्ञान को वस्तुतः गणित-प्रधान होना चाहिये। तथापि विश्वविज्ञान केवल क्रीड़ा नहीं, क्योंकि जगत् सम्बन्धी हमारा विवरण सत्य से उसी प्रकार से सम्बद्ध होगा जैसे जगत् सत्ता से। यह निर्माणवस्था (in the making) का सत्य होगा, जिस प्रकार संवेद्य-जगत् निर्माणावस्था का बुद्धिगम्य-जगत् है। इस प्रकार के अर्थ-सत्यों का उपयुक्त वाहन प्रतीकोपाख्यान (myth) ही है, तथा हमें यहाँ पर एक बार पुनः स्मरण रखना होगा कि प्रतीकोपाख्यान विज्ञान से उच्च कोटि का न होकर निम्न स्तर का है। प्लेटो की व्याख्या के लिए इसका ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रसंग को स्वयं 'टिमियस' में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में उपस्थित किया गया है। हम ऐसी वस्तु पर विचार कर रहे हैं जो सर्वदा सम्भवन की ही स्थिति में है, तथा सत् कभी नहीं। हम ऐसे विषय पर विचार नहीं कर रहे हैं जो सदा अस्तित्व है, एवं सम्भवन कदापि नहीं (२९ द)। प्रागोक्त प्रश्चादोक्त की प्रतिमा है (२९ ब), तथा बुद्धिगम्य-जगत् के नमूने पर संवेद्य-जगत् की व्यवस्था का कार्य ईश्वर को सौंपा गया है। इस क्रिया के विवरण को वैज्ञानिक रूप नहीं दिया जा सकता, क्योंकि हम ऐसे प्रसंग का विवेचन कर रहे हैं जो ज्ञान का विषय नहीं, वरन् विश्वास का विषय है (२९ ब-स), तथा ज्ञान विश्वास से श्रेष्ठ है, उससे निम्नस्तर का नहीं।

आरम्भ में यह बताया गया है कि ईश्वर को एक दृश्य एवं बिना आकार का द्रव्य (mass) मिला, जो एक अव्यवस्थित रूप से संचालित हो रहा था, तथा उसने निश्चय किया कि इसे अव्यवस्था से व्यवस्था की स्थिति में लाना है। यदि हम यह प्रश्न करें कि उसने ऐसा क्यों किया, तो उत्तर होगा कि 'वह शुभम् था, तथा, शुभम् को कभी भी किसी वस्तु से द्वेष नहीं होता, अतः उसने कामना की कि वस्तुएं यथासम्भव उसके सदृश हो जायें' (२९ इ)। यह कार्य उसने जगत् की आत्मा की सृष्टि कर के किया, तथा इस आत्मा में उसने गणितीय तथा प्रसंवादी (harmonic) सम्बन्धों की स्थापना की (३५ अ क्रमशः)।

सर्वप्रथम हमें यहाँ 'यथासम्भव उसके सदृश' वाक्यांश पर ध्यान देना है। यहाँ इस प्रकार की सावधानी इसलिए रखनी है क्योंकि बुद्धित्व (NOUS) के समक्ष कुछ आवश्यकता (Necessity) उपस्थित होती है, अतः यह अपने प्रयोजन को पूर्णतः सिद्ध नहीं कर पाता (४७ इ)। अतः हमें चलायमान कारण (errant cause) पर विचार करना होगा। हमें विशेष रूप से इस बात की व्याख्या करनी है कि तत्त्वों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई। इन तत्त्वों को हम परम या मौलिक नहीं मान सकते। इन्हें तो संधि या एकाक्षर (syllables) भी नहीं माना जा सकता, फिर अक्षर (letters, elementa) मानने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

'आवश्यकता' के जिस सम्प्रत्यय से यहाँ पर हमें परिचित कराया गया है वह उतना सरल नहीं है। यह निश्चित रूपेण वह आवश्यकता नहीं है जिसे हमें भौतिक आवश्यकता कहते हैं, क्योंकि हमें बताया गया है कि इसे बुद्धि द्वारा समझा जा सकता है। हमें यह भी बताया गया है कि यह एक कारण है, तथा ऐसा कारण है जो परमार्थ के लिए उपयोगी हो सकता है। यह जगत् के शुभत्व का सहवर्ती कारण (concoimitant cause) है, तथा जगत् के शुभत्व की प्राप्ति इसके बिना नहीं हो सकती। यह कल्पना प्राचीन है, क्योंकि 'फ़ीडो' में यह मिलती है, जहाँ पर करण (concausa) को कारण (causa) से भिन्न मानते हुए उसकी परिभाषा की गयी है कि करण वह है जिसके सहयोग के बिना कारण निरर्थक है (९९ ब)। हम यह भी जानते हैं कि यह सहवर्ती अथवा 'सहायक' कारण मूर्त है, तथा बहुत-से लोग भ्रान्तिवश इसे वास्तविक कारण समझ लेते हैं, जो उष्णता एवं शीतलता, विरलीकरण तथा संकुचन इत्यादि द्वारा सभी वस्तुओं की व्याख्या करने में समर्थ है। वास्तविक कारण बुद्धित्व (Mind, nous) है, तथा बुद्धित्व के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। मूर्त बाधक एवं साधक दोनों ही है। बुद्धित्व बिना किसी वस्तु के सहारे कुछ भी नहीं कर सकता, परन्तु यह वस्तु स्वयं में बुद्धित्व के प्रयोजनों के पूर्णतया क्रियान्वयन में बाधक है। हमें यह भी बताया गया है कि ये आनुषंगिक कारण किसी अन्य वस्तु द्वारा संचालित होते है, तथा उसके बाद अनिवार्यतः किसी अन्य वस्तु को गतिशील करते हैं। इसके विपरीत मुख्य कारण (primary cause) आत्म-संचालित है। इसे उपर्युक्त आत्मा के सिद्धान्त के प्रकाश में समझना चाहिये (अव० २५६)। प्लेटो टिमिअस के द्वारा बुद्धित्व तथा आवश्यकता का जो विवरण प्रस्तुत कराता है उसके गुण-दोष-विवेचन के लिए यदि

हम इसकी लाइब्नित्ज़ के उस मत से तुलना करें कि यही 'सर्वश्रेष्ठ-सम्भव जगत्' है, तो हमें कुछ सुविधा हो सकती है। दोनों में अन्तर यह है कि प्लेटो जगत् की अपनी व्याख्या को प्रतिकोपाख्यान मानता है, जबकि लाइब्नीज़ ने अपने मत को इस समस्या का उपयुक्त समाधान माना।

यदि हम इस सृष्टिमीमांसा (cosmogony) के विस्तृत विवरणों पर विचार करें, तो इस सृष्टिमीमांसा का शुद्ध प्रतिकोपाख्यानात्मक स्वरूप और भी अधिक स्पष्ट हो जायेगा। विशेषतया, गति को जगत् में आत्मा के प्रवेश के पूर्व अव्यवस्थित द्रव्य (mass) का धर्म बताया गया है, तथा यह प्लेटो के सिद्धान्त का स्पष्ट रूप से व्याघात है, क्योंकि प्लेटो के अनुसार केवल आत्मा ही आत्म-संचालित तत्त्व है। प्लूटार्क, जो 'टिमियस' के कथनों को अक्षरशः सत्य मानने वाले थोड़े-से प्लेटोवादियों से एक है, केवल एक अशुभ जगदात्मा के सहारे ही इस समस्या से मुक्त हो सकता है जिसे सम्भवतः 'लाज' में अभिगृहीत किया गया था (अव० २५६)। उसके अनुसार अशुभ विश्वात्मा शाश्वत है, तथा इसे आवश्यकता (Necessity) से अभिन्न मानना पड़ेगा। सृष्टि केवल शुभ विश्वात्मा की ही हुई थी। परन्तु यदि यह मान भी लिया जाय कि 'लाज' में एक अशुभ विश्वात्मा के अभिग्रह में प्लूटार्क संगत है तो भी यह निश्चित है कि 'टिमियस' में इसके बारे में कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु यदि इसका इतना अधिक आधारभूत महत्त्व रहता तो इसका उल्लेख न हो, यह सम्भव नहीं। इसके अतिरिक्त, हमने देखा कि आवश्यकता बुद्धित्व का सहायक है। काल के सम्बन्ध में जो कहा गया है उस पर विचार करते समय भी इसी प्रकार की एक समस्या उत्पन्न होती है। 'टिमियस' में कहा गया है कि काल नित्यता की गतिमान प्रतिमा है (moving image of eternity) (३७ द), तथा हमें बताया गया है कि यह लोको के साथ ही उत्पन्न होता है (३८ ब) अर्थात्, विश्वात्मा की सृष्टि के उपरान्त, अतएव विश्वात्मा की सृष्टि काल की अवधि में नहीं होती, इसीलिए सम्पूर्ण कथा का स्वरूप अनिवार्यतः प्रतीकोपाख्यानात्मक हो जाता है। हम गति को सदा काल के अन्तर्गत ही समझते हैं, क्योंकि काल तो गति का मापदण्ड भाव है। इसके विपरीत ज्ञान का विषय शाश्वत है, क्योंकि काल तो गति का मापदण्ड मात्र है। इसके विपरीत ज्ञान का विषय शाश्वत है, न कि कालिक (temporal)। इससे यह निष्पन्न होता है कि जब हम गति के बारे में कथन करते हैं, तो हमारी भाषा अनिवार्यतः अवैज्ञानिक एवं चित्रीय हो जाती है। यह सत्य की प्रतिमा का ही वाहन बन सकती है, क्योंकि सत्य स्वयं ही, नित्यता की एक गतिमान प्रतिमा मात्र

है। परन्तु हम आगे देखेंगे कि इसका यह तात्पर्य नहीं है कि काल व्यक्तिनिष्ठ (subjective) है। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि हम इसके वास्तविक स्वरूप को समझने में असमर्थ हैं यह वस्तुतः गति के सम्प्रत्यय में अन्तर्निहित सातत्यक (continuum) है, परन्तु वह स्वयं गति से पृथक् स्थिति में ज्ञात नहीं हो सकता।

चलायमान कारण कालिक होने के साथ ही साथ दैशिक (spatial) भी है। इसे भी शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त करना कठिन है, क्योंकि देश का अभिग्रहण विचार एवं संवेदन से न होकर एक प्रकार की मिश्रित तर्कना (bastard rcasoning) से होता है। यह सभी वस्तुओं के आधार अथवा 'धात्री' के सदृश है (४९ अ)। इसे समझने के लिए हमें उन तत्त्वों पर विचार करना होगा, जिनकी मौलिकता का हम पहले ही निषेध कर चुके हैं। हम देखते हैं कि वे विरलीकरण तथा संकुचन द्वारा एक दूसरे में प्रविष्ठ होते हैं, तथा उनमें से किसी को भी इदम् (this) की अपेक्षा ईदृशम् (such) कहना अधिक उपयुक्त है (४९ द)। 'इदम्' केवल उसी वस्तु को कहा जा सकता है जिसमें वे सब उत्पन्न एवं नष्ट होते हुए प्रतीत होते हैं (४९ इ)।

इसे एक दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। यदि हमें सभी प्रकार के साँचे (forms) स्वर्ण से बनाने हों, तथा उन्हें यदि परिवर्तित करते रहना हो, तो वह द्रव्य क्या है? इस प्रश्न का एकमात्र उत्तर होगा 'स्वर्ण'। हम अस्थायी साँचों को वस्तु नहीं कह सकते। यही बात सभी वस्तुओं के 'आदाता' (recipicnt) अथवा आधार द्रव्य (Matrix) पर भी लागू होती है जिस पर सभी आकारों अथवा साँचों का 'मुद्रण' होता है। इसका स्वयं कोई आकार नहीं होता, ओर यह सदा एक सा ही रहता है, तथा जो आकार इसमें प्रविष्ट होते या निर्गमित होते हैं उनसे यह पूर्णतः निर्लिप्त रहता है। ये आकार स्वतः सनातन की अनुकृतियाँ (imitations) है। ये वस्तुतः प्रारम्भिक त्रिकोण हैं। तथा उनके परिणाम सम घन हैं। 'टिमियस' में हमें यह नहीं बताया गया है, परन्तु एरिस्टॉटल के द्वारा ज्ञात होता है कि ये संख्याओं की अनुकृतियां हैं। अतः हमें तीन प्रकार के भेद करने चाहिये - आकार (form) जो कि जन्मदाता है. आदाता, जो माता का कार्य करता है, तथा दोनों से उत्पन्न सन्तान (जिसे 'फिलेब्रस' में मिश्रण (Mixturc कहा गया है), जो मूर्त है। आदाता पूर्णतः रूपहीन हैं, इसके सम्बन्ध में हम इतना ही कह सकते हैं कि यह कोई अदृश्य तथा सर्व-ग्राहक वस्तु है, जो रहस्यात्मक ढंग से बुद्धि-ग्राह्य में भाग लेती है यह वस्तुतः देश (Spacc) है।

'टिमियस' का यह तथाकथित मूल तत्त्व वस्तुतः त्रिविमितीय (three dimensions) देश के अतिरिक्त और कुछ नहीं, यह इस विषय पर स्वयं प्लेटो की शब्दावली तथा एरिस्टॉटल के कथन दोनों ही से स्पष्ट होता है। इस दर्शन (systcm) में किसी अन्य प्रकार के द्रव्य के लिए भी कोई स्थान नहीं है। सम-घनों से मूर्त के तत्त्वों की पूर्णरूपेण व्याख्या हो जाती है। तथा ये प्रारम्भिक त्रिकोणों से निर्मित हो सकते हैं। प्लेटो का निस्सन्देह यह अभिप्राय है कि मूर्त को पूर्णतया ऐसे विस्तार (cxtcnsion) में परिवर्तित किया जा सकता है, जो रेखागणित की दृष्टि से सीमित हो। परन्तु वह इससे और भी आगे जाता है, यद्यपि यहाँ पर वह अपने वास्तविक अभिप्राय के कुछ संकेत-मात्र ही देता है। हम इन्द्रियों से देश का प्रत्यक्ष नहीं कर पाते। हम तर्क की उप जातियों (species) द्वारा इसका अनुमान ही कर पाते हैं, और यह तर्कना भी मिश्रित है। हम 'कल्पना लोक,' में कहते हैं कि सभी वस्तुओं को किसी स्थान पर होना चाहिये, तथा उन्हें देश पर अधिकार रखना चाहिये (५२ ब), तथा जब त्रिकोणों का विवेचन होता है तब कहा गया है कि जो तत्व (principles) इनसे श्रेष्ठ हैं उन्हें ईश्वर जानता है तथा उस व्यक्ति को भी ये तत्त्व ज्ञात हैं जो ईश्वर को प्रिय है (५३ द)। देश सातत्यता का एक पक्ष मात्र है, परन्तु अनिवार्य पक्ष नहीं। परन्तु ये विवेचन हमें 'टिमियस' के पुराख्यान-विद्या से दूर ले जाते हैं, जबकि 'टिमियस' के प्रतीकोपाख्यान के लिए 'देश' ही परम तत्त्व है।

अतः मूर्त जगत् देश और काल के अन्तर्गत है, अतएव इसका वर्णन हम प्रतीकोपाख्यान की भाषा में हो कर सकते हैं। परन्तु इस विषय पर प्लेटो के कथन की परिसमाप्ति यहीं पर नहीं हो जाती। हम जगत् के बारे में जो कथन करते हैं वह सत्य तो नहीं है, परन्तु यह अधिकतर सत्य के सदृश है, तथा हमारा यह कर्तव्य है कि अपने कथन को यथासम्भव सत्य के सदृश बनाएं। संवेद्य तथा बुद्धिगम्य के मध्य की सीमा-रेखा निर्धारित नहीं है, एवं संवेद्य को उत्तरोत्तर बुद्धिगम्य बनाया जा सकता है। मैं समझता हूँ कि यह बात सभी लोग स्वीकार करेंगे कि 'थीटिटस' से लेकर बाद के सभी संवाद के स्वभाव तया हमें इसी सिद्धान्त की ओर अग्रसर करते हैं, तथा मेरा विश्वास है कि प्लेटो की भी यही मान्यता थी, इसे सिद्ध करने के लिए हमें प्रमाण मिल जायेगा। परन्तु दुर्भाग्य से उसके अनुयायी इस दृष्टिकोण को नहीं अपना सके, तथा प्लेटो के दर्शन को सामान्यतया लोग निरपेक्ष द्वैतवाद (aboslutc dualism) मानते हैं। जेनोक्रेटीज़ ने विज्ञान के क्षेत्र को पारमार्थिक वस्तुओं के

बाहर ही सीमित रखा, तथा पारमार्थिक लोकों को विश्वास का विषय बताया। उन्हें खगोल-विज्ञान की सहायता से समझा जा सकता है, परन्तु दृश्य होने के कारण वे संवेद्य-जगत् के अन्तर्गत हैं। उसके सम्बन्ध में यह कथन यदि सत्य है, तो जिस भेद को प्लेटो ने केवल सापेक्ष माना उसे उसने (ज़ेनोक्रेटीज़) निरपेक्ष बताया। परन्तु साथ ही साथ यह भी सम्भव है कि यह कथन प्लेटो के वास्तविक सिद्धान्त का केवल एक विकृत रूप ही हो। परन्तु एरिस्टॉटल के सम्बन्ध में भी कोई संशय नहीं है। यह निश्चित है कि सर्वप्रथम उसी ने इस घातक प्रत्यय का प्रवर्तन किया था कि स्वर्गलोकों की प्रकृति ऐहिक (sublunary) जगत् की प्रकृति से सर्वथा भिन्न है। इस सिद्धान्त को सामान्यतया 'स्वर्ग-लोकों, की 'अदूषणीयता' के नाम से जाना जाता है। प्लेटोवादी गैलिलियों ने इसी सिद्धान्त को असिद्ध करने के लिए धनु (sagittarius) में नये नक्षत्र के आगमन जैसी घटना की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया, तथा यह विचित्र बात लगती है कि जिस एरिस्टॉटल ने प्लेटो द्वारा आकार तथा संवेद्य वस्तुओं में किये गये पूर्णतः उचित पृथक्करण की निन्दा की। स्वयं वही इस प्रकार के और भी शंकास्पद 'पृथक्करण' के लिए जिम्मेदार हो। प्लेटो के संवादों में इस प्रकार का कोई भी संकेत नहीं मिलता। उसके अपने दर्शन में खगोल-विद्या तथा उसके युगल विज्ञान संगीत को अद्वितीय स्थान प्रदान किया, परन्तु ऐसा केवल इसलिए हुआ क्योंकि उन दिनों ये दो ही विज्ञान ऐसे थे जिनमें बुद्धिगम्य तथ्यों की स्पष्ट रूप से प्रगति हो रही थी, तथा संवेद्य-जगत् के प्रति तिरस्कार की भावना व्याप्त थी। 'रिपब्लिक' (५३० द) में भी ऐसा संकेत मिलता है कि गति से सम्बद्ध इन दो विज्ञानों के अतिरिक्त और भी विज्ञान हैं, तथा 'पार्मेनीडीज़' (१३० इ) से यह स्पष्ट होता है कि किसी पूर्ण विज्ञान में हमें केश, पंक, तथा धूल के साथ ही साथ ग्रहमण्डल की गतियों का भी विवरण देना आवश्यक है। परन्तु उसके खगोल-विज्ञान से ही हमें यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो सकता है कि संवेद्य तथा बुद्धिगम्य के बीच के सम्बन्ध के विषय में प्लेटो की क्या धारणा थी। यहाँ पर उसका पूर्ण विवेचन करना विषयान्तर होगा। अतः यहाँ उसकी केवल एक ही शाखा पर विचार करना पर्याप्त होगा। मैं यहाँ उसी शाखा पर विचार करता हूँ जिसके सम्बन्ध में लोग सामान्यतया भ्रम में पड़ जाते हैं।[1]

---

१. यह बात Sir T.L. Heath के Aristarchus of Samos में हुए तद्विषयक आधुनिकतम विवेचन पर भी लागू होती है, जो अन्य दृष्टियों से इन विषयों की एक सुन्दर निर्दशिका (guide) है।

उस समय की सबसे बड़ी समस्या ग्रहीय गतियों के सम्बन्ध में थी। इन्द्रियों को यह अनुभव होता है कि ये अत्यन्त अनियमित हैं। और सम्भवतः इसीलिए 'टमियस' में चलायमान कारण (errant cause) का उल्लेख किया गया है। सर्वप्रथम, यह ध्यान में रखना है कि चूँकि ग्रहों के पथ विषुवत रेखा (solstices) से तिरछे हैं, अतः उनके दृष्ट मार्ग सर्पिल (spirals) हैं, न कि वृत्तात्मक। तदुपरान्त, बुध तथा शुक्र की कभी सूर्य से तीव्रतर गति होती है, अतः वे सूर्य से आगे आ जाते हैं, तथा प्रभात-तारों के रूप में दिखाई देते हैं, किसी समय वे सूर्य से पीछे रह जाते हैं, अतः संध्या-ताराओं के रूप में दिखाई पड़ते हैं। वस्तुतः ये तीनों पिण्ड सदा एक दूसरे से आगे बढ़ते तथा लंघित होते हैं (३८ द)। अन्य ग्रहों की गति तो और भी विचित्र है। कभी-कभी उनके वेग इतने त्वरायित (accelarate) होते हुए प्रतीत होते हैं कि नियत तारों के मध्य स्थिर लगते हैं, अथवा उनके आगे भी बढ़े हुए प्रतीत होते हैं; कभी वे मन्द हो जाते हैं तथा उनकी गति पश्चगामी (retrograde) प्रतीत होती है। सूर्य के वार्षिक मार्ग में एक और भी अनियमितता है। संक्रान्तिया (Solstices) तथा विषुव (equinoxes) इसे चार समान खण्डो में विभाजित नहीं करते, जबकि हम आशा करते थे कि वे इसका ऐसा विभाजन करेंगे।

यह अनियमितता चरम स्थिति नहीं ग्रहण कर सकती। यदि हम प्रश्न करें कि क्यों नहीं, तो इसका एक मात्र उत्तर यह है कि विश्वकर्मा (Artificer) ने जगत् को शुभम् की शैली के आधार पर बनाया तथा किसी भी प्रकार की अव्यवस्था शुभम् के प्रतिकूल है। किसी नियम का अन्तिम आधार यही है कि प्राक्कल्पनाओं को व्यर्थ बढ़ाया न जाय। सरलता तथा नियमितता का जो अभ्युपगम आज भी वैज्ञानिक अन्वेषण के लिए मार्ग-दर्शक है, वह मूलतः प्रयोजनवादी है।[1] तथा यदि हम यह कहें कि प्लेटो के अनुसार सत्ता को तन्त्रबद्ध (system) होना चाहिये तो सम्भवतः उसके शुभम् से सम्बन्धित विचारों की निकटतम सीमा तक पहुँचेंगे। परन्तु उसने इसको जिस सरल ढंग से व्यक्त किया है उसके सम्बन्ध में कुछ कहा जा सकता है। जो कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि प्लेटो के अनुसार खगोल-विज्ञान का कार्य ऐसी सरलतम प्राक्कल्पनाओं का पता लगाना है जो खगोलीय घटनाओं की प्रत्यक्ष जटिल-

---

१. यहाँ पर यह ध्यान देना अनुचित नहीं कि यह शब्द teleion (complete, पूर्ण) से निकला है, न कि Telos (प्रयोजन) से। इसमें किसी वाह्य लक्ष्य का अर्थ निहित नहीं है।

ताओं की व्याख्या कर सकें। हमें यह तथ्य ज्ञात है कि उसने अपनी विद्वत-मण्डलो के समक्ष सौर-अपवादों को एक समस्या के रूप में प्रतिपादित किया था अव० (१७४)।

हमें यह भी ज्ञात है कि यूडॉक्सस ने एक सुन्दर प्राक्कल्पना की खोज की। उसने पृथ्वी की केन्द्रीय स्थिति के अभिग्रह के आधार पर इन अनियमितताओं की व्याख्या करने के लिए संकेन्द्रीय गोलों (concentric Spheres) की प्राक्कल्पना को।[1] हम यह भी जानते हैं कि प्लेटो ने उसके इस समाधान को संतोषजनक नहीं माना। सत्ताइस गोलों का अभिग्रह (assumption) करना उतना सरल नहीं प्रतीत हुआ, तथा विस्तृत अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि और अधिक गोलों का होना आवश्यक है। कैलिप्पस ने इनकी संख्या में वृद्धि की, तथा एरिस्टॉटल को भी इसमें कुछ ओर जोड़ना पड़ा। अन्त में संकेन्द्रीय गोलों के स्थान पर उत्केन्द्रक (eccentric) गोलों तथा अधिचक्रकों (epicycles) की प्राक्कल्पनाएं की गयीं, तथा इसके परिणामस्वरूप टॉलमीय पद्धति (Ptolemic system) का प्रादुर्भाव हुआ। इसके अतिरिक्त, एरिस्टॉटल ने यूडॉक्सस की रेखागणितीय प्राक्कल्पना को भौतिक गोलों की एक यान्त्रिक पद्धति में रूपान्तरित कर दिया, जहाँ इन गोलों का एक दूसरे से सम्पर्क बना रहता है। इन सब कारणों से यथार्थ खगोल-विज्ञान की प्रगति लगभग दो हजार वर्षों तक नहीं हो सकी।

इसके विपरीत, प्लेटो को यह स्पष्ट ज्ञात हो गया था कि भू-केन्द्रीय (geocentric) प्राक्कल्पना ही सारी कठिनाईयों की जड़ है। परवर्ती पाइथागोरियन्स ने यह बताया था कि पृथ्वी केन्द्रीय अग्नि के चारों ओर परिक्रमा करती है, तथा समस्या के समाधान के लिए इसी दिशा में अग्रसित होना चाहिये। यहाँ पर भी हमें एक अपरोक्ष तथा मौलिक साक्ष्य मिलता है। थियोफ्रेक्टस (जो प्लेटो की मृत्यु के पूर्व ही एथेन्स आ गया था, तथा यह प्रायः निश्चित है कि वह अकादमी का सदस्य था) ने कहा कि प्लेटो ने अपनी वृद्धावस्था में इस बात के लिए पश्चाताप किया कि उसने पृथ्वी को विश्व में केन्द्रीय स्थान दिया था, जिसके लिए पृथ्वी को कोई अधिकार नहीं था।[2] यह

---

१. इसके स्पष्ट विवरण के लिए देखिये, Heath, Aristarchus of Samos pp. १६० sqq.

२. Plunt. Quaset. Plat. 1006 c.
Life of Numa ii में प्लूटार्क निस्सन्देह उसी आधार पर कहता है।

अभियोगातीत कथन (unimpeachable testimony) है, तथा जिस व्याख्या मे इसका ध्यान न रखा जाय उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।[1] परन्तु इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि प्लेटो ने सूर्य-केन्द्री (heliocentric) प्राक्कल्पना को अपना लिया।

'टिमियस' (४० ब) में एक वाक्य मिलता है, जिसके सर्वाधिक प्रामाणिक पाठ[2] को यदि हम स्वीकार करें, तो वह उसी सिद्धान्त की ओर निर्देश करता है। इसका एकमात्र स्वीकार्य अनुवाद है कि 'हमारी धात्री पृथ्वी अक्ष (axis) के चारों ओर अपने पथ पर आती-जाती है, और यह पथ विश्व के ठीक मध्य से खिचा हुआ है। 'जिस शब्द का सामान्यतः अर्थ आगे-पीछे जाना' होता है उसका चयन विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि पार्थिव गति का केवल यही पक्ष ग्रहों की प्रत्यक्षतः पश्चगामी गति की व्याख्या कर सकता है। हमारे वर्तमान प्रयोजन के लिए यह पर्याप्त है, तथा में यहाँ पर उस विवादग्रस्त प्रश्न पर विचार नहीं करना चाहता कि अकादमी में सूर्य-केन्द्री प्राक्कल्पना पर विचार-विमर्श हुआ था अथवा नहीं। मेरा विश्वास है कि इस पर विचार हुआ था। परन्तु जो भी तथ्य रहा हो, यह निश्चित है कि सेमोस निवासी एरिस्टार्कस को, जिसने इस प्राक्कल्पना का प्रतिपादन किया था, प्रेरणा अकादमी से ही मिली होगी, न कि यूडॉक्सस से।

---

१. सर टी. एस. हीथ (पृ. १८६) कहते हैं कि थियोफ्रेस्टस न यह कथन किंवदन्ती के आधार पर किया। इसमें सन्देह नहीं, परन्तु इस किंवदन्ती को उसने सम्भवतः स्वयं प्लेटो से सुना था, और निश्चित है कि उसने प्लेटो के व्यक्तिगत शिष्यों से सुना था।

२. यह वाक्यः है : gen de trophon men hematraran, illomenen deten Peri tondia hantos hoton tetamenon. यहाँ पर सभी कुछ ten 'तन्त्र' शब्द पर आश्रित है, जिसे अनुच्छेद 'अ' में अत्यन्त स्पष्ट रूप से लिखा गया है, परन्तु मेरे संस्करण के अतिरिक्त अन्य सबमें लुप्त है। सभी कुछ ten के सिद्धान्त के सहारे स्पष्ट किया जा सकता है (अंकित, hodon), तथा हमें वृत्त अथवा परिक्रमा समझना चाहिये। किसी लेखक ने इस प्रकार के पाठ का अन्वेषण नहीं किया होगा, क्योंकि यही पाठ एक प्रथम कोटि की पाण्डुलिपि में भी मिलता है। यह सत्य है अनुच्छेद 'अ' में inglomenen के स्थान पर einglomenen है, परन्तु यह दैनंदिन की गड़बड़ी है, तथा प्लेटो से सम्बन्धित अन्य पाण्डुलिपियों से एरिस्टॉटल प्लूटार्क एवं प्रॉक्लस की पाण्डुलिपियों की सहमति के कारण प्रामाण्य के मापक्रम बदल जाते हैं।

आइये अब हम यह देखें कि इस सबसे प्लेटो के दार्शनिक दृष्टिकोण पर क्या प्रभाव पड़ता है। सर्वप्रथम, हम यह पाते हैं कि दृष्ट खगोलीय पिण्डों की घटनाओं से समस्या का समाधान प्राप्त होता है, तथा आद्योपान्त यह अभिग्रह किया गया है कि इनका बुद्धिगम्य विवरण देना सम्भव है। यहाँ पर ग्रह सम्बन्धी गतियों में अनियमितता के लिए संवेद्य-जगत् के दोषों, अथवा 'पुद्गल', अथवा अशुभ जगदात्मा को कारण बताकर समस्या से पलायन करने का प्रयास नहीं किया गया है, जैसा कि लोक-प्रचलित प्लेटोवाद ने बाद में किया। न ही यहाँ पर व्यवहार-जगत् को भ्रामक सिद्ध करने का ही प्रयास किया गया है। इसके विपरीत, सारे अन्वेषण का लक्ष्य है उनकी 'रक्षा' करना। आभासों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता। वे वही रहते हैं जो पहले थे। अन्तर केवल इतना ही है कि अब हमें उनका अर्थ ज्ञात हो गया। यहाँ तक बुद्धिगम्य तथा संवेद्य के बीच की खाई को समतल किया गया है। आकाशीय पिण्डों की दृश्य गतियों को एक बुद्धिगम्य तन्त्र (system) की ओर निर्दिष्ट किया गया, अथवा, अन्य शब्दों में, उन्हें हमने शुभम् (Good) के प्रकाश में देखा। यदि हम यह पूछें कि हमें वे वर्तमान रूप में क्यों भासित होती है, तो उत्तर इसी दिशा में प्राप्त होगा। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हम एक गोल पृथ्वी पर स्थित हैं, जो विश्व की धुरी के चारों ओर परिक्रमा करती है, तथा हम इस पर स्थित इसलिए हैं क्योंकि हमारी यह स्थिति ही शुभ है, यद्यपि हम अपने वर्तमान ज्ञान की अवस्था में यह नहीं जान सकते कि क्यों यह शुभ है। मैं समझता हूँ कि इस प्रकार प्लेटो ने जगत्-द्वय (two-world) रूपी भूत को शान्त किया, जिसने पार्मेनीडीज़

---

१. inglesthai क्रिया (जिसकी व्युत्पत्ति का einglesthai कोई सम्बन्ध नहीं है) का अभिजात ग्रीक साहित्य में इसके अतिरिक्त अन्य कोई अर्थ नहीं मिलता। सोफोक्लीज़ (Ant. ३४०) ने इसका प्रयोग खण्ड (नाली) में हल के आगे-पीछे जाने के लिए किया है, तथा ज़ेनोफ़न (cyn. ६) कुत्तों के इधर-उधर जाने के सम्बन्ध में कहता है, जब तक वे गन्ध तक नहीं पहुँच जाते। यदि अपोलोनिअस रोडियस (Apollonios Rhodios) को ingo तथा eingiso के बीच भ्रम हुआ, तो इससे कुछ सिद्ध नहीं होता। एरिस्टॉटल ने निश्चित रूपेण इन शब्द से किसी प्रकार की गति को समझा (Decaclo. २९६ a, ५), तथा वर्तमान कृदन्त के प्रयोग से भी यह पुष्टहोता है। मुझे यह अत्यन्त आश्चर्यकारी प्रतीत होता है कि एरिस्टॉटल ने इस प्रकार के विषय पर प्लेटो की शिक्षाओं को ठीक से न समझा हो अथवा उनका अन्यथाकथन किया हो।

के युग से ही ग्रीक-दर्शन को विक्षुब्ध कर रखा था, तथा जब उसने कहा कि संवेद्य-जगत् 'बुद्धिगम्य की प्रतिमा' है, तो उसका यही अभिप्राय था। उसने 'सोफिस्ट' संवाद में पहले ही स्पष्ट कर दिया था कि प्रतिमा होने का अर्थ अवस्तुता नहीं है। आभास भी आभास है, तथा यह असत् तभी होता है जब हम इसका प्रयोग किसी सत्ताहीन के लिए करते हैं।

उपसंहार (CONCLUSION)

प्लेटो के परिपक्व दर्शन का जो विवरण हमने अभी दिया है वह अनिवार्यत: अपर्याप्त तथा कुछ अंशों में सोपाधिक (hypothetical) है। इस सम्बन्ध में हम केवल इतना ही कहना चाहेंगे कि इस प्रसंग में जिन तथ्यों की 'रक्षा' करनी है वे हैं स्वयं प्लेटो की रचनाएं तथा एरिस्टॉटल एवं उन अन्य व्यक्तिओं के उसके सम्बन्ध में कथनों को देखें जो प्लेटो से परिचित थे। जो प्राक्कल्पना उनकी व्याख्या करने में समर्थ है वह प्रामाणिक है, तथा जो असमर्थ है वह अप्रामाणिक। प्राक्कल्पना के प्रामाण्य को जानने का अन्य कोई मार्ग नही। व्यक्तिगत रूप से मैंने प्लेटो सम्बन्धी अपने कम से कम बीस वर्षों की अवधि के अध्ययन में अनुभव किया है कि यह प्राक्कल्पना समर्थ है। इसके लिए मेरा इससे आगे कोई आग्रह नहीं है, और निश्चित रूपेण इससे कम भी नहीं है।[1] मैं अपने निष्कर्षों को इस ग्रन्थ के पाठक पर आरोपति नहीं करना चाहता, क्योंकि उसे इस विषय में स्वयं प्रयोग करना चाहिये। उसका यह प्रयोग निश्चित रूप से संतोषप्रद सिद्ध होगा।

एक और तथ्य उल्लेखनीय है। यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि मेरी समझ से प्लेटो जिस आदर्श का पोषक था उससे उसके साक्षात् अनुयायी बहुत दूर थे। एरिस्टॉटल उस आदर्श के गणितीय पक्ष के प्रति असहिष्णु था, अत: उसने इसे समझने तक का प्रयास नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि लगभग दो हजार वर्षों तक इसे अपना उचित स्थान प्राप्त नहीं हो सका। प्लेटो द्वारा

---

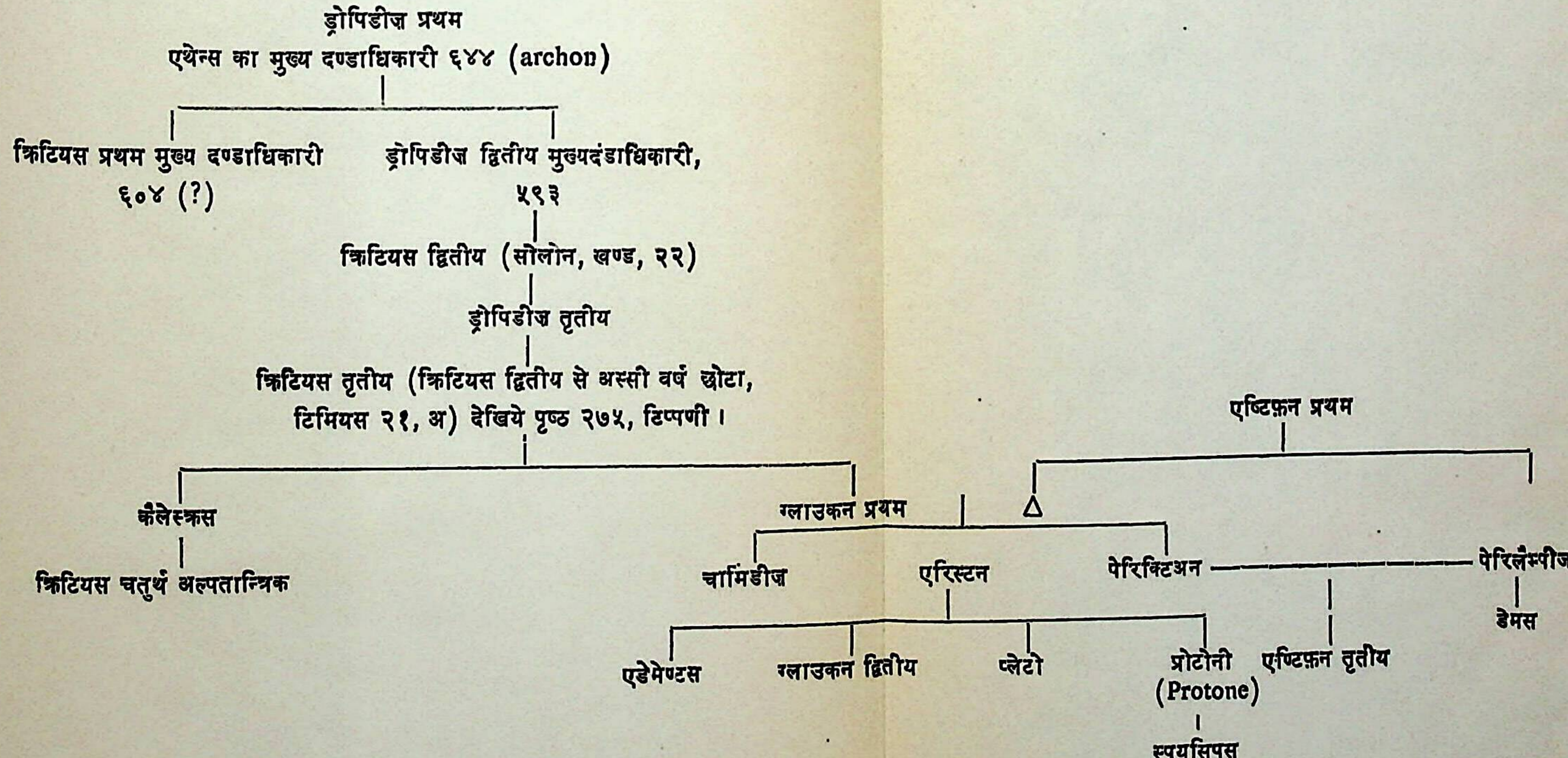
१. लगभग पचीस वर्षों पूर्व मैंने यह अनुभव किया कि साक्रेटीज तथा प्लेटो के सम्बन्ध प्रचलित दृष्टियाँ हमें निराशापूर्ण सन्देहवाद की ओर ले जा रही हैं, तथा निश्चय किया कि यह देखा जाय कि उस प्राक्कल्पना को किस रूप में ग्रहण किया जाय जिसमें कहा गया कि प्लेटो का अभिप्राय भी वस्तुत: वही था जो उसने शब्दों द्वारा व्यक्त किया तत्पश्चात् मैंने प्लेटो के सारे ग्रन्थों का सम्पादन किया, तथा सम्पादक को अनिवार्यत: अपने 'मूलपाठ' को सावधानी से अनेकों वार पढ़ना पड़ता है।

प्रारम्भ किये गये कार्य को वस्तुतः पूर्ण करने में जो लोग लगे हुए थे उन लोगों ने भी यह आवश्यक समझा कि शोध के परिणामों को इस रूप में प्रस्तुत किया जाय ताकि एरिस्टॉटल की आलोचना उन पर लागू न हो सके। यूक्लिड के एलीमेन्ट्स (Elements) उस पक्ष के स्मारक है[1] ज़ेनोक्रेटीज़ ने प्लेटो के संख्या-दर्शन को उसके गति-दर्शन से गड़बड़ा दिया, तथा आत्मा को आत्म-संचालित संख्या बताया। स्यूसिपस की धारणा थी कि शुभम् मौलिक नहीं वरन् विकास के क्रम में उत्पन्न हुआ है। नव्य-प्लेटोवादियों ने प्लेटो के शुभम् तथा आत्मा सम्बन्धी सिद्धान्त के प्रति अधिक न्याय किया, परन्तु वे प्लेटो की उस चेतावनी को भूल गये कि हमारे ज्ञान की वास्तविक अवस्था में इनका विस्तृत अनुप्रयोग 'सम्भावित कथा' मात्र होगा। तथापि प्लेटो के मूल चिन्तन को समझने में प्राप्त असफलताएं इस बात की साक्षी है कि उसके चिन्तन के अनेक पक्ष हैं। यदि हम उसके चिन्तन को ऐसे ढंग से पुनर्निर्मित करने का प्रयास करे जिससे यह स्पष्ट हो सके कि क्यों इस चिन्तन का इतने भिन्न-भिन्न रूपों में मिथ्या-बोध हुआ तो यह कार्य अनुचित न होगा। अन्ततोगत्वा, खण्डित किरणें' भी उसी सामग्री के अन्तर्गत आती हैं जिसकी 'रक्षा' करना अभीष्ठ है, और इसी कारण प्लेटो के दर्शन के अनेक पक्षों को हम उनके वास्तविक रूपों में तभी देख सकेंगे जब हम यह जान लें कि उसके उत्तराधिकारियों, और विशेष रूप से प्लेटो ने, उसे किस रूप में ग्रहण किया।

---

१. सम्भवतः सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्पर्श यह है कि वह स्वयंसिद्धों (axioms) को सहज प्रत्यय (innatt ideas) कहता है। यह एक ऐसा स्टोइक सूत्र है जिसके कारण वह प्राक्कल्पना के यथार्थ स्वरूप का विवेचन करने को वाध्य नहीं हो सकेगा।

प्लेटो की वंशावली की यह तालिका किर्चनर (Kirchner) की प्रोसोपोग्राफिया (Prosopographia, nr. ११८५५ · में दी गयी तालिका पर आश्रित है, परन्तु यह तालिका इस ग्रन्थ में दिये गये पाठ में व्यक्त निष्कर्षों से अनुकूलित सिद्ध हुई है ।



टिप्पणी : एफ्रोडिसियस निवासी एलेक्जेण्डर ने क्रिटियस तृतीय तथा क्रिटियस चतुर्थ (Diels, Vors. 3 ii. p. ३१२, ३२) में जो भेद किया है वह उचित है । एनाक्रिअन की एक कविता में क्रिटियस तृतीय की प्रशंसा की गयी हैं, अतएव यह स्वाभाविक है कि एनाक्रिअन की प्रशस्ति, अवशेष,) को उसके हेतु मानी जाय । यह द्रष्टव्य है कि इसके कारण हमें यह जानने के लिए और भी दृढ़ आधार मिलता है कि एडेमेण्टस तथा ग्लाउकन प्लेटो की अपेक्षा पर्याप्त वृद्ध हैं, तथा 'टिमियस' एवं 'रिपब्लिक' के लेखन के सम्भावित काल को पॉलिमार्कस के धुरिआई प्रस्थान के पूर्व मानना पड़ेगा ।

शब्दानुक्रमणिका

शब्दावली

अकादमी	:	Academy
अणुविश्व	:	Microcosm
अणुविषयक	:	Corpuscular
अत्यणु	:	Infinitesimal
अधार्मिकता	:	Impiety
अधिचक्रक	:	Epicycle
अधोपरिवाद	:	Theory of ups and downs
अन्त:–प्रज्ञा	:	Intuition
अन्तर्भात	:	Apocalyptic
अन्तक्षिस्थ	:	Celestial
अनिर्धार्य	:	Indeterminate
अनिष्ट	:	Evil
अनुकूलन	:	Adaptation
अनुनयन	:	Persuation
अनुपंथिता	:	Orthodoxy
अनुपात	:	Proportion
अप्रपंचवाद	:	Acosmism
अभिप्रेरणा	:	Motive
अभिग्रह	:	Assumption
अभिवृत्ति	:	Attitude
अभिसरित	:	Converge
अभिक्षमता	:	Attitude
अभ्यस्तता	:	Habit
अभ्युक्ति	:	Dictum
अमंगल	:	Evil
अयनकाल	:	Solstices
अयोज्य	:	Unadible
अल्पविरामी	:	Enharmenic
अवच्छेदक	:	Differentia

अवबोध	:	Apprehend
अविकार्य	:	Immutable
अव्यवस्था	:	Chaos
असम्मेय	:	Incommensurable
असीम	:	Boundless, Apeiron, Unlimited
अष्टमस्वर	:	Octave
आकाशीय	:	Meteorological
आकृति	:	Figure
आख्यान	:	Legend
आत्मा	:	Soul, Spirit
आधार द्रव्य	:	Matrix
आपादन	:	Implication
आभासी	:	Apparent
आवधिकता	:	Periodicity
आस्था	:	Faith
ईकाइ	:	Unit
ईश्वर–मीमांसा	:	Theology
ईश्वरवाद	:	Theism
उद्दीपक	:	Tonic
उद्धार	:	Redemption
उपनय	:	Application
उपरति	:	Abstinence
उपादानकारण	:	Material cause
उपाय	:	Device
उभयत: तीक्ष्ण	:	Dauble-edged
उल्का	:	Shooting star
उर्जा	:	Force
ऊहा	:	Conjecture
एकतत्ववाद	:	Monism
एकान्तिक	:	Extreme
एकाक्षर	:	Syllables
एषणा	:	Desire
ऐहिक	:	Secular
औषधि	:	Medicine
अंश	:	Portion
अंशग्रहण	:	Participation
अंशव्यापी	:	Particular
कर्ण	:	Hyhothenuse

करणीगत संख्या : Surd
कारणानुवन्ध : Cencatenation
काल : Time
कालगणना : Chronology
कालगणना–भ्रम : Anachronism
कूट लेखक : Forger
कोप : Wrath
खगोल–विज्ञान : Astronomy
खण्ड : Fragment
गति : Motion
गुण–धर्म : Property
गोलक : Sphere
घन : Solid
घटना : Phenomena
घूर्णन : Rotation
चक्र : Disk
चक्रावर्तक : Vortex
चयनिका : Anthology
चलायमान कारण : Errant cause
चान्द्रमास : Lunations
चित्त प्रकृति : Temperament
चिदणु : Monads
चेतना : Consciousness
चेतनाशय : Sensorium
जड़वाद : Materialism
जन्मान्तर : Transmigration
ज्योतिष : Astrology
जरायुज : Aiviparous
जलघड़ी : Klepsydra
तर्क : Contention, Logic, Argument
तर्कना : Reasoning
तर्कबुद्धि परक : Rational
तर्कवाक्य, प्रतिज्ञप्ति : Proposition
तादात्म्य : Indentity
ताल : Beat
द्रवीकरण : Liquefaction
द्रव्य : Substance
दृढ़विश्वास : Conviction

दृष्टान्त	:	Allegory
द्वन्द्वन्याय	:	Dialectic
द्वयक	:	Dyad
द्वादशफलक	:	Dodecahedron
दिव्यवाणी	:	Oracle
द्विवेनी	:	Diatonic
देहान्तरण	:	Metempsyohosis
देवन्दिन	:	Diurnal
दैवयोग	:	Deus ex machina
देवालय	:	Chapel, sanctuary
द्वेष-विद्या	:	Misology
धर्म	:	Virtye
धर्मदूत	:	Missionary
धर्मनिन्दा	:	Blasphemy
धर्मनिष्ठा	:	Piety
ध्यानपरक	:	Contemplative
धात्री	:	Midwife
धुन	:	Tune
धूप घड़ी	:	Gnomon
नाद	:	Tone
नानाविधि	:	Manyfold
न्याय	:	Justice
निराशावाद	:	Pessimism
निर्णय	:	Judgment
निःश्वास	:	Exhalation
निःश्रेयस्	:	Beatifie
निः सीम	:	Boundless
नीतिकथा	:	Apologia
पंचकोण	:	Pentagram
पदसोपान	:	Hicrarchy
पदार्थ	:	Categories
परमाणुवाद	:	Atomism
परलोक विद्या	:	Eschatology
परावाक्	:	Logos
परावृत	:	Withdrawn
परिकल्पना	:	Speculation
परिणामी	:	Resultant
पश्चगामी	:	Retrograde
पत्रक	:	Epistles

पाण्डित्यपूर्ण	Scholastic
पावनता	Holiness
पुद्गल	Matter
पुराख्यान	Mythology
पूर्णकामता	Satiety
पूर्वधारणा	Presumption
पूर्वमान्यता	Presupposition
प्रकृति	Nature
प्रत्यायक	Convincing
प्रतिकृति	Imitation
प्रतिमा	Image
प्रतीति	Appearance
प्रपंच	Appearance,
प्रबोध	Enlightenment
प्रलेख	Documents
प्रवृत्तियां	Instrncts
प्रज्ञा	Intellect
प्रज्ञान	Wisdom
प्राक्कल्पना	Hypothesis
प्राकृतिक-दर्शन	Natural philosophy
प्रेम	Love
प्रेक्षण	Observation
पंथक	Cult
बहुदेववाद	Polytheism
बुद्धित्व	NOUS, mind
बीज	Seeds
बेलनाकार	Cylindrical
ब्रम्हमाण्ड	Plenum
भागग्रहण	Partake
भविष्य कथन	Divination
भावदशा	Mood
भावात्मक	Positive
भावातिरेक	Ecstasy
मत	Theory
मताग्रह	Dogma
मनस	Mind, Nous
मनोदशा	Temper
महाकाव्यपाठी	Rhapsodes
महापंक	Slough

माध्य	:	Mean
मानत्वारोपी	:	Anthropomorphic
मानदण्ड	:	Measure
मापन	:	Mensuration
मिश्रण	:	Blend
मुख्यणु	:	Henods
मूर्त	:	Corporeal
मूल	:	Roots
मूलतत्व	:	Element
युगपद	:	Simultaneous
रन्ध्र	:	Aperture
रहस्य	:	Mystry
राजमर्मज्ञ	:	Statesman
रुप, आकार	:	Form
रुपान्तरण	:	Transformation
रेचक	:	Cathartic
लोक	:	Sphere
लोक प्रचलन	:	Canvention
वंश	:	Genus
वर्तुल	:	Spherical
वस्तुवाद	:	Realism
व्याघात	:	Contradiction
व्याघात प्रदर्शन	:	Reductio ad absurdum
वातावरण	:	Milieu
वाद कला	:	Polemics
विकर्ण	:	Diagonal
विग्रह	:	Strife
वितण्डा	:	Eristic
वितान	:	Magnitude
विधर्मिता	:	Heresy
विधि	:	Law
विधिशास्त्र	:	Jurisprudence
विधेयता	:	Predication
विनिमय	:	Exchange
विपरीत	:	Contrary
विमिति	:	Dimension
विरलीकरण	:	Rarefaction
विराट् – विश्व	:	Macrocosm
विलोम	:	Inversely

विवसित	:	Implied
विस्मय	:	Marvel, awe
विसंगत	:	Absurd
विशेष	:	Particular
विश्वकर्मा	:	Artificer
विश्वविज्ञान	:	Cosmology
विषुवकाल	:	Equinoxes
वीणा	:	Lyre
वेग	:	Velocity
वैकृत्य	:	Altereity
शकुन विचार	:	Divination
शंकु	:	Cones
शरीर रचना	:	Anatomy
शिक्षा	:	Education
श्रीपत्र	:	Papyrus
शुभ	:	Good
शून्यक	:	Vacuum
शोधक	:	Purgative
षट्पदी	:	Hexameter
सत्	:	Being
सत्यापन	:	Verification
सत्याभास	:	Verisimilitude
सदृश	:	Like
संक्रमण	:	Transition
संख्या	:	Numbers
संगीत	:	Music
संघात	:	Mass, Aggregate
संदर्भ	:	Reference
संसक्ति	:	Coberence
संसूचक	:	Suggestive
संहृतिवाद	:	Syncretism
संक्षेपण	:	Condensation
संनादी	:	Harmonic
संप्रत्ययवाद	:	Conceptnalism
संप्रत्ययन	:	Conception
संभवन	:	Becoming
संभाव्यता	:	Presumption
संयोजक	:	Copula
संवादी	:	Corresponding

संवेदनवाद	:	Sensationalism
संवृत्ति	:	Appearance
समद्विबाहुक	:	Isosceles
सम्मेय	:	Commensurable
समस्वरण	:	Attunement
सृष्टिकर्ता	:	Demiurge
सृष्टिमीमांसा	:	Cosmogony
सृष्टिविज्ञान	:	Cosmology
सर्वेश्वरवाद	:	Pantheism
स्वर	:	Note
स्वर-विद्या	:	Harmonics
सहकारी कारण	:	Concausa
सहजप्रवृत्ति	:	Instinct
सहसम्बन्धी	:	Correlative
सहवर्ती	:	Co-existent
सातत्य	:	Continuity
सादृश्यान्वेषण	:	Assimilation
सायुज्य	:	Communion
सार्वदेशिक	:	Universal
साक्ष्य	:	Evidence
स्राव	:	Flux
सिद्धान्त	:	Doctrine
सुसंगत	:	Concordant
हेतु	:	Middle term
हेत्वाभास	:	Fallacy

13
2